

माचार्य पाश्वैदेवकृत

सङ्गीतसमयसार

आचार्य बृहस्पति द्वारा मशोधित सम्पादित एव अनदित

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्दभारती, दिल्ली

```
प्रकाशक :
मत्री
श्री कुन्वकुन्वभारती .
७ ए, राजपुर रोड, दिल्ली ११०००६
```

प्राप्ति स्थान व्यवस्थापक श्री १०० प्रावाबंदरन देशभूषण जी महाराज ट्रस्ट (पजी०) श्री लाला सरदारीमल, रतनलाल जैन. स्रतिथि-भवन, ४१७ ज्वादुवाहोबेगम, एस्प्लेनेड रोड, दिल्नी-११०००६

प्रथम सम्करण जून १६७७

मूल्य पच्चीम मपया

© ग्राचार्य वहस्पति

मुद्रक

```
एमरसन ब्रिटर्स दिल्ली-११०००६
फोन २७३२५६
```

आद्य मिताक्षर

नाद-निर्वचन-

नाद संगोतशास्त्र का प्राणपुरुष है। यद्यपि नाद को नितान्त सगीत जागितक ही नहीं माना जा सकता। क्योंकि यह सम्पूर्ण भुवन ही नादा- विकिटत है। पुरुगल का गुण होने से यह सबंत्र ब्याप्त होता है। तवापि सगीत में नाद की सिविशेष उपयोगिता को स्वीकार किया गया है। यह 'ताद' बादद सम्कृत-व्याकरण के 'तर' धानु से निष्यन होता है। इसका मूल प्रयं 'अव्यक्त शब्द' है! अव्यक्त और व्यक्त स्वत्र तेता है। इसका मूल प्रयं 'अव्यक्त शब्द' है! अव्यक्त और व्यक्त स्वत्र ना तक हतीय के उपयोग से मिश्रित स्वत्र नो 'व्यक्ताव्यक्त' कहकर स्वित्र का एक तृतीय भेद और स्वीकार किया जा सकता है। अव्यक्तनाद वह माना गया है जिसमें मानवक्त के से अव्यक्त हो अव्यक्त नो की प्रशिव्यक्त प्राचित्र है है, जो स्वत्र ना है। इस वर्गणा में वीणा, वेण्, मूरग, मूरज स्वादि की अवर्णपिग्यह स्वति का ग्रहण किया जाता है। जव उस स्वति में स्व, क, च, ट, त, प—सादि वर्णों का स्पष्ट उच्चारण सन्तिवष्ट हो जाता है, तब वह व्यवत्यक्ति कहलाती है। उस नाद के विषय में विभिन्त विद्वानों, शास्त्रकारों एव विपयित्रिण के निस्वित्र होगा। से विभिन्त विद्वानों, शास्त्रकारों एव विपयित्रिण के निस्वित्यक्तरों ने अनेकवा प्रतिपादन किया है, जैसा कि निम्नलिब्य प्रकीर्तना से विदित होगा।

'प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी' कोपकार ने ऊँची दहाड, चिल्लाहट, चीख, गर्जन, सिहनाद^क मेघध्वनि एव जलप्रपात से उत्पन्न शब्द 'नाद' के

१ 'ग्राहंताना पुद्गलारका ।'—नुमारियभट्ट ।

--पौद्गतो दिगम्बरै: । पुद्गला परमाणव उच्यत्ते । तदात्मक इत्यर्व । 'पूरण गणाणाड्य गुण सहियर्डं । पुग्नलार्ड बहु भेवडं कहियर्डं ।

-- विवुध श्रीधर, वड्डमाणचरित्र १०/३**१/२०**

—पूरण गलन घादिगुणों के करण पुरुगल को अनेक भेद बाला कहा गया है। २. 'बाक्सिह नारे' — समन्तभद्र, स्वयभू, ३= 'सबद्गिहनाद' - सिडनेन ब०, ३/३६

'सुगदामहनाद' सिद्धमन ब॰, ३/३ 'ननादसिहनाद' प्रश्नविषेत्र, १/४८ 'सिहनाद' पीता, १/३८ 'सिहनाद' प्रतिब्हाति॰, ६/३

'सिंहरवम'—रत्नाकर, ११२

भर्ष में दिये हैं। वर्षाकाल में सान्द्रधनस्तिनत सुनकर 'केका' रव करने वाले भयूर को 'मेघनादानुलासी' घनध्वनि पर नृत्यकारी पक्षी कहा गया है।

दैदिक वाड्मय में शब्दबह्या को 'नद' कहा गया है। वह सुष्टि की सिस्क्षावस्था में प्रपने मानसकत्य को वाणीक्य प्रदान करता है। प्रत नद से उत्पन्न वाक् (ध्विन, नाद) को नाद कहा जाता है। नाद की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए घारदातिनक में कहा गया है कि सत्, वित्तु, आनद विश्वविद्या से सम्पन्न प्रणापित से संवंप्रथम शिवन का प्रादुक्षिव होता है। वह शवित नाद को उत्पन्त करती है धौर नाद से बिन्दु को उत्पत्ति होती है। 'जैन साहित्य में नादकला का ग्राकार ग्राथे चन्द्रमा के समान है, वह सफेद रंगवाली है, बिन्दु काले रंग वाला है।' महाभारत में भी स्वयम्भ्र द्वारा ग्रावादिनयन तित्य वाक् की उत्पत्ति का ग्राभिषात किया गया है जिसका ग्रादिक्य वेदासक (ज्ञानात्मक) है और जो ससार की सम्पूर्ण प्रवित्तियों भी भीत्रोत है।

अवृत्तिया न आत्मात्म हो ।

मनुष्य गरीर में नाभिस्यान को नाभिसरोवर, बह्मप्रन्य, नाभिहृद
ग्रादि अनेक नामो से श्रमिहित किया गया है। इस नाभिसरोवर में दिश्य
कमल उत्पन्त होता है, उस पर ब्रह्मा का प्रासन परिकल्पित किया गया है।
बह्मा का स्वरूप चतुर्युं ह है, उनने पर अहा। स्वा है। वही सृष्टि मे सर्व
प्रयम छन्दोगायी है। वही श्रृति अथवा श्रुत का उद्गान करते हैं। यह
श्रृत शब्दाविच्छन है अतएय उत्पन्मध्यसी है, पृद्गन्यभ्रमों है, परन्तु इस
भावश्रुत का अर्थ विषयाविच्छन है, अनादिनिधन-निन्य है। शनयथब्राह्मण मे एक प्रतीक-कथा है 'श्रय प्रावापन्या पर्स्पिये-देव, मनुष्य
भ्रोर अमुर प्रजापनि को नीनो सन्नान एक वार प्रजापति से उपदेश-सहणार्थ उनके समीप उपस्थित हुई। उन्होने प्रजापिन में निवेदन कियाकृत्या हमे उपदेश प्रदान कीजिए। सानुकस्य परमात्मा ने उपदेश देते हुए
उनके प्रति केवल 'द' श्रद्धर का उच्चारण निया और तूर्णीक हो गये।
'द' श्रक्षर को मुनकर देवो ने विचार किया—प्रदो! भगवान प्रवाति ने
ह्मारे निमित्त सम्बक् उपदेश किया है। हम राजरत, भोगविनास,
अपसराओं के नृत्य आदि में मन रहकर स्थमग्रहित हो गये हैं श्रन 'द' से

 ^{&#}x27;सिंच्यदानन्दिशवान् सकलान् परमेश्वरात् । ध्रासीच्छक्तिन्ततो नादो नादाद् विदुसमुद्भव ।
 'नादश्चन्द्र समाकारो विदुर्तीलसमप्रभ ।'

[—]गारदातिलक, १/७ — ऋषिमङलस्तोत्र, १२

विद्वागतम् ।

भगवान ने हमें 'दमन'-इन्द्रियनिग्रह का उपदेश दिया है। मनुष्यों ने विचार किया कि हम धन के अतिसचय में लगे रहकर घोरपरिग्रही हो गये हैं एतावता हमें अर्थनियमन, परिग्रह परिमाण रखते हुए 'दान' करना उचित है। असुरो ने सोचा के हम बहुत करकर्मा है और प्रायः संहार की रुचि रखते हैं। प्रजापति भगवान ने हमें 'द' अक्षरद्वारा 'दया' का उपदेश दिया है। इस अकार प्रजापति के 'द' अक्षरायदेश को तीनों ने तीन विभिन्न अर्थों में ग्रहण किया। नाभि से उत्पन्न, कमलासन पर विराजमान, चतुमुं ख और एक दिव्यध्विन से सम्पूर्ण जीवों को उनके वाध्वित उपदेश के प्रवक्ता प्रजापति को यह वंदिक गाथा भगवान् ऋपभदेव की अवधारणा को पुष्ट करनी प्रतीत होनी है जिनके निए-'दिव्यध्विनभवित ते विशदार्थं सर्वभावा' कहा गया है।

सगीतिबद्याविद्यारदो का कथन है कि नाद की उत्पत्ति ब्रह्मग्रस्थि से होती है। भगवान शकर नादततु है, नाद के प्रवक्ता है। 'संगीतोप-निपन्तारोद्धार' में वर्णन है कि 'नािभ में एक क्समंक है, उसके कन्द पर पद्मिनी है, उसकी नाल मे एक पत्र है, उसमे एक कमल है। उससे प्रमिन-प्राण की स्थिति है, उससे बायु की उत्पत्ति होती है। उस प्रमिनदायु के सयोग से सिद्धध्वित उत्पन्त होनी है। उस सिद्धध्वित के योग से नाद की उत्पत्ति होती है। ' ब्रह्मा, विष्णु और महेस्वर तीनो देव नादात्मा है। इतना हो नही, परब्रह्म, पराशक्ति और ब्रोकार भी नादसभव हैं। इसीलिए विद्युद्ध नाद की उपासना पराशक्ति, परब्रह्म, विदेव और ब्रोकार की उपासना है।

सगीतरत्नाकर: १/१

नाभी यत् कूमंचक स्थातस्य कन्दे तु पद्मिनी। तस्या नाले तु यत् पत्र तरिसम्ब कमल स्थितम् ॥ तत्र च ज्वलनी भूतो वायोस्तस्माच्च सम्बः ॥ तत सिद्धम्बनेथीगादेष नादस्तु जायते ॥ नादास्मानस्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णुमहेष्वरः । पर ब्रह्मा परामानितरोसारो नादसभवा ॥'

---संगीतोपनिषत्सारो**ढा**र. १/२ १-२७

 ^{&#}x27;ऋग्रुगनिखजमास्तानुगतिना चित्तेन हुत्तकजे सूरीणामनुरजक श्रुतिपद योऽय स्वय राजते । यस्माद् ग्रामविभागवणरचनालकारजातिक्रमो वन्दे नादतनु तमुद्धरजगद्गीत मुदे शकरम् ॥'

नाद के इन व्याख्याकारों का प्रतिपाद भाशय यह है कि नाद की उपासना ब्रह्म की उपासना है क्योंकि वह तन्मयता उत्पन्न करते हुए भ्रात्मस्थ होने की वृत्ति को लक्ष्य करता है।

ॐ अथवा ओकार को नादब्रह्म का सर्वोच्च उद्गान माना गया है। भारतीय बाड मय मे यह विन्तक्षण शब्द है। इसे परमात्मा का वाचक पर माना गया है 'तस्य वाचक प्रणव' 'ओमिरवेकाक्षर ब्रह्म' 'अणवरण्डन्स्य सामहम् ओ स्म का अर्थ है—जिससे परमात्मा की स्तृति की जाये—'अण्यते सामहम् ओ स्म का अर्थ है—जिससे परमात्मा की स्तृति की जाये—'अण्यते स्तृत्यते परमात्मा वेन स प्रणव' अवतीति ओम् — रखा करता है, भ्रतः ओम् सक्रक (परमात्मा) है। नादानुसन्धान करते-करते प्रन्त में ओम् नाद की सिद्धि होती है। यह ओकार बिन्दुसंयुक्त है। बिन्दु सृष्टि का परम रहस्य है। योगी इस बिन्दुसंयुक्त ओंकार का नित्यमेव ध्यान करते है। काम और सोमित होने की प्राप्ति ओकार से सभव है—ऐसा प्राचीन-ग्राचार्यों का प्रमिनत है।

श्रोकार के दिव्यनाद का बलाघात मूल में कुण्डलिनी शक्ति पर श्रीर चूल में शीर्षस्थ सहस्रार पर होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द कुण्डलिनी का प्रबोध बैतालिक है, उसे प्रवृद्ध करने वाला श्रतिसक्षम शब्द है। इस मधुरमन्द्र छन्द शीर्प को सुनकर वोबसाम्राज्य को अधीदवरी कुडलिनी निद्रा का परित्याग कर वेंगे है। एतावता श्रोंकार सुधुन्णापण के श्रवरोध का दूरियता है श्रीर शिव के साथ शक्ति का, श्रारमा के साथ परमात्मा का सम्बन्धस्थापक है।

१ 'स्रोकार बिदुसयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिन । कामदं मोक्षद चैव स्रोकाराय नमो नम ॥'

^{&#}x27;यङ्ख्न्दसामुषभो विश्वरूप । छन्दोन्योऽध्यमृतात् संबभूव । स मेन्द्रो मेखया स्पृणोतु । श्रमृतस्य देवधारणो भूयाक्षम् । शरीर मे विचर्षणम् ।।'

⁻⁻⁻ तैनिरीयोपनिषद्, शाकरभाष्य० शिक्षाध्याय ४/१

मेथा और श्रीज्ञान्ति के लिए परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। वह परमात्मा छन्दीवाक् (वेदमाया) में ऋगम और विश्वकष्म कहा गया है। श्लोकार ही वह ऋगम है, विश्वकष्म है। वह बेरो के श्रमुन भया से उत्त्यन हुआ है। वह इन्द्र (वर्षविक्तामान श्लोकार) मुक्ते मेथा से बनवान् करें। हेदेव ! मैं ममुतत्व (ब्रह्मज्ञान) का चारक बनें। मेरा छारीर इसके लिए योग्य करें।

नाद स्फोटजन्मा है। यौगिक कियाओं द्वाराकुण्डलिनी का जब व्युत्थान होता है तब स्फोट होता है। इस स्फोट से नादोत्पत्ति होती है ऐसी भी एक मान्यता है। यह नाद सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। इस मे व्याप्तरूप में वह धनाहतनाद कहा जा सकता है। जिस प्रकार स्वासोच्छवास से परिगृह्यमाण प्राणवायु सर्वत्र व्याप्त है भीर प्राणी के नासापुटों द्वारा ग्राकर्षित होने पर व्यष्टिरूप में उसे प्राप्त होता है उसी प्रकार समब्टिनाद भी नादानुसंधित्सु को साधन की भूमि पर व्यष्टिरूप में उपलब्ध होता है। व्यष्टिनाद से ऊपर उठकर साधक उस समष्टिनाद को सुनने का यत्न करते है। उन्हे अनाहतनाद के रूप मे विराट झात्मसत्ता में गुजायमान इस अपाधिव नाद को सुनने का सौभाग्य मिलता है। योगियों ने इस अनाहतनाद का अनुभववर्णन करते हुए लिखा है कि यह सर्वप्रथम समुद्रगर्जन, मेघस्तनित, भेरीरव और भर्भर ध्वनि के समान सुनाई देता है। मध्य में मर्दल, शख, घण्टा भौर काहल से उत्पन्न ध्वनि के समान शब्द की प्रतीति होती है और अन्त में किंकिणी, वंशी, भ्रमर श्रीर बीणा के निक्वाण जैसे ध्वनि सून पड़ती है। इस प्रकार, नानाविध शब्द देह के भीतर सुनायी देते हैं। इस अनाहतनाद को सुनने में तम्मय हमा योगी साधक संसार के समस्त पौदगलिक विषयों से अपने को सहज विमुक्त पाता है। जिस प्रकार पुष्प के मकरन्दरस का पान करने वाला भ्रमर उस पूर्व के गन्ध की अपेक्षा नहीं करता, अथवा जैसे घास चरती हुई गौ उस यवसमुष्टि को प्रदान करने वाली गोपाली के हाथों में रची हुई मेहदी की ओर दुष्टिपात नहीं करती अथवा कि आहार ग्रहण करते हुए श्रमण मुनि जिस प्रकार बाहारदाता के मणिकंठाभरणो से निर-पेक्ष रहते हैं वैसे ही शब्द नाद में ग्रासक्त वित्त विषयों की ग्राकाक्षा नहीं

---भावाष्ट्रक

श्वादी जन्मधिजीमृत शेरी फर्फर सम्भवा ।
 मध्ये जन्म श्लीत्या बटाकाहलजास्तया ।।
 प्रस्ते तुः किंकिणीवंश वीणा अमरिन स्वता ।
 दितं नानाविधाः शब्दाः श्रयन्ते बेहमध्यमा ।।'

२. 'धनुषम दरूशन ज्ञान सुखामृत धनहत बाजे मृदग'

 ^{&#}x27;मकरन्यं पिवन् भूंगो गन्धं नापेक्षते यथा।
 नाद्यस्यतं तथा विश्तं विषयात्र हि काक्षति ।।'

करता । इस ब्रनाहतनाद को जुनते रहने से प्रपेक्षित ध्यान में एकाग्रता, निराकुलता और शान्ति का अनुभव होता है । इससे पाप का क्षय होता है क्योंकि पाप की संप्राप्ति (ब्रासव) चचल मन के योग से होती है। वह मन नादासक्त होने पर स्वत स्थिर हो जाता है। हठयोगियों का तो अनु-भव है कि उस अवस्या में चित्त निरंजन में लीन हो जाता है। वस्तव में नाद के समान लयकारी, समाधिसहायक अन्य कोई उपाय नही है—'न नादसदशी लय'।

दार्धनिक किन कबीर ने ससार-समुद्र में नाद श्रीर बिन्दु को नौका बताया है। रामनाम इस नौका का कर्णधार है, पतवारिया है। परभात्मा के गुणों का गान करना ही सार है। गुरु के बताये मार्ग से ही इस अव-समुद्र से पार उतरा जा सकता है। 'इस प्रकार क्रनेक रूपकस्तिविश से नाद को आत्मानुसन्धान में सहायक निरूपित किया है। आत्मानुसन्धान

ग्रीर ग्रात्मतत्व की प्राप्ति ही तो परम उपलब्धि है।

पाणिनीय शिक्षा में नादोत्पत्ति का कमनिदंश करते हुए बताया गया है कि मात्मा बुद्धि से संयोग करता है, मन विवक्षाधीन मयी के साथ युक्त होता है। वह व्यापारित मन शरीरिस्यत म्रानि पर माधात करता है। मनि वायु को प्रेरणा देता है। वह मारुत हृद्यप्रदेश में ऊर्ध्व सवरण करता हुमा मन्द्रस्वर (नाद) को जन्म देता है। मारुत से उदीणे (ऊर्ध्व-क्षित) वह मन्द्रस्वर मुर्च प्रदेश में श्राभिहित होता है भौर मुख्यत्र का मन्तवर्ती होकरवर्णों को प्रसूत करता है। यादोत्पत्ति का यह मार्ग नाद को स्फोटरूप

१. धनाहत नाद की माकृति।

 'सदा नादानुसन्धानात् क्षीयते पापमचय । निरजने विलीयेते निञ्चित चित्तमाहतौ ।।'

तमारता ।। —हठयोग प्र०४/१०४



४ 'नादिविंदु की नाव री, रामनाम कनिहार। कहै कवीर गुण गाइले, गुरुगमि उत्तरौ पार॥'

 'श्रात्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युक्ते विवक्षया । मन कार्यानिमाहिन स प्रेरपति मास्तम् ॥' मास्तत्पुर्तस वरन् मन्द्र जनयति स्वरम् । सोदीणौ पुरुष्यीमिहतो बक्तमापद्य मास्तः ॥ वर्णान् जनयते'



-- पाणिनीय शिक्षा ६-८

प्रवान करता है, उसकी उच्चारणावस्था एवं श्रृतिलम्य ध्विनक्ष्य का निर्व-चन करता है। अब यदि इसकी विकोमगति पर विचार करें तो नाव के पिछे चलते हुए आत्मा के समीप ही पहुंच जाएं गे। यथा— यह मिलनत करें कि कच्छ, श्रीच्छ, मूर्चा, तालु आदि प्रदेशों से उच्चायमाण यह अक्षरारामक ध्विन कंठ से पूर्व कहाँ अवस्थित थी। उत्तर मिलेगा हृदयप्रदेश में। हृदय से पूर्व मूलाधार स्थित अमिनवायु में, उससे पूर्व मन में, मन से पूर्व बृद्धि में और सर्वेत पूर्व आत्मा में। अनुसन्धान की वीथियों में अन्तः, अन्तः अवेश करता हुमा चेतन धन्त में आत्मा को ही पा लेता है, यही नादोपासना का चरम प्रयोजन है।

एक घट का उदाहरण है—उत्पन्न होने से पूर्व घट के लिए कुम्म-कार प्रिपेक्षत है, मिट्टी, जल, चक, चीवर, दण्डादि की प्रपेक्षा है परन्तु जब प्रिनिष्पन हो कर घट निष्पम हो जाता है तब जल मरने के समय उसे न कुलाल चाहिए, न मृत, चकादि। 'इसी प्रकार नाद की प्रारम्भिक साधना में शब्द, गीत, लय, ताल, वाद्य-यत्रादि की प्रपेक्षा की जाती है, 'सी.इ' का पाठ घोलना पड़ता है, परन्तु नाद के स्थूल रूप से सुक्ष्म की ब्रोर प्रत्यावर्तन करते-करते शब्दादि का परिधान निष्प्रयोजन हो जाता है। तब यह नाद निर्म व्याववा दिगमकर, यवाजातरूपघर हो जाता है। तिबार-ऋतु में वृक्षों के पत्रों के समान इसके वाह्य उपकरण फर जाते है, शब्द-समुच्चय की निजंदा हो जाती है भीर शुद्ध नाद 'ओ३म्' येष रह जाता है। इस प्रवस्था में समूर्ण परसमयों का अन्त होकर विशुद्ध स्वसमय की प्राप्ति होती है। यहाँ घाने पर यह संगीत, यह नादोपासना 'समयसार' का सार्षक विशेषण प्रस्तित कर पाती है।

ऋत्वेद में एक प्रसिद्ध मंत्र है 'चत्वारिः श्वृगाः' जिसके प्रमेक प्रथं विद्वानों ने किये हैं। इस—मन्न में वृष्म पर एक रूपक-निरूचित का प्रध्या-हार किया गया है। संगीत की दृष्टि से इसका प्रयं कुछ इस प्रकार होगा—इस संगीतरूष वृष्म के चार श्वृंग है (स्वर, गीत, वाद्य प्रीर ताल प्रयंवा तत, घन, सुषिर श्रीर ग्रानद्ध)। तीन चरण है—(गीत, नृत्य ग्रीर

१ 'मृत्पिण्डदण्डचकादि घटो जन्मन्यपेक्षते ।

उदकाहरणे तस्य तदवेक्षा न वतंते ॥' — प्राचार्य धकलक, श्लोकवार्तिक २/४८ १. 'चत्वारि श्रांगाश्त्रो प्रस्य पादा., हे शीर्षे सप्त हस्तासो प्रस्य ।

त्रिधा बढ़ो बुलभो रोरवीति, महो देवो मर्त्यान् प्राविवेश ॥'

वाद्य)। दो शिर है- (श्रोज, नेत्रमहोत्सवरूप ध्रयवा वादादि उपकरण भीर गाजवीणा)। सात हाय है-- (निपाद, ऋषभ, गान्धार, पड्ब, मध्यम, धैवत, पचम-सप्तस्वर) यह बूपम तीन प्रकार से बधा हुपा है-- (ह्रस्व, वीर्घ, जुड्बनाए से ध्रयवा मन्द, मध्य, तार स्वरो से) यह ब्रस्ट करता है। इस महान् देव ने मर्त्यों मे प्रवेश किया है।

'धीती वा ये अनथन् वाचो अग्रम्' (अथर्व ७/१/१) — वास्तव में अध्येता वे ही है जो वाणी को अग्रभाग पर्यन्त न गये हैं। मुखयन्त्र से उच्चरित वाणी को - व्यक्ति को जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। आवर्यक्त यह है कि वाणी का मूल उद्गम कहाँ है। जो व्यक्ति हरद्वार प्रथवा वाराण्या में अवहमान गगा के स्रोत को देखकर ही 'मैंने गगा को जान विचार ऐसा प्रत्यय रखता है, व उससे अस्पन्न ही अपने उसका हिमालय से आवि-भूत प्रथम उद्गम स्थान देखा है। जिस प्रकार पुत्र अपने पिना को जानका है उसी प्रकार स्थूलनादीस्पन्न शब्द भी अपने सूक्त कायिया को जानकर ही धन्य होता है। ऐसा कोई शब्द असका अर्थ नही, एक निरयंक वाग्व्यापार होतो है। ऐसा कोई शब्द अपने मूलानुसन्धान मे सफल होकर ही शोभा धारण करता है। नाद का मूलानुसन्धान, प्रयोजन आरमसिवत् है, इभीनिए यह 'समयसार' है, योगिध्येप है।

जो नाद स्वय मुणोभित होना है, वह स्वर कहनाता है। पद स्वर का प्रशिक्तण है और वह प्रयं का प्रतिपादक है। भीर दिगुद्ध नाद का आधक्यजनक प्रभाव है। स्वरं के देवों को यथि द्वाशास्त नथा मोदक मिस्टान्न उपनथा नहीं होते तथापि वे इस नाद के (सगीत के) मधुर धास्तादन से पित्नुत होकर ध्रथने समय का सुखपूर्वक व्यतियापन करते हैं। यह नाद परसपद देने वाला है और इससे परसदेव जिनेस्वर की धारा-धना की जाती है। ऐसे उत्तमप्रभाव का धारक विश्वदनाद शुद्धसत्त्व सज्जनों के पवित्र काय में उत्पन्न होता है। इस उत्तम नाद की विजयहरी।

१. 'स्वय यो राजते नाद स्वर स परिकीर्तित ।

पद स्वराधिकरणमर्थस्य प्रतिपादकम्।।'

⁻⁻ श्राचार्य पार्श्वदेव, सगीतसमयसार ५/१६-१७

२. संगीतोपनिषत्सारोद्धार २/२

डॉ॰ शीमती हेम भटनागर ने 'श्रांगार यग में संगीत-काव्य' विषय ! पर अनुसभान करते हुए अपने शोध प्रबन्ध में निष्कर्ष रूप में जैन राग-मालाओं की चर्चा को है। उनका कथन है कि 'जैन मूनि सगीत का ज्ञान भी प्रधिक मात्रा में रखते थे. ऐसा उनके ग्रन्थों का अवलोकन करने से विदित होता है। जैन मुनियों मे रागमालाएँ लिखने का बढ़ा प्रचार था। कवि अपने किसी तीर्थंकर का यश वर्णन करते समय राग तथा रागनियों में बांधकर काव्य-रचना करता था। जैन कवियों की संगीत-प्रियता धसंदिग्ध है। जैन रागमालाओं में हिन्दी रागमालाओं का मल मानना उचित होगा : कैन मुनियो ने संस्कृत-कथा-साहित्य के क्षेत्र में भी महान योगदान किया है। उन्होंने धार्मिक सिद्धान्त एवं नैतिक उपदेश कथा के रुचिर माध्यम से प्रस्तुत किये है। विद्वदवर प० बलदेव उपाध्याय ने लिखा है, कहानी लिखने में जैनियों को शायद ही कोई पराजित कर सके। उनके यहाँ उसका एक विज्ञाल भव्य साहित्य है। पंचतत्र स्वयं एक विस्म-यावह कहानियों का एक सामान्य सग्रहमात्र न होकर साहित्य की ५ डिट से एक नितान्त उपादेय ग्रन्थ है जिसका प्रभाव भारत के ही कथा-साहित्य के ऊपर न पडकर पिचमी जगत के साहित्य पर विशेष रूप से पड़ा है।"

जैनाचार्य पार्श्वदेवकृत यह प्राचीन प्रन्थ भारतीय सङ्गीतशास्त्र के इतिहास की एक प्रज्ञात एवं प्रचिवित किन्तु महस्वपूर्ण कडी है। सङ्गीत समयसार इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन पूर्ण में जैन साञ्ची को विविध्य कलाओं का विशिष्ट ज्ञान था और उन्होंने इनका मनन, चिन्ता पूर्ण आलोइन करने के उपरान्त मीलिक विश्लेषण किया है। प्राचार्य पार्श्वदेव की इस कृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि सङ्गीतशास्त्र के गृढ़ एवं सुक्ष्म विद्धान्ती एवं उनके प्रयोग का रचनाकार को विशिष्ट ज्ञान था, साथ ही उन्हें काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र का परिज्ञान था। कुन्दुकुन्द भारती का यह महस्वपूर्ण प्रकाशन सङ्गीत में ग्रामिश्व रखने वाले कला प्रमियों के लिए वरदान सिद्ध होगा और इस क्षेत्र में प्रमुसिन्दरसुप्तों के लिए अनुसंधान का नवीन मार्गश्रास्त करेगा।

इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रामाणिक अनुवाद में आचार्य वृहस्पति ने अयक परिश्रम किया है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित एवं सङ्गीत के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। उन्होंने विगत चार-पांच वर्षों में परिश्रम करके इस

१. ऋगार युग मे सगीत काव्य, डॉ॰ हेम भटनागर, पृ० २२-२४

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पं० बलदेव उपाध्याय, १६६५, पृ० ८

प्रत्य का अवगाहन किया और इसका अनुवाद करते हुए पादिष्णण में शोधपूर्ण सदर्भ प्रस्तुत किये। आचार्य जो की इस क्षेत्र में महती सेवाएँ हैं। निरुष्य ही उन्होंने, शाचार्य पार्वदेव के गृढ़ भावों को इस प्रत्य में सहुत ही स्पष्ट कर अस्तुत किया है। इस प्रत्य के परिशिष्ट से भी उनके परि-श्रम का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हमारा उनको शुआधी-बांद है, वे इस क्षेत्र में अपनी मौलिक प्रतिभा से प्रविस्मरणीय योगदान करते रहे। पं अमन्दर जैन ने इस प्रत्य के मुद्रण एवं प्र्क संशोधन में बहुत परिश्रम किया है। प्राकाशवाणी दिल्ली के श्री सतीख जैन ने इस प्रत्य के प्रकाशन में बढ़े उत्साह एव लगन से संयोजना की है। हमारा इन दोनों को शुभाशीर्वाद है। यह ग्रन्थ उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा, ऐसा हमारा विद्वास है। श्री कुन्दकुन्द भारती का सक्ष्य प्राचीन महत्त्वपूर्ण किन्तु जुलप्राय ग्रन्थों को लोकन प्रकाशित करना है और इस उद्देश्य की

—विद्यानन्द मुनि

भूमिका

योगानन्दमयाः केचिद् भोगानन्दपराः परे । वयं सर्वप्रदातारं विद्यानन्दमुपास्महे ।।*

कई वर्ष पूर्व कुछ उत्साही जैन युवकों के माध्यम से प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को परम श्रद्धास्पद पूज्यपाद उपाध्यायवर्ष्य मुनि श्री विद्यानन्द जी की सेवा में उपस्थित होने का प्रवत्तर प्राप्त हुआ था। उनका प्रमुख्त निरन्तर वृद्धिकृत होता गया और मुक्ते यह निवेदन करने का प्रवत्तर मिला कि तेरहमें शती ई० के एक दिगाचर जैन भाषाय्यं पाश्वेद की एक इति 'सङ्कीतसम्पदार' की कुछ प्रतियों देव के विभिन्न पुस्तकावर्षों में सह पृशित है यदि उनके भाषार पर इस प्रन्य के, यचासम्भव, संशोधित रूप का प्रकाशन, हिन्दी-मृनुवाद-सहित, हो जाये, तो भ्रनेक वृष्टियों से उपयोगी होगा।

जैनों के 'ठाणा जूमुत्त', 'राया पसेणीय', 'झनुयोग द्वारसुत' इत्यादि संयों में सङ्गीत सम्बन्धी प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है " जैन माचाय्यों के द्वारा 'सङ्गीतवास्त्र' पर भी स्वतत्र ग्रन्य भवस्य लिखे गये होंगे, तथापि वतंत्रमात स्थिति में उपलब्ध, जैन भ्राचाय्यों के द्वारा निखत सङ्गीतसम्बन्धी तक्षाणग्रन्थों में, 'सङ्गीतसमयसार' प्राचीनतम है। 'सङ्गीतसम्बन्धी क्षाणग्रन्थों में, 'सङ्गीतसमयसार' अपनित्रमात है। 'सङ्गीतसम्बन्धी क्षाणग्रन्थों में, 'सङ्गीतसम्बन्धी क्षाणग्रन्थों में, 'सङ्गीतसम्बन्धी क्षाण्य है। 'सङ्गीतसम्बन्धी क्षाण्य है। 'सङ्गीतस्त्रमात क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य स्थाप्य उपाध्याप्य स्थाप्य क्षाण्य क्षाण क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य क्षाण्य क्षा

धादिपुराण के कर्ता धाषायाँ जिगसेन का सगीतशास्त्र पर भी प्रिषकार था। परिशिष्ट-२ के धन्तर्गत 'अरतभुनि' से सम्बद्ध टिप्पणी के नीचे 'धादि-पुराण' से उद्धरण दिये गये हैं।

प्रवित् — 'कुछ लोग योग प्रत्य विभूतियों के पीछे पडे हैं, तो कुछ लोग भागों में मग्न है। हम तो विद्यालक (वास्तविक विद्या से प्राप्त होने बाले प्रान्तः) की उपासना करते हैं, जो समस्त प्राप्तव्य का देने वाला है।

कृपया देखिये, 'भारतीय सङ्गीत का इतिहास; पृ. १७७-१८८, ले० डॉ॰ पराजये शरच्चन्द्र-प्रकाशक चौलम्मा-संस्कृत-सीरीज, १६६६ ई.।

सह्दय पाठकों के सम्मुख हमें यह स्वीकृत करने में कोई सङ्कोष नहीं है, कि प्रस्तुत सस्करण में भनेक किमयों है। है, इतना भवस्य कहा जा सकता कि इसके प्रकाशन से जहां भाषाय्यं पाश्वदेव का समन्वयवादी दृष्टिकोण तत्वदांश्यों के सम्मुख स्पष्ट होगा, वहाँ शोधकर्ताओं को 'सङ्गीत समयसार' का पाठ पर्याप्त मात्रा तक गुढ़ रूप में मिलेगा।

 प्रस्तुत सस्करण के प्रथम और डितीय पृथ्ठ पर पाद-टिप्पणी में हमारी मोर से सस्कृत पद्म में जो कुछ कहा गया है, उनका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है

> ''जिन्होने ग्रपने कुञ्चित भू-बिलास से कामदेव को निरशेष कर दिया है, वे गकर (कल्याणकर) दिगम्बर रक्षा करे ॥१॥

> जिनकी कुपा से क्षणमात्र मे दुर्बोध्य वस्तु सुबोध हो जाती है, वे पवित्र भारदा वारसच्यपूर्वक मेरा मगल करे।।२।।

> यह बात मुजिसिद्ध है कि विमानमतिपुक्त, साधक, एवं शान्तवित्त प्राचीन वैन माचायों ने भी सभीन को श्रुतिपदिवयम (गुरू-तिषय-परम्पण के मनुसार शिक्षा का विषया) बनाया या, उनमें में एक, प्राचार्य्य पाण्वेदेव ने कुछ ऐसे तरवों की भी न्यास्था भी है, जो अन्य आन्यायों के द्वारा अनुत्त है, महास्मा पाण्वेदेव अपने गुणगण के कारण प्रसिद्ध है। ॥ ।।

> कोडो के द्वारा लाये हुए प्रसरों के कारण, पाठ की अस्तव्यस्तता के कारण उत्पन्न कठिनना से, बुरे लिपिकर्नाभों के प्रमाद के कारण, लोक में 'सगीत-समयसार' के सम्प्रदाय का उच्छेद होने से, सगीताकर पाहवेदेव के हारा मुर्राक्षत विज्ञानमणि दुनेंग हो गई थी, पुत्रयपाद मुनि श्री विद्यानस्य जी की कृषा से उस विज्ञानमणि की भोर पाहुक्ट वह बृहस्पित प्रसन्नता पुर्वक, आवाद्यों पाहवेदेव के हारा चिंचत प्रावाद्यों के प्रस्थों का धानोडन करके, प्यांतिसमयसार' का नागोवन कर रहा है ॥४-६॥

पुण्यजील व्यक्तियों के मत्मकल्प पूर्ण हो जाते हैं, तब भी सत्कार्य्य की ग्रोर प्रेरित करने वाला प्रयोजक कर्ता वस्त्रीय है। 11911

भेद में प्रभंद का प्रतिपादन करने वाले, विजयमार्ग में मलभन, नित्य पुनीन प्रस्तरारमा में गुकन, शान्तिचल, प्रवीण, निक्काम होने पर भी समस्त जनी के उद्धार की कामना करने वाले, उद्यारप्रताप, जिनका चित्त प्रतिकाण श्री विनेन्द्र के चरण कमली का प्रवत्यवन्त्र कर रहा है, भीर जो सभी लोगो को प्रसन्तता पूर्वक उपदेश देते हैं, वे मुनि विद्यालन्द जी मुक्ते पितन करें।।।। वहीं मुनि श्रेष्ठ प्रावार्थ पार्थदेव की कृति को शुद्ध देखना चाहते हैं, इसीलिए प्रसन्तता पूर्वक मेरा यह प्रगल्त है। मनुष्य किसी सुका की प्राप्ति के लिए ही किसी कार्यों में प्रवृत्त होता है। गान्धवं की सिद्धि से भी परात्पर सुका की प्राप्ति होती है। इस 'सुक्त' या 'भानन्द' के प्रकार धौर परिमाण पर तनिक विचार ध्रप्रासिङ्गक न होगा।

आनन्द के परिमाण और गान्धर्व के द्वारा भी उसको प्राप्ति

'तीलरीयोपनिषद', द्वितीयवल्ली, प्रष्टम अनुवाक के अनुसार
'सदाबारी' सरहजभाव, साकुलोरलन, वेदक, ब्रह्मजारियों को शिक्षा देने
में कुकल, नीरोग, युवा, समर्थ तथा धनसम्पत्तियुक्त पृथ्वी के सम्राट को
प्राप्त होने वाला धानन्द 'सानुष श्रानव्य' है। मानुष धानन्द की प्रपेक्षा सी गुना धानन्द मनुष्य गम्धवों (मत्यंगन्धवों) को, उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द देवतन्धवों (दिव्य गम्धवों) को, उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द दिव्यपितरों को, उसकी प्रपेक्षा सो गुना धानन्द मानानवदेवों (सृष्टि के धानम्म में ही उत्पन्न) देवो को, उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द कर्मविक्षों को उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द देवों को, उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द सन्द को, उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द व्यक्तियां सी गुना धानन्द कर्मविक्षा सी गुना धानन्द प्रकापति को बीर उसकी प्रपेक्षा सी गुना धानन्द क्यान्त होता है। वही धानन्द 'श्रीवय' (सामवेदका) को प्राप्त होता है, को कामनाहीन है।"

जो मन अथवा इन्द्रिय समूह के द्वारा अप्राप्त है, उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला महापुरुष सर्वथा निर्भय होता है] ै

प्रयत्न के द्वारा अस्यन्त बुष्कर कार्य्य भी सुकर हो जाता है, तब भी यदि दोष रह जायं, तो करुणाभागर विज्ञ जनो के द्वारा उनका निराकरण कर दिया जाना उचित है।।१०॥

जिन्होंने कभी कही अध्ययन नहीं किया, ज्ञानवृद्धों की सेवा नहीं की, जो सन्दर्गन सुद्धि, भाषा, अर्थ एवं भाव का दूर से ही परिस्थाण कर देते हैं, वे आज समीतिबंद कहनाते हैं। राग, ताल, स्वर इत्यादि विलाभ कर रहे हैं भगवान् वासुदेव हमारी रक्षा करें।।११।।

 "यतो वाचो निवर्तन्ते मप्राप्य मनसा सह । मानन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन ॥" —वैतिरीयोपनिषद्, बल्ली २, मनुवाक ६ गान्धवंवेद 'सामवेद' का उपवेद है। प्रतः निर्लोश गान्धवंवेत्ता को भी बही परमानन्द प्राप्त होता है। श्राचार्य्य पास्वेदेव ने भी ब्रह्मा, विष्णु, महेस्वर को नादात्मक कहा है। श्राचनाचार्य्य सुधाकलश परब्रह्म, परा-शक्ति एव श्रोङ्कार को भी नादसम्भव कहते है। श्र

ब्राहत नाद की साधना से ब्रनाहत की प्राप्ति उसी प्रकार हो जाती है, जिस प्रकार मणि की प्रभा से ब्राइच्ट व्यक्ति मणि को स्वतः प्राप्त कर नेता है, वर्षात् ब्रनाहतनाद जदि मणि है, तो ब्राहतनाद उसकी प्रभा

है। ² गान्धर्व की इसी महिमा को समक्रकर जैन आचार्य्य भी सङ्गीत के

लक्षण ग्रन्थो की रचना मे प्रवृत हुए । 'गान्धर्व' झौर 'गन्धर्व' के विषय में कुछ जान लिया जाये ।

गान्धवं और गन्धवं

गान्धर्व

₹

जो गन्धवं सम्बन्धी हो, गन्धवं के द्वारा गाया गया हो **प्रयवा** गन्धवं जिसका प्रधिष्ठानुदेवता हो, उसे गान्धवं कहते है, यह गान्धवं खब्द की ब्युत्पत्ति है। ^र ताल के द्वारा सङ्कत तथा श्रवधानपूर्वक प्रयुक्त पदस्य

१. "नादारमानस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेत्र्वरा । सः सः सार

स स सार,बध्याय २, इलोक १८,

'नादात्मानस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा । पर ब्रह्म पराशक्तिरोद्धारा नादसस्थवा ॥'

-मङ्गीनोपनियन्सारोद्धार, स्रघ्याय १, श्**लो** २७

भ्रहोगीतप्रपञ्चादि श्रुत्यादेस्पत्वदर्शनात् ।
 भ्रपि स्यात् सञ्चिदानस्दर्शपणः परमात्मनः ॥

प्राप्ति प्रभाववृत्तस्य मणिलाभो यथा भवेत्।'

प्रत्यासन्तनयाऽत्यन्तम्—

नगीतरत्नाकर, ग्रध्याय प्रथम, प्रकरण तृतीय, ब्लोक प्रथम की टीका मे कल्लिनाय द्वारा उद्धृत।

गन्धर्वस्य इद गन्धर्वेण गीत वा। गन्धर्व + ग्रण्। यद्वा गन्धर्वो अधिष्ठाची
 देवता प्रस्येति । 'काव्य कर्ल्यद्रुम, खण्ड २, पृ. ३२३ ।

स्वर-सङ्कात को दत्तिल ने गान्धर्व कहा है। । गन्धर्व और उनके मेव

सङ्गीतवाद्यादिजनित प्रमोद को गन्ध' कहते हैं, उस विशिष्ट गन्ध को प्राप्त करने वाला 'गन्धवं' कहलाता है। सामान्यतया गन्धवं का प्रयु देवयोनि स्वर्गगथक है।

मर्त्यगन्धर्व और देवगन्धर्व

गानधम्मी गन्धवों के दो प्रकार मत्यंगन्धवं (मतुष्य गन्धवं) भीर 'देवगन्धवं' (दिव्य गन्धवं) हैं।' जो मनुष्य पुष्यपाक के कारण उसी कल्य में गन्धवंत्व प्राप्त कर लेता है, वह सत्यं गन्धवं भीर जो पूर्वकल्य में किये हुए पुष्यों के कारण धरिम कल्य के धारम में ही 'गन्धवं' होता है, वह विख्य गन्धवं 'या वेवगम्धवं' कहलाता है।

वेवनण्यवों के दो प्रकार हैं, 'सीनेय' एव 'प्राथेय'। मुनि नामक दक्ष-कन्या के गर्भ से महर्षि कश्यप के द्वारा उत्पन्न ''भीससेन, उपसेन, सुपर्ण, वरुण, गोपित, सुतराष्ट्र, सूर्यवची, सत्यवाक्, स्रकंपण, स्रयुत, स्रिभितश्रुत, चित्रप्य, शांक्षिशर, पर्जन्य, किल और 'नार्य' सोलह गर्थवं 'सोनेय' कहलाते हैं। प्राधा के गर्भ से महर्षि कश्यप के द्वारा उत्पन्न ''सिद्ध, पूर्ण, वहीं. पूर्णायु, बह्मचारी, रितंजुण, सुपर्ण, विश्ववाख्तु, भानु धीर गुचन्द्र'' ये दस दिस्य गर्थवं 'प्राथेय' कहलाते हैं। '

- १ 'पदस्यस्वरसङ्कातस्तालेन सगतस्त्रणा । प्रयुक्तश्र्यावधानेन गान्धर्वनिश्वीयते ॥"—दत्तिल, 'शस्यकस्पद्वम', खण्ड २, पृष्ठ ३२३ पर उद्धृत
- गन्ध सङ्गीतवाद्यादिजनितप्रमोद ध्रव्यंति, प्राप्नोति इति गन्धवं । ध्रव्यं गतौ

 + ध्रण कन्ध्वादित्वात् ध्रलोपे साध ।
- ३ "ग्रस्मिन् कस्ये मनुष्य सन् पुष्यपाकविशेषत । गन्धवरत्वं समायन्तो मर्थगन्धवं उच्यते ॥ पूर्वकल्यकृतात् पुष्पात् कल्पदादौ च चेद्भवेत् । गन्धवंत्व नादृशोऽत्र देवगन्धवं उच्यते ॥"—"शब्दावंचिन्तामणि
- ४ देवगस्थर्वा द्विविधा, केचिन्त्रीनेया केचित्राधेवा कस्यपपत्या दक्षमुताथा मुनिनामकायां जाता. मोनेयाः चोटल प्राधेवास्च प्राधायां तरपत्यां जाता दक्ष इत्येव महामारतादिवर्षपञ्चपन्दितमाध्याय उक्ता., यज्ञा—
 - "शीमसेनोग्रसेनौ च सुपर्णो वरुणस्तथा । शीपतिचृ तराष्ट्रस्य सूर्यवचरिच सप्तमः ।

'भ्रान-पुराण' में देवयोनी गन्वर्च 'धन्नाज' जङ्कारि, वस्मारि, सूर्य-वर्चा, कृषु, हस्त, सुहस्त, स्वामी, मूद्धंवान् विक्वावसु भ्रीर कुशानु' ये ग्यारह बताये गये हैं।' जयवर के अनुसार 'हा हा, हु हू, चित्ररख, हस, विक्वासु, गोमायु, तुम्बुरु और नन्दि इत्यादि गन्यर्व है।'

अन्तराभव गन्धर्व

जन्म धीर मरण के मध्य में, यातनाशरीर से युक्त गुप्त प्राणी भी 'पान्थवं कहनाते हैं।' इन्हें मत्त्रचांनुबुक्त होने को शक्ति प्राप्त होती हैं। सुश्रुत के अनुसार जब किसी जीवित प्राणी पर किसी गन्धवं का प्रार्थेश हो जाता है, तब वह प्रसन्तिक्त, नदी के तट प्रथवा बनानत का सेवन करने बाला, स्वतत्राचारी, गीत, गन्ध और पुष्तो का अनुरागी होकर हुँसने और

इत्येते देवगम्बर्वा प्रार्थेया परितीक्ति ।।'' वाचस्यस्यम्, पृ २४२७-२४२६

''स्रश्राजोऽह्वारितमारी सूर्य्यवर्षास्तथा १ घ । हरून सुहस्त स्वाम्यव मृत्रंबादव महासना ॥ विद्वावसु कुणानुस्च गत्थवंकादशो गण ''

वाचरपत्यम्, पृ २४२८

जटाधरेण तन्नामान्यथोक्तानि यथा— हाहा हुर्हिस्त्रत्रस्यो हसो विश्वावसुस्तथा । गोमायुस्तुम्बुस्तन्दिरेवमाद्यास्त्र ते स्मृता ॥"

वाचस्पत्यम् पृ २५२६

३ अन्तराभवसत्वस्तु जन्ममरणयोर्मध्यभव याननाशरीरवान् गुप्तप्राणी वा ।—

वही, पृ २४२७

नाचने लगता है। ' 'शतपथ बाह्मण' में पतञ्जल काप्य की गन्धर्वगृहीता कन्या का उल्लेख है।

श्रीमद्भागवत में नट, नर्तक, सूत, मागध ग्रीर वन्दीजन साथ-साथ

गिनाये गये हैं।3

₹.

सङ्गीतजीवी मानव-वातियों में भी एक वर्ग स्वयं को 'गन्ववै' रुहता है।

पाइबंदेव की स्थिति और काल

धाचार्यं पाश्वेदेव दिगम्बर जैन धाचार्यं थे। 'संगीतसमयसार' में धनेक स्थानों पर 'दिगम्बरसूरिणां कह कर प्रत्य पुरुष में उन्होंने प्रपते धमा के धमा के धोर सङ्केत किया है। पूर्वाचार्यों में उन्होंने भोज, सोमेश्वर फ्रीर 'प्रतापपुर्धिवीभुक्' (जगदेकमल्ल) जैसे धजैन भाषाय्यों का सावर उल्लेख ही नहीं किया, धिपतु महाराज जगदेकमल्ल के प्रत्य 'सङ्कोत चुडामिण' से पर्याप्त सामग्री यथातय रूप में उद्युत करती है। महाराज जगदेकमल्ल ने हैदराबाद (दक्षिण) के निकट 'कर्याणी' नामक अपनी भानु-विधिक राजधानी में ११३-ई- से ११४५ ई- तक राज्य किया।

आचार्य पार्स्वदेव के द्वारा 'सञ्जीतचुदार्माण' की सामग्री का ग्रहण जहां एक भ्रोर यह सिद्ध करना है कि वे महाराज जगरेकमरल के सङ्कीत-सम्प्रदाय में निष्ठा रखते थे, वहां उनके द्वारा ठाय-प्रकरण में 'मोडिंग 'गाणा के ठाय,' चिता के ठाय,' गोता के ठाय,' जोडिंग के ठाय' 'शरीरा के ठाय' जैसी नोकप्रचलित परिभाषाओं के प्रयोग इस तथ्य की भ्रोर इंड्रित करते हैं कि वे किसी मराठीभाषी स्थान के रहते वाले थे भ्रोर 'सञ्जीतसमयसार' की रचना के समय महाराज जगरेकमरलकृत 'सञ्जीत चंडामणि' सञ्जीत-सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित हो चका था।

 [&]quot;मुश्रुते दशितो यथा "घयातोऽमानुष्यितियेथीय व्याख्यारयाम.।" इत्युषक्रमे हृष्टारमा पुतिनवनाग्तरोपसेथी स्वाचार प्रियगीतग्यमास्य । न्दयन् वा प्रहसति चारु चारपशब्द गन्यवंग्रहपरिपीडितो मनुष्य ।"

[—] वही, पू. २५२७ "ते पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहानैम, तस्यामीददृहिता गन्धवंगृहीता ।"

वही पृष्ठ २४२७ ३ नटनर्तकगन्थकी सूतमागधवन्दिन । गायन्ति जोत्तमश्लोकपरितान्यदभतानि च ॥''

[।]यान्तं चालमश्लाकचारतान्यद्भृतानं च ॥ —शब्दकरूपद्गुम, खण्ड २ पृ ३०४

दूसरी ग्रोर जीरहवीं यती में 'संगीत-रलाकर' के टीकाकार सिंह भूपाल ने 'सङ्गीत-रलाकर' की टीका में 'सङ्गीतसमयसार' ग्रीर उसके रचिंदता पास्वेदेव का उल्लेख करते हुए 'सङ्गीत-समयसार' के उद्घरण यक-तक दिते हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि पास्वेदेव ने कुछ ऐसी बाते भी लिखी हैं, जो शाङ्गदेव जैसे महान् ग्राचार्य के द्वारा श्रनुकत है भीर सङ्गीत-रलाकर के विद्यार्थों को जिनसे परिचित होना चाहिये। सिहभूपाल पञ्च-देवोपासक थे, जैन नहीं। अजैन सङ्गीतशास्त्रियों के द्वारा दिगम्बर जैन प्राचार्य पास्वेदेव के मत का सादर उल्लेख सङ्गीतसमयसार' ग्रीर उसके प्रणेता के महत्व का परिचायक है।

ग्रस्तु, उपयुंक्त स्थिति से यह सिद्ध है कि ग्राचार्य्य पार्श्वदेव ने

'सङ्गीतसमयसार' की रचना ईसाकी तेरहवी शती में की।

धाचार्यं पाइवंदेव ने स्वय को जाना राजसभाओं में स्थित रसिकों के द्वारा स्तुत्य' कहा है, जो यह सिद्ध करता है कि ये देशदेशान्तर में घूमे हुए अनुभवी धाचार्य्य थे।

तक द्वारा जिला हुआ जाद निर्णय' नामक श्रध्याय इस पुग के जिए अमूच्य निष्ठ है, क्योंकि इसमें सङ्गीत-सम्बन्धी प्रतियोगिना के नियमों, निर्णावकों को योग्यनाओं, बादी एव प्रतिवादी के गुण-दोगों के तात्रतात्र का जैसा वैज्ञानिक विवेचन है, वेसा अन्यत्र दुर्ज में है। आचार्य्य पाइवेदेव के अनुसार सतङ्ग इत्यादि मनीगियों ने यद्यपि 'बाद' के चार श्रङ्गों, सभापति, सम्म, नादी एव प्रतिवादी का वर्णन किया है, परन्तु' 'बन ङ्ग्' का ग्रन्थ लिख्त रूप में ही उपलब्ध है, अद सङ्गीनसम्बन्धार' का नवम अधिकरण (बादनिर्णय) हो होन-बाद मय में अनुसाम है।

सप्तम अधिकरण मे आचाय्यं पार्क्वदेव ने देशी के कुछ श्रङ्को का भी बर्णन किया है, जो पूर्वाचाय्यों के द्वारा वर्णन का विषय नही बने। व

श्राचार्य पारवंदेव का गोत्र 'श्रीकष्ठ' था, उनके पिना का नाम 'श्रादिदेव' ग्रीर जननी का नाम 'गीरी' था, उनकी उपाधि सङ्गीताकर'

नानारम्जसभाग्नरालरमिकस्पुत्य श्रुतिज्ञान स (कि)
 च्वकेशो रमभावभेदनिषुण साहित्यविद्यापनि ।

[—] भरतकोष-भूमिका, पृद

 ^{&#}x27;श्रथ पूर्वे रनुक्तानि देश्यङ्गानि वदाम्यहम्।''

थी। ' श्राचार्य्यं पाश्वेदेव महादेवार्य्यं के शिष्य थे श्रीर महादेवार्य्यं श्रीमान् श्रमयचन्द्र मुनीन्द्र (सम्भावित काल १२वीं ई०)के चरणसेवक थे। '

धाचार्य्य पाःवंदेव ने महामहेश्वर धाचार्य्य श्रीभनव गुप्त की चर्चा कहीं नहीं की जिनकी 'धांभनवभारती' का भरपूर उपयोग श्राचार्य्य शाङ्गिदेव ने 'सङ्गीतरत्नाकर' के नृत्याध्याय मे किया है।

भाचार्य पाश्वेदेव ने शाङ्गंदेवोक्त 'तारावली' इत्यादि प्रवन्ध-भेदों से भसहमति प्रकट की है, भात. उनका काल शाङ्गंदेव के पश्चात् तेरहवीं शती का उत्तरार्ध प्रनीत होता है।

भारतीय शास्त्रकारों की समन्वयात्मक दृष्टि से सम्पन्न ग्राचार्य्य पाइवंदेव

भारतीय मनीषी सदैव 'भेद' में 'ग्रभेद' या समन्वय की खोज में रहे हैं और उन्होंने धपने-प्रपत्ने दृष्टिकीण से सबैत्र समन्वय का सम्पादन किया। महसूद गजनवी ने जब धाने निरन्नर झाकमणों से समस्त मन्दिरों के विनाश का मारस्थ किया, तब ग्यारहवी शती ई० के एक बैच्णव कवि हनुसान ने धपनी कृति महानाटक' में कहा:—

> "शैव लोग 'शिव' कहकर जिसकी उपासना करते है, वेदान्ती जिसकी अवंना 'ब्रह्म' कह कर करते हैं, वौद्धों के द्वारा जो 'बुद्ध' नाम से उपास्य है, प्रमाणपटु पैमा-यिक 'कर्ता' कह कर जिसका पूजन करते हैं, जैन-शासन में सलग्न लोग जिसे 'महंत्' कहते हैं और जो मीमासको की दृष्टि में 'कमें है, वह जैलीक्य-

श्रीकण्ठान्वयदुग्धवाधिलहरी सवर्द्धनेन्दो कला गौरी यज्जनी लसद्गुणगणी यस्यादिदेव पिता।

⁻⁻⁻ स. स. सा अध्याय १, झ्लोक ४, पृ३

सं. स सा, पूष्पिका, पृ. २२

 [&]quot;तारावस्यादय सङ्गा जातीना कैश्चिदीरिता.।
 मङगसंख्यावियोगात्त नैवैता सम्मता मम

सं. स. सा., ब्रष्ट्याय ४, श्लोक २२, २३

नाथ हरि ग्रापके लिए वाञ्चित फल का विधान करे।''*

इसी 'भारतीयता' ने भारतीय विचारधारा की सनातनता, चिरनूतनता समयमूचकना धीर प्रसण्डना को प्रत्यन्त विपरीत परिस्थितियों
में भी बनाये रखा है सङ्गीत-शान्त्र के क्षेत्र में भी यह समन्वयात्मक इष्टिहो और 'सङ्गीतसमयसार' के लेखक दिगम्बर जैन प्राचार्य्य पाश्वेदव के ध्यास, पराश्वर, भृगु, यम, संबनं, कात्यायन, धापस्तंब, बृहस्पति, लिखित, हारीन, दक्ष, मन, विचत्रीय, गीतम, शङ्ख, राक्षायण इत्यादि मनीपियों सा सादर स्मरण किया ** और कहा - वे शङ्कर पीत के हारा प्राप्य है, जो मीमासा हत्यादि छ दर्शनों के हारा भी धमम्य है। ***

बात केवल इतनी ही नहीं, भ्राचार्ध्य पाइवंदेव ने सङ्गीतचूडामणि-कार 'प्रतायक्रकर्ती' महाराज जगदेकमल्ल जेसे पञ्चदेवीपासक भ्राचार्ध्य के भ्रानेक इतारतापूर्वक 'सगीतसमयसार' में जैसे के तैसे उर्धृत कर लिये।'

सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, पृ. १४, श्लोक २७, निर्णयमागर प्रेस द्वितीय सस्करण (१६४२) मे सगृहीत

श पाराग्रथ्यंपराञ्चरौ भृगुयमौ मवर्तकारयायना — वायस्तम्बद्धस्पती मलिलानौ हारीतदक्षीममु विषयमाना मिलालानौ हारीतदक्षीममु विषयमाना मुनियरकार्द्वीऽपि दाक्षायण— मर्वे मोक्षयमिस्युवन्ति मुनयो शीत नर्दवीतित ॥

स स सार, प्रस्तुत सस्करण पृ.

***मीम।साद्वयवेदान्तन्यायवैशेषिकँमंतै । यडभिम्सकँरगम्योऽपि गम्यो गीतेन शङ्कर ॥

पूर्वोक्त, पृ.

१ महाराज जगदेकमन्त की राजधानी कत्याण' (हेदराबाद, दक्षिण का कत्याण') नामक प्रदेश) थी। इतका राज्य-काल (११३८-११४० ई) है। जगदेकमल्ल के पिता सोमेक्बर (राज्य-काल ११४८-११३४ ई) थे, इतकी रचना 'धर्मिकसि-तार्थिय-तार्थाण' एक विश्वकाध है, इसके चौत्रे फक्त्या में सङ्गीताबिवयक एक ह्वार एक ही सोलह इस्तोक है। महाराज सोमेक्बर ने प्रपणे पिता परिचय

य शैवा समुपासने शिव इति ब्रह्मोति वेदानितो बीढा बुद्ध इति प्रमाणपटव कर्नेति नैयायिका प्रहृतिनय्य जैनशासनरता कर्मेति सीमासका: सोडय वो विद्धातु वाञ्छितकल वैनोक्यता रो हिर्दा।

माचार्य्य पारवेदेव ने रागजनना 'जारियों' को ब्रह्मदेव के मुख से निर्गत एवं सामवेद से समुत्पन्त बताया है।' 'जाति' शब्द का निर्वचन करते समय भी माचार्य्य पारवेदेव ने बृहद्देशीकार मतङ्ग मुनि के शब्द ज्यों के त्यों दृहरा दिये हैं।'

बाचार्य्य पास्त्रदेव ने बह्या, विष्णु, महेस्वर को नादासक कहा है । इस विषय में भी वे मतङ्क मुनि के अनुवर्ती है। पिनवार्यों में वे अफि या मेंजीरे की जोड़ी को 'शिवन' और 'शिव' कहते हैं और उन्हें विन्दु-नाद-समुद्देश मानकर शैव सम्प्रदाय को ओर अपनी उदार दृष्टि का इज्जित करते है। भ

मतः कुँ इत्यादि मनीषियों ने यह माना है कि 'तानों' के यहात्मक विधिष्ट नाम है और 'शनिल्टोम' नामक 'तान' का गान करने वाले को 'श्मिनप्टीम' याग करने का पुण्य मिलता है। भाचाय्यं पाश्वेदेव ने भी उदारतापुत्रक इस दृष्टिकोण का उल्लेख किया है।'

'सङ्गीतसमयसार' में ग्राचार्य्य पार्व्वदेव ने भरत, मतः , दत्तिल,

चालुक्यचकवर्ती 'यरमर्थी' महाराज जिभुवनमस्त के यशोगान मे 'विक्रमाष्ट्राम्युद्य' की रचना की। महाराज जिभुवनमस्त (राज्यकाल १०७६-११२६ ई.) इतिहास मे जयितहें पुर विक्रमाष्ट्रपेय' के नाम से भी प्रतिव्ह हैं, ये प्रसिद्ध कश्मीरी कि विस्तृत के सामयदाता ये। विस्तृत के प्रसिद्ध कृति 'विक्रमाष्ट्रदेवचेरतिय' के नायक सहाराज जिभुवनमस्त ही है।

१ "इति ब्रह्मम्खविनिगंतसामवेदमम्दभवाष्टादश जातिनामानि ।"

स. स. सा , पृ. १६

२ "सकलस्य रागादे " एवमत्रापि।"

स. स. सा. पृ. १७

३. ''नादात्मानस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णमहेरवरा: ।''

स. स. सा , पू. २७

 भ. ''नादरूप. स्मृतो बह्या नादरूपो जनार्दन । नादरूपा परा शक्तिनीदरूपो महेस्वर:।।''

बृहद्देशी त्रिवेन्द्रम्-संस्करण, पृ० ३

'सुक्लकाणौ सुम्बरौ तालौ तज्ज्ञै शक्तिकाबौ स्मृतौ ।
 भाषाराज्ञेयवशतो बिन्दुनादसमृदभवौ ॥''

स स. सार, पृ. १४४-१४४

६ "एवं यज्ञनामानि वदन्ति" यज्ञतानमिति नाम प्रसिद्धम् ।"

स. स. सा., पृ. १७

कोहल, झाञ्जनेय, तुम्बुरु, भोज, कस्यप झौर याष्टिक जैसी सभी झजैन महाविभूतियों के मत को सादर माना है, परन्तु उन्होंने जैन दृष्टिकोण के सन्सार शब्द को 'श्रनित्य' झीर 'श्रव्यापक' कहकर कोहल के मत का प्रचल्ड सण्डत किया है।'

दिगम्बर जैन आचार्य्य पाइवंदेव और उनके परवर्ती इवेताम्बर जैन आचार्य्य सुधाकलश 'वाचनाचार्यं'

वाचनाचार्य सुधाकलश अपने प्रत्य 'सगोतोपनिवस्तारोद्धार' (रचना-काल १३४०) में परिचमी भारत और मध्य-प्रदेश के कुछ भागों के सगीत-सम्प्रदाय की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं — सैने प्रदग्धों की चर्चा विस्तारपूर्वक नहीं की, वयींकि मेरे युग में न तो प्रदग्धों के कर्त्ता हैं, न उनके गाने वाले। यह शिकायत पाइवेंदेव को नहीं है।

वाचनाचार्य सुधाकलश कहते है—"मेरे युग मे नतंक मूर्ल है, विद्वान साधक नही, वचपन से वे अपनी बोली मे बन्दरों के समान संघाये जाते हैं।" पाश्वेदेव अपने प्रदेश से इतने निराश नहीं।

वाचनाचार्य्य सुधाकलश मुसलमानों के सस्पर्क में ब्राये थे, वे कहते हैं '—''ढोल नब्ल, इत्यादि म्लेच्छ-वाद्य है, 'डफा' (दफ याउप) ब्रीर 'डउँडि (डोडी) जैसे वाजे पैदल चलने वालों के हैं।' पादवँदेव के द्वारा म्लेच्छ-वाद्यों का वर्णन नहीं हुमा है। क्योंकि सम्भवत. उनके युग तक

१ सससारपृश्२

२ सगीतोपनिपत्सारोद्धार, भूमिका, पृ ८, गायकवाड-सीरीज, १६५१

३ "प्रबन्धबन्धकर्तारी विरला भूतलेऽघुना।

तद्गायनाश्च न प्रायोऽतो नोक्तास्ते सबिस्तरा: ।।"

मगीतोपनिपत्सारोद्धार, प्रथम श्रध्याय, श्लो. ३७ ४ कालेऽस्मिन् नत्तंका मुर्खा विद्वास: साधका नद्वि ।

न नर्तकान् विनाम्यास शास्त्रात् सिद्धिनं न विना ॥ म्रावाल्यान कपिवलेहि माध्यन्ते तै स्वभाषया ।

वहीं, बब्ठ प्रध्याय, ब्लो. १२६-१३० १ तर्थेव म्लेब्छवाद्यानि ढोलतस्त्रम्लानित ।

डफा च टामकी चैव डउडि पादचारिणाम् ॥

मुसलमानी शासन नर्मदा के पार नहीं पहुंचा था, जब कि वाचनाचार्य्य सुवाकलश के सूलग्रन्थ सगीतोपनिषत् की रचना १३२४ ई० (समीर खुसरो के मृत्यु-वर्ष) में हुई।'

मुघाँकलश ने पर्खाउज (पत्तावज) व जैसे उत्तर भारतीय वाद्य धौर 'भीमपलासी' जैसे उत्तर भारतीय राग³ की भी चर्चा की है। पाइवेंदेव का

ग्रन्थ इस प्रवृत्ति से रहित है।

सुधाकलश का कथन है — 'ताना, नाता, नता, नन्ता, तेन्न, तेन्नक, तन्नक ये प्रत्येक स्वर में सात सात तान है।" उनके मूल शब्द हैं.—

"तन्न तेन्ना यदुच्यन्ते तानास्ते स्वरसंस्थिताः । मालिक्ष्युतिसस्थानव्यापकर्तार एव ते ॥ ताना-नाता-नता-नन्ता-तन्नन्तेन्नक-तन्नकाः । विज्ञेयास्ते कमात् ताना । सप्त सप्त स्वरे स्वरे ॥"

ावज्ञथास्त कमात् ताना स्तर्त सप्त स्वर स्वर ॥ ध्रुवपद-गायकों की परम्परा में ये बोल आज भी 'भ्रालाप' का

आधार हैं। वाचनाचार्य सुधाकलश यत्र तत्र आचार्य्य शाङ्गदेव के शब्दों से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

जैसे :---

(१) "वने चरन् तृणाहारिश्चत्रं मृगशिशु. पशु । लुब्धो लुब्धकसंगीते गीते यच्छति जीवितम् ।" संगीत-रत्नाकर, पदार्थसंग्रह, इलो-२६

गीतास्वादानभिज्ञभ्यो मनुष्येभ्यो वर मृगाः। गीतस्वादेन ददते गातुः प्राणान् क्षणेन ये।।"

सगीतोपनिषत्सारोद्धार, घ० १, श्लो-६

(२) "पार्वती त्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजामुषाम् । सगीत-रत्नाकर, नृत्यायध्याय, श्लोक-७

"उषानाम्न्यां बाणपुत्र्या लास्य गौर्य्यास्ततोऽभवत्।" संगीतोपनिषत्सारोद्धार, ग्रध्याय ४, क्लोक-१२

वही, ग्र. ४, श्लो. ६२

१. सगीतोपनिषत्सारोद्धार, भूमिका, पृ ८

२ "माउजो लोकभाषाया खदाउजपसाउजौ।"

३. "भाषाङ्गा विविधा भीमपलासीप्रमुखा श्रपि ।"

बही तृतीय झाध्याय क्लो. ११३

वाचनाचार्यं मुधाकलश ने 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में महाराज जगदेकमञ्ज के ग्रंथ सङ्गीतज्ङामणि' की वर्चा निम्नाङ्कित स्लोक में की है ---

''मयरा सतजाभो नो वर्णास्युर्गेणपूर्वगा। तत्तत्तत्वमयाश्चडामणौ हि कथितायतः।''

सगीतोपनिषत्सारोद्धार, प्रध्याय ३, क्लोक २३ हमारी विनम्न सम्मति में ग्राचार्य्य पाक्वेदेव वाचनाचार्य्य सुधा-कलश की ग्रपेक्षा कुछ पूर्ववर्ती है, क्योंकि शिह्नभूपान (१४ वी शती ई०) ने उनका स्मरण श्रद्धापूर्वक किया है याचार्य्य सुधाकलश का नहीं। ग्राचार्य्य सुधाकलश के परिवेश पर मुस्लिम प्रभाव था।

पाइबंदेव की वृद्धि में मार्ग-सङ्गीत परमरा का पानन करने को दृष्टि से आचार्य पाइवंदि ने मार्ग सङ्गीत की वर्षामान 'सङ्गीनसमयसार' के प्रथम अविकरण के अन्तर्गत कर दी है। इस विषय के स्पष्टीकरण को आवश्यकता उन्होंने नहीं समकी, क्योंकि उनके पूर्वर्जी सोमेश्वर के जुग में भी 'ग्रामरागों' का प्रयोग मतो-विनोद के लिए नहीं किया जाता था। ध्रम सोमेश्वर ने भी 'ग्रामरागों' का नामोल्लेख मात्र किया है।

'सङ्गीनसमयसार' के प्रथम अधिकरण का अध्ययन करके स्पष्ट निष्कर्षों पर पहुँचना असम्भव है, अत पाठकों की सुविधा के लिए कुछ सामग्री प्रस्तुत है।

रागजननी जातियाँ

लोकरुचि सर्वथास्वतन्त्रहोतीहै। ग्रनेक कलाग्रोंका बीज लोक

श्रास्तीय सङ्गीत पर मुनतमानो का प्रभाव जानने के लिए पहिये, 'मुसलमान और भारतीय सङ्गीत', - तेलक प्राचार्य बृहस्पति । प्रकाशक -- राजकमम-प्रकाशन, - नेताजी मुभाप मार्ग, नई दिल्ली-६ । 'सुगरो, नानसेन तथा प्रस्य कलाकार'-ले सुलोचना एव बृहस्पति, राजकमल-प्रकाशन । 'गगीत चिन्तामणि', दितीय सस्करण, प्रकाशक गगीत कार्य्याच्य हाथरस । 'धूबलद प्रीर उसका विकास, लेलक बृहस्पति, प्रकाशक 'विहार राष्ट्रमाथा परिवर्ष' पटना । र 'भामती गरितासखें रागा मृतिकमित्ति ।

विनोदे नोपयुज्यन्ते तस्माल्लक्ष्म न लक्ष्यते ॥"

मानसोल्लास, तृतीय भाग, ग्रध्याय १६, विशति ४, श्लोक १३२, पु॰ १३, गायकवाइ-सीरीज, न० १३८, सस्करण १६६१। की उस इच्छा में हैं, जो 'रञ्जन' चाहती है और उसके साधन भी सहज भीर स्वामाविक रूप में निकाल खेती हैं। लोक-प्रचलित 'धूनें किसी व्यक्तितिबीय की कृति नहीं होतीं। जिन 'धुनों में कोई सामान्य धर्ममं पाया गया, उन्हें एक 'जाति' के प्रमत्गंत रख दिया गया। 'धुनों' या विशिष्ट समुदायों का ऐसा वर्गीकरण करने वाले विचारक महामनीथी थे। उन विचारकों ने यह भी देखा कि विभिन्न स्वरणातियों में जहाँ विभिन्न प्रभार की विशेषताएँ हैं, वहाँ एक विशेषता यह भी है कि सभी स्वर-जातियों में प्रभुक्त होने वाले स्वरं के पारस्परिक प्रनतराल विविच है, इन ग्रम्तरालों को उन्होने ब्रागे चलकर 'चतु-श्रुतिक' (उदाल), 'द्विश्रुतिक' (अनुताल) शिश्र्मित (स्वरित) कहा, भीरे-धीरे वे इस निकर्ण पर पहुँचे कि यदि स्वरं को 'धामीण' कहा जाये, तो उनकी बस्ती को 'धाम' कहा जाये श्रीर एक स्वर उस वस्ती का 'धामणी' या चीचरी हो।

स्वरो के 'ग्राम' (गाँव) दो पाये गये, जिन्हें 'यड्ज-प्राम' फ्रीर 'मध्यम-प्राम कहा गया। पड्जवाम मे जिस स्वर को 'पठचम' कहा गया, उसका क्षेत्र चलु भूतिक या और मध्यमग्राम मे जिस स्वर को 'पठचम' कहा गया, उसका प्रत्म प्रतान जिन्द्र निक पड्ज के साथ चतुः श्रुति पड्ज को साथ चतुः श्रुति पञ्चम का प्रत्यन्त इस्ट और स्वाभाविक सम्बन्ध वा, जिन 'धूनों' में इन दोनों की सङ्गति पाई जाती थी वे 'पड्जग्रामीय' कहलाती थी। जिश्रुतिक ऋषभ के साथ जिश्रुतिक पठच्यम का प्रत्यन्त इस्ट और सहज्ज सम्बन्ध या। जिन 'धुनों' या जातियों में जिश्रुतिक ऋष्य भीर जिश्रुतिक प्रत्यम और जिश्रुतिक क्ष्य प्रसान चिंगे से जिश्रुतिक क्ष्य प्रसान चेते होती थी, वे 'मध्यमग्रामीय, कहलाती थीं।

इसीलिए भगवान् भरत ने कहा है .--

जातिभिः श्रुतिभिश्चैव स्वरा ग्रामत्वमागताः।"

मर्थात्—''जातियों (लोक प्रचलित चुनों मौर श्रुतियों (जाति प्रयोज्य ब्विन-सम्बन्धी सूक्ष्म परिणामों) के कारण स्वर 'ग्रामों' में वर्गीकृत किये।

इन शब्दों का सीघा सादा बर्ष यह है कि विचारकों की धृष्टि पहले लक्ष्य पर गईं, जिसके बनुसार उन्होंने लक्षण किये। ज्ञान की उपलब्खि कौर क्रान के प्रतिपादन का भिन्न कम विकान सम्मत है।

षड्ज ग्राम के स्नादिम स्वर का नाम 'षड्ज' (छः प्रत्य स्वरों को जन्म देने वाला) रखा गया। प्रन्तिम स्वर का नाम 'निषाद' (जिस पर स्वरों की समाप्ति हो) रखा गया। स्वर-सप्तक के बीचोंबीच विद्यसन, ग्रयवासप्तक के मध्य देश को नापने वाला, होने के कारण सप्तक के

में भले स्वर को 'मध्यम' कहा गया।

तत्री पर स्थापित मध्यमं की मुख्य ध्विन से स्वतः उत्थित होने वाली एक उपध्विनिविशेष को संशार में सब से पहले 'तुम्बुह' ने सुना और उसका निरूपण किया, यत तुम्बुह जैसे 'घोवान्' (बुढियान्) व्यक्ति के द्वारा निरूपित होने के कारण यह ध्विन धैवत' कहलाई।

(पञ्च का मर्थ दिस्तार या मन्त्रराल है। वड्न-ग्रामीण वड्न-पञ्चम, ऋषभ-भैदत तथा गान्धार-निषाद मे प्राप्त मन्तराल को ठीक-ठीक नापने वाली ध्वनि वड्नग्रामीय (पञ्चम) कहलाई। सयोगवश यही ध्वनि

षड्जग्रामीय मूल सप्तक मे भारोह की ओर पाँचवी भी है।

ब्रम के समान पोरुवमय होने एव पड़ज की अपेक्षा कन्ध्रेगितक होने के कारण वड़ज ग्राम के मूल सन्तक की द्वितीय ध्वनि को 'ऋषभ' कहा गया। गीओं के लिए विशेषतया श्राकषक होने के कारण सप्तक की तृतीय ध्वनि को गान्धार' कहा गया।

संवाद

'सवाद' का प्रमं 'अनुकृतता', 'पारस्यरिक प्रस्तोत्तर', 'एक दूसरे का प्रतिनिध्तव' करते की क्षमता' तथा 'एक स्थान पर देखी हुई विशेषता' का अग्यन दर्शन' है। पड्ल, 'ऋपभ, गान्धार और सम्यम कममा उन्त अतिक, द्विश्वतिक एव चतु अृतिक है, 'पञ्चन, पेवन, निगाद और पड्ल की भी स्थिति यही है, अत इस स्थिति को 'सवाद' (एक स्थान पर देखी हुई विशेषता का दर्शन) कहा जायेगा। तुन्य अनुयन्तरानों के कारण यड्ल-पञ्चम, ऋएम-चेवत प्रीर गान्धार-नियाद परस्पर संवादी (अप्यन्त इष्ट तेहरू श्रृतियों के अन्तर पर स्थित) हैं। इस 'सवाद' को हम परम इष्टता या परम अमुकृतवा कह सकते हैं।

वड्न-मध्यम भ्रीर पञ्चम-वड्न मे नवश्रूत्यन्तराल है, यह धन्तराल भी ध्वितिसम्बद्ध परम इंप्टता का बोचक है, यह धन्तराल मध्यम भौर दिख्तिक निवाद मे प्राप्त है, धत यह भी ध्वित-संवाद है। यद्यपि मध्यम बदुः श्रुतिक है धौर निवाद द्विश्रुतिक, तथापि प्रध्यम द्विश्रुतिक गान्धार का पारस्परिक धन्तराल वड्न धौर मध्यम के पारस्परिक धन्तराल के समान है।

नवश्रुति संवाद भीर त्रयोदश श्रुति संवाद के भ्रतिरिक्त मध्यम भीर भैवत का पारस्परिक सप्तश्रुतिक भ्रन्तराल भी सहज है, जिसे तुम्बुरु ने सबसे पहले देखा या, यह भी इच्ट या ध्रमीप्सित है और एक विश्विष्ट प्रकार का संवाद है।

ये संबाद ही स्वर-सप्तक की स्थापना का बाधार है।

नुणियों के द्वारा वागीश्वरी में प्रयोज्य मध्यम, गान्वार, ऋषभ स्रोर पड्ज सीर जनके सेवादी चड्ज, निषाद, चैवत स्रोर पंचम ही चड्ज सामीय चड्ज, निषाद, चैवत स्रोर पञ्चम हैं। हारमोनियमबादक इस सुक्षमता को नहीं समक्ष सकते।

पासणी स्वर का लक्षण

जिन दो स्वरों में नौ या तेरह श्रृतियों का अन्तर हो और जिनकी श्रृतिसंख्या समान हो, उनमें 'राग-संवाद' भी होता है भीर 'स्वर-संवाद' भी। जिन दो स्वरों नौ या तेरह श्रृतियों का अन्तर तो हो, परन्तु उन दोनो स्वरों की श्रृतिसंख्या समान न हो, उनमें 'स्वर-संवाद' या 'व्यक्ति-संवाद' तो होता है. 'राग-संवाद' नहीं। निम्नस्य स्थिति पर विचार की जिने:

'स, ३ रे, २ ग,४ म,४ प,३ घ.२ नि,४ सं'

'स-म' दोनों चतुः श्रुतिक हैं, धीर 'स' की धपेक्षा' 'म' नौ श्रुतियों के धन्तर पर स्थिर है. धतः 'स-म' में 'राग-संवाद' भी है धीर व्यक्ति-संवाद भी । 'म-नि' में नौ श्रुतियों का धन्तर होने के कारण 'व्वनि-संबाद' तो है, परन्तु राग-संवाद, नहीं, क्यों कि 'म' चतुः श्रुतिक है धीर 'नि' डिश्रुतिक ।

'थामणी' स्वर सदैव चतुः श्रुतिक होता है भ्रीर सप्तक में उसके संवादी स्वर दो होते हैं, प्रामणी स्वर की मपेका भ्रारोह की भ्रोर अधिम स्वर सदैव त्रिश्रुतिक होता है। पूर्वोक्त स्वरावली में पड्ज 'ग्रामणी' स्वर है, क्यों कि वह स्वयं चतु श्रुतिक है, दो स्वर अर्थात् 'म' और 'प' उसके संवादी हैं भ्रोर ग्रामणी स्वर पड्ज की अपेक्षा भ्रारोह की भ्रोर ग्रगला-स्वर ऋषभ जिश्रुतिक है।

मध्यम-ग्राम में मूल स्वरों की स्थिति यों है :---

"म, ३ प, ४ व, २ नि, ४ स, ३ रे, २ व ४ म'

यहाँ प्रामणी स्वर के दो संवादी 'नि' ग्रीर 'स' है ग्रीर ग्रामणी स्वर मध्यम की ग्रपेक्षा ग्रारोह की ग्रीर ग्रगला स्वर 'व्' त्रिजृतिक है। वध्दक-सिद्धान्त ग्रीर श्रुतियों के तीन परिमाच

यदि स'से 'सं' के अन्तराल को एक सीबी रेखा मानकर उसे

उ०१ समान घटकों में बाँट दिया जाये, तो चतुः श्रुतिक स्वर का क्षेत्र ५१ घटक, त्रिश्रुतिक स्वर का क्षेत्र ४६ घटक और द्विश्रुतिक स्वर का क्षेत्र २८ घटक होता है।

इस वृष्टि से सप्तश्रुति अन्तराल (म-ध का अन्तर) ६७ घटक, नी श्रुतियो का बन्तराल १२४ घटक और तेरहश्रुतियों का अन्तराल १७६ घटक होता है।

श्रुतियों के परिमाण तीन है २३ घटक, १८ घटक और ५ घटक। 'महती' श्रुति का परिमाण २३ घटक, 'उपमहती' श्रुति का परिमाण १८

घटक और 'प्रमाण श्रति' का परिमाण ५ घटक है।

चतु श्रुतिक स्वर मे ग्रारोहकी दृष्टि से श्रुति-क्रम प्रमाणश्रुति, उपमहती श्रति, महती श्रति और प्रमाणश्रुति होता है, त्रिश्रुतिक स्वरों में आरोह की दृष्टि में श्रति-कम, उपमहनी श्रुति, महती श्रुति सीर प्रमाण-श्रुति होता है तथा डिश्रुति स्वरों मे श्रुति-कम महती श्रुति धीर प्रमाण श्रुा होता है। यह स्थिति इस प्रकार स्पब्ट है —

प्रमाण श्रति उपमहतीश्रति महती श्रुति प्रमाणश्रुति घटक-योग चतुश्रतिकस्वर, ५ 48

त्रिश्रतिक स्वर × १८ 23 द्विश्रतिक स्वर × × 23

प्रत्येक स्वर को ग्रन्तिम 'प्रमाण श्रति' है, परन्तू चतु श्रतिक स्वर ग्रादिम श्रति भी 'प्रमाणश्रति' है।

स्थान ग्रीर मुच्छंना

स्वर केवल सात है, मन्द्र, मध्य ग्रीर तार स्थान में उन्ही की श्रावृत्ति होती है। मन्द्र स्थानीय स्वरों की ध्वनि गम्भीर, मध्यस्थानीय स्वरो की सामान्य या मँभोली तथा तारस्थानीय स्वरों की ध्वनि उच्चतम होती है। मन्द्रस्वानीय, मध्यम स्थानीय तथा तारस्यानीय स्वरों को ध्वनियाँ क्रमश हदय, कण्ठ और मुर्घा से उत्पन्न होती हैं।

किसी भी स्थान के ब्रारम्भ की ध्वनि को पड्ज, निषाद, धैवत, पचम, मध्यम, गान्धार या ऋषभ मानकर अभीष्ट श्रुति-संख्या के अनुसार श्रविम स्वरों की स्थापना उस स्थान में की जा सकती है अतः इस अवस्था में स्थान का ब्रारम्भक स्वर 'ब्रश' (विशिष्ट श्रृति-क्रम के ब्रनुसार स्थान का विभाजक) कहलाता है, आश्रवें स्वर से आरम्भ होने वाले स्वर-सप्तक का आरोहावरोह मूर्च्छना' कहलाना है।

'स्वर-मण्डल' जैसे वाद्यों में किसी भी स्वर को 'श्रंथ' मानकर उसकी 'भूच्छेना' तीनों स्थानों में की जा सकती है। प्रत्येक मूच्छेना में प्राप्त स्वर-स्थानक उसी ग्राम की ग्रन्य मूच्छेना के द्वारा प्राप्त स्वर-सप्तक से मिन्न होगा। 'मूच्छेना' झब्द का ग्रंथ एक स्थान' के ग्रन्तगंत सात स्वरों का प्रारोहालरोह है।

मेलवावियों का भ्रम

श्रंश, वादी, ग्राम, प्रन्छंना जैसो प्राचीन परिभाषाओं का रहस्य मेलवादियों के लिए दुगंम हो गया, क्यों कि मुस्लिम प्रभाव के कारण ये लोग एक 'स्थान' के श्रन्तगंत बारह घ्वनियों मानने लगे। इन्होंने 'वड्ड' श्रीर 'पंचम' को श्रचल मानकर ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत श्रीर निषाद के दो दो प्रकार मान लिये श्रीर स्वर-संज्ञाओं की शन्वचंता की सर्वथा उपेक्षा कर दी, इस दृष्टि-भेद ने ग्राम-लक्षण श्रीर ग्राम-सिद्धान्त को मेल-वादियों के लिए सर्वथा दुरववोध बना दिया।

श्रन्य स्वरों से वड्ज का जन्म

यइज-प्राम के आदिम शुद्ध सप्तक में 'यइज' अन्य स्वरों का जनक है। परन्तु मध्य स्थान की आरम्भक ध्विन की ख्वा 'नियाद' मानकर झारोह की धोर यदि अन्य अविष्यट स्वरों की स्थापना की जाये, तो नियाद इस स्थिति में अन्य स्वरों का जनक होगा। इस स्थिति को 'नियाद' की मुच्छेना कहा जायेगा, क्योंकि इस कम में आरोह का आदिम और-अवरोह का प्रतिना स्वर नियाद ही रहेगा और वही उभरेगा। मध्य स्थात की आरस्भक ध्विन, स्वर्णक का अधिष्ठान पीठ है, इस ध्विन को जिस स्वर की आरस्भक ध्विन, स्वर्णक का अधिष्ठान पीठ है, इस ध्विन को जिस स्वर को आरस्भक ध्विर रस

सध्यम ग्रीर पञ्चम का सम्बन्ध 'रित' और 'हास' से, 'पङ्ज' और ऋषभ का सम्बन्ध 'उत्साह' 'कोध' ग्रीर 'विस्मय' से, 'गान्धार' और 'निपार' का सम्बन्ध 'करुणा' से तथा 'धैवत' का सम्बन्ध 'जुणुसा' और 'अय' से है। ग्रतः कहा गया है कि 'श्रृङ्कार' और हास्य' के परिपाक के लिए 'पष्ट्यम' या 'पंचम' को, 'बीर', 'रीद्र' एवं 'प्रवृज्त' रख के परिपाक के लिए 'पष्ट्ज' और 'ऋषभ' को, करुण' के परिपाक के लिए 'गान्धार' एवं 'निपाद' को तथा 'बीमरस' और 'भयानक' के परिपाक के लिए 'धैवत' को ग्रंशस्त्र देना चाहिये।

किसी भी रस के परिपाक के लिए उपयुक्त अवसर पर उपयुक्त,

स्वर की 'श्रंतता' के साथ वाच्छतीय 'रस' के परिपोधक प्राव को व्यक्त करने वाले स्वरों का बाहुत्य एवं विरोधी भाव को व्यक्त करने वाले स्वरों का अल्परव प्रतिवार्य है।

षशिया, सक्षणा क्षोर व्यञ्जना नामक वृत्तियाँ तो सार्थक वेय पद समूह में होती है, परन्तु स्वरों में 'प्रवचनमन शक्ति' होती है। म्रतः गान प्रयोज्य रागवाचक स्वरसमुदाव रन्त-पिराक की प्रक्रिया में भाषा के सहायकमात्र होते हैं। भागाहीन वेय पदों का यान 'शुष्क गीत' या 'निगीत' कहलाता है, 'सङ्गीत' नहीं।

स्वरों के द्वारा की जाने वाली भाव-व्यव्जना गूगे के द्वारा निकाली हुई ध्वनियों से व्यक्त होने वाली भाव-व्यव्जना के सदृष्ठ है। गूगा भी प्रेय-निवेदन कर तो सकता है, परन्तु वह स्पष्ट ग्रीर व्यक्त नहीं होता।

भगवान् वेदच्यास ने भगवान् कृष्ण के वेणुवादन को 'वेणुगीत' कहा है, उसमें ब्राक्षण भी बताया है, परन्तु उनके बच्दों में जिसे 'रास' (रसों का समूह) कहा गया है, उसमें भाषा ब्रनिवायं है।

नैसे यह भी कहा जा सकता है: -स्थायी स्वर पर धालिम्बत, उसके संबादी स्वर द्वारा उद्दोष्त, मनुवादी स्वरों द्वारा प्रनुभावित धौर सञ्चारी त्वरों द्वारा गरियोपित, सहदयो की वह विधिष्ट चेतना 'दस' है, जिसकी प्रभुति के समय रजस्तमोगुणजनित उनकी राग-द्वेथादि प्रनिथा विगलित हो जाती है।

वर्तमान संस्करण की शोधित सामग्री का ग्राधार

(१) घोरियण्टल रिसर्ज इंस्टीट्यूट मैसूर में सुरक्षित एवं तेलुग-विर्ति में लिखित 'सङ्कोतसमयसार' की हस्तलिखित प्रति कमाङ्क A-६७, जिसमें १४६ पृष्ठ हैं। पार-टिप्पाणियों में इस प्रति को 'क' कहा गया है।

यह प्रति लिपिको के प्रमाद का शिकार तो है ही। इसका पाठ प्रतिक स्वानों पर प्रस्त-व्यस्त भी है। सन्तोध की बात यह है कि प्रति प्रारम्भ में खण्डित नहीं है और मङ्गलाबरण से मारम्भ होती है, इसी मङ्गलाबरण का उल्लेख 'सन्तकोध' के विद्वान स्वाप्यक स्व० प्रो० रामकृष्ण कवि ने किया है। त्वापि यह प्रति वह नहीं है, वेस्व० रामकृष्ण किव ने प्राप्त थी। रामकृष्ण किव को प्राप्त साठ स्व

"नतु कर्य मुर्च्छनातानयोर्भेदः प्रतिपादितः उच्यते । आरोहावरोह-

१. भरत-कोष-भूमिका, पू. द

कम एकः । स्वरसमुच्छ्रयो मूच्छंना । कूटतानस्तु कयम् । धारोहकमेणा-वतरतीति तयोर्भेदः । घष्टादश चाति-भेदा ब्रह्मवक्त्रविनिर्गतसामसमु-दभवाः ।"

- (क) प्रति में नहीं है। वर्तमान मुद्रित संस्करण में मङ्गलाचरण से लेकर पु-२६ तक का ब्राचार यही 'क' प्रति है, जिसके पाठ में मंशोधन सम्पादक ने मौचित्य के प्राचार पर तो किये ही हैं, भौर जिनमें से म्रोनक 'प' प्रति के धनुसार ठीक सिद्ध हुए हैं, जिसकी चर्चा आगे म्रायेगी।
- (२) अनन्तरायनम्-ग्रन्थावित के प्रन्तर्गत प्रकाशित और १९२५६० में महामहोपाध्याय टी० गणपित शास्त्री द्वारा सम्पादित प्रति, प्रस्तुत संस्करण की पाद-टिप्पणियों में इस संस्करण की 'ख' कहा गया है।

इस संस्करण में झारिम्भक डेड झध्याय जुप्त है, जिसकी और भरत-कोष की भूमिका पृ०७ पर प्रो० रामकृष्ण किव ने घोष-कर्ताओं का ध्यान झाकुध्ट किया है। टी० गणपित शास्त्री के संगीतसम्यसार' की प्रति केरलीय झसरों में लिखित प्राप्त हुई थी।' स्वर्गीय शास्त्री जी ने इस प्रति में संघोषन किस झाझार पर किया है, यह ज्ञात नहीं।

- (३) गवनंमेण्ट घोरियण्टल गैन्युस्किष्ट लायक्रेरी में सुरक्षित 'संगीतसमयसार की प्रति कमांक R. ५५१५, पुष्ठ-संस्था (३६४, का देव-नागरी-अक्षरों में रूपान्तरित रूप। प्रस्तुत संशोधित सस्करण के परिशिष्ट-१ में इस प्रति को 'ग' कहा गया है, परन्तु विलम्ब से प्राप्त होने के कारण यह सहायक नहीं हो सका।
- (४) संगीतरत्नाकर की टीका में सिंहभूपाल के द्वारा उद्घृत पादवैदेव एवं मतञ्ज की उक्तियाँ।
 - (प्) 'भरत-कोष' में उद्धृत पार्श्वदेव की उक्तियाँ।
- (६) 'संगीतजूडामणि' गायकवाड-सीरीज (१६५८ ई०) के वे भ्रांश, जिन्हे पादवंदेव ने 'सङ्गीतसमयसार' में जैसा का तैसा उद्घृत कर लिया है।
- (७) 'भरत-कोष' में प्रकाशित जगदेकोक्त वे राग-लक्षण, जिन्हे पार्क्देव ने यथावत् सङ्गृहीत कर लिया है ।

१. 'सङ्गीत-समयसार', त्रिवेन्द्रम्-संस्करण (१९२४) निवेदना ।

(८) नाट्यशास्त्र के निर्णयसागर-संस्करण, चौक्षम्भा-संस्करण एवं गायकवाड-सीरीज में 'क्षभिनवभारती' टीका से युक्त संस्करण के वे घंश जो पाइवेदेव ने उदधत किये हैं।

ताल-प्रत्यय-संबद्ध परिशिष्ट

(क) प्रति के प्रनुसार 'संगीतसमयसार' के 'तालषट्प्रत्ययाधिकार' को दशम प्रधिकरण कहा गया है, परन्तु इसमें ग्रनेक तालों के लक्षण भी हैं। साथ ही साथ इस तथाकथित प्रधिकरण का प्रारम्भ: —

"तालशब्दस्य निष्पत्ति प्रतिष्ठार्येन घातुना।"

पंक्ति से होती है। यही पंक्ति तालाध्याय की भी तीसरी पंक्ति है। बास्तव में यह प्रति अत्यन्त अस्त-त्यस्त है और अन्यत्र भी इस प्रति में एक अध्याय की सामग्री अन्य अध्याय में चली गई है।

- (ल) प्रति के अनुसार 'ताल-प्रत्यय' 'नवम अधिकरण' है, परन्तु जिसमें भ्रौभः (ताल नामक घनवाद्य का लक्षण) भी घुस गया है, जिसे बाद्याध्याय में होना चाहिये। इसका ताल-प्रत्यय-माग प्रत्यन्त संक्षिप्त है।
- (ग) प्रति के अनुसार नवम अधिकरण' के पश्चात् प्राप्त भाग किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा विरचित होता है, क्योंकि :--

"सङ्गीताकरसूरिणा निगदितं चित्रायमाणं बृदे।"

जैसे शब्द इसी ब्रोर सङ्केत करते है।

हमारी विनम्न सम्मति के अनुसार तालप्रत्यय सम्बन्धी परिशिष्ट पृथक् कृति है। इसीलिए परिशिष्ट-१ के अन्तर्गत हमने इसके उपलब्ध पाठ अन्त में दे दिये हैं।

प्रस्तुत सस्करण को वर्तमान रूप देने में मेरी धम्मंपत्नी श्रोमती सुलोचना बृहस्पति, एम्० ए० सङ्गीतालङ्कार, सीनियर लेक्चरर, गान-विभाग, दौलतराम कॉलेज, दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली, एव उनकी सहोदर कुमारी सर्यू कालेकर एम्० ए० सङ्गोतालङ्कार, सीनियर लेक्चरर, सङ्गोतालङ्कार, सीनियर लेक्चरर, सङ्गोत-विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ ने प्रपूर्व सहयोग दिया है. जिसके बिना यह कार्य्य प्रसम्भव षा।

श्री॰ प्रेमचन्द जैन ने परिशिष्टों के तैयार करने, प्रूफ देखने तथा छपाई से सम्बद्ध व्यवस्था करने में ब्रत्यन्त दत्तनि ततापूर्वक कार्य्य किया है उनके प्रति मैं ब्रत्यन्त कृतव्र हुं।

पूज्यपाद उपाध्याय मुनिप्रवर श्रीविचानन्द जी के श्रीवरणों तक मुक्ते पहुँचाने भौर उनकी भहैतुकी कृपा सुलभ कराने में श्री सतीश जैन प्रमुख कारण रहे हैं. मैं उनका भ्राभारी हं।

'भ्राद्य मिताक्षर' लिखकर इस यक्त के प्रधान पुरोहित परमपूज्य श्री विद्यानन्द जी ने इस इन्य को गौरव दिया है, उनकी ही वस्तु उन्हें समर्पित है श्रीर सङ्गीत-जगत के लिए प्रसादस्वरूप है।

यु**र पूजिमा** १६७७ सह्दयजनवशंवद बृहस्पति

१६ ७७ दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

प्रथमाधिकरणम्	पृष्ठ सं ०	इलोक सं०
प्रत्यकृत्मङ्गलाचरणम्	2-3	१२
(सम्पादकमञ्जलाचरणम् (टीकाभागे)		१— २
जैनाच। य्याणां सङ्गीतरुचिः "	8	
सङ्गीतसमयसारदुर्बोधता "	१ —२	¥
सम्पादनप्रेरणास्रोतः फलञ्च "	7	vv
प्रेरकस्तुतिः "	2	5—£
सम्पादकप्रार्थना } ,, युगस्थितिः } ,,,	२	१०
	२ २	88
पूज्यपूर्वाचार्य्याणा केषाञ्चन नामानि	₹	*
ग्रन्यकृद्वंशपरिचयः जैनत्वञ्च	3	¥
शास्त्राणां चञ्चलत्वम्	8	¥
सङ्गीतस्य द्वै विष्यम्, तस्य लक्षणञ्च	8	Ę
मार्गस्य द्वै विध्यम् स्वरगतोद्देशक्च	¥	9
स्थानलक्षणम्, मन्द्रमध्यतारास्य स्थाने प्रतिस्थानं ध्वनेद्वादशविधत्वम् सन्तरश्रुतयश्च	ų	€₹₹
बीणायाँ श्रुतयः	Ę	8x-8=
मन्द्रस्थानश्रुतीनां नामानि	· ·	१६३१
मध्यस्थानश्रुतीनां नामानि	9	25-58
तारस्थानश्रुतीनां नामानि	5	24-201
मतञ्जोक्तानि श्रुतिसम्बन्धिमतानि	5— १ 0	₹=
स्वरशब्दनिरुक्तिः, तत्र कोहसमतञ्च	80-66	35-05
स्वरस्य नित्यत्वाविनाशित्वव्यापकत्व सर्वगतत्वविषये कोहलमतम्	**	٧0
ग्रन्थकृत्मते स्वरस्याच्यापकत्वमनित्यत्वञ्च	१ २	गद्यभागः
षड्जादीनामेव स्वरत्वम्	१ २	,,
स्वरेनिक्सितः	8368	86-80

	पृष्ठ सं०	इलोक सं०
स्वरजातयः	१४	85
रसानुसारिस्व रविनियोगः	१४	8E40
ग्रामलक्षणम्, ग्रामद्वै विध्यञ्च	१५१६	x ? - x ?
गान्धारग्रामस्य लोकेऽनुपलम्भः	१ ६	χş
मूर्च्छनाशब्दनिष्पत्तिः, मूर्च्छनाया)		
लक्षणम्, प्रतिग्राम सप्तथा मूर्च्छना	१६	प्र३- ५५₺
सप्तस्वरमुच्छंना द्वादशस्वरमुच्छंना च	१६	गद्यभागे:
ग्रामद्वयमूच्छंनाना नामानि, चतुरशीति]		
मुर्च्छनाईच }	१७	,,
यज्ञतानाना यज्ञतानत्वम्	? ७	"
षाडवत्वमौडुवत्वञ्च	१७	"
भ्रौडुवस्य द्वै विध्यम्, शुद्धत्व ससर्गजत्वञ्च	१८	n
जातिसाधारणाश्चितत्वात् ससर्गजस्य		
इं विध्यम् े ∫	१८	प्रह
जातिसाधारणम् स्वरसाधारणञ्च	१८	गद्यभागे
मूर्च्छनातानयोर्भेद.	१=	"
जातिशब्दनिरुक्ति	१=	,,
सप्त गुद्धजातयः, एकादश विकृतजातयश्च	39	,,
जातीना त्रिष्टिरशा	38	४७
रागझब्दनिरुक्ति.	38	४८
सप्त गुद्धग्रामरागा , पञ्चभिन्नरागा.,		
त्रयो गौडरागा , अष्टौबेसररागाः सप्त ।	2020	
साधारणरागा वट् (ग्रब्टी?) उप-	₹0	५६—६६
सप्त गीतकानि सप्त गीतानि च	२१	गद्यभागे:
(x-)		
द्वितीयाधिकरणम्		
देशिलक्षणम्	२३	8-5
देश्या द्विविधत्वम्	२३	3
देश्याः शुद्धत्व सालगत्वञ्च	58	8
सचेतनोद्भवा निश्चेतनोद्भवा उभय } प्रभवाश्चेति त्रिविधाः स्वराः		
, , , , , , , , , , , , , , , , , , , ,	58	¥Ę

	mer et.	श्लोक सं०
पूर्वीक्तविषये पार्श्वदेवमतम्	केंद्र स्	गद्यभागे
शरीरतः नादबिन्दुस्वराणां सम्भवः	२४ २४	७
पिण्डोत्पत्तिः	₹₹	-
नादोत्पत्तिः. स्वरगोतवाद्यतालात्मको न ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां नादात्मकत्वं जगत	ाद: } इच,}	६ =१६
प्राणसमुद्भवः, नादसमुद्भवः, बिन्दुसमुद्भवः, वाङ्मयस्य नादात्मकत्य	इम् }२७	१७ — २०
नादव्युत्पत्ति., नादशब्दार्थश्च	70	२१
मतञ्जमुनिसम्मतो पञ्चिवधो नाद ,) तत्प्रकाशनस्थानानि च	२८	25-58
स्यानत्रयोत्पन्नस्य नादस्यैव ध्वनित्वम्	२८	२५
चतुर्विधो ध्वनिस्तस्य भेदा स्नाहुल) बोम्बकनाराटमिश्रकाः	२६	₹7€}
चतुर्घा मिश्रध्वनिः	οĘ	30-38
शारीरलक्षणम्	30	₹?
शारीरभेदाः, कडालम्, मथुरम्, पेशलम्) बहुभक्ति, कडालमधुरम्, मथुरपेशलम् । कडालपेशलम् । विश्वसारम् । विश्वसारम्य	₹0— 7 €— 9 €	₹₹—-₹ 9 ₹ 5 —-
गीतम्, निबद्धमनिबद्धञ्च	33	88
भा लप्तिभेदा⁻, ग्रालप्तिलक्षणम्, तद्भेदार	च ३३	8X-8=
शुद्धे विषमालितः	38	8E-X0
गुद्धे प्राञ्जलालप्ति	₹8	५१५२
सालगे विषमालिप्तः	3 X	4.3
सालमे प्राञ्जलालिप्त	34	48-44
धनक्ष रालिप्तः, ग्रक्षरालिप्तश्च	ąχ	× = - × 0
सतालालिप्त.	₹ €	X5-XE
धन्वर्थसंज्ञकाश्चत्वारो वर्णाः	३६	६०६१₺
त्रयोदशास द्वारास्तेषा लक्षणानि व	३६—३६	६२-७ ₹
गमकलक्षणम्	३८	७१७२
सप्तगमकनामानि, तल्लक्षणानि च	きゃーよっ	62-F0
गीतभेदाः तेषां लक्षणानि च	80-85	£965

तृतीया धिकरण म्	पुष्ठ सं०	इलोक सं०
ठाया	8.3	8
रागालप्ति रूपकालप्तिक्चेति द्विधाऽऽलि		गद्ये
सुराग	, v t	₹—₹
चित्रराग	88	8
छायान्तरकारणम्	88	¥
जीवस्वर	88	Ę
सवाद्यनुवादिविवादिनस्तेषा प्रयोगश्च	8888	30
प्रच्छादननिष्कृत <u>ी</u>	84	१०
ग्रहन्यासौ	8X	80-88
प्रपन्यास	84-86	
सन्यास	४६	83
तारमन्द्ररागा	४६	88
षाडवाडुवे	४६	88-8X
रागवक्त्रकम्	४६	१६
स्वस्थानानि	8£-85	
म्रारूढि [.]	85	28
रागाकार	8=	રેપ્ર
स्थापना	85-88	२४—२६
उच्चारौता	38	20
रागालिप्त , क्षेत्रशुद्धिः, रूपकालिप्त ,	-	\ -
and we are a	86-X0	7=-37
बहुप्रकारा स्थाया	x 8	3 3
स्थायनामानि	X 8	गद्यभागे
ठायलक्षणम्	48	38
स्थानतानके स्थायाना चत्वारि करणानि	५२	34
स्थानम्	x2-x3	₹६—३७
सरी रागचालना	χş	35
जावणा	Хą	३८
गति	,,	38
जायी	"	80
मोयारम्	"	8.5
		•

-	पृष्ठ सं०	रलोक
वली	xx	४२
बहनी (धालप्तिवहनी, गीतवहनी च)	,,	8 3
(पुनर्द्विषा वहनी, खुत्ता उत्फुल्ला च	"	881
बलिरिप वहनीवत्)	,,	गद्ये
ढालम्	XX	४६
प्रसरः	**	४७
ललितगाढः	,,	85
प्रोच्चगाढ	,,	38
प्रपषल्ल	"	X o
निस्सरङ.	χę	* 8
लिङ्कितम्	,,	४२
स्वरलङ्कितम्	,,	Хş
दुर्वासः	,,	Xx
पेष्टापेष्टि	,,	* *
फेल्लोफेल्लि	४७	५६
मोडामोडि	,,	४७
गुम्फागुम्फि	,,	४८
ख चर [.]	**	3.8
गाणाचे ठाय	,,	६०
तरहरः	X5	€ 8
तवर्णम्	**	६२
विदारी	,,	ξą
भ्रमरलीलकः	,,	६४
कालस्यकम्	,,	६५
चित्ता चे ठाय.	,,	६६
करुण:	,,	६७
गीता चे ठायः	,,	દ્દ
जोडिय चे ठायः	,,	ફંદ
शारीरा चे ठायः	ξo	90
नादा चे ठायः	,	७१
कर्तरी	"	62

	पृष्ठ सं॰	श्लोक सं०
ग्र षंकर्तरी	Ę٥	७३
नखकर्तरी	,,	७४
लघुदक्कली	ξ̈́ę	ωx
मुट्टेयमु कु लिते	,	७६
उच्चनीचौ	,	७७
निक्खायिकोक्खायिके	,,	95
निरतम्		
निकृति	,, ६२	30
वसुड		50
परिवडि	**	= ?
एसृतम्	"	= ?
उट्टुण्डुलम्	"	= 7
बहिला	"	= 2
हलुकायि	"	द ३
अधिकम्	"	= 3
उक्खुडम्	€ 3	48
नवायि े	11	28
भरणहरणे	11	= X
सनगिदम्	"	= Ę
निकरड े	"	50
भजवणा	**	50
निजवण <i>म्</i>	£8	55
सुभावः े	n	55
होलाव:	23	58
रक्तिरङ्गी	,,	37
रीतिः	"	6.9
भनुकरणा	,,	60
घरणि.	"	83
घरिमेल्ली	ξ¥	£ 7
निबन्धायि	,,	£3
मिद्ठायी	n	£3
	"	6.k
	"	

	पृष्ठ सं॰	श्लोक सं०
गीतज्योतिः	Ę¥	83
स्फारहोम्फे	21	EX
कला छविरच	"	×3.
काकुरछाया च	ĘĘ	03,73
रागकाकु:	"	£=
स्वरकाकुः	,,	33
देशकानु:	**	१००
श्चन्यरागका कुः	"	200
उपरागभाषा, लोके ठायेति प्रसिद्धा	६७	गद्यमागे
क्षेत्रकाकुः	"	१०१
यन्त्रकाकुः	**	805
नवणिः	**	१०३
द्यंशमेदा :	६७- ६=	१०४, १०
कारणांशः	६८	१०६
काय्यांशः	,,	१०७, १०
सजातीयांश	"	१०५, १०
सदृशाशः	,,	१०€, ११
विसदृशाश	5,8	११०, १ १
मध्यस्थरागांशः	,,	१११, ११
अं शां यः	"	99-699
घटना	,,	8 8 X
प्राक्र मणम्	,,	११६
बङ्कायिः	90	११७
कलरवः	,,	११८
वेदध्वनिः	**	११८
बाहतः (त्रिविघः)	"	399
भवतीर्णक :	,,	388
वोकलः	**	१२०
सुक राभासः	७१	8 2 8
दुष्कराभासः	,,	१२२
प्र पस्वराभासः	,,	823

	पृष्ठ सं०	हलोक सं०
उचिता	,,	१२४
बुड्ढायि.	,,	१२४
चतुर्थाधिकरण	गम्	
रागाञ्जभाषाञ्जोपाञ्जित्रयाञ्जलक्षणम्	७३	१३
स्वराः षड्जादय	**	₹
स्वरव्यवस्था	७४	8, 2
द्वादशसम्पूर्णे रागाङ्गरागाः	७४	गद्यभागे
चत्वार षाडवरागाञ्जरागा.	"	"
चत्वार धौडुवरागाङ्गरागा	11	,,
एकविशति भाषाञ्जसम्पूर्णरागा	"	74
पञ्चदश्भाषाञ्जीडुवरागाः	७४	,,
श्रष्टादशोप। ज्ञसम्पूर्णरागा	७६	,,
सप्तोपाङ्गवाडवरागाः	,,	**
षडुपा ङ्गीडुवरा गा	11	,,
त्रयः क्रियाङ्गरागा	७७	,,
केचन लोकव्यवहारसिद्धरागाः		
एतादृशरागनामानि	৩৩ – ৩૬	4-88
मध्यमादिः	৩ =	2823
तोडी	**	१३, १४
हिन्दोल (वसन्त.)	30	8481
भैरव	"	१५
श्रीराग [.]	11	१६, २०
गु <i>द्धव</i> ङ्गाल	50	२०, २१
मालवी	,,	२२
हर्षपुरी	,,	२३
वराटी	,,	२४, २४
गीड	58	२४, २६
धन्नासिका	,,	२७, २८
गुण्डकृति.	,,	35
गुर्जरी	5 2	₹0, ₹१
देशास्या	,,	38-33

	पृष्ठ सं॰	श्लोक सं०
देशी (इति रागाङ्गानि)	= ?	33, 38
बेलाउली	53	34, 38
ग्रा न्थालिका	"	₹७, ३८
शाम्बरी	53, 58	38, 80
प्रथममञ्जरी	58	80,88
ललिता	,,	४२
खसिका	11	83,88
नाट्टा	4 X	88,88
गुद्ध वराटी	"	४६, ४७
श्रीकण्ठी (इति भाषाङ्गरागाः)	,,	85, 88
सैन्धववराटी	= Ę	8E, X0
कुन्तलवराटी	**	४१, ५२
अव स्थानवराटी	"	५२, ५३
प्रतापवराटी	59	४३, ५४
हतस्वरवराटी	,,	५४, ५५
द्राविडवराटी	"	४४, ४६
रामकृति.	"	४६, ५७
कम्भाती	55	४८, ४६
मल्हार	11	५६, ६०
कर्णाटगौड:	,,	ξο, ξ ?
देशवालगौडः	,,	६१, ६२
द्राविडगोड.	26	६२, ६३
तुरुष्कगौड:	,,	६३, ६४
महाराष्ट्रगुर्श्ररी	"	£8, £X
सौराष्ट्रगुर्जरी	,,	६४, ६७
दक्षिणगुर्जरी	03	६७, ६८
द्राविडगुजंरी	,,	६८, ६६
छायाना ट्टा	**	ĘE, 90
मल्हारी	"	७१
भल्लातिका	83	७२, ७३
भैरवी (इत्युपाङ्गरागाः)	"	७३, ७४

- 1		
	पृष्ठ सं •	श्लोक सं०
देवकीः (क्रियाङ्गरागः)	93	७४
द्विविषं रागलक्षणम्, सामान्यं विशेषञ्च,) सामान्यं चतुर्विधम्, विशेषञ्चांशादिकम्	६२	७६
ग्रंशलक्षणम्	"	99, 9 5
पञ्चमाधिकरणम्		
प्रबन्धस्याभिधात्रयम्	€3	ę
प्रबन्धलक्षणम्, तदभिषात्रयस्यान्वर्थता च	,,	₹-४
उद्ग्राह	,,	¥
मेलापक	83	×
পূ ৰ	"	Х
ब्रा भोग	"	۶, ७
वर्ज्यधातव	11	960
त्रिविधा प्रबन्धाः	ХЗ	१०, ११
झङ्गानि, प्रबन्धपुरुषे तेषां स्थान ञ्च	,,	१२१६
ब्रङ्ग लक्षणानि	६६	१६२१
प्रबन्धजातयः पञ्च	<i>e</i> 3	२१, २२
तारावल्यादिस ज्ञा नां विषये पर (शार्ङ्कदेवादि) मतलण्डनम्	"	२२, २३
पुनस्त्रिविधाः प्रबन्धा ग्रनिर्युक्ता	=3,03	२३—२६
निर्युक्ता उभयात्मकाश्च, तेषां लक्षणानि च	85	२६, २७
मनिर्यु क्तप्रबन्धमेवा पदतालयुता		
तालाणंव . विचित्रम् मण्डनम्, राहडी,} ढोल्लरी, दती	,,	२६, २७
निर्यु क्तप्रबन्धमेवा पदतालयुताः —		
धवल चन्चरी, वदनम्, भम्पटः, चर्या, त्रिपदी, सिहपाद , मङ्गलम्, स्तवमञ्जरी च	"	35-05
तालतेश्वकयुता श्रीप निर्युक्ताः	"	38
मङ्गानयसंयुता सनियुं क्तप्रबन्धाः —		
वर्ण., नन्दन , मभिनन्दन , हंसलीला, रणरङ्गक , नर्तनम्	६६, ६६	₹0, ₹१
मञ्जलाचारो गद्यञ्चोभयात्मकौ	33	₹१

	पृष्ठ सं॰	श्योक सं०
र्धानवुं स्ता सङ्गन्ततुष्टययुता प्रवन्धाः —		
शुक्रचञ्चुः, शुक्कारी, धामोदः, सुदर्शनः) कन्दुकः, हेपवद्वेन प्रमोदः, मनोरमः, सञ्कृष्वनिः	33	₹ २, ₹४
निर्यु क्ताबङ्गचतुष्टययुतो प्रबन्धौ :—		
त्रिपथकः पद्धडी,	113	₹
श्रङ्गपञ्चकयुक्तस्सिहलोलानामक श्रनिर्युक्त प्रबन्धः	27	३६
ग्रञ्ज पञ्चकयुतस्शरभलीलनाम को निर्युक्त प्रबन्ध	n	₹७
षडङ्गा प्रमियुं नतप्रबन्धाः द्विधातव —		
प्रतापवर्द्धनः, उमातिलकः, पञ्चाननः,} पञ्चभङ्गी, श्रीरङ्गः, श्रीविलासकः	800	३८, ३६
म्रनियु क्तप्रबन्धाः त्रिवातवो व्ययङ्गादव —		
लम्भक , रससन्दोहः. हंसपादः, हरिः, विजयः एकताली, ध्वनिकुट्टनी, सङ्कचा री	, १००	80, 88
निर्यु क्तप्रबन्धी जिवातू व्व्यङ्गी		
द्विपदी, कन्दः	**	85
उभवात्मकाः ब्व्यङ्गास्त्रिभातवः		
जयमाला, चक्रवाल , रागकदम्वक ,) तालार्णव, भोम्बड , रासकः,	१ 00	8 <i>ई-</i> 88
स्रनियुं क्तारित्रसातवरत्र्यङ्गाः प्रवन्ता		
स्वरायं , सिंहविकमः, कैवाडः, पाटकरणम्, स्वरायं , सिंहविकमः, कैवाडः, पाटकरणम्, स्वरकरणम्, ललितमिश्रकरणम्	808	४४-४६
निर्यु क्तास्त्रिधातबस्त्र्यङ्गा प्रबन्धाः —		
भाय्या, वृत्तम्, द्विपथकः, गाथा, } दण्डकादयः मातृकाः, दण्डः	,,	80-85
उभयात्मका स्त्रियातवस्त्र्यञ्चाः त्रबल्याः —		
सिंहविकमः कलहंसः, कौब्न्वपदः,	"	ጸ ደ- ጸ ይ

	पृष्ठ सं०	इलोक सं०
ग्रनियुं क्तास्त्रिधातवश्चतुरङ्गाः प्रबन्धाः	e	
श्रीवर्द्धनः, स्वरपदकरणम्, स्वराङ्कः, गज लीला, वर्तनी, विवर्तनी, वन्धकरणम्	-}	
तेन्नकरणम्, चतुरङ्ग	१०१-१०२	४०-५२
उभवात्मकास्त्रिधातवश्चतुरङ्गा प्रबन्धा —		
चतुष्पदी, ह्यलीला, त्रिभङ्गी	१०२	४३-४४
द्मनिर्यु क्तास्त्रिधातव पञ्चाङ्गयुतः प्र ब न्धः-	-	
जयश्री , विजयश्री , वर्णस्वरः, चतुर्मृ स , वर्धनानन्द हरविलासक }	,,	५४-५६
निर्युवनस्त्रिधातु पञ्चाङ्गयुतः प्रबन्ध —		
वस्तु	१०३	५७
उभयात्मकाश्चतुर्घातव प्रबन्धा		
म्रङ्गदययुता देख्किका एला च, क्वचि-		
ज्भोम्बडरासका व पि	"	५७,५८
पुनस्त्रिविधा प्रवन्धा सृडकमगता } झालिकमस्था विप्रकीर्णाश्च }	803	४६,६०
श्रतिजघन्य , जघन्य मध्यम उत्तम } अत्युत्तमश्चेति पञ्चधा सूडकमगता }े	१०३, १०४	६० -६ २
म्रतिज्ञघन्यसूडमेदा -		
मण्ठताल भोम्यङ , निस्सारुक्तोम्बङ , कुडक्कलम्भ निस्सारुक्तमक , कम्पलम्भ एकतालिकायुतो रासक	,}	६२-६ ४
ज घन्यसूडमेदा	, ,	* * * *
द्वितीयतालढेङ्की, मण्ठभोम्बङ , निस्सारभोम्बङ	,,	६४- ६६
मध्यस्डमेदा		
र् गारिगनालयुर्तैलाढेड्किक्षोम्बडा , द्वितीय- क्षोम्बड , मट्टकोम्बड , तृतीयकोम्बड , निस्सारुकोम्बड , इतिनस्सारुकोम्बड क्रम्पालम्भक एकतालीरासक	}	६७-६६
उत्तमसूडभेदा —		. ,
गारुगिनालयुता करणढेख्किका कोम्बडा [.] , द्विनीयकोम्बड [.] , तृतीयकोम्बड , निस्सारु	}	

		Y\$
	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०
फोम्बडः, एकतालफोम्बडः, मट्टफोम्बडः तृतीयफोम्बडः, कुडुक्कफोम्बडः, फम्पार म्भकः, एकतालीरासकः		, ६ ९-१० ५
उत्तमोत्तमसुडमेवा '		
गद्यम्, करणम्, वर्तनी, एला, ढेङ्क्किना, ग भोम्बङ द्वितीयभोम्बङ, एकतालभोम्ब		
भोम्बड , तृतीयभोम्बड , निस्सारुभोम्ब द्रुतनिस्सारुभोम्बड , भम्पालम्भक., ए तालीरासक	ड, एक- १०५	ValEat
	2 .	७३-७५
उत्तमोत्तमसूडान्तर्गतमेलागानम्	१०६	<i>७६-७७</i>
उत्तमसूडान्तर्गतछन्दस्वतीसङ्करैलामात्रै- लागानम्	} "	95
धा लिकम	37	50-58
म्रालिकमे गेया स्थायिनो नव सञ्चारिण		•
षट् प्रबन्धा	१०६-१०७	द १- द ४
उत्तमसूडे गेया त्रयोदश प्रबन्धा, तेष्वण स्थायिन पञ्च सञ्चारिणश्च	⁵² }	<8-<0
मध्यमसूडे गेया सप्त स्थायिन∵, } श्रवशिष्टाश्चत्वारो यथारुचि गेया ∫ १	०७, १०५	59-58
जघन्यसूडे गेया षट् स्थायिन स्रवशिष्ट स्त्रयोयथारुचि गेया प्रबन्धा	ti−}{•=	£0,
स्त्रयाययाराच गया प्रबन्धा म्रतिजवन्यसूडे गेयाः पञ्चस्थायिन प्रबन्धा स्रन्यो हो यथारुचि गेयो	,,	६१,६२
विप्रकीर्णकसुड	"	¥3,83
सुडक्माभितप्रबन्धलक्षणम् :	.,	
ढेड्डीसामान्यलक्षणम्	309	8 o 8 - V 2
भोम्बडसामान्यलक्षणम्		808-83
भोम्बडो द्विविधस्तारजोऽतारजश्च	११०	१०१-१०६
तारजभोम्बङ	8 8 8	१०६
	***	909
तारजभोम्बडस्यभेदचतुष्टयम् स्रतारजभोम्बडभेदा तेषां लक्षणानि च	999	१०५
	885-888	१ १ २-१३०
एलालक्षणम्	668, 668	830-638
करणभेदाः	११५-११८	628-626

4*		
	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०
वर्तनी	११=	844-848
विवर्तनी	"	१५५,१५६
स्वरार्थं	388	१५७-१६०
षोडा गद्यम्, तत्समाश्रया षट्त्रिशत् भेटा)	
भेदा	१ २०-१२३	१६१-१८५
लम्भकोपलम्भविलम्भा	१२४	१=६-१६०
रासकलक्षणम्	१२४, १२५	F39-939
एकतालीलक्षणम् (इति शुद्धसूडा)	१२५	\$ E & - \$ E X
सालगसूडप्रबन्धास्सप्त सलक्षणा	१२४-१२८	989-708
गानकमं , तत्रानुसारसानुसारोत्तर-		
बल्लोत्तरकुरूप पट्टान्तरनवान्तर		
समयपरिवर्तनाभिधास्सप्तप्रकारा—	१२८-१३०	२०६-२२१
स्सलक्षणा षट्रीतय	830	२२२,२२३
ৰণ্ঠা বিক	रणम्	
उद्देशस्चतुर्विधवाद्यञ्च	230	₹, ₹
ततभेदा	,,	₹, ४
भ वनद्वभेदा	,,	Ϋ́
घनभेदा	१३ २	Ę
सुविरभेदा		ė e
बहुप्रकार लोकरञ्जन वाद्यम्	,,	4, 8
शुःकगीतानुगनृत्यानुगगीतनृत्या-		
नुगतन्व्यनुगाल्या पञ्च वादनभेदा	29	99-3
मन्य भेदहेतव	१३३	११-१३
एकतत्र्या प्रधानत्वम्	**	83
दशविधवीणावाद्यम्, छन्दोधाराकैकुटी	1	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
कञ्चालवस्तुतूर्णकगजलीलोपरिवादन दण्डकपक्षिरुतास्यम् सलक्षणम्	}	
एकतंत्रीसमाश्रयम् सकलनिष्कलवाद्यम	J १३३-१३¥	88-5X
शङ्करोक्तं द्विविधवाद्यम्	₹ १३ ४	२६
त्रिविधेकतंत्रीसारणा, सलक्षणा, सन्नि	,, विषया	₹७-३१
उत्किप्ता, उभयात्मिका च		
	१३६	₹ ₹ २-३

	पृष्ठ सं॰	श्लोक सं¤
हस्ते व्यापारभेदाः	१३७	36-88
उभयहस्तव्यापाराः	\$ \$5	84-44
वरो वैणिकः	680	४६, ४७
भालाव णीवादनम्	680-686	४८-६३
ग्रन्यवीणाः	686	€8-€X
पटहबर्णाः	885	६६, ६७
हुडुक्कावर्णाः	,,	६८, ७१
श्रष्टघा हस्ताः	१ ४२	50-9e
ग्रष्टविषहस्तलक्षणम्	१४३	प्रथ-६७
उत्फुल्लः	,,	७६
खलक	,,	७७
पाण्यन्तरनिकुट्टकः	688	৩=
दण्डहस्तः	31	9.6
युगहस्त.	31	50
स्थूलहस्तः	91	= ۶
पिण्डहस्तः	१४४	52
ऊध्वंह स्त	31	4 3
ाषा हस्तपाटाः	१४५, १४६	58-50
कर्तरी	१४६	<u> </u>
समकर्तरी	,,	55
विषमकतंरी	,,	5 E
समप।णिः	"	32
पाणिहस्तः	१४७	6.0
स्वस्तिक:	**	93
विषमपाणिः	,,	६२, ६३
श्रवघट:	१४८	8.8
नागबन्धपाटः	,,,	£χ
समग्रहः	**	६६-६=
हे द्वादश बाखानि	१४६	१५-१००
वोल्लावणी	,,	808
चलावणी	,,	१०२

	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०	
चारश्रवणिका	१५०	803, 808	
परिश्रवणिका	,,	१०५	
ग्रलम्न.	,,,	१०६	
दण्डहस्तः	१५१	१०७	
उडुव'	91	१०=	
कु डुव चारणा	,,	308	
करवारणा	,,	११०	
कुचुम्बिनी	१४२	१११, ११२	
घनरव	11	११३	
मृदङ्गजा पाटवर्णाः	१५२	११४, ११५	
उत्तममार्वेङ्गिकमेवाः पञ्च	१५३	११६, ११७	
सरलः		११७, ११८	
किविलः	"	११८, ११६	
चौपट	"	११६, १२०	
गतिस्थ∙	**	१२०	
घणायिलः	648	१२१	
द्विविध गीतवादनम्, तत्र पञ्चधा ग्रङ्गम्, पञ्चधा ग्राश्रयाङ्ग च	} "	१२२-१२४	
करटा पाटवर्णाः	,,,	१२५	
	प्र४, १५५	१२४-१२=	
मुषिरवाद्यम्, तत्र व्शभेदा . वशगता			
	५५, १५६	१२६-१३३	
ग्रड्गुलीचारणाः । काहला, तस्या वर्णाक्च विकातिः प्रवन्धा	१५६	१३३-१३६	
यति	,,	१३६	
श्रोता	१४७	१३७, १३८	
धवच्छेद	,,,	938, 980	
जोडणी		980, 989	
चण्डण (चतुर्विघ, सुक्तासुक्ति, मोडा			
मोडिः, अर्द्धस्थिति , स्वरचण्डणस्च)	१५७, १५८	888-68€	
पदम्	१४८	१४७	

	,	ृष्ठ सं ०	श्लोक सं
समहस्तः		3 × 8	१४८
पैसार:		**	8.R.E
तुडुक्का		12	१४०
प्रो त्वरः		,,	१५१
भेङ्कारम्		,,	१४२
देख्कार		१६०	823
मलपम्		,,	१४४, १४४
मलपाङ्गम्		"	१४४, १४६
प्रहरणम्		"	१५६, १५७
म न्तरा		,,	१४७, १४=
दुवक्कर		,,	१४=
जवनिका		१६१	848-848
पुष्पाञ्जलिः	,		२ १६२-१६७
रिघवणि		१६२	१६=
गुण्डलीवाद्यानि द्विविधा वाद्यम्, धनिवद्धं निबद्धः च	ļ	,,	१६६
द्विविधा वाद्यम्, श्रनिवद्धं निबद्धः च तयोः पुनर्द्धेविध्यम्	J	,,	१७०, १७१
नियमः		१६३	१७२
टवणा, तस्या भेदाश्च		१६३-१६	४ १७३-१८३
सप्तमाधिक	रणम्		
नृत्तसारनिरूपणप्रतिज्ञा		१६६	8
न्तलक्षणम्		91	2
त्रिविधमाञ्जिकम्		"	3
धभिनयनिरुक्तिः		12	R
नृत्तशा खाङ्कुरलक्षणम्		"	×
ग्रङ्गानि		१६७	६-=
उपाङ्गानि		"	3
मञ्जामिनयाः		१६७-१६	६ १०-१=
विरासि —		१ ६६	9€-२0
ग्रा कम्पितम्		79	₹0-₹
कम्पितम्		,,	२१-२२

	पृष्ठसं० इलोकस	to.
धुतम्	" 25-53	
बाधूतम्	१७० २३, २४	1
अ वधूतम्	" 5A	
ग्राञ्चितम्	,, २ x	
निहञ्चितम्	,, २६, २७	
म्रघोगतम्	,, २७	
वक्षांसि	१७१ २=	
समम्	,, 38	
उद्वाहितम्	,, 30	
निर्भुग्नम्	,, 30	
कम्पितम्	१७२ ३१	
परिभाषा	१७२ ३१-३४	
धसंयुतहस्ता —	१७२, १७३ ३४-३६	
पताक		
त्रिपताक [.]	, , , , , , , , , , , , , , , , , , , ,	
कर्तरी	" 80-88	
चतुर	" 88,85	
हसपक्ष	\$08 R5' R\$	
सर्पास्य	" R\$' 8.8	
मृगशीर्षं क	" 8x' &£	
भ्रराल •	\$08, 80x 8£, 80	
शुकत् ण ड	१७४ ४७, ४८	
सन्दशः	१७४ ४८, ४६	
भ्रमर	" RE-X 8	
पद्मकोष:	,, ¥ १, ¥२	
ऊर्णनाभ.	१७६ ५२, ५३	
अलपद्म	" X3, X8	
मुकुरः	,, ¥8, ¥¥	
हंसास्य	<i>"</i> ሂሂ, ሂ६	
काङ्गूल	,, ¥€, ¥6	
मुष्टि:	१७७ ४७, ४८	
•	" ५६, ५६	

	पृष्ठ सं॰	श्लोक सं
कपित् य ः	१७७	€0, €è
कटकामु खः	,,	६१, ६२
सूच्यास्यः	₹७=	६२, ६३
ताम्रव्हकः	,,	£3, £8
संयुक्तहस्ताः —	,,	₹8-६६
ध ञ्जलि.	,,	₹७, ₹७
कपोत [.]	309	६७, ६=
कर्कट :	१७१	ξ=, ξ£
वर्द्धमानः	,,	48, 00
कटकावर्द्धमानः	,,	90,00
स्वस्तिकः	908	७१, ७२
गजदन्त	१८०	७२, ७३
दोल:	,,	७३, ७४
ग्रवहित्य [.]	,,	७४, ७४
उत्सङ्ग	"	9¥, 9€
निष्मं	१ ५१	७६, ७७
पुष्पपुट	,,	७७, ७८
मकरः	,,	30,70
नृष्यजास्सप्तविश्वतिः हस्ता —	१८१, १८३	
चतुरस्रकौ	१८२	८४, ८४
उद्बृत्ती	,,	= 4, = 4
स्वस्तिकौ	१८३	ς ξ
सूचीमुखी	,,	द६, द७
तलमुखी	,,	50, 55
रेचिती, सर्वरेचिती	,,	55-58
माविद्धवन्त्री	,,	58
पल्लवी	,,	6.9
परालकटकामुखी	,,	8.8
नितम्बी	628	23
केशबन्धी	,	€₹, €₹
उत्तानवञ्चिती	"	£3

•	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०
नतास्यौ	१८४	88
करिहस्त	31	23
पक्षवञ्चितौ	"	"
पक्षप्रद्योतको	१८४	£¥
दण्डपक्षी	,,	६५, ६६
गरुडपक्षकौ	"	€ ₹, ₺%
मुध्टिकस्वस्तिकौ	,,	€७, €=
ऊर्ध्व पार्श्वमण्डलिनौ	"	€=, €€
उरोमण्डलिनौ	"	009,33
उर पार्श्वार्द्धमण्डली	१८६	१००, १०१
नलिनीपद् मको षकौ	19	9०१, १०२
उल्बणी	8 = €	१०२
लितौ	,,	803
वलितौ	"	१०३
लोक व्यवहृतौ युद्धे, नियुक्ते नर्तन।दिषु } हस्तप्रयोगोऽनिवार्यः	,,	१०४
म्रावर्तन परिवर्तने	१८७	१०५
श्रावेष्टितोद्वेष्टिते	,,,	१०६
भ्रावर्तित परिवर्तितौ	19	१०७
दश बाहव	"	309,208
चतुर्विध पार्श्व	१८७, १८८	₹99-099
पञ्चिवधा कटि.	१८८	३१३-११६
पञ्चविध पादः	१८६	999-099
श्रष्टविधदर्शनानि	039	१२२-१२४
पादकरणम्	**	१ २६
पादचारी प्रयोग	11	१२७
मञ्जविनियोग	939	१२=
कटयाश्रयो हस्त	,,	१ २६
देशीनृत्येषु सार्थत्व न विचार्य्यम्	11	₹ ३०
परणपेक्सण गुण्डलीवण्डरासकाश्रिताः		
स्थानकावय :	१६१, १	६२ १३१-३३

	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०
नन्द्यावर्तम्	989	838
वर्दमानम्	27	१३५
समपदम्	,,	? ३६
स्वस्तिकम्	,,	१३७
वैष्णवम्	"	१३८
पार्ष्णिविद्धकम्	₹39	359
पार् <u>ष</u> ्णिपाद्यकम्	,,	,,
परावृत्तम्	**	280
गारुडम्	11	888
लण्ड-सूचिकम्	,,	885
समसची	,,	683
त्रिभिङ्गिकम्	839-888	888
एकपार्षिण	888	88X
एकपादम्	19	१४६
चतुरस्रम्	19	280
विषम-सूचि	"	१४८
पद्मासनम्	"	389
नागबन्धः	23 ×	940
विषमपद्मासनम्	,,	१५१
श्रन्तरपद्मासनम्	11	१५२
कूर्मासनम्	,,	१५३
पचिवातिःपाला	१ ६५-१६६	१५४-१५८
सारिका	739	348
श्चर्षेपुराटिका	"	१६०
स्फुरिका	,,	१६१
निकुट्टक.	**	987
तलोत्सेपः	e39	१६३
पृष्ठोत्स <u>े</u> पः	**	१६३
प्रधंस्वनितिका	,,	8 6 8
सुत्ता	, ,	१६४
पुराटिका	"	8 € ¥
प्रावृतम्	**	866

	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०
उल्लोल	,,	१६७
समस्खलिता	,,	१६=
लताक्षे प	१६८	१ ६६
डमरुक.	"	१७०, १७१
विक्षेप	8€=	१७२
कर्तरी	"	१७२-१७३
तट्टालम्	,,	१७३-१७४
गारुडपक्ष	,,	१७४
ललाटतिलक	339-239	१७५-१७६
फल्लणापाल	339	१७७
श्चलगपाल.	**	१७७
विन्धवणः	,,	१७८
निस्सरड	**	309
समपादा	**	१८०
उत्प्लुतिकरणानि		
दर्पसरणम्	200	१=२
जलशायि	,,	१८३
दिण्डु:	,,	१८४
ऊ र्ध्वालगम्	,,	१८५
ग्रलगम्	२०१	१८६
ध न्तरालकम्	,,	१८६
कपालचूर्णनम्	,,	250
लोहडी े	**	१पप
परिभृतम्	,,	१८६
ग्रञ्चितम्	,,	980
लङ्कादहनम्	२०२	939
जिङ्कोलम्		167
वेद्धोलम्	"	१ ६२
स्थानकसहितानि करणनामानि	,,	गद्यभागे
पञ्चभ्रमरिकाः	"	१६३, १६४

	पृष्ठ सं =	इलोक सं०
पूर्वेरनुक्तानि बेश्यङ्गानि :	•	
मुखरस	202	\$68-860
सौष्ठवम्	२०३	238
ललि	"	339
भाव	२०३	२००, २०१
तुकली	7-3 7-4	२०१, २०२
भनुमानम् अनुमानम्	२०४	२०२, २०३
भक्ता		२०३, २०४
रेवा	,,	२०४, २० ४
सुरेखत्व म्	,,	२०४, २०६
ब ङ्गम्	*1	२०६, २०७ २०७, २ ०८
मन जुन् सन जुन्	*	२०५
ढालम् •	२०५	२०६, २०६
घिल्लायी		208, 280
नमनि	,,	₹ १ 0, ₹११
कित्तु	11 11	२११, २ १ २
तरहरम्		२१२, २१३
उल्लासः	,,,	२१३, २ १ ४
वैवर्तनम्	२०५ , २ ० ६	
स्थापनम्	704	784
पेरणपञ्चाङ्गान <u>ि</u>	,,	२१७
नृत्तम्	,,	₹₹=
कैवार [.]	,,	288
घर्षरा	,,	220
वागडम्	200	२२१
गीतम्	"	777
पेरणवाद्यपद्धतिः	२०७,	२२३-२२४
पेक्खणवाद्यपद्धतिः		२२४, २२७
गुण्डलीवाद्यपद्धतिः		२२७, २२६
पेरणादित्रये गीतपद्धतिः		389-389
दण्डरासके वाद्यसन्दोहः		280-588

	पृष्ठ सं०	श्लोक सं०
पात्रम्	२१०	२४१-२४४
दण्डरोसम्	२१०-२११	२४४-२४७
अष्टमाधिकरण	म्	
उद्देश	. २१२	8
तालशब्दनिष्पत्तिः, ताललक्षणं च	,,	2
द्विविधा मानगति , मनोगा, हस्तगा च	"	3
क्षणलवकाष्ठानिमेषकालत्रुट्यधंद्रुत-		,
बिन्दुलघुगुरुष्तुतलक्षणयुता े		
मनोगा मानगति	२१२, २	Ø-3 €
ग्रावापनिष्कामविक्षेपप्रवेशन व शम्यातालसन्निपातलक्षण		
युना हस्तगा मानगति	२१३-२१	8 =-65
ध्रुवका, सर्पिणी, कृष्या, बन्धिनी		
विसर्जिता, विक्षिता, पताका, पतिता		
च लक्षणयुता	२१४	85-8X
मात्रालक्षणम्	,,	१ ५−१६
मार्गत्रये कलालक्षणम्	11	86-80
लयलक्षणम्, लयभेदाश्च	288-58X	१७-१=
यनय	२१ ५	39, 78
देशीगतामार्ना, तेषुकलापरिमाणम् च	**	98-39
चतुर्विधस्ताल , चतुरस्रस्त्र्यस्रो		
मिश्र खण्डश्च	२१४ २१६	२२-२६
तालोद्देशे एकोत्तरशततालनामानि	२१६-२१८	
प्रस्तारे तालसम्बन्धिचतुविधमक्षरम्		
द्रुतलघु गुरुष्लुतम्, तत्पय्यायवाचिन		
शब्दाक्च व्यवहारयोग्यताललक्षणे —	385-58	88-88
चञ्चत्पुट	385	84
चाचपुट	385	8X
षट्पितापुत्रक	385	86
संपनवेष्टाक	**	४६
उद्घट्ट	,,	૪૭
		-

	पृष्ठ सं०	श्लोक सं
चञ्चरी	,,	४७
सिंहलील:	220	85
सिहंबिकमः	**	8=
गजलील:	.,	38
हंस ली लः	,,	38
राजनूडामणिः	,,	χo
सिंहविकम		
सिहवाद:	**	χę
शरभलीलः	1)	
तुर ङ्ग लील	"	"
अभागाः सिहनन्दन	"	X ?
द्वितीय	२२१	४३
जयमञ्जल	"	χş
मट्ट	**	xx
	"	XR
कुडुक्कक [.] जिल्लाहरू	**	X X
निस्सारुकः	"	પ્રપ્
महिका	,,	५६
ढेड्किका	**	४६
एकताली	,,	५७
चतुस्ताल	,,	४७
ल घुशेखर	२२२	X 5
प्रतापशेखर	,,	,,
भूम्प.	,,	3.8
प्रति म ट्ट [.]	,,	,,
तृतीयता न	222	Ęo
बिन्दु [.]	,,	,,
पारुगि	,,	ξę
मद्रकः	?? २२२-२२३	
भङ्गाः विभङ्गाश्च	253	५२, ५२ ग द्यभागे
गलमूलानि सर्वाणि गेयानि	17.7	६३, ६४

	पृष्ठ सं०	रलोक सं०
नवमधिकरण	4 ~	
उद्देश	ે રર૪	8
वाद	,,	₹
वादस्याञ्जचतुष्टयम्	,,	₹, ¥
सभासन्निवेशे सिहासनम्	२२४, २२५	٧, ن
भूपति	२२४	3-0
देवी	२२४, २२	E 20, 22
विलालिन्यः	२२६	११, १२
सविवा	,,	83
सभ्या	२२६	१ ४
कवय	,,	શ્ પ્ર
रसिका	२२७	१६
वागोयकार, कविताकार, नर्तकादयः		રે ૭-૧૬
वादी	,,	₹•
प्रतिवादी	,,	7.8
वादहेतव	 २२=	२२, २३
वर्जितवाद		₹¥-₹
शास्त्रज्ञगुणा		२७
शास्त्रज्ञदोषाः	२२६	२८, २६
शास्त्रज्ञकोटय		२ ६-३ २
वाग्गेयकारगुणाः	" २२ ६- २३०	36-38
वागोयकारदोषाः	238	44-46 80-88
वागोकारकोटय	रसर २ ३ १, २३२	88-85
गायकाः	737	¥3-X5
क्रियापर:	,,	x ६- x ७
कमस्थ.	,,	x 19- x 5
गतिस्थ	,,	¥5-86
सुघट	२३३-२३४	¥€-€•
सुसञ्चः	२३४	E0-E8
शिक्षाकार रसिक	**	६१-६२
भावुक:	,,	६२-६३
	"	६३-६४

	पृष्ठ सं	रलोक सं०
रञ्जक:	238	६४, ६५
पररीतिज्ञः	२३४-२३४	६४, ६६
सुगन्ध:	२३४	६६, ६७
धालप्तिगायनः	, ,	₹ ७ ६ =
रूपकगायन:	,,	ξ=, ξ <u>ε</u>
चौ पटः	17	£8, 00
रीतालः	,,	90, 98
विवन्धः	,,	७१, ७२
मिश्र.	"	93
गायकेषु निन्छाः	२३६	७४-७६
सन्दष्टः	,,,	७६
कपिज:	,,	99
भीतः	"	99
शिक्कृतः	,,	95
ब नुनासिक	"	৩=
उद्घुष्ट.	**	30
काकी	**	30
सूत्कारी	२३७	50
प्रव्यवस्थित	,,	50
कराली	,,	= ?
भोम्बक.	"	<u> ج</u> و
वकी	,,	= 7 \
प्रसारी	,,	= 7
निमीलकः		=3
निरवधानक:	,,	53
विताल:	"	~ * ~ *
उष्ट्रकी		28
उद्घड:	,,	~ X
पुनर्गायकमेवा	"	~4
मिश्रक:	२३८	¤\$-=0
एकल:		
•	n	55

	पृष्ठ सं०	श्लोक संब
यमलगायकौ	२३८	55
वृन्दगायन	27	5€
गायककोटय		
उत्तमगायकगुणा	२३८-२३६	€3-03
मध्यमो गायकोऽघमश्च	3 \$ 5	83
उत्तमोत्तमगायक	"	EX, E &
उत्तममध्यम [.]	,,	१ ६
उत्तमाधमः	,,	e3
ग'-यमोत्तम	२३६-२४०	£9, £5
मध्यममध्यम	२४०	23
मध्यमाधमः	,,,	33
कनिष्ठोत्तम	,,,	800
कनिष् ठमध्यम .	"	"
कनिष्ठाधमः	,,	808
गायकवादे विषय [.]	280-288	१०१-१०६
गाने योषिता प्रामुख्यम्	288-585	१०६-११५
गायनीवादविषय	583	११६, ११७
वादिवल्लभं गीतम्	,,	११=
वादोपयोगिनो वंशा	11	399
वशे वादनियमः	31	१२०, १२१
वैणिकगुणाः	२४४	१२१-१२३
वैणिकदोषा	21	१२३-१२४
वाशिकगुणाः	२४४- २ ४५	१२६-१२६
वाशिकदोषा	२४४	978-939
वादकश्रेण्यः		
उत्तमोत्त म वादक	,,	१३२
उत्तममध्यमोत्तमाधमवादकौ	**	१३३
मध्यमोत्तमवादकः	२४६	838
मध्यममध्यमध्यमाध्यमवादकौ	२४६	१३४
जघन्योत्तमवादकः	, ,	१३६
जघन्यमध्यमजघन्याधमौ	,,	१३७

s :	पृष्ट सं०	श्लोक संब
वादकवादनियमः	584-580 Sec 40	₹\$ =- ₹ ¥ 0
कविताकारश्रेष्यः	"	880
प्रशस्तकविताकारः	280	880-688
कविताकारदोषाः	**	888
उत्तममध्यमुकनिष्ठकविताकाराः	**	884-88€
कविताकारवादनिर्णयः 🛩	२४⊏	880
शुभवादकः	385-588	१४८-१५३
वादकदोषाः	28€	828-828
पञ्च सञ्चा	27	१४४-१५७
पटहवादककोटयः	,,	१४७-१४=
हौडुक्किककोटय [.]	२५०-२५१	339-329
गीतवादकयोर्वादः	२४१	१७०
नृत्तवादकयोर्वादः	२४२	१७१-१७२
नर्तंककोटयः	२४२-२५३	१७३,१७७
नर्तकदोषा	२ १ ३	309-009
पुनर्नर्तंककोटयः	२४३-२५४	१८०-१८२
नर्तकवादनिर्णयः 🗹	888	8=3-8=8
पेरणसश्रया गुणाः	,,	१८४-१८७
पेरणदोषा	,,	१८८
पेरणोत्तमपेरणमध्यमपेरणाधमाः	२४४-२५५	१६८-१८६
पेरणवादनिर्णय	२४४	980
नर्तकीगुण ।	**	239-939
नर्तकी भेदा [.]	२४४-२४६	284-88=
नर्तकीवादनिर्णयः	२५६	339
गोण्डलीगुणाः	27	२००-२०३
गोण्डलीदोषाः	२५७	२०३
गोण्डलीकोटयः	9.7	२०४-२०६
गोण्डलीवादनिर्णय:	,,	२०७
पणवन्धे वारणीयानि	२५७-२५=	२०६-२०६
शक्द्ररो गीतगम्यः	२४=	290
गीतस्य मोक्षदत्वम्	,,	288

द्वितीय खण्ड

परिशिष्ट प्रथम परिशिष्ट द्वितीय परिशिष्ट तृतीय

२६१-२७४ २७४-२८७ २८१

पादर्ववेषकृतः

सङ्गीतसमयसारः

॥ प्रथमाधिकरणम् ॥

मङ्गाचरणम् समबसरणसम्मकम्मंठो दुर्मृखेन क्षणकलितकटाक्षप्रेक्षितेनैव रम्भाम् । जयति रुचिरलास्यं तन्वतीं गीतवार्धं — रनुगतमनुपश्यन् वासुदेवोऽनिशं वः ॥१॥

सम्यादकमङ्गलाचरणम्-

कुञ्चितभूविलासेन निश्शेषीकृतमन्मथः । शङ्करस्सच्चिदानन्दः कोऽपि पातु दिगम्बरः ॥१॥ यत्क्रपया दुर्वोध्यं वोध्यं सञ्जायते क्षणादेव । सा शारदा पुनीता वितरतु मे मञ्जलं सवात्सस्यम् ॥२॥

जैनाचार्याणां रचिः--

जैनाचार्य्याः पुराणा विमलमतियुतास्साधकाश्यान्तचित्ताः । सङ्क्षीतञ्चापिभूयः श्रुतिपदविषयञ्चकृरेतत्प्रसिद्धम् ॥ तेष्वेकः पाश्वेदेवो गुणगणनिचयैः स्थातनामा महात्मा । व्यातेने गीततत्वं किमपि नवविषं विद्भिरन्यैरनुक्तम् ॥३॥ सङ्गीतत्तव्यवारपुर्वोषता—

कीटाशिताक्षरत्वात्प्रायोव्यत्यस्तपाठकाठिन्यात् । दुर्लेखकप्रमादाल्लोके तत्सम्प्रवायविच्छेदात् ॥४॥

१. (क) कुजरलास्यं ।

सङ्गीताकरनिहितो विज्ञानमणिस्युदुर्भहो जातः ।
विद्यानन्वकुपातस्तन्मणिजुञ्यो बृहस्पतिः प्रीतः ।। ।। ।।
श्रीपाद्यंपिठतानाचार्य्याद्चापि सर्वेथाऽऽलोङ्य ।
सङ्गीतसमयसार संसुक्ष शोधयित विज्ञतोषाय ।। ६।।
लोके सत्सङ्करपाः पूर्तिङ्गच्छन्ति पुष्पशीलानाम् ।
तत्रापि च वन्द्योऽसौ यः सत्कार्य्यप्रयोजकः कर्ता ।। ७।।
प्रेरकस्त्रतः—

भेदेऽभेद ब्रुवाणो विनयपथि रतो नित्यपूतान्तरात्मा । सर्वांत्लोकान् सहास समुपदिशति यश्शान्तवित्तः प्रवीणः । निष्कामः कर्तुंकामस्सकलजनगणोद्धारम्बत्यतापः । विद्यानन्वस्सलीलं जिनपदयुगलालिम्बिचित्तः पुनातु ॥६॥ पार्श्वदेवकृति शुद्धा स एव मुनिसत्तम । द्रष्ट्मिन्छति सानन्दमतो भेऽय परिश्रमः ॥१॥

सम्पादकप्राथना---

दुष्करमतीव कार्य्य सुकर सञ्जायते प्रयत्नेन । चेत्पुनरपिदोषा स्यु मार्ज्या करुणाव्धिविञ्चवृन्देन।।१०।।

युगस्थितः —

नाधीत थे कदापि क्वनिदिषि च न येस्सेविता ज्ञानवृद्धाः । भाषामर्थञ्च भाव पदगतशुचितां ये च दूरात् त्यजन्ति ॥ पूर्णङ्कोलाहलं ये विदश्वति सतत तेऽख सङ्कीतविज्ञाः । रागास्तालाःस्वराद्या विलपननिरताः पातु नो वासुदेवः ॥११॥ चित्रंपृत्पदपङ्कणं कृतिथियो नत्वाच लक्ष्माथिषैः । झाराच्या गुरुतामुपैःय नियतं क्षोणीतलेऽतिद्वतम् । सा में स्तोककृपातरङ्गतरलप्राप्तालया शारदा । पुष्णातु प्वतमायुरायतदृशा कुन्दावदाताऽनिशम् ॥२॥ लोकेदिलकोहलानिलसुतास्सोमेग्वरस्तुम्बुरुः । शास्त्रं भोजमतङ्गक्षयपमुखा व्यातेनुरेते पुरा । यस्तस्मादुदपादि गानरसिकाह् लादप्रमोदाकरः । सङ्गीताकरसुरिणामनुमतस्त्रद्धृत्य सारः स्फुटः ॥३॥ (मण्डवंशयित्यः)

श्रीकण्टान्वयदुग्धवाधिलहरीसवर्द्धनेन्दोःकला । गौरी यज्जननी लसद्गुणगुणो यस्यादिदेवः पिता ॥ यज्जेतो । जिनपादपद्मयुगलध्यानैकतानं सदा । सङ्गीताकरधीमतो विजयते तस्यैव सेयं कृतिः ॥४॥

वे वासुदेव निरन्तर ध्रापकी रक्षा करें, जो समवसरण(धर्म-परिषद्) की सम्पत्ति से कम्भंट हैं (ध्रीर) गीत-वाझ के द्वारा धनुगत रम्भाक्कत रुचिर लास्य को क्षणिक परन्तु दुर्मुख कटाक्ष के द्वारा देख रहे हैं॥१॥

ष्ठपनी कृपा-तरङ्ग-लेश से दयाई होकर मेरे सदन में प्राप्त वह कुन्द-तुल्य ग्रुभ सरस्वती निरत्तर नेरा गोवण करें, जिनके म्राल्यस्यम्य चरण-कमलों की बन्दना करके विद्वान् लोग बीच ही गुरुपर को प्राप्त करते भीर भूतल पर गभ-लक्षण-चारी व्यक्तियों के म्राराञ्च हो जाले हैं।।२।।

लोक में पहले दिल्ला, कोहल, धाञ्जनेय, सोमेश्वर, तुम्बुर, भोज, मबङ्क धीर करवप प्रादि ने संगीत-धास्त्र का विस्तार किया है। गानरिसकों के प्रमोद का धाकर जो सार उससे उत्पन्न हुया, उसे ही उद्युत करना पाक्वेदन को धनीष्ट है।।३।।

भीकण्डबंशक्सी क्षीरसागर की तरङ्गों का संबर्दा करने वाली न्वन्द्र कता गौरी जिसकी जननी भीर सकल गुणमण्डित झादिदेव जिसके बनक है, जिसका चित्त सदा जिनेन्द्र के पायरुगण के अध्यान में संवन्त है, उस भीमान् सङ्गीताकर (पास्वेदेव) की यह कृति सुशोधित हो रही है, ।।४॥

१. (क) लहतम् । २. (क) प्रोक्तालया। ३. (क) गाम । ४. (क) नाव्य ।

चाञ्चल्यं किञ्च्देतद भरतपरिणतं तावता चञ्चलत्वम् । शास्त्राण्यम्भोधिमुद्रामुकुलितभुवने यानि तत्प्राप्नुवन्ति ।

तत्कम्पानेति ताण्डवोद्योगिभर्ग

श्रीपादाङ्गुष्ठसङ्गस्खलितततजगन्मङ्गलं सञ्चरेषु ॥५॥ सङ्गोतं ै द्विविधम्, मार्गो देशिरिति । तयोर्लक्षणंकिम् ?

स्वरद्मामो तथा जातिः वर्द्धमानादिगीतकम् । श्रालापादिक्रियाबद्धं स तु मार्गे इति स्मृतः ॥६॥ स मार्गो द्विवध , जातिगम्न मद्रगानमिति^४ । तथा चौच्यते —

> स्थानश्रुतिस्वरग्राममूच्छंनास्तान 'संयुताः । साधारणा जातयश्च रागा मद्रादि 'गीतकम् ॥७॥ एष स्वरगतोद्देश. सोपपत्तिश्दाहृतः । संक्षेपेणास्य शास्त्रोक्तपदार्थावगति. फलम् ॥८॥ तान्यह' नाममात्रेण निरुक्तिसहित कथम् (?)

(पाँचवाँ श्लोक अपूर्ण है) ।।४।।

संगीत दो प्रकार का है, मार्ग और देशी। उनका लक्षण क्या है ? स्वर, ग्राम, जाति, वर्द्धमान इत्यादि गीतक, भ्रालाप इत्यादि किया से बद्ध होने पर 'मार्ग' इस सज्ञा से श्रमिहित होते हैं ॥६॥

वह मार्गदो प्रकार का है, जाति-गान ग्रीर मद्र (इत्यादि गीतों का) गान । कहाभी जाता है ---

स्थान, श्रृति, ग्राम, तान सहित मुच्छेनाएँ, साधारण, जातियाँ, राग, मद्र इत्यादि गीत यह स्वर-सम्बन्धी विषय उपपत्ति-सहित उदाहृत किया गया है। सक्षेप में शास्त्रोक्त पदार्थों का ज्ञान, कल ॥७-द॥

निरुक्ति सहित नाम मात्र कहुंगा।

१. (क) मतर। २. (क) भरता ३. (क) श्रावापादि। ४. (क) मन्द्र। १. (क) थान। ६. (क) मन्द्रादि। ७. (क) तानहुं।

स्थानमसणम् धत्रोच्यते—

स्वरादीनाम् उत्पत्तिहेतुत्वात् स्थानम् ॥१॥
त्रीणि स्थानानि हृत्कण्ठिशिरांसीति समासतः।
एकैकमिपे तेषु स्याद् द्वाविशतिविधायुतम् ॥१०॥
द्वाविशतिविधो मन्द्रो विवास सञ्जायते हृदि ।
यथोत्तरमसौ नादो बोणायामधरोत्तरम् ॥११॥
स एव द्विगुणो मध्य कण्ठस्थाने यथाकमम् ।
स एव मस्तके तारः स्थान्मध्याद् द्विगुणः कमात् ॥१२॥
इति स्वरगता ज्ञेयाः श्रुत्यः स्वरवेदिभिः।
ग्रन्तरस्वरवितन्यो ह्यन्तरश्रुतयो मताः॥१३॥

स्थान-लक्षण --

इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि स्वरो की उत्पत्ति का स्थान होने के कारण 'स्थान' कहलाता है ॥६॥

सक्षेपत. स्थान तीन हैं, हृदय, कण्ठश्रीर शिर। इन तीनो में से प्रत्येक बाईस प्रकारों से युक्त हैं।।१०॥

(स्थान लक्षण समाप्त हुमा)

१. (क) एवँवमपि । २. (क) विव पुन:।

एकावश्रद्ध।वश्यवयोदशक्तोकास्तिः भूपालेन रत्नाकरटीकायामुद्द्यताः। ३. (क) यंत्र.। ४. (क) संज्ञायते । ५. (क) स्व। ६. (क) यथाकमात् । ७. (क) मञ्चाविषुणः।

बीणायां भृतयः--

नाभी यद् ब्रह्मणः स्थान यत्कण्ठेन परिस्फुट्म् । शक्योऽदर्शयितुं तस्माद् वीणायान्तन्तिबोधत ॥१४॥ द्वे बीणे तुलिते कार्य्ये समस्तावयवे तथा। एकवीणेव भासेते यथा हे ह्यपि शृष्वताम् ॥१५॥ बीणाद्वये तू सम्प्राप्ते या तासामुपरि श्रृतिः । ग्राद्य, मन्द्रतमध्वाना र तन्त्री कार्य्या सवर्णकै: ॥१६॥ द्वितीया तू ततस्तीवध्वनिस्तन्त्री विधीयते । यथा तथा तयोर्मध्ये न तृतीयो ध्वनिर्भवेत ॥१७॥ एवं यथाऽवरा र स्तीव्रशब्दास्तत्रयः 'स्शोभना । कार्य्यास्तासूरियता. शब्दा श्रवणाच्छुतिसज्ञका :।।१८।।

वीणा में श्रतियां-

नाभि में जो बाईस श्रुतियो का स्थान है, वह कण्ठ के द्वारा भी स्पष्टतया नही दिखाया जा सकता है, उसे वीणा में समिभन्ये ।।१४॥

समस्त अवयवों से युक्त दो वीणाओं को सर्वथा इस प्रकार सद्धा कर लेना चाहिये कि वे एक ही प्रतीत हो। ऐसा होने पर आधिम तंत्री की मन्द्रतम ध्वनि मे मिला लेना चाहिये ॥१४-१६॥

दूसरी तंत्री पहली तत्री की अपेक्षा तीव ध्वनि रखी जाती है, उतनी कि उन दोनों के मध्य में कोई तीसरी ध्वनि उत्पन्न न हो । इसी प्रकार श्रन्य तत्रियों भी क्रमश तीव्रतर ध्वनियों से युक्त कर ली जानी चाहिये। सुनाई देने के कारण उनमें उत्थित शब्द श्रुति कहलाते हैं ।।१७-१८।।

१ (क) वस्तथा।

२. (क) ग्रपि। (क) स्थिता ।

४. (क) तावद्वाना ।

५ (क) यथावर ।

६. (क) शल्वा।

श्रूयत इति श्रुतिः । यद्विष्टिनामानि ।

सन्द्रा चैवाति ' सन्द्रा च घोरा घोरतरा तथा ।

सण्डना च तथा सौस्या ' सुमनाः पुष्करा तथा ॥१६॥

श्रंचिनी चैव नीला च उत्पला सानुनासिका ।

घोषवती लीननादा ' प्रावतंन्यिप चापरा ॥२०॥

रणदा ' चैव गस्पीरा दीर्घतारा च नादिनी ।

सन्द्रचा सुप्रसन्ता च निनद्रा सन्द्रसप्तके ॥२१॥

एतानि द्राविधातिनामानि सन्द्रसप्तकश्रुतीनाम् ।

नादान्ता निष्कला मूद्रा सकला समुरा गली ।

एकाक्षरा सुङ्गजाती रसगीती ' सुर्गञ्जका' ।२२॥

पूर्णां कारिणी चैव वांशिका ' वैणिका तथा ।

निस्थाना सुस्वरा सौस्या भाषाङ्गी वांतिका तथा ॥२३॥

सुनी जाती है, इसलिये श्रृति कहलाती हैं। उनके छियासठ नाम हैं। मन्द्रा, प्रतिमन्द्रा, चोरा, चोरतरा, मण्डना, सौम्या, सुमना:, पुष्करा, शंक्षिनी, नीला, उरल्या, प्रनृतासिका, बोयवती, लीननादा, प्रावतंनी, रणदा, गाभ्भीरा, दीर्घतारा, नादिनी. मन्द्रजा, सुप्रसन्ना ग्रोर निनदा ये श्रृतियाँ मन्द्र सप्तक में होती है।।१६-२१॥

सम्पूर्णा च प्रसन्ना च सर्वव्यापनिकातया। ढाविंशतिः समास्याताः श्रुतयो मध्यसप्तके ॥२४॥

ये बाईस नाम मन्द्र सप्तकीय श्रतियों के है।

नादान्ता, निष्कला, गूढा, सकला, मधुरा, गली, एकाक्षरा, मृङ्काति, रसगीति, सुरंजिका, पूर्णा, अलंकारिणी, वांशिका, वैणिका, त्रिस्थाना, सुस्वरा, सौस्या, भाषागी, वार्तिका, सम्पूर्णा, प्रसन्ना, और सर्वव्यापनिका, ये श्रुतियां मध्यस्त्रक में हैं ॥२२-२४॥

१, (क) बनुसन्द्वा। २. (क) सीक्या। ३. (क) लीनगाया। ४. (क) रणा।

थ, (क) वीर्षतरा। ६. (क) मनुवादिनी। ७. (क) मन्द्रा। व. (क) निष्करा।

६. (क) सरसा । १०. (क) सरगीती । ११. (क) कर्राञ्जका । १२. (क) बाही ।

एतानि द्वाविशति नामानि मध्यसप्तकश्र्तीनाम् ईश्वरी चैव कीमारी सवराती तथा परा ।
भोगवीर्व्या मनोरामा सुस्निग्धा च तथा परा ॥ १५॥
दिव्याङ्गायो सुललिता विद्रुमा च तथा परा ॥ १६॥
महाकशिकिनी राका लज्जा चैव तथा परा ॥ १६॥
काली सुक्मातिसूक्ष्मा च पुष्टा चैव सुपुष्टिका ।
विस्पष्टा काकली चैव कराती च तथा परा ॥ १७॥
विस्फोटान्तभे विनी च इत्येतास्तारसप्तके ॥
एतानि द्वाविशति नामानि तारसप्तकश्रुतीनाम् ।
(भ्रधुना मतङ्गोक्तानि श्रुतिसम्बिधमतान्युद्धरित)
तादात्स्य च विवर्तत्व कार्य्यत्व परिणामिता ।। १९॥।

ये बाईस नाम मध्यसप्तकीय श्रुतियो के है।

ईश्वरी, कोमारी, सवराली. भोगवीर्या, मनोरामा, सुस्निग्धा, दिख्याङ्गा, मुललिता, विद्वुमा, महाकी शकिनी, राका, लज्जा,काली, सूक्ष्मा, मितसुक्षमा, पुष्टा, सुपुष्टिका, विस्फटा, काकली, कराली, विस्फोटा भौर मन्त्रभीदिनी ये श्रुतियाँ तारसप्तक मे हैं। २५.२७॥

ग्रभिव्यञ्जकता चापि^४ श्रुतीनां परिकल्प्यते ।

ये बाईस नाम तारसप्तकीय श्रुतियों के है।

(इसके पश्चात् पार्श्वदेव-मताङ्गोक्त, श्रुतिसम्बन्धी पाच मत उद्भृत करते है।)

कुछ लोग श्रृतियो का तादात्म्य, कुछ लोग विवर्तस्व, कुछ लोग कार्यस्व, कुछ लोग परिणामिता श्रीर कुछ प्रभिव्यंजकता कल्पित करते हैं।।२<।।

१ (क) ग्रमराली । २. (क) दिव्याद्धा ।

श्रुतिनामाङ्किता श्लोका सिंहमूपालेनोद्धृताः (क) भादशैरुतोकोऽनिवदो भ्रष्टश्य पाठ ।

 ⁽क) परिणामता। ४. (क) वापि।

इदानीमेतदेव विवृणोति ।

विशेषस्पर्श्वभून्यत्वाच्छुवणेन्द्रियगम्ययोः'।।२६॥
स्वरश्रुत्योस्तु तादात्म्यं जातिस्यक्तिरिवानयोः'।
नराणां 'व मुखं यद्वत् दर्पणं च विवर्तितम् ॥३०॥
प्रतिभान्ति स्वरास्तद्वच्छु तिष्वेव विवर्तितः ।
स्वराणां श्रुतिकार्यंत्वमिति केचिद्वदन्ति ह ॥३१॥
मृत्पिण्डदण्डकार्यंत्व घटस्येह् यथा भवेत् ।
श्रुत्यः स्वररूपेण परिणामः वजन्ति ह ॥३२॥
परीणमेद यषाक्षीरं दिष्ठरूपेण सर्वया ।

षड्जादयः स्वराः सप्त व्यज्यन्ते श्रुतिभिः सदा ॥३३॥

धब इसी का विवरण दिया जाता है --

श्रवणेन्द्रिय द्वारा स्वर और श्रृति का विशिष्ट रूप मे पृथक पृथक स्पर्धन होने के कारण स्वर और श्रृति में उसी प्रकार का तादास्य्य मानते हैं, जो व्यक्ति और जाति में है ॥२६॥

कुछ लोगों का कथन है कि जिस प्रकार दर्पण मे मनुष्यों का मुख प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार स्वर श्रुतियों में विवर्तित होते है ॥३०॥

कुछ लोग स्वरो का श्रुतिकार्य्यत्व मानते है, जिस प्रकार मिट्टी का लोंदा ग्रीर चाक बुमाने का डण्डा, घड़े के कारण होते है ॥३१॥

कुछ लोगों की दृष्टि में स्वर उसी प्रकार श्रुतियो का परिणाम है, जिस प्रकार दूध दही में परिणत हो जाता है।।३२।।

कुछ लोगों के अनुसार स्वर, श्रृतियों के द्वारा उसी प्रकार अभिन्यक्त होते हैं, जिस प्रकार अन्धकार में स्थित घट इत्यादि दीपक के द्वारा अभिन्यक्त व्यक्त होते हैं ॥३३॥

१. (क) ब्राह्मता।

२. (क) वृत्ति।

३. (क) स्वराणां। ४. (क) प्रविभाति।

थ. (क) विवर्तितः। ६. (क) किञ्चित्।

७. (क) षटस्य हि ।

ब. (क) मन्ति न संशय: ।

ग्रन्थकारस्थिता यद्वत्प्रदीपैन घटादय । ग्रथिपत्यानुमानेन प्रत्यक्ष श्रोत्रजेन वा ॥३४॥ गृह्यन्ते श्रुतयस्तावत्स्वराभिव्यक्तिहेतव । एतेष्वभिव्यञ्जकतामेव केचिद्वदन्ति हि ॥३४॥ परिणामाभिव्यक्तिस्तु न्याय्यः पक्षः सतां मतः इति तावन्मया प्रोक्तं तादात्स्यादिविकल्पनम् ॥३६॥

राजृ⁸ दीप्ताबितिधातोः स्वशस्यपूर्वकस्य च । स्वय यो राजते यस्मात् तस्मादेव स्वरः स्मृतः ॥३७.॥ राजन्त इति स्वराः। नन् स्वरशब्देन किंगुच्यते ? रागजनको ध्वनि स्वरः ।

तवा चाह कोहलः—ं ग्रात्मेच्छया नाभितलात्ै वायुरुष्टन्निधार्य्यते नाडीभित्ती^भ तथाकाशे^भ ध्वनी रक्त^भ स्वर.स्मत ।।३८।।

अर्थापत्ति, प्रत्यक्ष ज्ञान, शब्द प्रमाण या अनुमान से यही सिद्ध होता है कि श्रुतियाँ स्वरो की अभिव्यक्ति का कारण हैं।।३४।।

डन मतो में कुछ लोग ग्रिभिज्यञ्जकता को ही ग्रहण करते हैं। सज्जनों की दृष्टि में परिणाम की ग्रिभिज्यक्ति ही मानना न्याययुक्त है। इस प्रकार मैंने तादाल्य इत्यादि का विकल्प कह दिया ॥३६॥

(यह श्रुतिविकल्पन सम्पन्न हुम्रा ।)

स्वशब्दपूर्वक दीप्त्यर्थंक 'राजृ' धातु मे स्वर शब्द निष्पन्न होता है। जो स्वयं राजित होता है, वह 'स्वर' कहा गया है।।३७।।

शोभित होने वाले (नोद) स्वर हैं। 'स्वर' शब्द से क्या तास्पर्य्य है ? रागजनक ध्वनि 'स्वर' है। जैसा कि कोहल ने कहा है:—

अपनी इच्छा से नाभितल से उठने वाली वायु का नाडीभित्ति भीर भाकाश में निधारण होता है, तब उत्पन्न होने वाली रञ्जक ध्वनि 'स्वर' है।।३८॥

रे. (क) स्थाय्य । २ (क) राजृ दीप्ताविति वातो स्थय स्वसम्ब्यूवंस्य च । ३. (क) कथ्वं विवार्थते । ४. (क) जित्तौ । ५ (क) तदाकाको । ६. (क) रक्तेस्वर: ।

तथा गीततत्वेऽन्यथा विक्तः । स्वरः श्रुतिरिति । स्थानामिधात प्रभवो ध्वनिर्नादः भनुरणनात्मा यः स्थादसानुच्यते स्वरः । एकोऽनेको वा, व्यायकोऽख्यापको वा । भन्नोच्यते, एकोऽनेको नित्यदेचेति । तत्र निष्कल-रूपेणैक एव स्वरः यदुजादिरूपेणानेकः स्वरः ।

तथा चाह कोहल :---

जातिभाषादिसंयोगादनन्तः कीर्तितः स्वरः।

'नादैर्यु क्तस्तालिमतः कृतौ योज्यो रसेष्विप ॥३६॥

नित्योऽविनाशी १ व्यापकः । सर्वगतः । तथा चाह कोहतः ---ऊर्ध्वनाडी ४ प्रयत्नेन सर्वभित्ति ^४निघटनातः ।

र्माच्छती ध्वनिरामध्नैः स्वरोऽसौ व्यापकः परः ॥४०॥

गीततत्व के भवसर पर और ढंग से कहते हैं। स्वर ही श्रृति है। 'स्थान' पर अभिघात से उत्पन्न अनुरणनात्मक ध्वनि स्वर है। वह एक है या प्रतेक ? ब्यापक है या अध्यापक ? इस सम्बन्ध में कहते है कि स्वर एक, अमेक, व्यापक हीर नित्य है। निष्कत रूप से एक ही स्वर है, षड्ज इत्यादि रूप से अनेक हैं।

जैसा कि कोहल ने कहा है:---

'जाति' और 'भाषा' इत्यादि के संयोग से स्वर अनन्त कहा गया है। नादों से युक्त, ताल के द्वारा परिमित स्वर को कृति में और रसों में नियो-जित करना चाहिये।।३६॥

स्वर, नित्य, अविनाशी, व्यापक और सर्वगत है। कोहल ने भी कहा है:---

कथ्वंनाडी के प्रयत्न के द्वारा समस्त भित्तियों के निषट्टन (रगड़) से शिर तक ब्याप्त व्वति 'स्वर' है भीर व्यापक है।।४०॥

१ (क) पर्यु क्तिस्तालमितः । २. (क) ग्रविनाधि । ३. (क) व्यापकं ।

४. (क) नाडि । ५. (क) मेलि । ६. (क) सः

(स्वमतं कथयति)

श्रतित्यो उच्यापकदम्, तथा चिार्धमेव' ववितितत्वात्, प्रदेशात् प्रदेशा-त्तरे श्रवणाभावादव्यापकत्वम् स्वरस्य, तो चेद्देशान्तरेऽपि श्रवणं स्वात्, न च तथा लोकेऽपि इच्छाप्रयत्तपूर्वकत्वेन उत्पन्तस्वरकाते यथास्वर श्रवण तथा कालान्तरे श्रवणाभावात् नित्यत्व नास्ति, तो चेन् कालान्तरेऽपि श्रवणं स्यात्, न च तथा लोकेऽस्ति, तस्मात् स्वरो उच्यापको उनित्यस्य ।

ननु पड्जादीना कयं स्वरत्व व्यञ्जनत्यात् यदि व्यज्जकानां स्वरत्वम-भिष्ठीयते तिह कादीनामेव स्वरत्वम् । अत्रोज्यते, असाधारणत्वात् षड्जादी नामेव स्वरत्व न कादीनाम् । ननुषड्जादीनामसाधारण्य कथम् ? आप्लोप-देशात् पड्जादीनामसाधारणत्वमिति केवित्, सङ्केतमात्रमिति केवित्, अहमेव वदामि । मन्द्रादिसप्तकानामुच्चारणं व्यक्तत्वात् सरिगमपधनीनामेव स्वरत्वमिति सिद्धम्, तथा च लोके दृश्यते ।

(पार्श्वदेव श्रपना मत व्यक्त करते हुए कहते है ।)

स्वर प्रनित्य श्रीर घट्यापक है, क्यों कि प्रपना विशिष्ट धर्म ही व्यक्त कर सकता है। एक प्रदेश से दूसरे (दूरस्थ) प्रदेश में न सुनाई देने के कारण स्वर प्रव्यापक है, अन्यथा उसका अवण वैशान्तर में भी होता, परन्तु लोक में वैसा होता नहीं। डच्छा श्रीर प्रयत्न का श्रवण जैसा उस समय होता है, वैसा कालान्तर में नहीं, यदि स्वर नित्य होता तो उसका श्रवण कालान्तर में भी होता, ग्रत स्वर ग्रव्यापक श्रीर श्रनित्य है।

यड्ज श्रादि तो व्यञ्जन है, इनका स्वरत्व कैसे है ? यदि व्यञ्जनो का भी स्वरत्व है, तो 'क' इत्यादि का भी होगा। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि असाधारणत्व के कारण यड्ज इत्यादि का ही स्वरत्व है, 'क' इत्यादि का नहीं। यड्ज इत्यादि में असाधारणत्व कैसे है ? कुछ लोगों का कथन है कि श्राप्तोपदेश के कारण इनका ग्रसाधारणत्व है, कुछ लोगों कहते है कि ये नाम सकेनमान है। मैं तो यह कहना हूं कि मन्द्र इत्यादि सप्तकों का उच्चारण करने पर व्यक्त होने के कारण स, रि, ग, म, प, ध, नि, का स्वरत्व सिद्ध है, बसा ही लोक में दिखाई देता है।

⁽क) धर्हतमेव ।

२. (क) मेवास्तु।

निस्साणडमक्कानाञ्च वादने परिदृश्यते वर्णं डणमिति वर्णंव्यक्तिः । ननुत्यापि तेषां स्वरत्वं नास्ति, मैवम्, रागजनको प्वनिः स्वर इति लक्षणम्, तस्य ध्वनेः कारणत्वात्, सरिगमपधनीनामेव स्वरत्वम्, कारणे कार्यं-लक्षणया ।

ग्रथ स्वरनिरुक्तिः कथ्यते --

नासा कण्ठ उरस्तालु जिह्नादन्तस्तथैव व । षड्भिःसंजायते यस्मात् तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥४१॥ नाभेः समुत्थितो वायुः कण्ठशीर्षसमाहतः । वैनद्दयृषभवद्यस्मात् तस्मादृषभ ईरितः ॥४२॥ नाभेः समुत्थितो वायुः कण्ठशीर्षसमाहतः । गन्धवंसुखहेतुः स्याद् गान्धारस्तेन हेतुना ॥४३॥

निस्साण, डमरू इत्यादि केवादन में 'ढणंढण' जैसे वर्णों की प्रीन-व्यक्ति दिखाई देती है। क्या इन घ्वनियों में स्वरत्व नहीं? नहीं, क्योंकि स्वर का लक्षण है कि राग-जनक घ्वनि स्वर होती है, स्वर नामक ध्वनि राग का कारण होती है. इसलिये स, रि, ग, म, प, घ, नि ही कारण में कार्य्य की लक्षणा के कारण 'स्वर' है।

ग्रब स्वरों की निरुक्ति कही जाती है।

नासा, कण्ठ, उर, तानु, जिह्ना और दन्त इन छ: स्थानों से उत्पन्न होने के कारण षड्ज की संज्ञा है।।४१॥

नाभि से उठा हुआ और कण्ठ तथा शिर से समाहत वायु वृषभ के समान नाद करने के कारण ऋषभ कहलाता है। ४२॥

· नाभि से उत्थित तथा कण्ठ एवं शिर से समाहत गन्धर्वों के सुख का कारण होने से गान्धार कहलाता है।।४३।।

१. (क) न्ता।

२. (क) नामिस्समंस्थितो ।

३. (क) ऋषभवत्मदते ।

४. (क) हेत्त्वात् ।

वायुः समुत्थितो नाभेहृंदये व समाहतः।

मध्यस्थानो द्भवत्वालु मध्यमत्वेन कीर्तितः ॥४४॥

वायुः समुत्थितो नाभेरोष्टकण्टिकारोहृदि।

पञ्चस्थानसमुद्भुतः पञ्चमस्तेन कीर्तितः ॥४४॥

नाभेः समुत्थितो वायुः कण्टतालुकारोहृदि।

तत्तत्स्थान धृतो यस्मात् ततोऽसौ धैवतो मतः ॥४६॥

नाभे समुत्थितो वायौ कण्टतालुकारोहृते।

निषीदन्ति स्वरास्सर्वे निषादस्तेन कथ्यते ॥४७॥

(इति स्वर्गन्विस्तः।)

चतुःश्रुतिस्वरा विप्रास्त्रिश्रुतो े क्षत्रियौ मतौ । वैदेयौ द्विश्रुतिकौ ज्ञेयौ शूद्रौ चान्तरकस्वरौ ।।४८।।

नाभि से उत्थित श्रौर हृदय से समाहत वायु मध्य स्थान में उत्पन्न होने के कारण मध्यम कहलाता है।।४४।।

नाभि से समुस्थित वायु ब्रोध्ठ, कण्ठ, शिर और हृदय इन पॉच स्थानों मे उत्पन्न होने के कारण पञ्चम कहा गया है।।४५॥

नाभि से उत्थित वायु कण्ठ, तालु, शिर भीर हृदय रूपी उस स्थान पर घृत होने के कारण चैवत कहलाता है।।४६॥

नाभि से समुस्थित वायु के द्वारा कष्ठ, तालु और शिर का स्पर्श होने पर जिस स्वर से सब स्वरों की समाप्ति हो जाती है, वह नियाद कहा जाता है।।४७॥

(यह स्वर-निरुक्ति सम्पन्न हुई।)

चतुःश्रुति स्वर ब्राह्मण, त्रिश्रुति स्वर क्षत्रिय, द्विश्रुति स्वर वैदय श्रोर ग्रन्तर स्वर गृद्ध हैं ॥४८॥

१ (क) हृदयोष्ठ । २. (क) मध्यस्थान अवखाच्य । ३. (क) मध्यमस्तेन । ४. (क) पञ्चम स्थान सजात । ५ (क) सम्मत । ६. (क) वष्ठस्थाने घृतो । ७. (क) त्रिश्रृति ।

इति स्वरजातय ।)

मध्यम' पञ्चमभूयिष्ठं कार्य्यं प्रःङ्गारहास्ययोः । षड्जर्षमप्रायकृतं वीररौडाद्मुतेषुं च ॥४६॥ गान्धारसप्तमप्रायं करुणे गानमिष्यते । तथा 'धैवतभूयिष्ठं बीमत्से 'समयानके ॥५०॥

(इति रसानुसारिस्वरविनियोग: ।)

स्वराणां मुर्च्छनातानजातिजात्यंशकात्मनाम् । व्यवस्थितश्रुतीनां हि समूहो ग्राम इष्यते ॥४१॥ ^{*}सम्रहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रृत्यादिसयुतौ ।

(ये स्वरो की जातियाँ हुई।)

शूंगार भौर हास्य में मध्यमबहुल या पञ्चमबहुल, वीर, रीह्र भौर भ्रद्भुतरस में षड्जबहुल या ऋषभबहुल, करुणरस में गान्धारबहुल भौर निपादबहुल तथा बीभत्स भौर भयानक रस में धैवतबहुल गान करना चाहिये।।४६-५०।।

(यह स्वरों का रसानुसारी विनियोग हुन्ना।)

' मूर्च्छना, तान, जाति और जाति के संशभूत व्यवस्थित श्रुतियुक्त स्वरों का समूह ग्राम कहलाता है।।४१।।

स्वर ग्रौर श्रुति इत्यादि से युक्त दोनों ग्राम समूहवाची हैं।

१ (क) बढ्जपञ्चमभूयिष्ठा।

२ (क) कार्या।

३. (क) प्राकृतां।

२. (क) अध्येषुच। ४. (क) स्थेषुच।

भ. (क) स्त ।

६. (क) दैवतभूषव्ठं ।

७. (क) मतूनके ।

५. (क) समूह वाजे नो आमी।

द्वौ' ग्रामौ विश्रुतौ लोके षड्जमध्यमसंक्रितौ ।।५२॥ केचिद्गान्धारमप्याहुः स तु नेहोपलभ्यते । (इतिग्रामाः)

मुच्छंना भ शब्दिनिष्पति मुं छीमोहे समुच्छ्ये ।।४३। मुच्छं यतेयेन रागो हि मुच्छंनेत्यिभसंत्रिता । म्रारोहणावरोहण कमेण स्वरसप्तकम् ।।४४।। मुच्छंनाशब्दवाच्य हि विज्ञेय तिद्वसाणेः ।५ सप्तानां कथयुक्तानां स्वराणां यस्समुच्छ्यः ।।४४।। सा मुच्छंना प्रतिग्राम सप्तथा परिकीतिता ।

सा च मूच्छंना द्विविधा सप्तस्वरमूच्छंना द्वादशस्वरमूच्छंना चेति । श्रष्टाविशति मूच्छंनाना नामानि कथ्यन्ते ।

लोक में पड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम नामक दो ग्राम प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग गान्धार ग्राम की भी चर्चा करते है, वह उपलब्ध नहीं होता। ५२। (ये ग्राम हए।)

'मोह' 'समुच्छ' (उभार) का बोध कराने वाली 'मूच्छां' धातु से मुच्छंना शब्द की निष्पत्ति हुई ॥४३॥

क्योकि इससे राग उभरता है, इसलिए इसे 'मुच्छंना' कहा गया है। स्नारोह स्रोर स्रवरोह से युक्त कम पूर्ण स्वर सप्तक मुच्छंना शब्द का सर्ष है यह विद्वान् व्यक्तियों की समक्ष लेना चाहिये, यह कम युक्त सात स्वरों का समुच्छय (उभार) है।।४४।।

यह मुर्च्छना प्रत्येक ग्राम में सात प्रकार की है।

वह पूर्च्छना दो प्रकार की है, सप्त स्वर यूर्च्छना भीर द्वादशस्वर पूर्च्छना। अद्वादशस्वर प्रच्छना। अद्वादशस्वर प्रच्छना। अद्वादशस्वर) यूर्च्छनाओं के नाम कहे जाते है।

 ⁽क) यथा कुटुम्बन. सर्व एकीश्रुता वसन्ति हि । सर्वलोकेषु (कस्य ?) तो बामी यत्रानित्य-श्यवस्थिती (यत्रनित्य व्यवस्थिति: ?)।

२. (क) मुच्छी मोहसमूच्छाय.। ३. (क) मूच्छीते वे नगारेऽपि मूच्छीता स्पन्निसंज्ञिता ।

४. (क) ग्रथारोहावरोहेण । ५. (क) विसक्षणम् । ६. (क) स्वराणां ।

उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धयङ्जा, मस्तरीक्वता, श्वस्य कान्ता, प्रभिस्द्गता, श्वानि सप्त यङ्जग्राममूच्छनानामानि । सौनीरी, हारिणास्त्रा, क्लोपनता, शुद्धमध्यमा मार्गी, कौरती, हृष्यका ४ एतानि सप्त मध्यमग्राममूच्छनानामानि । एतान्येव द्वादशस्वरमूच्छनाना नामानि ।

उभयग्रामषाडव^४ सूच्छंना एकोनपचाशत्, झौडुबसूच्छंनाः[।] पञ्च-त्रिशत्।

(इति चतुरशीतिमूर्च्छनाः।)

एवं यज्ञनामानि वदन्ति । ननु तानयज्ञाना° कथमेकत्र< व्यवहारः । उच्यते-एकस्मिन्नपि तान उच्चरिते अग्निष्टोमादियागानामेकैकस्य फलो-पनब्धे गायकानां यज्ञतानमिति नाम प्रसिद्धम् ।

पड्भिः स्वरै या गीयते षाडवा, पञ्चभिः स्वरैर्या गीयते सा स्रौडुवा।

उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्ध षड्जा, मत्सरीकृता, प्रश्वकान्ता श्रोर ग्रभिरुद्गता ये सात षड्जग्राम की सृच्छनाश्रो के नाम है। सौवीरी, हारिणाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गी, कौरवी श्रौर हृष्यका ये सात मध्यमग्राम की मूच्छनाश्रों के नाम है।

यही नाम द्वादशस्वर मूर्च्छनाश्रों के है।

दोनो मे पाडव मुच्छंनाएं उनचास ग्रीर ग्रीड्व मुच्छंनाएँ पैतीस होती है।

(ये चौरासी मूर्च्छनाएँ हुई।)

इसी प्रकार यज्ञ (वाचक तानों के) नाम कहे जाते हैं। तान और यज्ञ का एकत्र ब्यवहार क्यों है ? उत्तर है कि एक एक तान का उच्चारण करने पर भ्रमिन्टोम इत्यादि यज्ञों में से एक एक का फल गायक को मिलता है, इसलिये यज्ञतान नाम प्रसिद्ध है।

छ: स्वरों से युक्त गाई जाने वाली (तान और मूर्च्छना) पाडव है भौर पांच स्वरों से गाई जाने वाली श्रीडुव।

१. (क) मत्सरा। २ (क) भ्रपकान्ता। ३. (क) ब्रह्मयता। ४. (क) ग्रास्टका। ५. (क) ग्रास्थाहुन। ६. (क) भीडन। ७. (क) तानसका। ८. कबन

भौडुवं द्विविधम्. शुद्धं ससर्गंजञ्चेति । एकजात्याश्रयं शुद्धम्, भन्यत् संसर्गंजं भवेत् ।

संसर्गजं द्विधा प्रोक्त जातिसाधारणाश्चितम् ॥५६॥ काकल्यन्तरस्वरैर्या गीयते सा साधारणा । साधारणं द्विविधम्, जातिसाधारण स्वर साधारणं चेति ।

ननु कथं मूर्च्छनातानयोर्भेदः प्रतिपादितः, उच्यते —

श्चारोहावरोहणकमयुक्तः* स्वरसमुदायो मुच्छेनेखुज्यते*। तानस्तु ग्नारोहक्रमेण भवतीति भेद । तत्तानसंस्या पञ्चसहस्नाणि चत्वारिशच्च भवति । किमस्ति तानकषनेन कार्यम् ? उच्यते-ठायानां करणस्वात् ।

इति तानकथनम्

सकलस्य रागादे जन्महेतुःखाज्जातयः भ्यतिस्वरप्रहादिसमूहाज्जायन्ते. भ् श्रतो जातय इत्युच्यन्ते । यद्वा जातय इव जातय यथा नराणां श्राह्मणादयो जातयः, युद्धाविकृतात्रच एवमत्रापि ।

धौडुव दो प्रकार का है, शुद्ध भीर संसर्गज। एक जाति के भाश्रित शद्ध है और दूसरा संसर्गज है।

जाति और साधारण के झाश्रित संसर्गज भी दो प्रकार का है।

काकली ग्रौर अन्तर स्वरों से गाई जाने वाली (तान भीर मूर्च्छना) 'साधारण' है।

'साधारण' दो प्रकार का है, 'स्वरसाधारण' और 'जातिसाधारण' । मुच्छेना और तान का भेद कैसे प्रतिपादित किया गया है ? उत्तर है

कि कमश प्रारोहावरोहयुक्त, स्वरममुदाय मूच्छेना है। तान प्रारोहक मात्र से होता है, यही भेद है। उन तानों की सख्या पीच हजार चालीस है। तान-कचन से क्या प्रयोजन है। उत्तर है, ठायो (गग वाचक) स्वर समुदायो का कारण होने के कारण तानो का कचन किया गया है।

(यह तान कथन हुआ।)

समस्त राग इत्यादि के जन्म का कारण होने के कारण 'जातियों. की यह संज्ञा है। श्रीत, स्वर, यह इत्यादि के तमृह से जन्म लोने के कारण जातियाँ 'जाति' कहनाती है। प्रथवा जिस प्रकार मनुष्यों की ''काह्मण'' इत्यादि जातिया है, उसी प्रकार ये जातियां भी हैं। इनमें भी गृद्ध कौर बिकुत है।

१ (क) दिविधा। २ (क) व्यवरोहण। ३ (क) मुच्छंने।

४. (क) जन्य। ५ (क) हा।

षाड्जी, भाषंभी, गान्धारी, मध्यमा, १ पञ्चमी, १ वैवती, ३ नैवादी ४ सप्तैताः शृद्धजातयः ।

्ष्यज्ञकीशकी, षड्जोदीच्यवा, षड्जमध्यमा, रक्तगान्धारी, गांधारो दीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा, गान्धारपञ्चमी, नन्दयन्ती, धमान्ध्री,कार्मारवी, क्रीक्रकीत्येकादश विकृतजातयः।

एकस्वरो द्विस्वरच^८ त्रिस्वरोऽय चतुः स्वरः ।

पञ्चस्वरद्वतुर्घास्यादेकघा सप्तषट्स्वरौ ॥५७॥

इति जातीनामंशास्त्रिषष्टिभैवन्ति । (इति ब्रह्मवक्त्र विनिर्गतसामवेदसमृदुभवाष्टादशजाति नामानि ।

॥ भ्रथ जातिसमृद्भूतबहुविधरागकथनम् ॥

स्वरवर्णविशिष्टेन ध्वनिभेदेन वा पुनः।

रज्यते येन सिंच्चित्तं स रागः सम्मतः सताम् ॥५८॥ (इति रागनिरुक्ति)

पाइजी, भाषेभी, गान्धारी, मध्यमा, पंत्रमी, बैवती भीर नैवादी ये सात गुद्ध जातियाँ तथा पड्जकीशकी, पड्जोदीच्यता, पड्जमब्यमा, रक्त गान्धारी, गान्धारोदोच्यता, भच्यमोदीच्यता, गान्धारपञ्चमी, नन्दयन्ती, आन्ध्री, कार्मारवी भीर केशिकी ये ग्यारह विक्रत जातियाँ है।

(एक प्रशस्तर तीन जातियों में होता है ऐसी तीन जातियों का 'गण') एकस्वर, (दो दो प्रश्न स्वर तीन जातियों में होते हैं, उनका 'गण') द्विस्वर, (तीन तीन प्रश्न स्वरोंवाली तीन जातियों का गण) जिस्बर, (बार बार मंश स्वरों वाली तीन जातियों का गण) चतुस्वर, (पीच क्षां स्वरों वाली तीन जातियों का गण) पञ्चस्वर, (छ मंश स्वर मोर सात मंश स्वर वाली एक एक जाति) पटस्वर मीर सत्तरवर होता है।।।४॥।

गली एक एक जाति) षट्स्वर म्रोर सप्तस्वर होता है ॥। इस प्रकार जातियों के कूल मश स्वर तिरसट होते हैं ।

(ये ब्रह्ममुखविनिर्गत सामवेदोत्पन्न ब्रठारह जातियों के नाम हुए।) जातिसमूद भूत राग का कथन —

स्वर और वर्णीवशेष प्रथम ध्वनिभेद से जिसके द्वारा सज्जनों के चित्त का रञ्जन हो, वह राग है।

(यह रागनिरुक्ति हुई)

१. (क) काष्ट्रमति । २. (क) पाञ्चति । ३. (क) वैवती । ४. (क) नैवदी । ४. (क) षडजा कैशिकी । ६. (क)नन्वयित । ७.(क)कामीर । ८.(क) द्विस्वरोऽपि ।

पड्जप्रामो' भवेदादी मध्यमग्राम एव च ।
कैशिकः पञ्चमदर्चन तथा कैशिकमध्यमः ।।।१६॥
साधारितः पाडवद्य सप्तैते शुद्धसंज्ञकाः ।
भिन्तपड्जस्तथाभिन्तपचमो भिन्तकेशिकः ।।६०॥
भिन्ततानसमाध्यस्य भिन्तकेशिकमध्यमः ।
पञ्चैते भिन्तरागाः स्यु गौडरागः प्रवस्यते ॥६१॥
गौडकेशिक इत्येयस्ततः स्याद्गौडपञ्चमः ।
गौडकेशिक इत्येयस्ततः स्याद्गौडपञ्चमः ॥१२॥
पाडवो' वोट्टरागस्च' तथा मालवकेशिकः ।
टक्ककेशिकहिन्दोलौ तथा मालवगञ्चमः ॥६३॥
सौबीरण्टककगण्यक्तयण्यो रागास्च' वेसराः ।
नर्तास्य '' ककुभ पड्जकेशिकः ' शकसंज्ञक ' ।।६४॥
पड्जग्राम, मध्यमग्राम, केशिकः पञ्चम, कैशिकमध्यम, साम्रारित

पड्जग्राम, मध्यमग्राम, कैशिक, पञ्चम, कैशिकमध्यम, साधारित ग्रीर पाडव ये गान गृद्ध राग है ॥५६॥

भिन्नपडज, भिन्नपचम भिन्नकैशिक, भिन्ननान तया भिन्नकैशिक मध्यमये पाँव भिन्नरागहै।

स्रव गौडराग कहे जाते है ।।६०।। •

गौडकैशिक, गौडपञ्चम, गौडकैशिकमध्यम, ये तीन 'गौड' राग है।

षाडव, वोट्ट, मालवकैशिक, टक्ककैशिक, हिन्दोल, मालवपञ्चम, सौवीर श्रीर टक्क ये ब्राठ वेसर' राग है।

नर्त, व कुभ, पड्जकेशिक शक, रूप साधारित, भम्माणपचम और गान्धारपञ्चम ये सात साधारण राग है ॥६१-६४॥

१ (क) षड्जग्रामौ । २ (क) कैशिको । ३ (क) भिन्नकैशिकिमध्यम ।

४ (क) मादारित । ५ (क) कैशिको । ६ (ज) कैशिकिमध्यमा ।

७ (क) फिन्नना। ⊏ (क) तेतस्तत । ६ (क) गौडी। १० (क) साइयो। ११ (च) माट्ट। १२ (क) रागस्च।१३. (क) वल्लास्य।१४. (क) वड्ज कैंशिकी।

१४ (क) शकच्छज्ञक ।

रूपसाधारितश्चैव तथा भम्माणपञ्चमः'। गान्धारपञ्चमश्चैते सप्त साधारणा मताः।।६५॥

रेवगुप्तस्तथानागगान्धारष्टक्कसैन्धवः ।

(पञ्चमषाडवश्चान्यस्तिलकः शकपूर्वक.।)
 पञ्चमो रागराजोऽन्य उपरागाः षडीरिताः ॥६६॥

॥ इति ग्रामरागा ॥

गीयत इति गीतम् । मद्रकम् (अपरान्तकम्), उत्तोष्यम्,(प्रकरी,) श्रोवेणकम्, रोविन्दकम्, (उत्तरम्) (इति सप्त गीतकानि) (छन्दकम्,) स्रासारितम्, वर्षमानकम्, पाणिकम् ऋक्, गाया, साम, इति सप्त गीतानि ।

रेबगुप्त, नागगान्धार, टक्कसैन्धव, [पञ्चम थाडव, शकतिलक] श्रीर रागराजपञ्चम (कोकिलापञ्चम ? भावनापचम ? या नाग पञ्चम ?) ये छः (श्राठ) उपराग है।

(ये ग्रामराग हुए ।)

जो गाया जाता है. वह 'गीन' है।

मद्रक, अपरान्तक, उल्लाप्य, प्रकरी. ओवेणक, रोनिन्दक धोर उत्तर ये सान 'गीतक' भौर छन्दक, आसारित, वर्धमानक, पाणिक, आक्, गाणा भौर साम ये सान 'गीत' है।

१ (क) भूमाल पञ्चम ।

२ (क) गाल रा।

३ (क) एपा कोष्ठकानार्गना पक्ति व्याख्यातुकृता ग्रन्थस्य लण्डितत्वात् ।

४ (क) रागराजान्य।

५ (क) रेणुकम्।

६. (क) ननिन्दम्।

७. (क) कोष्ठकान्तर्गनानानिनामान्यादशं न सन्ति, व्यावनाकृता प्रत्यान्तराद् गृहोतानि ।
 प्रस्याधिकरणस्य सर्वाधनमुप्तिब्यानार्य्यवनाक्यमात्रिय्य कृतम् । सिह
प्रूपालोद्युतानि पाष्ट्यंदेववचनान्यय्यवनोकतानि । प्रधिकरणेऽस्मिन् ग्रन्थकत्रां
मतंगवाक्यानि तथैव समुद्युतानि । केवन श्लोका नाट्यवास्त्राद्यपुद्युता. ।

इति श्रीमदभय चन्द्रमुनीन्द्रचरणकमलमधुकरायित-मस्तकमहादेवार्य्यक्षिय्यस्वरविद्यायुक्तः सम्य-क्तवचूडामणि भरतभाष्टीकभाषाप्रवीण श्रृतिज्ञानचकवितसंगीताकरनाम-धेयपास्वेदेवविदाचितं संगीत-समयसारे

प्रथमाधिकरण**म**

श्रीमद् अभयचन्द्र मुनीन्द्र के चरण-कमलों में मधुकरवत् आचरण करने वाले मस्तक से युक्त महादेव धार्य के शिष्य, स्वर विद्या से युक्त, सम्य-क्ष्वचूडार्माण, भरतभाण्डीकभाषाप्रवीण, श्रुतिज्ञान चन्नवति, सङ्गीताकर नाले पार्वदेव द्वारा विरचित सङ्गीत समयसार का प्रथमाधिकरण पुणं हमा।

।।प्रथम ग्रधिकरण समाप्त ।।



द्वितीयाधिकरणम्

धय देशिरुच्यते । तस्य लक्षणं किम् ? उच्यते ।

देशिलक्षणम् —

श्रवलावालगोपालक्षितिपालैनिजेच्छ्या । गीयते सानुरागेण स्वदेशेदेशिरुच्यते ।।१।।≯

(इन्द्रमाला)

देशेषु देशेषु नरेश्वराणां रुच्याजनानामपि' वर्तते या । गीतं च वार्षां च तथा च नृतः देशीतिनाम्ना परिकीर्तिता सा ॥२॥* सा देशी द्विविधा [प्रोक्ता ।] शुद्धसालगभेदतः । सप्तस्वरेष्वसौ गीतवाद्यनत्तेषु कीर्तिता ॥३॥®

(दूसरा अधिकरण)

भ्रव देशी कहा जाता है। उसका लक्षण क्या है? उत्तर है. --भ्रपने भ्रपने देख में, नारियों, बच्चों, ग्वालों क्रीर नरेशों के द्वारा भ्रपनी इच्छा के श्रनुसार श्रनुरागपूर्वक जो गाया जाता है, वह देशी है।।।।।

जो गीत, वाद्य और नृत्त विभिन्न राजाओं के देश में लोगों की रुचि के अनुसार व्यवहार में आता है, वह देशों है।।२।।

'शुद्ध' ग्रीर 'सालग' इन दो भेदों के कारण देशी दो प्रकार का है, यह देशी सालों स्वरों के ग्राध्रित गीत, वाद्य ग्रीर नृत्त में बताया गया है।।३।।

[★] मतक्रोक्तिः । * जगदेकोक्तिभंरतकोषस्य २०२ पृथ्ठे समृद्धता ।

व्याख्यातृनिर्मिता पक्तिः । १ (क) यच्चाञ्जनानामपि वतंतेया ।

प्रमाणनियमेरशुद्धश्चित्तधर्मस्तु सालगः । गीतस्यानुगत वाद्यं, नृत्त वाद्यानुगामि तत् ॥४॥

त्रिविधा स्वरा :---

तस्माद्गीतस्य मुख्यत्व प्रवदन्ति मनीषिणः । सप्तस्वरमय गीत स्वरास्ते त्रिविधा मता ॥४॥

सचेतनोद्भवाः केचित् केचिन्निश्चेतनोद्भवाः । उभयप्रभवाः केचित् मुख्यास्तेषु शरीरजाः ॥६॥

शरीराद्रिध्वनि सचेतन वीणादिध्वनिरचेतनः, सुषिरादिध्वनि-रुभयप्रभव इति वदन्ति सर्वे, श्रहमेव वदामि—

चेतनोद्भवा एवोभयप्रभवास्सर्वे, कुत ? वीणादेरपि पुरुषप्रयत्न पूर्वकत्वात् । ग्रचेननस्तु हठात् काप्ठादिसयोगाद्वा युनिना (?) वा प्रवर्तते ।

प्रमाण और नियम से युक्त 'शुद्ध' और चित्तधर्म्म के अनुसार (यथारुचि) व्यवहृत 'सालग' है।

गीत का अनुगामी वाद्य और वाद्य का अनुगामी नृत्त' है, इसीलिए विद्वान् लोग गीत की मुख्यता कहते हैं।

गीत सप्तस्वरमय है. और स्वर त्रिविध है ॥४,५॥

कुछ स्वर सचेतनोद्भव कुछ निश्चेतनोद्भव श्रौर कुछ (सचेतन और श्रचेतन) दोनों से उत्पन्न है। उनमे शरीरज मृख्य है।।इ॥

गारीर इन्यादि की ध्विन सचेतन, बीणा खादि की ध्विन अचेतन तथा वंशी इत्यादि की ध्विन (मनुष्य के श्वास और नजी के सयोग से उत्पन्न होने के कारण) उभयप्रभव है, ऐसा सभी कहते है। मैं यो कहता हूँ —

सभी उभयप्रभव स्वर सचेतन ही है, क्यो ? बीणा भी पुरुष के प्रयत्न से ही स्वर उत्पन्न करती है। अचेतन स्वर तो अकस्मात् काष्ठ इत्यादि के योग से उत्पन्न होता है।

१ (क) साधक ।

शरीरान्नादसम्भूतिः गीतन्नादात्प्रवर्तते । नादबिन्दुस्वरा रागाः सम्भवन्ति शरीरतः ॥७॥

٩ĸ

पिण्डोत्पत्ति :--

शरीरः पिण्डहत्युक्तः ततः पिण्डो निरूप्यते । शुक्लरक्ताम्बुनासिक्तं चैतन्यबीजमादिमम्' ॥ ॥ ॥ एकीभूत तथा काले यथाकालेऽवरोहिति । एकरात्रेण कलल पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ॥ ६॥ शोणितं दशरात्रेण मांसपेशी चतुर्देशे । धनमांसञ्च विशाहे गर्भस्थो वर्द्धते कमात् ॥ १०॥ पञ्चित्रातिपूर्णस्च पल सर्वाङ्कुरायते । मासेनैकेन पूर्णेन त्वञ्चत्वादीनि धारयेत ॥ ११॥

शरीर से नाद का जन्म होता है, गीत नाद से जन्म लेता है। नाद, बिन्दु, स्वर, और राग शरीर से ही उत्पन्न होते है। शरीर को पिण्ड कहा जाता है, ग्रत पिण्ड का निरूपण किया जाता है। ग्रादिम चैतन्य बीज शुक्त और रक्त जल (वीर्य्य और रज) से सिज्ज्यित विशिष्ट काल में एकीभूत होता और समय ग्राने पर जन लेता है। एक रात्रि में 'कलल' पौच रात्रियों में 'बुर्बुव', दस रात्रियों में 'शोणित', चौदह रात्रियों में मासपेशी, बीस दिन में घन मास, इस बग से गर्भस्थ शिशु कमशः बढ़ता है।।७-१०।

पच्चीस दिन पूर्ण होने पर वह गर्भ समस्त अंकुरो से युक्त हो जाता है, एक मास पूर्ण होने पर त्वचा इत्यादि स्नाने लगते है ।।११।

१ (क) वीजवादिकम्।

२ (क) तथाकाले।

३. (क) कलिलं।

४. (क) घनमांसै च।

प्र. (क) गर्नस्था।

मासद्वये तु सम्प्राप्तेमासमेदः प्रजायते ॥ मजजास्थीनि त्रिभिर्मासैः केजा क्रुत्यश्चतुर्थकैः ।।१२॥ कर्णाक्षिनासिकाचास्यरन्ध्रं मासे तु पञ्चमे । सर्वाञ्जसन्धिसम्पूर्णमष्टभि सम्प्रजायते ॥१३॥ मासे च नवमे प्राप्ते गर्भस्थ स्मरति स्वयम्। जुगुप्सा जायते गर्भे गर्भवासं परित्यजेत् ।।१४।। रक्ताधिके भवेन्नारी नर शुक्राधिके भवेतु। नपु सकस्समे 'द्रव्ये त्रिविधः पिण्डसम्भव ॥१५॥ मज्जास्थिशुक्रशातोइच^{*} रक्त^३रोमफल तथा। पञ्चकोषमिद^४ पिण्ड पण्डितै समुदाहृतम् ॥१६॥

(इति पिण्डोत्पत्ति ।) *

दो मास मे मास और मेद उत्पन्न हो जाता है तीन मास मे मज्जा और अस्थि तथा चौथे मास में केश और अगुलियाँ निर्मित हो जाती है ॥१२॥

पाँचवे मास मे कान, ग्रांख, नासिका, मुख इत्यादि के रन्ध्र बन जाते है, तथा समस्त सन्धियो से युक्त सम्पूर्ण शरीर आठ मास में बन जाता है। नवाँ महीना लगने पर गर्भस्थ जीव स्वयं स्मरण करता है, उसे गर्भ मे जुगुप्सा होती है कि गर्भ का परित्याग करना चाहिए ॥१३,१४॥

(रक्तरज) अधिक होने पर नारी, और वीर्य्य के अधिक होने पर पुरुष होता है। यदि वीर्य्य और रज समान हों, तो नपुसक की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यह पिण्ड तीन प्रकार का है।।१५।।

पण्डितो ने इस पिण्ड को मज्जा, ग्रस्थि, शुक्र, धातु, रक्त ग्रौर रोम का फल एव पञ्चकोष युक्त भली प्रकार से कहा है।।१६॥ (यह पिण्डोत्पत्ति कही गई।)

१ (क) नपुसस्सम द्रव्यं। २ (क) धातुश्च। ३ (क) रक्त। ४ (क) फास्कौशिक।

नादोत्पत्ति वर्णने प्रायशो मतद्भ शब्दा एवोद्घृता पार्श्वदेवेन, द्विचता एव शब्दा परिवर्तिता ।

भय नादोत्पत्तिरुव्यते---

नादोत्पत्तिः यथा शास्त्रभिदानीमिश्रधीयते। *
स्वरो गीतं च वाद्यं च तालस्विति चतुष्टयम् ॥१७॥
न सिद्धयति विना नाद तस्मान्नादात्मक जगत्।
नादात्मानस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेस्वराः॥१८॥
नाभौ यद् ब्रह्मणः स्थान ब्रह्मग्रन्थिस्च यो मतः।
प्राणस्तन्मध्यवर्ती स्यादग्नेः प्राणात् समुद्भवः॥१६॥
ग्रम्भिनमास्तयोयोंगात् भवेन्नादस्य सम्भवः।
बिन्दुस्त्यद्यते नादात् नादात्सर्वं च वाङ्मयम्॥२०॥
नकारः प्राण इत्युक्तो दकारो वन्हिस्च्यते।
ग्रथीःयं नादशब्दस्य संक्षेपात्परिकीतितः॥२॥।

म्रव नादोत्पत्ति कही जाती है —

अब शास्त्र के अनुसार नादोत्पत्ति कही जा रही है। स्वर, गीत, बाद्य और ताल ये चारो नाद के बिना सिद्ध नही होते, खतः जगत् नादास्यक है। ब्रह्मा, विष्णु और महेरवर ये तीनों देव नादात्मक हैं।। १८।।

नाभि में जो ब्रह्म का स्थान ब्रह्मग्रस्थि कहा गया है, प्राण उसके मध्य में रहता है। प्राण से अग्नि की उत्पत्ति होती है। ।१६॥

म्रानि मौर वायु के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है। नाद से ही बिन्द भौर समस्त वाङमय उत्पन्न होता है।।२०॥

'नकार' का अर्थ प्राण और 'दकार' का अर्थ अग्नि है, संक्षेप से नाद का यह अर्थ कहा गया है ॥२१॥

^{*} एषा पक्ति (क) ब्रादर्शे नास्ति ।

एतदनन्तर (क) ब्रावर्शे घोकारोऽपि पराशक्तिः नादक्पिमदं द्वयामिति क्सोकार्थं जयलस्यते ।

१. (क) वा चा।

२. (क) अग्निमास्तसंयोगात् ।

३. (क) नादः ।

पञ्चविधोनादः —

स च पञ्चविषो नादो मतञ्जमुनिसम्मतः।*
ग्रातसूक्ष्मश्चस्य पुष्टोऽपुष्टश्च कृत्रिम ।।२२॥
ग्रातसूक्ष्मो भवेन्नाभौ हृदि सूक्ष्मः प्रकाशते ।
पुष्टोऽभिव्यञ्जतं कण्ठे त्वपुष्टः शिरसिस्मृत ॥२३॥
कृत्रिमो मुखदेशे तु स्थानभेदेन मासते ।
ग्रव्यक्तः शिरसीत्युक्त कृष्टिचनान्नोपपद्यते ॥२४॥
(इति मतञ्जोक्त पञ्चविषो नादः)

. (ग्रथध्वनि)

मन्द्रादिस्थानभेदेन 'यो नाद स्कुरति स्कुटम् । स्रारोहिकमतस्तज्जेः स[े] एव ध्वनिरूच्यते ॥२४॥ (भ०को०, प० ३०३)

मतञ्जमुनि के मत मे नाद पाँच प्रकार का है. श्रतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, प्रपुष्ट और कृतिम। श्रतिसूक्ष्म नाद नाभि मे और सूक्ष्म हृदय में प्रकाशित होता है।।२२॥

पुष्ट नाद कण्ठ मे अभिव्यक्त होता है और अपुष्ट शिर में कहा गया है ॥२३॥

स्थानभेद के कारण कृत्रिम नाद मुख प्रदेश मे भासित होता है। कुछ लोग ग्रब्यक्त नाद सिर मे बताते है. वह उपयुक्त नहीं है।।२।।

(ये मतङ्गोक्त पञ्चिवध नाद-भेद निरूपित हुए।)

(ग्रब ध्वनि कहते है)

मन्द्र इत्यादि स्थान-भेद से श्रारोही कम के श्रनुसार जो नाद स्पष्ट-तया स्फुरित होता है, वही 'ध्वनि' कहा जाता है ॥२५॥

पञ्चिवधनादोत्पत्ति विषयकाः श्लोका (क) ग्रादर्शे न सन्ति ।

१. (क) मत्रादि।

२. (ख) स्सव ।

खाहुलो' बोम्बकश्चैव' नाराटो मिश्रकस्तथा।
ध्विनश्चतुर्विधः प्रोक्तो गीतविद्याविशारदैः ॥२६॥
बाहुल्यान्मन्द्र'संस्पर्शी माधुर्य्यगुणसंयुतः।
खाहुल्य'स तु विज्ञेयो गीतविद्याविशारदैः ॥२७॥
(भ०कौ०, ५०१२६)

एरण्डकाण्डवद्यक्च^४ 'क्षणिकांशविवर्जितः । नि.सारो बोम्बकः" स्थूलो बाहुत्येन[≂] तु मध्यभाक् ।।२⊏।। (भ०को० पु० ४१५)

बाहुत्यात्तारसस्पर्शी माधुर्य्यगुणविजतः । नाराटोऽय परिज्ञेयो ध्वनिभेदविशारदै. ।।२६।।

गीतिवद्याविशारदो ने चतुर्विध श्विन खाहुल, वोम्वक, नाराट **स्रीर** मिश्रक बतायी है ॥२६॥

गीतज्ञो को वह ध्वनि 'खाहुल' समभना चाहिये, जो प्राय मन्द्र स्थान का स्पर्श करने वाली और माधुय्यंगुणयुक्त हो ॥२७॥

वह ध्विन 'बोम्बक' है जो 'एरण्डकाण्ड' (अंडउए की शाखा) की भौति क्षणिकाशविवर्णित (गूदे से हीन) और निस्तार (खोखली, फिर-फिरी) तथा प्राय. मध्यस्थानीय हा ॥२८॥

ध्वनिभेद के मर्मज्ञो ने प्राय तारस्थान का स्पर्श करने वाली ग्रौर माधुर्य्य गुण वर्जित ध्वनि को 'नाराट' कहा है ॥२६॥

१. (क) वाउलो, (ख) काबूलो ।

२ (क) लाम्बल, (स्व) वस्वलक्ष्वैतः।

३ (ख)मत्र। ४ (ख) खायुल । ५ (क)मदात्र।

६ (क) खाणिकास, (ख) खाणिकाम ।

७. (क), (ख), वम्बल ।

 ⁽क) त्वाहुवेनैवतु मध्यमः, (ख) बहलो न तु मध्यभाक् ।

१. (क) सस्पर्शि ।

१०. (क) गीतध्वनिविशारदै.।

एतद्ध्वनिगुणोन्मिश्रो' यत्र सोऽयं तु मिश्रकः । नाराटखाहुलक्षेको° मिश्रः खाहुलवोम्बकः³ ॥३०॥ (भ० को०, प० ४६४)

नाराटवोम्बकरचैव घनियंत्र स मिश्रकः। इति मिश्रघ्वनिः प्रोक्तः चतुर्घा गीतवेदिभिः॥३१॥ (इति घ्वनि)*

म्रथ ज्ञारीरलक्षणम् ─●

म्नन्तरेण यदभ्यास रागव्यक्तिनिबन्धनम् । शरीरेण सहोत्पन्न शारीर परिकीर्तितम् ॥३२॥

शारीरमेदाः— चतुर्विश्वं भवेत्तच्च कडालं, मधुर तथा।

पेशलं ' बहुभङ्गीति' तेषा लक्षणमुच्यते ॥३३॥ (भ०को०, पृ०५६)

जिसमे इन ध्वनियों की विशेषताओं का मिश्रण हो, वह 'मिश्रक' है। मिश्रक के भेद 'नागटखाहुल' 'खाहुलवोम्बक' श्रीर 'नाराटबोम्बक' है। गीतज्ञों ने इस प्रकार चतुर्विध मिश्रध्विन का वर्णन किया है।।३०,३१॥

> (यह ध्वनि का वर्णन हुआ।) ।। अब शरीर का लक्षण कहते हैं।।

जो ग्रभ्यास के विना ही रागव्यक्ति में समर्थ हो, वह शरीर के साथ (सहज रूप से) हो उत्पन्न ध्वनि 'शारीर' कहलाती है ॥३२॥

वह 'शारीर' कडाल (करारा), मधुर, पेशल और बहुभङ्गी इन चार प्रकार का है, उन प्रकारों का लक्षण कहा जा रहा है।।३३॥

१ (क) एते व्वनि गुणा मिश्रा। २ (क) वम्बल । (स) स्नाव्ल ।

३ (क) बाउल बम्बल , (ख) साबुलवम्बल । ४. (क), (ख) नाराटवम्बलक्ष्वैव ।

ष्टिनिवधयकारसर्वेदलोका भरतकोषोद्घृतपाद्यवेदव पाठमनुतृत्य सद्योधिता ।
 शारीरलसणविषयका पाद्यवेदकृता ब्लोकास्सिह भ्रुपालेन स्लाकरप्रकीर्णक.

ध्यायव्यास्याने समुद्धृता । ५ (ख) झान्तरेण । ६. (क) यथास्यास ।

७. (क) समो । ८ (स) शरीर तत्सभीरितम् । ६. (क) कथास ।

१०. (स) पाचलं, (क) पौश्चलं । ११. (स) बहुमरीति ।

स्थानत्रयेऽपि कठिनं कडालं परिकीर्तितम्। मन्द्रे मध्ये च माधुर्य्याच्छारीरं मधुरस्मृतम्॥३४॥ शारीरं पेशलं त्रेयं तारे रागप्रकाशकम्। तच्छारीरं गुणा मिश्रा यत्र तदबहमञ्जिकम्॥३४॥

(में० को०, पृ० ३८१,४१७) कडालमधुरंचैव ततो मधुरपेशलम् कडालपेशलञ्चैव शारीरं त्रथमिश्रकम् ॥३६॥

एव चतुर्विभ्रज्ञेयं शारीरं बहुमञ्जिकम्। पृथगष्टविभ्रो भेदस्तस्य कण्ठगुणागुणैः ॥३७॥ माभुर्य्यं श्रावकत्वं च स्निग्धत्व घनता तथा ।

स्थानकत्रयशोभा च पञ्च कण्ठगुणा मता ।।३८॥

तीनो स्थानों में कठिन (वलवान् करारी) ध्वनि 'कडाल' है, जो मन्द्र ग्रीर मध्य स्थान में मीठी रहे, वह 'मचुर' है ॥३४॥

नार स्थान में राग का प्रकाश करने वाला शारीर 'पेशल' है, इन तीनो प्रकारो के गुण जिसमे मिश्रित हो, वह बहुभङ्गि है।।३४॥

बहुभिङ्ग के चार प्रकार, कडालमधुर, मधुरपेशल, कडालपेशल धीर कडालमधुरपेशल है ॥३६॥

कण्ठ के (पाँच) गुणो शौर (तीन) श्रवगुणों के कारण यह शारीर (पूर्वोक्त भेदो से) पृथक् माठ प्रकार का है ॥३७॥

माधुर्य्य, श्रावकत्व, स्निग्धत्व, घनता श्रीर तीनो स्थानो में शोभा ये पाँच कण्ठ के गुण है ॥३६॥

१. (क) मान्द्रे।

२. (क) ज्ञेयं पाचलशारीर (ख) ज्ञेय पौशल शारीरं।

३. (क) तत्तारिर ।

^{¥. (}क) तयो ।

बेटिः बेणिः भग्नशन्द कण्ठदोषा ग्रमी त्रयः।
माधुय्यंगुणसंयुक्ते कण्ठे स्यान्मधुरो व्वितः ॥३६॥
श्रावकाख्योभवेत्कण्ठे दूरस्थ श्रावको ध्वितः।
स्निग्धकठो ध्वितस्तारोऽप्यरूष्ठसस्सरसो भवेत् ॥४०॥
सुस्वरस्वैव सान्द्रस्य घन ' कण्ठे भवेद् ध्वितः।
कठे त्रिस्थानवोभी स्यात् त्रिस्थाने मधुरो ध्वितः ॥४०॥
केटिः कठे ध्वितः स्थानत्रयस्पर्यी गुणोज्भितः।
स्थानस्य पूरकः कुच्छात् केणिः कठे ध्वितः भवेत् ॥४२॥
वानरोध्द्र खरैस्तुल्यो भग्न ' कण्ठे भवेद् ध्वितः।
एते भेदाः परिजया वाररोरेऽपि विचक्षणः॥४३॥

सेटि, सेणि और भग्नशब्द ये तीन कण्ठ दोष है। माधुर्य्यगुण से सम्पन्न ध्वनि 'मधुर' है, जो दूर से ही सुनाई दे, वह कण्ठध्वनि श्रावक है। सार स्थान मे भी अरूक्ष और सरस ध्वनि स्निग्ध है।।४०॥

कण्ठ में उत्पन्न होने वाली सुस्वर स्रौर सान्द्र 'गाढी' ध्वनि 'घन' है, तीनों स्थानो में शोभित होने वाली मधुर ध्वनि त्रिस्थानशोभी है ॥४१॥

तीनो स्थानो का स्पर्श करने वाली गुणहीन कष्ठध्विन केटि' है। कठिनता से स्थान का पूरण करने वाली ध्विन 'केणि' है।।४२।।

वातर. ऊँट और गधे की ध्वनि के समान फटी या फूटी ध्वनि 'भग्न' है। विद्वानो को 'शारीर' मे भी ये भेद समऋते चाहिये॥४३॥

(ये शारीर के भेद हुए।)

१. (क) घनकण्ठे।

२. (क) खेट कण्ठे, (क) खेटि कण्ठी।

३. (क) खेणिकण्ठे।

४. (क), (ख) भग्नकण्ठे ।

ध्वनिः क्षेत्रकाकूनामनन्तभेदः *स्यात् ।

गीतम् -

ध्वनिक्षारीरसञ्जातं विचित्रं स्वरवर्तनम् । छाया तदाक्षयाचार्व्यैः गीतमि यमिषीयते ॥ ४४ ॥ भ्रतिबद्धं निबद्धं च गीतं तद द्विविषं मतम् ।

ग्रालप्तिमेवा '--

ैम्रालप्तिरनिबद्धा स्याद्राग³ रूपकभेदतः ।। ४४ ॥ सर्वगीतप्रबन्धानामादावालप्तिरिष्यते ।* सालप्तिद्विविधा ज्ञेया विषमा प्राञ्जलेति सा ॥४६॥ साक्षरानक्षरा चेति द्विविधापि चतुर्विधा । चतुर्विधाप्यष्टविधा सतालातालभेदतः^४ ॥४७॥

क्षेत्र और काकुओं के भेद से ध्वनिभेद ग्रनन्त होते हैं।

विभिन्न अन्य साधनो तथा कष्ठ से उत्पन्न ध्विन तथा स्वर-व्यवहार विचित्र (विशिष्ट) होता है, छाया (ध्विन का विशिष्ट व्यक्तित्व) उसके अधित होता है। (अव) गीत कहा जा रहा है।।४४॥

वह गीत भनिबद्ध भौर निबद्ध दो प्रकार का है । आलप्ति भनिबद्ध है, उसके दो भेद रागालप्ति और रूपकालप्ति है ।।४५॥

समस्त गीतों और प्रबन्धों के ग्रारम्भ में ग्रालप्ति वाञ्छनीय है। वह ग्रालप्ति 'प्राञ्जला' ग्रीर 'विषमा' इन दो प्रकारा की है।।४६॥

वह द्विविध आलिप्ति भी 'साक्षरा' और अनक्षरा के रूप में चार प्रकारों की है, और यह चतुर्विध भी 'सताला' और 'अताला' के भेद से आठ प्रकार की है।।४७।।

१ (क) न भेद.।

२. (क) मालप्त्याद्यनिवद्ध, (ख) मालप्त्यूचंनिवद्ध ।

३. (क) स्वररागविभेदक., (ख) स्वररागविभेदत ।

मत भारम्य पंक्तिषटकं सिंहभूपालेन समुद्वृतम् ।

४. (क) सतालातालभेदक. ।

'सा पुनः षोडशविधा शुद्धसालगभेदतः' । क्रमेण लक्षणं वक्ष्ये तासां लक्ष्यानुसारतः ॥४८॥

श्रुद्धे विषमालिप्त: --

स्थाय्यादिवणंसयुक्ता व्यक्ता स्थानत्रयेऽपि च । नानालङ्कार' सम्मिश्रेरक्षरैगंमकैयुँता ॥४६॥ विषमस्थापनायुक्ता ग्रहे मोक्षेऽप्यलक्षिता । ग्रालप्तिः कथिता' शुद्धे विषमा गायकोत्तमैः ॥४०॥

श्रुद्धे प्राञ्जलालप्तः--

चतुर्वर्णसमायुक्ता शुद्धरीतिविराजिता । प्रयोगैस्मुकरैयुँक्ता स्थानकत्रयरञ्जिता ॥५१॥ यथा समुचितन्यासा^र सम्भावितचमत्कृतिः । एतै गुँणेर्युता शुद्धे प्राञ्जलालप्तिरीरिता ॥५२॥

यह अर्प्टविध आलप्ति भी 'शुद्ध' और 'सालग' के भेद से सोलह प्रकार की है। अब मैं लक्ष्य के अनुसार उनके लक्षण कहूंगा॥४८॥

स्थायी आदि (आरोही. अवरोही और सञ्चारी)वर्णों से युवत, तीनो स्थानों में व्यवन, विविध अतकारों से सम्पन्न अक्षरों और गमकों से युवत, वियमस्थानम्य, अहं और मोक्ष में असक्षित (समफ्र में न आने वाली) आर्लाज जुड़ (वेशो संगीत) में 'विथमालिन' कड़ी गई है।।४६,४०।

चारो वर्षों ने युवत, शुद्धरीतिमय, मुकर प्रयोगो से सवनित, तीनों स्थानों में र्राञ्जन, यथोचित गास से युक्त, चमन्कार की सम्भावना से स्रोतप्रोत स्रालप्ति शुद्ध (देशी सगोत) में 'प्राञ्जलाचप्ति' कहीं गई है।।४१,४२।।

१. (क) साधन ।

२ (क) गुद्धासालस, (ख) गुद्धसालक।

३. (क) घाकरै। ४ (क) दी।

^{¥ (}क) स । ६ (क) द्वै ।

सालगे विषमालप्ति :---

स्थान वर्णकमावृत्तिनियमेन विवर्जिता । कोमलेगंमकेयुँ क्तालङ्कारेलेलितेरिप ॥५३॥ उचितस्थापनालप्तिः 'सालगे विषमामता ।

सालगे प्राञ्जलासप्ति:---

नानारीतियुता रागसत्वमात्रसमाश्रया ।।४४॥ लीननादा च सोल्लासललितन्यास भूषिता । एवं गुणयुतालप्तिः सालगे प्राञ्जला मता ॥५५॥ श्रनकरालप्तिः :--

'तं, हं, शा, ब्रा, द, नैर्वर्णेरथवामुरजाक्षरैः। गीताक्षरैस्समुचितैर्यहान्यैरक्षरैरपि ।।४६॥ कियते यदि सालप्तिः साक्षरेति निगद्यते। 'सा वाक्षरैर्विरहितानक्षरालप्तिरीरिता .।४७॥

तं. ह, शा. आ, द, न, अक्षरों मुरज के पाटाक्षरों से समुज्जित गीता-क्षरों अथवा अन्य अक्षरों से युक्त बालप्ति यदि की जाये, तो 'साक्षरा' कह-लाती है, सक्षरहीन होने पर इसे ही 'धनकारा' कहा जाता है ॥५६, ४७॥

स्थान, वर्ण, कम और आवृत्ति के नियम से रहित, कोमलगमकों और लिल अलंकारों से युक्त, उचित स्थापनामय आलप्ति 'सालग' (देशी सगीत) में विषम कही गई है।

विभिन्न रीतियों से युक्त, राग के प्राण का बाश्यय लेने वाली, लीन-नाद उल्लासपुक्त एवं लिंजत न्यास से विभूषित बालप्ति 'सालग' (देशी संगीत) में 'प्राञ्चला' कही गई है ॥५३,५४॥

१ (क) तर्नं। २. (क) सालदे।

३ (क) राग स**ञ्चमात्र** । ४. (क) स्यास ।

५. (क) तहिवे घदलैवंचें । ६. (क) यद्वाने ।

७. (क) सेवाक्षरै।

सतालालप्ति :--

ग्रहत्रयसमायुक्ता लयत्रयसमन्विता । 'ब्रनुयायि समायुक्ता न्यासापन्यासभूषिता ॥५८॥ विकृतांशलयोपेता विदारियतिरञ्जिता एव गूणगणोपेता ै अतालयुक्ताऽङलतिर्वरा ॥५६॥

प्रतालालप्ति —

^४ग्रतालालप्तिरुदिद्घा तालयोगविर्वाजता । (इत्यालप्तिभेदास्सलक्षणा) (ब्रथवर्णालङ्कारा)

वर्णाः -

ग्रालप्तिसश्रया वर्णाञ्चत्वारोऽन्वर्थसज्ञका ॥६०॥ स्थाधिसञ्चारिणौ भेवेव (तथारोह्मवरोहिणौ। एकस्यरपदेगीत स्थायिवणींऽभिधीयते ॥६१॥ सञ्चारी स्वरसञ्चारादन्वर्थावितरावि ।

भलङ्कारा -

वर्णाश्रयास्त्र विज्ञेया ह्यलङ्कारास्त्रयोदश ॥६२॥

तीनो ग्रहो, तीनो लयो, अन्यायी, न्यास, शपन्यास, विकृतांश, लय, विदारी और यति से युक्त भालप्ति 'सताला' कहलाती है ॥५८,५६॥ नाल प्रयोग से रहिन ग्रालप्ति 'ग्रताला' है।

(ये ग्रालप्ति के लक्षण सहित भेद समाप्त हए।)

(अब वर्ण और अलकार कहे जाते है।)

श्रालप्ति के ग्राधार स्थायी, श्रारोही श्रवरोही श्रीर सञ्चारी ये चार अन्वर्थ है। एक ही स्वर मे युक्त पद पर गाया हुआ 'स्थायी' तथा स्वरो के सञ्चार (ग्रारोहावरोह) से युक्त सञ्चारी है, शेष दोनो ग्रन्वर्थ है। तेरह अलंकार वर्णाश्रित हैं ॥६०,६२॥

१ (स) प्रनुब्जायि । २ (क) तौ । ३. (क) बालयत्या इतिवैरा । ४ (क) भावाला । ५ (क) णो । ६ (क) तथारोप्यथरोहिणौ । ७, (क) सङ्गादि । ८. (क) स्ति ।

नामतो रूपतक्ष्वैव संक्षेपेण बवीमि तान् । प्रसन्नं पूर्वमुच्चार्य्य क्षनैः' सन्दीपयेत् स्वरम् ॥६३॥

प्रसन्नादिभेवेदेवं प्रसन्नान्तो विलोमतः । एवं प्रसन्नमध्यश्च प्रसन्नाद्यन्त एव च ।।६४।। एतं स्थायिन्यलङ्काराश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।

³क्वचित् स्वरे स्थिर स्थित्वा स्पृष्टा तार ततोऽग्निवत्।।६**४**।।

प्रत्यागतश्चेत्तत्रैव विन्दु रेकोऽभिधीयते । 'स्यान्निवृत्तप्रवृत्तास्य तद्वनमन्द्र स्पृशेद्यदि ॥६६॥ प्रेङ्कोलितं ततो'विद्यात्तस्यकाल गतागतम ।

उन धलंकारों को सक्षेपपूर्वक नाम और रूप के द्वारा कहता हूं। पहले स्वर का 'प्रसन्न' उच्चारण करके उसे भीरे से दीप्त करें, तो 'प्रसन्नादि' धलकार होता है। इसका उल्टा 'प्रसन्नाचन' है। इसी प्रकार (अर्थानुसार) 'प्रसन्नमध्य' और 'प्रसन्नाचन' भी होते हैं। १६३,६४॥

ये चार अलकार स्थायी वर्णमे होते है।

किसी स्वर पर स्थित होकर अग्नि की जो के समान तारस्थानीय स्वर को छुकर लौटा जाये, तो 'विन्यु' अनकार होता है। इसी प्रकार यदि सन्द्र का स्पर्ध करे, तो 'निवृत्यवृत्त' अनकार होता है।।६६॥

यदि माना-जाना तुल्य काल युक्त हो तो 'प्रेङ्खोलित' मलकार होता है।

१. (क) शयं।

२. (क) प्रसन्नान्तो ।

३. (क) क्विच ...रे।

४. (क) स्यान्निवृत ।

५. (क) विद्या।

ऋमेण परमं तार गत्वा मन्द्रं पतेत्पुनः ॥६७॥ तारमन्द्रप्रसन्नोऽयमलङ्कारो विघीयते । 'मन्द्रादुच्चरिततस्तारमवरुह्ये क्रमेण यः ॥६८॥ मन्द्रतारप्रसन्नोऽय, सर्वसाम्यात्समो भवेत् । ³कम्पित कुहरश्चैव रेचकश्च यथाऋमम् ॥६६॥ एषां तु पञ्च विन्द्वाद्या नित्य सचारिसश्रयाः । म्रारोहणे प्रसन्नादि * प्रसन्नान्तोऽवरोहणे ।।७०।। शेषा ग्रीप यथायोग सर्व वर्णसमाश्रयाः।

ŧ۶

(इत्यलङ्कारा ।

द्यथ गमका :--

ग्रलङ्कारास्त्रय

तञ्जैः गमकाः परिकीतिता ॥७१॥ स्वश्रुतिस्थानसम्भूता छाया श्रुत्यन्तराश्रयाम् । स्वरो यद् गमयेद् गीतै गमकोऽसौनिरूपिता ।।७२।। स्फरित कम्पितोलीनस्तिरिपृश्चाहतस्तथा।।

कमश तार स्थान जाने पर यदि मन्द्र तक ग्रवरोह हो, तो तार मद्र-प्रसन्न ग्रलकार कहा जाता है। मन्द्र से उच्चारण करके तार तक पहुँचने के पक्ष्चात् अवरोह करके 'मन्द्रतारप्रसन्न' ग्रलकार होता है । सर्वत्र दीपन समान रहने से 'सम' अलकार होता है। क्रमश कम्पित, कहर और रेचक (रेचित) अलकार होते है ।।६७-६६॥

इनमें से पाँच 'बिन्द्' म्रादि अलकार सदैव सञ्चारी होते है। म्रारोह मे प्रसन्नादि ग्रीर अवरोह मे 'प्रसन्नान्त' अलकार होता है ॥७०॥

शेप अलकार भी आवश्यकता के अनुसार सर्ववर्णाश्रित होते है। ये अलकार तीन प्रकार के हैं।

(ये अलकार सम्पन्न हए)

(अब गमक कहते है।)

विशेषज्ञो ने गमक बताये है। जो स्वर ग्रपने श्रुतिस्थान पर सम्भूत छविको अन्य श्रुति की छाया तक पहुँचादे, वह 'गमक' कहलाता है ॥७१,७२॥

१. (क) तारा २. (क) अवरोह्। ३, (क) कुः तः । ४. (क) प्रसन्नान्ता।

बान्दोलितस्त्रिभिन्नक्ष गमकास्त्रप्त कीर्तिताः ॥७३॥ बारोहिकमतो यत्र स्फुरन्ति श्रुतयः कमात् । ब्रमुद्रतार्षं वंगेन तत्राष्ट्रः स्फुरितं बुषाः ॥७४॥ स्वरकम्पो भवेद्यत्र द्रुतिहगुणवेगतः । । कम्पितो नाम गमकः स विकोयो मनीविभिः ॥७५॥ द्रुतमानेन मसुणः स्वरो यत्र विलीयते । स्वरान्तरकमेणैव स भवेल्लीनसज्ञकः ॥७६॥ श्रुतयो यत्र वेगेन भ्रमन्त्यावतं स्पवत् । तमाहुस्तिरपुं नाम्ना गमक गोतवेदिनः ॥७७॥ स्वरः प्रवर्तते यत्र समाहत्याभग स्वरम् । प्रारोहिकमतः सोऽयमाहत परिकोत्तितः ॥७६॥

स्फुरित, कम्पित, लीन तिरिपु, ब्राहत, ब्रान्दोलित बौर त्रिभिन्न ये सात गमक बताये गये हैं ॥७३॥

जहाँ भारोही कम से अनुद्रुताधं वेग से युवत, कमशः श्रुतियां स्फुरित होती है। वह 'स्फुरित' गमक है। जहाँ द्रुत के ढिगुण वंग से स्वरकम्य हो, वह 'कम्पित' गमक है। जहां स्वरान्तरकम से द्रुतमानयुक्त स्वर विलीन होता है, वह 'लीन' गमक है।।७४-७६।।

जहाँ वेगपूर्वक श्रुतियाँ भैंवर की भांति धूमती है, वहाँ गोतज्ञो ने 'तिरिपु' नामक गमक कहा है ॥७७॥

जहाँ स्वर आरोही कम से अग्रिम स्वर का बाहनन करके प्रवृत्त होता है, वहाँ श्राहत गमक होता है।।७८।।

१. (क) अनुभुताबंदेगेन, (ख) अनुद्रुताय देगेन ।

२ (क) बेदत.।

३. (क) तिरिपुर्नाम्ना ।

^{¥. (}क) स्वरं ।

५. (स) प्रहा

ग्रान्दोलनं भवेदात्र स्वराणां लघमानतः। ग्रान्दोलितास्यं गमक गीतज्ञास्तै प्रचक्षते ॥७६॥ स्थानकत्रय संस्पर्शीतत्ततस्थानगणेयु तः। ग्रविश्रान्त स्वरोपेतस्त्रिभिन्नगमकः स्मृतः ॥५०॥

> (इति गमकाः) (अथगीतभेदा)*

ग्राचारयस्सिममिच्छन्ति व्यक्तमिच्छन्ति पण्डिता. । स्त्रियो मधरमिच्छन्ति विकृष्टमितरे जनाः ॥८१॥ उच्चनीचस्वरोपेत न द्रत न विलम्बितम्। पदतालैः सम गीत सममाचार्य्यवल्लभम् ॥ ६२॥ क्रियाकारकसयुक्त सन्धिदोषविवर्जितम् ।

व्यक्तस्वरसमायुक्तं व्यक्त पण्डितसम्मतम् ॥८३॥ जहाँ 'लघ' मान से स्वरो का म्रान्दोलन होता है, वहाँ गीतज्ञ 'ग्रान्दोलित' गमक वताते है ।।७६॥

विशिष्ट विशिष्ट स्थान के गुणो से युक्त, अविश्रान्त स्वरयक्त, त्रिस्थान व्यापीगमक त्रिभिन्न कहलाता है।। = ।।।

(ये गमक हए)

(ग्रव गीतभेद कहे जाते है)

ब्राचार्य लोग 'सम', पण्डित लोग' 'व्यक्त' नारियां 'मधर' तथा ग्रन्य लोग विक्रष्ट गीत पसन्द करते है।। ८१।।

उच्च एवं नीच स्वरो से युक्त,न द्रुत और न विलम्बित, पद एव ताल के द्वारा सदश 'सम' गीत आचाय्यों को प्रिय है।। दशा

क्रियाकारक से यक्त, सन्धि-दोष-विवर्जित, व्यक्तस्वरयक्त 'व्यक्त' गीत पण्डितो को प्रिय है ।। द ३।।

१ (क) ग्रान्दोलस्सम्भवेद्यत्र । २. (क) गीतज्ञारस । ३ (क) स्थानकत्रयसस्यशि ।

ग्रत: पर वृता द्वादश क्लोका पाव्यंदेवकृतास्सिहभूपालेन रत्नाकरप्रबन्धाध्याय-व्याख्याने समुद्धृता । प्रपूर्णे बादर्शद्वये न सन्ति । गीत भेदेऽन्तिम इलोक 'क' मादर्शस्य वादनिरूपणाध्याये दृश्यते ।

लिलतैरक्षरेषु कत शुक्काररसरिञ्जतम् ।
श्राव्यनादसमोपेत मधुर प्रमदाप्रियम् ॥६४॥
स्वरंष्ठच्यतरेषु कत प्रयोगवहुलीकृतम् ।
विकृष्ट नाम तद् गीतमितरेषां मनोहरम् ॥६४॥
गानमारभटीवृत्त्या वीरसङ्गतवणंकम् ।
उच्चनीचस्वर गीत सोत्साहं सूरवल्लभम् ॥६६॥
प्रेमोहीप्तपदप्रायं शुक्काररसभूषितम् ।
करुणाकाकुसयुक्तं करुण विरहि प्रयम् ॥६॥।
विपरीतपदेर्युं कत स्वरभञ्जयुपवृहितम् ।
गीत हास्यरसोदार परिहास विटिप्रयम् ॥६६॥
गृहार्यं परमार्थदेच ससारसुखमुख्यकं ।
गृहार्यं परमार्थदेच ससारसुखमुख्यकं ।
स्वावावयुतंगींतं सुद्वपञ्चमनिर्मितम् ॥६६॥
सुभवाकययुतंगींतं सुद्वपञ्चमनिर्मितम् ।

ललित शक्षरों से युक्त शृगाररसर्राञ्जित, श्राब्यनाद सवलित गीत प्रमदाश्रो को प्रिय है ।।५४।।

उच्चतर स्वरो से युक्त, बहुल प्रयोग सहित, 'विकृष्ट' नामक गीत भ्रन्य लोगों को प्रिय है ।। दूध।

आरभटी वृत्ति से, उच्च नीच स्वरो के द्वारा किया जाने वाला, वीररससंगतवर्णों से युक्त सोत्साह गान शूरवल्लभ है।।८६।।

प्रेमोद्दीपकपद युक्त, शृरगाररसभूषित, करुणा काकुसहित 'करुण' गान विरहिजनों की प्रिय है ॥=७॥

म्रटपटे शब्दो से युक्त, स्वरभिङ्गसहित, हास्यरसोदार, परिहासपूर्ण गीत विटों को प्रिय है ॥⊏⊏॥

जिनमें प्रकटतया सांसारिक सुख का वर्णन हो, परन्तु जिनका गूडार्थ परमधिपरक हो, ऐसा श्रघ्यात्मकगीत योगिवल्लभ है ॥८६॥

शुभवाक्ययुक्त, शुद्धपञ्चम राग मे निबद्ध, विवाहादि उत्सव में गेय मंगलगीत महिला प्रिय है ।।६०।। देवतास्तुति संयुक्तं तत्प्रभावप्रबोधकम् । ग्रास्तिक्योत्पादनं गीतं रम्य भक्तजनप्रियम् ॥६१॥ ग्रभ्यवस्थानकं गीतं तालपाटेरलक्षितम् । प्रयोगबहुल रूक्षं विषम् वादिवल्लभम् ॥६२॥

(इति गीतभेदाः)

इति श्रीमदभयचन्द्रमुनीन्द्रचरणकमलमध्करायितमस्तक महादेवायंशिष्य स्वरविमलविद्यापुत्रसम्बक् बृडामणि भरतभाण्डीकमावात्रवीणस्तृति ज्ञानकवर्तिसगीताकरमाधेय पावकेषेय विरक्ति

संगीतसमयसारे द्वितीयाधिकरणम् ।

देवस्तुति युक्त, देवमाहात्स्य बोधक एव ब्रास्सिक्योत्पादक सुन्दर गीत भक्तजनो को प्रिय है ॥६१॥

भ्रपस्थानयुक्त ताल और पाटो के द्वारा अलक्षित, प्रयोगबहुल तथा रूक्ष एव विषम गीत वादिवल्लभ है।। ६२।।

(गीत-भेद पूर्ण हुए।)

श्रीमद ग्रभयचन्द मुनीन्द्र के चरण-कमलो मे मधुकरवत् ग्राचरण करने वाले मन्तक से युक्त महादेव आयं के शिष्य, स्वर-विद्या से युक्त, सम्यक्त चूडामणि, भरतमाण्डीकभाषा प्रवीण, श्रृतिक्काम चक्रवर्ती, सगीता-कर नाम वाले पाक्ष्वेदेव द्वारा विरचित सगीतसमयसार का द्वितीय प्रधि-करण पूर्ण द्वमा।

(दूसरा अधिकरण समाप्त ।)

तृतीयाधिकरणम्

भाष्डीकभाषयोदिष्टा भोजसोमेश्वरादिभिः । ठाया' लक्षणतः केचिद् विश्वपत्ते लक्ष्यसम्भवाः ॥१॥ प्रवालितिद्विषा, रागालितः क्ष्यकालितश्च । तत्र रागालितः क्ष्यते— स्वस्थाने प्रथमे कृय्यात् स्वरालापादिकं परम् । 'रागाकारस्यस्थाने स्थात्सुरागोऽष' उच्यते ॥२॥ यस्यवशस्वनौ स्निग्धं समीची रिक्तरूजिता । "वाशिक गीततत्वजाः धुरागं कथयन्ति तम् ॥३॥

भोज और सोमेश्वर ब्रादि ने भाण्डीको (गाने-बजाने वालों) की भाषा के अनुसार कुछ प्रचलित 'ठाय' बताये हैं, वे कहे जा रहे है ॥१॥

म्रालप्ति दो प्रकार को है, रागालप्ति ग्रौर रूपकालप्ति । उसमें रागालप्ति कही जा रही है ।

पहले प्रथम स्वस्थान मे स्वरालाप इत्यादि किया जाना चाहिये, तत्वध्वात् श्रन्य स्थान में रागालाय होना उचित है। श्रव 'सुराग' कहा जाता है।।।२।।

जिसकी स्निग्ध बंशध्विन में सम्यक् राग की शोभा हो, उस वॉशिक को सुराग कहते हैं।।३॥

१. (क) ठाय (ख) गेय। २ (क) बीक्यन्ते।

३. (ख) रागलप्तिका रूपतालप्तिकव ।

४. (ख) रागलप्तिः । ५. सुराङ्गो वीक्रिकः, (स) स्वरापापाडिक ।

६. (क), (ख रागाकारमपस्याने । ७. (क) बाहुरागोऽर्थ ।

थ, (क) वांशिके। १. (क) जी।

(शालिनीवृत्तम्)

दिग्धवासो ' रक्तपीतादिरागैध्वनिस्तद्विष्वत्ररागः'स कश्चित् । गाने तष्का येऽपरं क्ष्लाधमानास्तेषामेव स्वानुभूतिःप्रसिद्धा^४॥४॥ (इन्द्रविष्या^४)

छायासरकारणम् —

यस्मिन् स्वरे स्थायिनि चारुरागः स्वस्थानक तत्कियते सुक्षेत । श्रपस्थिति सौक्थविपर्ययेगण्च्छायान्तरास्तत्र भवन्ति रागे ॥४॥

सप्तस्वराणा मध्येऽपि स्वरे यस्मिन् सुरागताः ।

जीवस्वर ---

स जीवस्वर इत्युक्त ग्रशो वादी च कथ्यते ॥६॥ जीवस्वरस्य सदश सवादी "स्वर इष्यते ।

संबाधनुवादिविवादिन --

विवादीस्याद् विसदृश सोऽनुवादी इयात्मक ॥७॥

जिस प्रकार विभिन्न रहीं से युक्त वस्त्र राबिरणा होता है उसी प्रकार कोई युन जित्र (रंगीवरणे, सङ्कोण) राग से युक्त होती है। गाने में जो जाता सोग इसरे रंगीवरणे, सङ्कोण) राग से व्यानुमृति प्रसिद्ध (समाहत) है।।।।।

जिस स्वर के 'स्वायी' होने पर राग सुन्दर रहता है, उसी को सुख-पूर्वक स्वस्थानक (राग का प्राधार) बनाया जाना है। सौस्य (प्रयोक्ता की सुविधा) के विषययें से अपित्यति (उपधुक्तस्थान विहोनना) होती है स्रीर ऐसी प्रथम्या होने पर राग से अन्य रागो की छाया माने सगती है।।।।।

सातो स्वरो मे जो स्वर सुरागता का आधार होता है, वह जीवस्वर, भ्रश्न या वादी कहा जाता है ॥६॥

सवादी स्वरंजीव स्वरं के सदृश (समान श्रुतिक तथा तुन्य श्रुति अनुवादियों से युक्त), विवादी विसदृश (श्रुति सक्या में असमान) और अनुवादी उभयात्मक होता है।।।।।

 ⁽क) दिग्व । २ (क) द्वाएनस्त । ३. (क) पर । ४ (क), ।ख), प्रसिद्ध ।

 ⁽क) इन्द्रमाला । ६ (क) स्वरागता । ७ (क) सवादि स्वरमुख्यते ।

बः (क) सोऽनुवादि इयारमक ।

(भाग्या छन्द)

भ्रनुवादी* संवादी* जीवस्वरकः? कलाविद्भिः । बहुतमबहुतरबहुवः कार्या* रागे विलौम्येन ॥६॥ विजानता* विवादी सः स्वल्य कार्य्योऽथवा पुनः । प्रच्छादनीयो लोप्यो* वा मनाक्स्पर्शः स्वरस्य* यः ॥६॥

प्रच्छादननिष्कृती—

प्रच्छादनं तदेवाहुर्लोपः सर्वस्य निष्कृति । प्रहन्यासो —

भादौ यस्मिन् स्वरे राग॰चाल्यते स ग्रहः स्मृतः ॥१०॥ चालयित्वा स्वरे यस्मिन् सं " न्यास उपवेश्यते । भवन्यासः –

रागस्यावयवो यस्मिन् स्वरे समुपवेश्यते ॥११॥

कलाममंज्ञों को चाहिये कि वे अनुवादी, संवादी और जीव स्वर को विपरीत कम से बहुतम, बहुतर श्रौर बहुल प्रयुक्त करें ।।६।।

मर्मज व्यक्ति को विवादी स्वर का अल्प प्रयोग करना चाहिये, किञ्चित् स्पर्श किया जाने वाला स्वर प्रच्छादनीय अथवा लोप्य होना चाहिये। स्वर का किचित् स्पर्श ही प्रच्छादन है, सर्वद्या स्नभाव निष्कृति है।

जिस स्वर से राग का धारम्भ किया जाता है.वह 'ग्रह' है।।६.१०।। धारम्भ के परचात् जिस स्वर पर उपवेशन किया जाता है, वह 'न्यास' है, जिस स्वर पर राग के भाग का उपवेशन (ठहराव) होता है, वह गीत लक्षणकों के धनुसार अपन्यास है।।।११।।

१ ,कः) प्रमुवादिनि । २ (कः) सर्वादिनि । ३ (कः) जीव चरकेर वाविद्भि । । (लः) जीवस्वरकेकशा विहि । ४ (कः) कार्थ्या रागा विलोध्येन । (कः) कार्थ्या रागा वि ''स्वेन । ४ (कः) विभूगीना विवादि स । ६ (कः) लोष्ये। ७ (कः), (लः) स्वरस्य थः।

म. (क) लोप सर्वस्य नि: कृति ।

६. (क) चालयते ।

१०. (क), (ख) सन्यंद्रम ।

घपन्यासः स विजेयो भीतलक्षणवेदिभिः। भवयवावयबो धस्मिन् स्वरं अमुपवेदयते ॥१२॥

संन्यास : -

संन्यासः कथ्यते गानविद्यातत्त्रविचक्षणैः । स मन्द्रस्तुतरांलभ्यः यो रागो मन्द्रसप्तके ^४ ॥१३॥ नारमकागाः ---

यस्तारसप्तके रागः स्वरे तार उदाहृतः ।

वाडबौडुवो---

उक्त षाडव एकस्मिन् स्वरे[।] लुप्ते विवादिनि ॥१४॥ विवादिनि स्वरद्धन्द्वे लुप्तेत्वौड्वमिष्यते^{*}। वशे⁻ न्यासस्वरं पूर्व स्थायिन रचयेत् ततः ॥१४॥ राणकककम —

तत्र स्थायिनि रागस्यारोपणं रागवक्त्रकम ।

स्वस्थानानि--'स्थायिन्येवोपरि'° द्वर्यादयः'' कस्न्निप स्वरे ।।१६।।

रागावयव का भी खण्ड जिस स्वर पर उपवेशित हो, उसे गान विद्यामर्गकों ने 'संन्यास कहा है ॥१२॥

जो राग मन्द्र सप्तक में भली-भौति उपलब्ध होता है, वह मन्द्र है ।।१३।।

जो राग तार सप्तक में भली भौति प्राप्त होता है, वह तार है। एक विवादी स्वर के लुप्त होने पर 'पाडव' राग होता है। दो विवादी (राम-विवादी) स्वरो के लुप्त होने पर औडव राग होता है।।१४॥

'क्श'मे पहले (राग के) न्यास स्वर को स्थायी बना लिया जाना चाहिये॥१४॥

वाह्य ।।१४।। उस स्थायी स्वर पर राग का ग्रारोपण रागवक्त्र'(राग का मुंह) है।

र (ज) गति। २ (ज) प्रवयता प्रवसको । ३ (क) स्वरो वधुपवेदसके, (ज) स्वरो यद्यवेदसके । ४ (क) जा । १. (ज) सत्र । ६. (क) जुप्त । ७ (क) जुप्त । ८. (क) स्यासस्वर । १. (क) स्वायिन उपरि । १०. (ज) द्यवींत् । ११ (क) तत तस्मिक्षणि स्वरे , (ज) वय कृष्टिमकणि स्वरे ।

चालियत्वा पुनारागं स्थायिन्येवोपवेशयेत् ॥१६॥ तदेव प्रथमं स्वस्थानमालप्ते —

भाष्यासं ' द्वयर्षमारस्य ' चालयित्वा तु रागकम् । कुय्यति द्वितीयं स्वस्थानं राग ' लक्षणकोविदः ॥१७॥ स्वरस्य स्थायिनो यक्ष्म ' द्वयर्षस्तुर्यः' ' स्वरः स्मृतः । स एव ' देवटायेति तज्ज्ञं स्तु व्यपदिश्यते ॥१८॥ प्रश्नंस्यिते चालयित्वा राग कस्मिन्नपि स्वरं । कुय्यति तृतीयसंस्थान न्यासान्त गायकोत्तमः ॥१९॥ द्वयर्षदिगुणयोर्मध्ये स्वरयोर्ये स्थिता स्वराः ।

स्थायी स्वर के ऊपर ही द्वयधं इत्यादि स्वर है, किसी भी स्वर तक राग का चालन (विस्तार) करके 'स्थायी' स्वर पर उपवेशन करना चाहिये ॥१६॥

म्रर्धस्थितास्त एवोक्ता मर्धस्थेया इति स्फूटाः ॥२०॥

वही भ्रालिप्त का प्रथम स्वस्थान है।

इयर्थस्वर से आरम्भ करके न्यास स्वर तक चालन करने के द्वारा रागलक्षणज्ञ व्यक्ति को राग के द्वितीय स्थान का विस्तार करना चाहिये ॥१७॥

स्थायी स्वर से (म्रारोह की म्रोर) चौथा स्वर द्वयमं होता है, उसी को मर्मज्ञ लोग 'देवठाय' कहते है ।।१८।।

द्रधं स्थित किसी भी स्वर तक राग का विस्तार करके न्यास स्वर पर अन्त करना तृतीय स्वस्थान है।।१६॥

द्वयर्थ और द्विगुण स्वर के मध्य में जो स्वर स्थित हैं, ये स्फ्रुट रूप में क्षर्यस्थिय (स्थान के परुवार्थ में स्थित) हैं।।२०।।

१ (क), (ख), धन्यासः । २. (क) थं। ३. (ख) यान । ४. (क), (ख) यस्य । ५. (क) द्वयपंस्तुल्यास्वरः स्युतः । ६. (क) देः येति । ७. (क) तस्मिश्वरि । ५. (क) यें। ६. (ख) धर्षनीया. ।

डिगुणात् स्थायिपर्य्यन्तं वालयित्वा तु रागकम् । स्यासस्वरोपवेशेन । स्वस्थानं । स्याच्चतृर्थेकम् ॥२१॥ मन्द्रसप्तकमेवैतद् डिगुणं मध्यसप्तके । तन्मध्यसप्तक तारे डिगुणं स्थाद्यथाकमम् ॥२२॥ स्थानानि प्रसृतेस्त्रीणि स्वरै कुर्यास्त्रीयकम् । स्थानं समग्रशब्देन सारूडि । रचयेत् पुनः ॥२३॥

चारूति : -

तज्ज्ञैबंलिवहनिभ्या^{*} मारूढिरिभिषीयते^{*} । चतुः स्वस्थानकै शुद्धो^{*} रागस्याकार ईरितः ॥२४॥ रागाकारः -

स्थानैः स्थायस्वरं सम्यक्³ स्थापितैः स्थापितै कमात्। स्थापना —

.. जोवस्वर प्रधानैश्च न्यासान्ते '' बहुधाकृते ।।२५॥

हिंगुण स्वर से स्थायी स्वर पर्य्यन्त राग का विस्तार करके न्यास स्वर पर समाप्ति चतुर्थ स्वस्थान है ॥२१॥

मध्य सप्तक में मन्द्र सप्तक ही ढिगुण हो जाता है ब्रौर मध्य सप्तक तार सप्तक मे क्रमश ढिगुण हो जाता है।।२२।।

स्थान तीन है, पूरे शब्द के साथ, तीनो स्थानो मे प्रसारयुक्त (खुल) स्वरों के द्वारा, श्रारूढिपूर्वक चौथे स्वस्थान का विस्तार करना चाहिये। विद्वानो ने 'विल' ग्रौर 'वहिन' से युक्त किया को ग्रारूढि कहा है। चारो स्वस्थानो से राग का गुद्ध ग्राकार (प्रत्यक्ष) हो जाता है।।२३,२४।।

स्थाय (रागवाचक स्वर समूह) के स्वरो से युक्त पुन पुनः संस्था-पित, जीवस्वर प्रधान न्यासान्त एव प्रसन्त 'स्व स्थानों' से स्थायी स्वर पर

१ (क) रागत । २ (क) पदेशेन । ३ (ख) च्च — र्यकम् । ४ (क) द्विगुणो । ४. (क) नस्थानमग्र । ६ (क) सारूघि । ७ (क) वहणेभ्या, (ख) तत्रीकैलवहणीत्या ।

⁽क) माशेदि। १ (क) शुद्धा, (ख) शुद्ध-रागस्याकार।

१०. (क) स्वरास्सभ्य स्थायगस्यापयेत् । ११. (क) बुधा ।

स्वापना —

प्रसन्नैरुषुद्धरागस्य स्थायिनि स्थापनोच्यते,। इत्थं रागं स्थिरीकृत्यारोपयेष्' वाशिकोत्तमः ॥२६॥ तद्वागनिर्भरामोत्तां' वारयेत्' समगायनः। न्यास^{*} स्वरस्थापनेनोच्चारोत्तामिषीयते ॥२७॥

उ**च्चासैत्ता**— ततो गायन पूर्वोक्तप्रकारेण रागस्याकारं स्थापनां च विदध्यात् ।^४ (इति रागाकारस्थापने)

रागालप्तः--

रागालिप्तः । क्षेत्रशुद्धियुक्ता तालविवर्णिता । रागस्य शुद्धताः क्षेत्रशुद्धिरित्यभिधीयते ।।२८।।

राग की स्थापना होती है। उत्तम वंशवादक को इस प्रकार ठहराव के साथ राग की स्थापना करना चाहिये।।२६।।

राग से सम्बद्ध 'श्रोता' का धारण करना सहगायक का कर्तव्य है। न्यास स्वर पर स्थापना करने से उच्चारोत्ता होती है।।२७।।

तत्पश्चात् गायक को पूर्वोक्त प्रकार से राग के झाकार और स्था-पना का विधान करना चाहिये।

(ये रागाकार भ्रीर स्थापना सम्पन्न हुए)

रागालप्ति क्षेत्रशुद्धियुक्त और तालवर्जित होती है। इस प्रकरण में क्षेत्र शुद्धि का अर्थ राग की शुद्धता है।।२६।।

१ रोपणद्वाशिकस्ततः।

२. (स) निसरा।

३. (स) घारयत्।

४. (ख) न्यायस्वर ।

५ (क) दध्यात्।

६. (क) रागालिप्ति.।

७. (क) क्षेत्राचुदि, (ख) चुद्धतांक्षेत्रचुदि ।

गीतस्योत्पत्तिहेनुत्वात् रागः क्षेत्रमिहोच्यते ।
ततो रूपकगानेन' द्यातालां नातिविस्तराम् ॥२६॥
कृत्वालप्ति सतालां च तद्वागां द्विजनान्विताम् ।
रूपकं गायनो गायेत् रिक्तना' सहितं ततः ॥३०॥
स्थाया या रूपके यस्मिन् तस्या नानाप्रकारतः ।
मुहुर्मुंहु ग्रहो यस्तु प्रतिग्रहणमुच्यते ॥३१॥
यो यथा चालितः स्थायस्त तथंव निवेशयेत् ।
विचित्रस्य तु गीतस्य यथौचित्योपवेशनम् ॥३२॥

गीत की उत्पत्ति का कारण होने से राग को क्षेत्र कहा जाता है। तत्पक्ष्वात् रूपकगान के द्वारा संक्षिप्त श्रताल श्रालप्ति करने के पश्चात् सम्बद्ध राग से गुक्त, दो गायकों द्वारा सताल श्रालप्ति किये जाने पर, प्रमुख गायक को रक्तिसहित रूपक का गान करना चाहिये॥२८,३०॥

जिस रूपक मे जो स्थाय है, भौति भौति से उसी का ग्रहण करना प्रतिग्रहण कहलाता है।।३१।।

जिस स्थाय का चालन जिम प्रकार किया गया है, उसका निवेशन उसी प्रकार उचिन है। विचित्र (विविधभङ्गोमय) गीत का उपवेशन भौचित्यपुर्वक होना चाहिये॥३२॥

१ (क) रूपकरागेण, (स) रूप ∔-रागेण।

२. (क) तत्तानानीति, (न) तत्तानानीति ।

३. (क) कृत्वालिग्ति मनाला (ख) कृत्वालिग्ति मनाल ।

४ (क) तद्वागभजान्विताम्, (ख) तद्वाग द्विजनान्वितम् ।

५ (क) रूपक यनो गायेत्, (ख) रूपकगायनो गायन ।

६ (ख) तिक्तिना।

७ (क) यत्त् ।

s. (क) चालित स्थाय , (ख) चालिन ।

६. (क) चितोपवेशनम्।

(इन्द्रवज्ञाः)

स्थाया विषेया न तु सैकरूपा बहुकारैविकृता विभाति । विचित्ररूपोऽपि समूरकण्ठो जगज्जनप्रीतिकरोयथासः।।३३।।

स्वायनामानि कष्यस्ते —जावणा, गतिः, जायी, अनुजायी, प्रोयारं वती, बहुनी, ढाल,प्रसर, ललितगाढ, प्रोच्चगाढ, प्रपक्षस्त, निस्सरह, लंधित, स्वरलंधित, दुवांस, पेव्टापेष्टि, फेल्लाफेल्सि, मोडामोडि, गुम्फागुम्फि, ल्वर, गाणाचेठाय, तरहर, तत्तवण, विदारी, अमरलीलक, कालस्यक, चित्ताचेठाय, करण, गीताचेठाय, जोडियचेठाय, शारीराचेठाय, नावाचेठाय, कर्तरी, प्रधंकर्तरी, नलकर्तरी, कुरला, मृटुय, मुकुलित, उच्च, नीच, निक्लायि, उक्कायि, निस्त, निकृति, गरिवडि, एसुत, उट्टुण्डुल, बहिला, हुनुकायि, प्रिकिक, उक्खुड, नपायि, भरण, हरण, सनिय, निकरह, भजवणा, निजवण, सुभाव, होला, रिक्त, रंग, रीति, अनुकरण, घरणि, धरि, मेल्ली, विवन्धायी, मिट्टायी, गीतज्योति, स्कार, होम्फा, कला, छवि, काकु, छाया, नविण, अंश, घटना, आक्रमण, बङ्कायि, कलरद, वेदध्विन, धवतीर्णंक, बोकल, सुकराभास, प्रकरभास, अपस्वराभास, उच्चिता, खडवायि, वेसिकी। "

एव मुक्त स्थाय शब्देन कि मभिधीयते— ठाय :—

> गत्या गमकयोगेन रागेणान्ये न केनवा । स्वैरवृत्ति स्वरावृत्तिष्ठायइत्यभिषीयते ॥३४॥

राग का स्थाय एक ही जैसा नही होता, धनेक प्रकारों से विक्कत प्रतीत होता है। जिस प्रकार मोर का रङ्गबिरङ्गा कण्ठ जगन्मोहक होता है।।३३।।

स्थायों के नाम कहे जाते हैं। (मूल मे स्पष्ट है।) इस प्रकार पूर्वोक्त स्थाय शब्द का क्या तात्पर्य्य है?

गमक योग के द्वारा गति से अथवा अन्य किसी भी राग के द्वारा यथेच्छ स्वरावृत्ति 'ठाय' कहलाती है।।३४॥

१. (क) इन्द्रमाला ।

स्थायनामानि कथिष्यमाणलक्षणानुसार संशोधितानि ।

२. (क) रागिणानैककेनवा। ३. (ख) स्वरै वृत्तिः स्वर वृत्तिः।

(इति ठायलक्षणम्)

स्थायाना करणान्याहुक्चत्वारि स्थानतानके । गमको मानमेतेषां लक्षणान्यभिदष्टमहे ॥३५॥

स्थानम् ---

तत्र' स्थाय्यादिवर्णानामाश्रयः स्वरमण्डलः ।

स्थानमित्युच्यते तस्मादुदाहरणमुच्यते ।।३६॥

यथा वेलावल्यां घनि सरिगमप, च्छायानाट्टार्यां सरिगमप घनि इत्यादि । तानोत्तानरागापेक्षया २ —

स्थानमित्युच्यते तज्ज्ञैः स्वरो यो गमकाश्रयः।

यया वेलावल्यामाहतस्थाने धैवतः कम्पितस्थाने षड्ज, छाया-नाष्ट्रायां कम्पितस्थाने गान्धारनिषादौ । गमका ३ कम्पितादयः ।

स्वादुत्वादिगुणा^४ भवन्ति हि यथा शाके रसाः षट् च ते । रागव्यक्त्यनुकलका हि गमका रागेऽपि सञ्चारिणः ^४ ॥

(यह ठाय लक्षण हुमा।)

स्थाय तान (राग की ग्रादिम तान) में स्थायो के चार करण होते है , इनका मान गमक है । इनके लक्षण कह रहे है ॥३४॥

स्थायी इत्यादि वर्णों का आश्रय स्वर-मण्डल 'स्थान' है, झत[.] उदा-इरण कहा जाता है ॥३६॥

े जिस प्रकार नेलावली मे धनि सरिगम प और छायानाट्टा में सरिगम प धनि इत्यादि ।

तानोत्तानराग (ब्राघारतान में उत्पन्न) राग की श्रपेक्षा से विशेषक्षों ने गमकाश्रय स्वर को स्थान कहा है। जैसे बेलावली में श्राहत का विषय खेबत थोर कम्पित का विषय पड्ज है, छायानाट्टा में कम्पित के स्थान पर गान्वार-निवाद है।

'कम्पित' इत्यादि गमक कहलाते है ।

जिस प्रकार शाक में स्वादुत्व इत्यादि से युक्त छः रस होते है, इसी प्रकार राग मे ही रागाभिव्यक्ति के लिए अनुकूलता उत्पन्न करने वाले गमक होते है।

१. (क) स्थायादि । २. तालरागातेकाया । ३. समरा । ४. (क) नि । ५. (क) सवादिन ।

तन्मात्रा परिमाणमेव' सुतरा मान[ः] वदस्यादरात् । सङ्गीताकरकर्णेघारपदवीमाढौकमानाः^{*} परम् ॥३७॥ प्रयोगैः कैविचदपरैः सरी सा^{*} रागचालना ।

जावणा —

श्रन्यैस्तु सरिसङ्गीत ^४ जावणेति ^६ निगद्यते ॥३ ≒॥ गति :—

माघुर्य्यंसहिते गीते श्रुतिमात्रस्तु केवलम् । स्वराणां सन्निवेशोयश्वातुर्य्यात्स**गति**र्भवेत् ॥३६॥

जायी ---

स्वरमात्रेण सदृशस्थानान्तरनिवेशनम् । इति भेदस्समुद्दिष्टो जायिनश्चानुजायिनः ॥४०॥

भ्रौयारम् —

स्वरमात्राधिकौ यस्मात् स्वरावृत्तिविधिकमात् ।" तदोयारं समुद्रिष्ट प्रायश्चारोहिसश्रयम् ॥४१॥

सङ्गीताणंव के कणंधार की (सङ्गीताकर) पदवी धारण करने वाले (पारवंदेव) उन गमको के परिमाण का सप्रमाण वर्णन करते हैं।।३७।।

प्रयोगों के द्वारा कुछ श्रन्य लोगो ने उस राग चालना को 'सरी' कहा है। श्रन्य लोग सरिसगीत को 'जावणा कहते है।।३८।।

माधुर्य्यं युक्त गीत में केवल सुने जाने लायक अर्थात् चतुरतापूर्ण धीमास्वर-सन्निवेश 'गति' होता है ॥३६॥

स्वर मात्र के द्वारा सदृश अन्य स्थान निवेशन 'जायी' और स्वर मात्र से अधिक 'अनुजायी' होता है, ये दो भेद बताये है ॥४०॥

जिस विधिकम से धावृत्ति हो, वह 'धोयार' कहलता है और प्राय: भारोही वर्ण में होता है ॥४१॥

 ⁽क, देव। २. (क) मीनज्वदन्त्यादरात्। ३. (क) मुद्राकमाना।
 ४. (क) सरीसा, (ख) सरिसा। ५. (क) सरिसङ्गीते। ६. सवेणेति।
 ७. (क) विदस्तमात्। ८ (ख) तदोर।

बली-

सुशारीरात्समुद्भूता श्रुतीनामवलियंथा ।' ^{*}चरत्समीरणोद्भूततरङ्गावलिवद् **वली** ॥४२॥

बहनी-

मन्द्रादिस्थानभेदेन "प्रवृत्त श्रुतिकस्पनम् । उरःस्थानशिरः कण्डस्था^ण **बहनी** कमतो भवेत् ॥४३॥ बहनीद्विधा भ्रालप्तिवहनी, गीत^{प्}वहनी चेति। पुर्नाद्वधा, खुत्ता^ष उल्फल्ला चेति ।

प्रविज्ञन्त[°] इवान्तस्ते स्वरा यस्यां विभान्ति च । खुत्ता[©] सा कथ्यते गानविद्यालक्षणकोविदै. [©] ॥४४॥ यस्या स्वरा विराजन्ते निर्गच्छन्त इवोपरि । गानलक्षणतत्वज्ञै रुफुल्ला परिकोत्यते ॥४५॥ एव वलिरिप वहनीवत[°] वैदितस्य ।

चलते हुए पवन से उद्भूत तरङ्गाविल के समान. श्रम्ब्छे शारीर से उत्पन्न श्रृतियों की श्रवलि 'वली' है।।४२।।

मन्द्र इत्यादि स्थानभेद से प्रवृत्त श्रुनिकम्पन ही उर, शिर ग्रौर कण्ठ में स्थित 'वहनी' है ॥४३॥

बहनी दो प्रकार की है, ब्रालप्तिबहनी और गीतबहनी। पुन दो प्रकार की हे, खुला और उत्कृत्ला। जिसमे स्वर ग्रन्दर की ओर प्रवेश-से करते हुए प्रतीत होते है, वह खुत्ता और जिसमे स्वर बाहर की ओर निकलते हुए से प्रतीत होते है, वह गीतजो ढारा उत्कृत्ला कही जाती है।।४४।।

इस प्रकार विल भी वहनी के समान समभना चाहिये।

१ (क) श्रुतिनामार्वातविदि । २. (क) चरेत् समीरणोद्भूत वारमातलिबहरि, (ल) चरेत् । ३ (ल) मनादि । ४. (ल) कण्डस्थ्या । ४. (ल) वीतवह्यी । ६. (ल)डना । ७ (क) प्रवेशन्त । ८. (क) मुत्ता । १. (क) वैदिमि । १०. (ल) वदिनिष ।

हालम् --

वृत्तमौक्तिकवत् काचभूतले विलसद् ध्वनौ । श्रुतिः प्रवर्तते क्षिप्रं यत्र हालं तदुच्यते ॥४६॥

प्रसर:--

माषुर्य्ययुक्तो ललितः स्वरो यत्र प्रसार्य्यते । स्वरान्तरस्य सयोगात् प्रसरं प्रचक्षते ॥४७॥

सलितगादः-

लालित्येन यदा नादस्तारस्थाने^४ प्रवर्तते । तदा **ललितगाढं** त जगुर्गीत विशारदाः ॥४८॥ प्रोक्चगढः ---

कमेण गाढतां त्यक्त्वा ललितस्वरवर्तनम् । "**प्रोच्चगाढ**मिति प्रोक्त गीतलक्षणकोविदै ॥४६॥

भ्रपत्तत्म :--

यत्र प्रवर्तते मन्द्रस्थानेऽति मधुर ^६ स्वर । अपखल्ल. ^६ स विज्ञेयो गोतभाषाविज्ञारदै ॥५०॥

काच के तल पर गोल मोती के समान ध्वनि पर वेगपूर्वक श्रुति ढ़लती है, तब यह क्रिया ढाल कहलाती है।।४६।।

ग्रन्य स्वर के संयोग से जब मधुर स्वर प्रसारित होता है, तो प्रसर गमक होता है।।४७॥

जब लालित्यपूर्वक नाद तार स्थान मे प्रवृत्त होता है, तब 'ललित गाढ' होता है ।।४८।।

जहाँ गाढता का परित्याग करके कमश्चलितस्वरो का व्यवहार होता है, उसे गीतज्ञों ने 'प्रोच्चगाढ' कहा है।।४६।।

जहाँ मन्द्र स्थान मे ब्रत्यन्त मधुर स्वर प्रवृत्त होता है, वहाँ गीतक्को को 'ग्रपखल्ल' समक्षता चाहिये ।।४०।।

रै. (क) वृत्ति । २ (क) काव । ३. ताल । ४. (क) त्वसरं त, (ख) यसरं च । ५. (क) नाट स्थान स्थाने । ६. (ज्ञानु । ७. (ख) पोक्वगाढ । म (क) ऽतिमधुर स्वरम् ६. (क) मनुबस्त ।

निस्सरड:--

क्रमेण परम तारं गत्वातिमसृणः स्वरः ॥

ैपैच्छिल्यात्पतितो मन्द्रे भवेन्निसरढाभिषः ।। ५१॥

लक्क्तिम् —

ईषदाहतसयुक्त स्वरो यत्र विलङ्क्षयेत्। स्वरान्तर कमेणैव लिङ्कतं तत्प्रचक्षते।।४२॥

स्वरलङ्कितम् --

इदमेवयदेकद्वित्रिस्वरान्तरितं भवेत् । तदा गोतकलाभिज्ञ**ै स्वरलङ्कित**मीरितम् ॥५३॥

वृर्वासः—

तारमन्द्रसमायोगात् प्रयोगो यत्र दुष्करः । वर्तते स तु गीतज्ञ**ै दुर्वा**सः परिकीतित ।।५४॥

पेष्टापेष्टि --

पुनरावर्तते यत्र प्रयोग[ः] पूर्वमागतः । तदानीमेव सा तज्ज्ञ**े पेष्टापेष्टीति** गद्यते ।।४४।।

जहाँ ब्रत्यस्त मसूण स्वर परम तार स्थिति तक जाकर फिसलता हुया मन्द्र में पतित हो जाये, वहा 'निस्सरड' होता है ।।४१।।

कुछ ब्राहत से युक्त स्वर जहाँ कमश अन्य स्वर का विलङ्कान करे, वह 'लङ्कित' होता है।।५२।।

यदि एक, दो और तीन स्वरो का लङ्कन करके किया जाये, तब गीतकलाविदो ने इसे 'स्वरलङ्किन' कहा है ॥४३॥

तार भौर मन्द्र के योग से जहाँ दुष्कर प्रयोग होता है, उसे गीतज्ञो ने 'दर्जास' कहा है।।४४॥

जहाँ पूर्वकृत प्रयोग की पुनः ग्रावृत्ति होती है, वह विद्वानों के द्वारा 'पेष्टापेष्टि' कहा जाता है ॥५५॥

१. (क) गत्वा ता असूण स्वार ।

२. (क) पैचिलयात्, (स) पैछल्यात् ।

^{₹. (}क) निस्तरवा.

फेल्लोफेल्ल-

गाढत्वेन स्वरः सर्वो नुदेद् यत्र स्वरान्तरम् । श्रारोहिकमतस्सोक्ता फेल्लोफेल्लीतिनामतः ॥५६॥

मोडामोडि --

समुद्धृत्य स्वरान्ै यत्र तेषामग्राण्यथः कमात् । भज्यन्ते सा परिज्ञेया **मोडामोडीति** संज्ञया ॥५७॥ गुम्कापृष्कि -

ु सप्त प्रयोगा एकत्र वर्तन्ते चेन्निरन्तरम् । स्रिगवाभिज्ञरचिता^६ गुम्कागुम्को**त** सोदिता ॥४८॥

लचर:---

यत्र गाढस्वरः सम्यग्गाने^{*} तारे प्रवर्तते । खचरस्स समुद्धिटो गानविद्याविद्यारदैः ॥५६॥ गामाकेतयः—

ायं गमकसम्मिश्रं वर्तते यन्मनोहरम् । गाणाचेठायसंज्ञ^{ः ४} तद गीतविद्धि स्दाहतम् ॥६०॥

जहाँ प्रगाढतापूर्वक स्वर अन्य स्वर को आरोही कम से प्रेरित करे, वहा 'फेल्लाफेल्ली' होता है।।४६।।

जहाँ स्वरो का समुद्धार करके उनके ब्रग्नभागो का नीचे की झोर कमश भंजन किया जाता है, वहाँ 'मोडामोडि' होता है।।५७॥

जहां सात प्रयोग निरन्तर एकव विद्यमान रहते हैं, चतुरों के द्वारा गूथी हुई माला की भौति वह गुम्फागुम्फि (गुन्थागुम्थि)कहलाता है।।४८॥ जहां तार गाने से भली भौति गाढ स्वर प्रवृत्त होता है, उसे गीतकों

ने 'खचर' कहा है।।५६॥

जहांगमकसम्मिश्र मनोरम ठाय होता है, उसे गीतक्नों ने पाणा चे ठाय'वताया है।।६०॥

१. (क) सर्वं। २. (ख) स्वोज्यक । ३. (क) सनिवा। ४. (क) गस् तारे, (ख) भ्यवतारे।

५. (क) राणाचेठाय

श्चाहत्यारूढया' यत्र स्वराणां कम्पन भवेत् । ठायं तरहरं नाम्ना तमाहुर्गीतवेदिनः ।।६१।।

तवणम् ---

^{*}गीतस्योपरिगीतज्ञ^{*}रालप्तिरतिकोमला । तत्तत्प्रमाण^{*} रचिता ठाय **तत् तवणं** विदु ।।६२।।

विवारी--

म्रालप्तिवितसत्तालकालाविश्लेषित^४ स्वरा । वर्तते चेन्निरालम्बा^४ सा विदारीति कथ्यते ।।६३।।

भ्रमरलीलकः--

यस्तारान्मन्द्रसस्पर्शी विचरेत्पुनरूर्ध्वग । नादो माधुर्य्यसयुक्त स स्याद् भ्रमरलीलकः ॥६४॥

कालस्यकम् —

प्रस्तुतेनैव रागेण वर्तते यत्सुखावहम् । [°] तत्तु^क **कालस्यकं** ठाय कथित गीतकोविदै. ।।६४।।

जहाँ ग्रारूढि के द्वारा ग्राहनन करके स्वरो का कम्पन हो, उसे गीतज्ञो ने 'तरहर' कहा है।।६१।।

यदि गीत के ऊपर ही गीतज्ञों ने उसके प्रमाण के अनुसार आलप्ति की रचना की हो, तो वह 'तत्तवण' होता है ।।६२।।

यदि प्रविश्लेषितस्वर ग्रावृत्ति ताल ग्रीर काल से युक्त एवं निरा-

लम्ब हो, तो उसका नाम् 'विदारी' है ।।६३॥

यदि तार स्थान से मन्द्र का स्पर्श करने वाला मधुर नाद पुनः ऊपर जाये, तो 'अमर लीलक' होता है ।।६४।। जो सुखावह ठाय प्रस्तुत राग के द्वारा ही व्यवहृत होता है, उसे

गीतज्ञो ने 'कालस्यक' कहा है ।।६५॥

 ⁽क) ब्राह्त्या रूढया, (ख) ब्राह्त्या दथया । २ (क) तीरस्योपरि ।

३ (स) तत्तप्रवर्णैरचिता। ४. (क) कान्ताद्।

५ (क) चेन्निरालम्ब स विदारीति गद्यने, (ख) स विदारि।

६. (क) संस्पर्शि । ७. (क) सुखावह: । ८. (ख) कालसचे ।

चिमाचेठायः—

ठायं यद्वेधकत्वेन क्रियते तद्विचक्षणैः । चित्ताचेठायमुदितं श्रोतुश्चित्तानुवर्तनात् ॥६६॥

करणः --

करुणारागयोगेन[ः] चिन्तादीनतयाथवा^{*}। करुणाकाकुसंयुक्ताः ^४स्थायास्ते **करुणाभिषा**ः॥६७॥

गीताचेठायः— ठाय^{*} यद् वतंते गीते तदालप्त्या कृतं यदि । गीताचेठायमित्याहस्तज्ज्ञा भन्वर्थसंज्ञकम् ॥६८॥

जोडिय के ठाय ---

प्रयोगो° द्विगुणो यत्र पुनर्द्विगुणितो भवेत् । सत् जोडिय चे ठायो^० दृष्कर. कथितो बुर्षे. ।।६६।।

जो ठाय विशेषज्ञो द्वारा वेधकत्वपूर्वक किया जाता है, वह श्रोताझों के चिक्त का अनुवर्तन करने के कारण 'चिक्ताचेठाय' कहा जाता है।।६६।।

करुणा और राग के योग से चिन्ता और दीनता का बोध कराने वाले करुणकाकुयुक्त स्थाय 'करुण' कहलाते है।।६७॥

जो ठाय गीत मे विद्यमान है, यदि वह ब्रालप्ति के ढारा किया गया हो, तो उसकी 'गीता चे ठाय' अन्वर्थ सज्जा है ॥६८॥

जहाँ द्विगुण प्रयत्न को पुन. द्विगुण किया जाये, वह दुष्कर प्रयत्न 'जोडियचेठाय' कहलता है।।६६।।

१. थाययद्वेदकत्वेत । २. (क) तरुणा ।

३. (क) चित्तदीनत्त्रमा, (ख) चित्तहीनतया, (सिंह भूपाल⁻) चिन्तादीनतया ।

 ⁽क) ठायासकरणाभिष्ठा, (ल) ठायंस करुणाभिष्ठा:, (सिह्यूपालः) स्थायस्ति करुणाभिष्ठा । ५. (क) ठीय ।

६. (क) तदालप्ति, (ख) तदालप्तो ।

७. (स) त्रयोगोऽभिगुणो ।

⁽क) जोदिय चारायों ।

शारीरा चे ठायः —

लीलामात्रेण शारीरच्छवियंत्र प्रवर्तते । **शारीराचेठाय**ं उक्त सोऽय गीत विशारदै ॥७०॥

मादा वे ठायः--

भवेद्यत्र[े] सुनादोऽन्ते तारस्थानगतस्वनै ^१। नादा चे ठाय^४ इत्युक्तः स तु गीतविचक्षणै ।।७१॥ कर्मरी--

ग्रङ्गुलीभिश्चतसृभि प्रत्येक हस्तयोर्द्धयो । बहिर्या^४ हन्यतेतत्री द्रत सा कर्तरी मता ॥७२॥

ग्रर्थकतंरी—

कर्तरीसदृशः पाणिर्दृश्यते यत्र दक्षिणः । तथा कोण इतिर्वामपाणिना **सार्धकर्तरी** ।।७३।।

नखकतंरी --

चतुर्भिनंखरैर्यत्र दक्षिणेनैव पाणिना । माहति कियते या तुसा ज्ञेया नखकर्तरी ॥७४॥

जहाँ लीलामात्र शारीर की छवि प्रवृत्त होती है, उसे गीतको ने 'शारीरा ने ठाय' कहा है।।७०॥

तार स्थानगतस्वरो के द्वारा जहाँ अन्त मे अच्छा नाद होता है, उसे गीतज्ञो ने 'नादा चे ठाय' कहा है ॥७१॥

प्रत्येक हाथ से द्रुत गति में जब चारो श्रगुलियो से तन्त्री पर बाहर की श्रोर श्राहनन किया जाता है, तो 'कर्तरी' कहलाता है ॥७२॥

जब दाहिने हाथ से कर्तरी ग्रौर वायें हाथ से कोण का प्रयोग होता है, तक ग्रर्थकर्तरी होता है।।७३।।

जब दाहिने हाथ के द्वारा चारो नलो से ब्राहनन होता है, तब 'नख-कर्तरी' कहलाता है ॥७४॥

१. (क) शारीराजेठाय । २. (क) तत्र । ३ (क) नतस्वनै । ४ (ख) सादाचेठाय । ५. (क) विहितर्यद्वस्यते, (ख) बहियांहत्यते । ६. (क) सार्षकर्तिर ।

लघुवक्कली---

वाद्यते यत्र वेगेन मधुरं लघुदक्कली'। श्रुतयस्तत्र ज्ञेया **कुरलया**ख्यया^२ ।।७४।।

मुट्टे यमुकुलिते---

वंशे मुट्टेय मुक्तं तद्गात्रे मुकुलितं मतम्। तयोगमकबाहुल्यं कतुं नैव तु शक्यते।।७६।। उच्चनीची —

यौ प्रोक्तौ गीतभाषायां तारमन्द्रौ मनीषिभि.। तावेव कथितौ पीतभाषायां तारमन्द्रौ मनीषिभि.।

निक्लायिकोक्लायिके —

स्फुरितादि^६ स्वरो यत्र तारस्थान तु संस्पृशेत् । निक्कायिस्सा^{*} भवेत्स्थानव्यक्तिद्वचोक्कायिका मता ॥७८॥ निरतम् —

्विषमप्राञ्जलालप्तौ^द श्वाससंयमनात्तत[ः] । ठायस्य¹े गलहीनत्व निरतं परिकीर्तितम ॥७६॥

जहाँ बेगपूर्वक लघुदक्कली का मधुरवादन होता है, वहा श्रुतियां कुरला कहलाती है ॥७४॥ जो बदा में 'मुट्टे' है वही शारीर में 'मुकुलित है—उन दोनों में गमक बाहुत्य नहीं किया जा सकता ॥७६॥ मनीथियों ने गीतभाषा में जिन्हे तार और मन्द्र कहा है, वही लोगों

के द्वारा उच्च और नीच कहलाते हैं ॥७७॥

यदि स्फुरित से आरम्भ होकर स्वर तार स्थान का स्पर्श करे, तो 'निक्खायि' ग्रोर स्थान व्यक्ति उक्खायि' कहलाती है ॥७६॥

विषमप्राञ्जल श्रालित मे श्वाससंयम के कारण उत्पन्न गुरुलघु-हीनता 'निरत' कहलाती है ॥७६॥

१ (स) लवियक्कुली। २. (स) कुरुलया। ३. (क) मुद्दय।

४. (क) यो प्रोक्ता गीतभाषाया तारमन्द्रामनीषिम । ५. (क) कथिता।

६ (क) स्फुरिताधीस्वरो । ७. (क) रिक्खायिस्था । ८. (क) विषवित्रा ।

६. (क) व्यासनं च समत्वतः, (ख) व्याससंयमनस्वतः । १०. हायेति ।

निकृतिः--

स्थायं विविधमादाय बलात्सस्थापने पूनः । श्रन्यनाधिकता तञ्ज्ञ**ैनिकृतिः** परिगीयते ॥ ५०॥

वस् इ.--

प्रयोगो वर्तते यस्त मन्दगत्या सं वसुडः । परिवर्षि:---

ख्यात. परिवडिनिम्ना स' एवान्ते निरन्तर: ।। दशा एसतम् —

एसतं तत्समाख्यातमवशं यत्प्रवर्तते । उटटण्डलम् --

ठायमुद्र पहलं ज्ञेय गीते वैसिकि विजनम् ॥ ८२॥ बहिला-

ग्रतिद्वतगतिगीते बहिलाख्यां समादिशेत्। हलुकायि ---

हलुकायि" भवत्येव गतिर्याति विलम्बिता ॥६३॥

विविध स्थायों का ग्रहण करके बलात् संस्थापन में ग्रन्यूनता ग्रीर अनुधिकता मर्मज्ञो के द्वारा 'निकृति' कही जाती है ॥ a o ॥

जो प्रयोग मन्द गति में बढता जाता है, वह 'वत्तु ड' है। यदि यह ग्रात में निरन्तर हो, तो 'परिवडि' कहलाता है ।।⊏१।।

जो अवश होकर प्रवृत्त होता है, वह 'एस्त' है, वैसिकिवर्जित ठाय गीत में 'उटटण्डल' कहलाता है ॥६२॥

गीत में अतिद्वतगित 'बहिला' कहलाती है, विलम्बित गित हलू-कायि कहलाती है।।=३॥

१. (क) ठाय विवन्ध, (ख) ठाय विवर्धमादाय (रत्नाकर मनुस्रत्य पाठ: सँद्योधित:)।

२ (क) निकिति:, (ख) निगीति.। ३ (क) वत्तर ।

४ (क) क्यातोवरिपिष । ५. (क) स एवातिनिरन्तरम् । ६ (क) दिसतंतस्य,

⁽स) एवसंतत । ७. (क) मुद्र न्द्रलं। ८ (क) जैसिकि । ६ (क) महिलाख्यां। १०. (क) इलवाबि (ख) हेलवावि ।

ध्रधिकम् —

श्रोतृचित्तमतिक्रम्य प्रवृत्त**मधिकं** विदुः ।

उक्लुडम्-

ग्रसम्पूर्णस्वरं गानं ठाय**े मुक्खुड**मीरितम् ॥६४॥

नवायि'—

धालप्तौ रूपके वा स्यादपूर्वोड्डवणा यदि । नवायि[ः] सा परिज्ञेया गीतभाषाविशारदैः ।।⊏५।।

भरणहरणे --यदरूपकेऽथवालप्तौ वर्तते रागपुरणम³।

भरणं तत् समुद्दिष्टं हरणं तद्विपर्य्ययः ॥५६॥ सनगिदम—

भवेत्सनगिदारुयं तत्मधुर यत्प्रवर्तते ।

निकरड' --

विपरीतमतो ज्ञेयं बुधै**निकरडा**ह्वयम् ॥५७॥

जो श्रोताका अतिकमण करके प्रवृत्त हो, वह 'श्रधिक' है। अपूर्ण स्वर गानको 'उक्खुड' (उखडा हुआः) कहा गया है ॥५४॥।

आर्लाप्त और रूपक में यदि अपूर्व उडान हो, तो उसे 'नपासि' (नपाई?) कहा गया है।।५४।।

(नपाइ:) कहा गया हा प्रसात यदि रूपक और आलप्ति में राग का पूरण हो, तो बह 'अरण'

याद रूपके आर आलाप्त में राग का पूरण हा, तो वह 'भरण (भरना) ग्रीर इसके विपरीत हो, तो 'हरण' है।।=६।।

जो मधुर हो, वह 'सनगिद' (संगीत [?]) ग्रौर उसका विपरीत 'निकरड' है ॥५७॥

१. (क) ठयमुक्कुदु।

२. (क) नवयस्या ।

३. (क) रागपूरणा।

भजवणा---

रागव्यक्तिभंजवणा सुशारीरसमुद्भवा।

निजवणम्--

जितश्वासतया गानै नाम्ना ' निजवणं ' विदु: ।।८८।।

सुभाव —

सुभावः कथितस्तञ्ज्ञ . कोमलस्वरवर्तनम् ।

होलाव.-

होलावश्चित्तसारः स्यात्, भवेत् रागस्यान्दोलन भवेत्।। ८१।। रक्तरङ्गौ -

रिक्त स्वरूप रागस्य रङ्क रङ्खाया तदाश्रिता ।

रीति —

सैव देशाश्रयत्वेन रीतिज्ञेया विचक्षणै ॥६०॥

द्यनुकरणा -

रागेषु मित्ररागस्यच्छायासकरता "यदि । भवेत् गीतकलाभिज्ञ" सैवानुकरणोच्यते ।।६१।।

सुष्ठु शारीर से उत्पन्न रागाभिव्यक्ति 'भजवणा' झौर जितस्वासता के साथ गान 'निजवण' है ॥६६॥

कोमल स्वरो का व्यवहार विशेषज्ञो के ब्रनुसार 'मुभाव' है। चित्त का सार होलाव है।।८६।।

रागका श्रान्दोलन 'रन्ति' है, राग का स्वरूप रग' है, 'छाया' उसके श्राश्रित है। देशाश्रित होने के कारण उसे ही विशेषक्रों को 'रीति' समभना चाहिये।।६०।।

यदि राग मे मित्र राग की छाया का संकर हो, तो वही 'श्रनुकरणा' हैं ॥६१॥

१. (ब) यान । २ (क) नामानिज्जवण । ३ (क) सुहाव: । ४. (क) चोलाव ।

५. (क) रक्कछाया, (ख) रागारया । ६ (क) देवाश्रय ।

७ (स) मिश्रा

बर्जिः --

श्रनुतारात् परश्रृत्या हीना' चापसरत्स्वरा । ध्वनेस्सुगाढता' तज्ज्ञीर्घरणिः' समुदाहृतः ।।६२।।

घरिमेल्ली--

षरिमेल्लीति विज्ञे यौ ग्रहमोक्षौ ध्वनेरिह ।

निबन्धाय ---

ध्वनिवैचित्र्यमुद्धिष्ट निबन्धायीति नामतः ।।६३।। मिटठायी—

ध्वनेरत्यन्तमाधुर्य्य मिट्ठायोति निगद्यते ।

गीतज्योतिः—

स्फुटनादोज्ज्वलत्वं तु गीतज्योतिरुदाहृतम् ॥६४॥ स्कारहोन्के—

हकारानुकृतिः स्फारो होस्का वायुध्वनिः स्मृता ।

कला छविदच —

कला सूक्ष्मीकृतः शब्द छविः कोमलरुग्मती ।। १५।।

तार स्थान से नीचे अन्य राग की श्रुतियों से हीन और स्वरों में विद्यमान ध्वनि की सुगाढता धरणि' है।।६२।।

ध्वनिका ग्रह 'धरि' ग्रीर मोक्ष 'मेल्ली' है, ध्वनि-वैचित्र्य

'निबन्धायी' है ॥६३॥

ध्वनि का श्रत्यन्त माधुर्यं 'मिट्टायी, कहा जाता है। स्फुटनाद की उज्ज्वनता 'गीतज्योति' है।।१४।।

हकार की अनुकृति 'स्फार' और वायु की ध्वनि 'होम्फा है।' सूक्सी-कृत शब्द 'कला' है, कोमलकान्तिमती 'छवि है' ।।६५॥

१. (क) हीनश्चापसरस्वर: । २. (ख) वर्ने ।

३. (क) घरणी।

४. (क) दरवेल्ली।

५. (क) विवन्ध इति ।

काकुश्छाया च--

काकुरच भावना भाषा छायारक्तिः समर्थवान् । रागकाकुः क्षेत्रकाकुर्यन्त्रकाकुः स्वरोदभवः ।।१६।। काकुरच देशकाकुरच काकुः स्यादन्यरागजः । गीतविद्याविशेषजैः षोठा काकुरुदाहतः ।।१७।।

रागकाकु:--

रागस्य या निजच्छाया **रागकाकु**रितीरिता ॥ सा मुख्या प्रोच्यते भाषा गीतलक्षणवेदिभिः ॥६८॥

स्वरकाकुः--

स्वरस्य कस्यनिच्छायाविशेषः कश्चिदीक्ष्यते । स्वरकाकृरिति प्रोक्तो गानलक्षणः कोविदैः ।।६६।।

वेशकाकु ---

देशाख्या देशकाकुश्च रागच्छाया निगद्यते ।

ध्रन्यरागकाकुः –

रागे रागान्तरच्छाया काकु स्यादन्यरागज ॥१००॥

भावना ग्रौर भाषा (राग रूप) समर्थवान् काकु' है, रिवत 'छाया' है। गीतविद्याविद्येषज्ञो ने छ प्रकार का काकु, रागकाकु, क्षेत्रकाकु, यन्त्रकाकु, स्वरोद्भवकाकु, देशकाकु धौर श्रन्यरागजकाकु बताया है।।६६,२७।।

राग की श्रपनी छाया 'रागकाकु' कही गई है, गीतज्ञो ने उसे (राग की) 'भाषा' कहा है ॥६८॥

किसी स्वर-विशेष की विशेष छाया गीतक्को ने 'स्वर-काकु' बतलाई है।।६६।।

किसी विशिष्ट देश की काकु देशकाकु कहलाती है, एक राग में ग्रन्य राग की छाया ग्रन्यरागजकाकु है।।१००॥

१. (क) साव।

सैवोपरागभाषास्यायते, इयमेव लोके ठायेति प्रसिद्धा ।

क्षेत्रकाकुः---

कस्यचिद्गायनस्यैषा रागे किस्मक्ष्चिदीक्ष्यते । रिक्तस्वभावतस्तञ्ज्ञैः क्षेत्रकाकुर्महीयते ।।१०१।।

यंत्रकाकुः —

किन्नरीवंशवीणासु रागच्छायैव दृश्यते । कथ्यते यंत्रकाकुस्सः गानलक्षणकोविदैः ।।१०२।।

नविष्---

ष्टंशमेदाः---

स्निग्धकोमलशब्दस्य विना यत्नेन कम्पनम् । लघुत्वेन सहोक्त**ं तन्नवणिः** गानकोविदैः ॥१०३॥

रागस्यावयवो रागे^४ योऽन्यस्<mark>यांशः</mark> स उच्यते । कारणांशस्च कार्यांशः सजातीयांश इत्यपि ॥१०४॥

वही उपरागभाषा कही जाती है, यही लोक में ठाय नाम से प्रसिद्ध है। यदि किसी गायक की छाया किसी राग मे दिखाई देती है, तो रञ्जक

स्वभाव के कारण 'क्षेत्रकाकू' कहलाती है ।।१०१।।

किल्तरी वंश और वीणा में रागछाया ही दिखाई देती है, गीतकों ने उसे यंत्रकाक कहा है।।१०२।।

स्निग्ध और कोमल शब्द का 'लघुत्वपूर्वक, विना यत्न के कम्पन, गीतज्ञों ने 'नवणि' कहा है ।।१०३।।

किसी राग में अन्य राग का अवयव 'श्रंब' कहलाता है। वह सात प्रकार का है, कारणांघ, कार्य्यांघ, सजातीयांच, सदृषरागांघ, असदृष-रागांच, मध्यस्यरागांच और यशांच ॥१०॥॥

१. (क) महीतले।

२. (क) सा।

३ (क) नमनं।

^{¥. (}क) वातो ।

ततः सदृशरागाशोंऽशोऽविसदृशरागजः । ग्रंशो मध्यस्थरागस्यस्यांदशाशस्य सप्तभा ॥१०५॥

कारणांश -

भ्रशो जनकरागस्य **कारणांश** इतीरित[.] । श्रीरागजनिते गौडे श्रीरागस्यांशको यथा ।।१०६।।

कास्यीशः —

श्रशस्तु' जन्यरागस्य **काय्यांश** इति कथ्यते । यथा भैरवजाताया[°] भैरव्या श्रशकः पुनः ॥१०७॥ भैरवे यदि वर्तेत काय्यांश इति कथ्यते ।

सजातीयांशः ---

श्रंशोऽनान्तरभेदस्य सजातीयांश इष्यते ।।१०८॥ यथा कर्णाटगौडांशो गौडेमालवनामनि ।

सब्दाशि —

सदृशांशो यथा शुद्धवराट्याग्रशक पुनः ।१०६॥। दृश्यते शुद्धनाट्टाया असवादी स च कथ्यते ।

जनकराग का अश कारणाश कहलाता है, जैसे श्रीरागोत्पन्न गौड में श्रीराग का श्रम जनक राग में जन्यराग का ग्रंश कार्य्याश कह-लाता है, जैसे भैरवजातगैरनी का अश भैरव में। अशान्य भेद का ग्रग्न सजातीयाश कहलाता है, जैसे मालवगीड में कर्णाटगोड का ग्रग्न।

सद्शाश, जैसे गुंबनाट्टा में दिलाई देने वाला गुंब राटी का श्रवयव है, वह सवादो कहलाता है। वेलावली में दिलाई देने वाला गुजरी विस-दृशाश का उदाहरण है, वह चिक्रनाश विवादी कहलाता है श्रीर दूर ही रहता है। जो राग न तो सद्श है श्रीर न विसद्ध वह मध्यस्थरागाश कहलाता है, जैसे वेलावली में देशास्य का श्राश, वह श्रमुवादी कहलाता है।।१०६-१९२।

१ (क) अशोन्यरागस्य ।

२. (क) जाताया ।

३. (क) नाट्याया ।

विसवृद्धांशः---

यथा विसवृशांशस्य वेलावल्यांच गूर्जरी ॥११०॥ विकृतांशो विवादी च दूरान्तरित एव स.।

मध्यस्य रागांशः —

रागो' नो यो विसद्श सद्शो न च तस्य य ।।१११।। भ्रंशो मध्यस्थरागांशो देशाख्याशो यथा भवेत् । वेलावत्यां गानविद्भिरनुवादी स चोच्यते ।।११२।।

षंशांश:--

श्रंशान्तरं चांशमध्ये कथ्यतेऽशांश एव सः ।
रागोमहानल्यं श्रशं इति न्यायं चवचित् पुन ११३॥
रागांशयो. समानत्व दृश्यते गीतवेदिभिः ।
रूपके क्वचिदंशोऽपि स्फुट रागायते पुन ॥११४॥
क्वचिदंशायते रागो न क्वचिन्नयमस्तयो. ।

घटना--

शिल्पिभिर्षटिता यद्वत् ते स्थाया^{*} घटना मता[.] ॥११५॥ भाक्षमण्य-

श्रूयमाणमभिकम्य[ः] प्रतिग्राह्यो ध्वनिर्यतः । ^६**तदाक्रमण**मित्युक्त गीतलक्षणकोविदै ।।११६।।

न्नश में अन्य का अश अशाश कहलाता है। (प्रमुख) राग महान् (अधिक) और 'अश' (राग) अल्प होता है, यह नियम है।।११३।।

कही-कही राग और अंश में समानता देखी जाती है, रूपक में कभी क्या राग जैंदा हो जाता है और राग अश जैंसा दिखाई देता है, इस दोनों में कोई नियम नहीं है। जो स्थाय शिक्सी के द्वारा गढ़े हुए जैसे प्रतीत होते हैं, वे 'यटना' कहलाते हैं।।११॥।

१. (क) रागो यो । २. (क) भनुवादि ३. (ख) रोगोपरागानस्याँशः । ४. (ख) न्यासः । ५. (क) रागांकोयो । ६. (क) स्वचिच्छाण्टायते । ७. (क) स्वाय ।

८. (क) स्रतिकम्य । १. (क) तदोकमण ।

बङ्गायः-

यत्र शब्दस्य वलनं कुटिल विद्युतो यथा । वक्रता सैव गीतज्ञै बेंड्यायिरिति कथ्यते ॥११७॥

कलरवः--

स यत्र मधुरङ्शब्दः भूयान् कलरवः 'स्मृतः ।

वेदध्वनि:-

बेदध्वनिरिवाभाति यत्र वेदध्वनि स्मृतः ॥११८॥

त्रिविष बाहतः—

ैग्राहतस्त्रिविध प्रोक्तस्तिर्यगुर्ध्वमधस्तथा।

घवतीर्जकः-

य ैघण्टानादवत् तारान्मन्द्रं यातोऽवतीर्णकः ।।११६॥ बोकलः—

स्थाय. र स्वल्पपरीमाण वोकल स हि कथ्यते ।।१२०।।

जो ध्वनि श्रूयमाण का स्रतिक्रमण करके प्रतिगृहीत हो, वह स्राक्रमण है। जहां शब्द में विजली की भौति वल पडते हो वह वकता विद्यापि है।।११६-११७।।

जहाँ प्रधिक मधुर शब्द हो, वह कलरव है, जो वेदध्वनि जैसा प्रतीत हो, वह वेदध्विन है ।।११८।।

'ब्राहत' तीन प्रकार का है, तियंक्, उच्च श्रीर नीच, जो घण्टा नाद की भौति तार से मन्द्र की श्रोर जाये, वह श्रवतीर्णक है ।।११६॥

ग्रस्पपरिमाण स्थाय वोकल कहलाता है ॥१२०॥

१. (क) भूयानलख ।

२. (क) घाहर्त ।

३. (ख) कण्ठनादवत् ।

^{¥. (}क) स्थायास्बल्परीमाणा ।

युकराभासः —

दुष्करोऽपि हि यः श्रोतुर्मासते सुकरो यया । गीतलक्षणतत्वज्ञैः सुकराभास ईरितः ।।१२१॥

बूज्कराभास -

सुकरोऽपि यः श्रोतुर्भासते दुष्करो यथा । गीतलक्षणतत्वज्ञैः दुष्कराभास उच्यते ।।१२२॥

प्रपस्तराभासः --

सुस्वरो<mark>ऽपि यः श्रोतुर्भासतेऽपस्वरो यथा ।</mark> उच्यतेऽ**पस्वराभासो गीतविद्या**विशारदै. ॥१२३॥

उचिता —

यस्मादनन्तरं या³ च शोभते 'सोचिता स्मृता । बुरुवायः —

बुड्ढायिश्शियला गाढा वृद्धालिप्तश्च कथ्यते ॥१२४॥

जो दुष्कर होने पर भी श्रोताश्रो को सुकर प्रतीत होता है, उसे गीतज्ञो ने 'सुकराभास' कहा है ॥ १२१॥

जो सुकर होने पर भी श्रोताझो को दुष्कर प्रतीत हो, वह दुष्कराभास कहलाता है ।।१२२।।

सुस्वर होने पर भी श्रोताश्रों को श्रपस्वर जैसा प्रतीत होता है, वह श्रपस्वराभास है।।१२३॥

जिसके पश्चात् जो शोभित हो. वह 'उचित' है। वूढों की शिथिल भौर गाढ भालप्ति 'बुड्ढायि' कहलाती है।।१२४।।

१. (क) दुः करोऽपि ।

२. (क) श्रोत्र ।

३. (क) खाच ।

४. (क) शोभिता।

वेसिकी --

ग्रकम्पा चार्षकम्पा' च कम्पाढ्या **वैसिको** त्रिधा । रागस्य यत्स्वरावृत्तेः यथीचित्योपवेशनम् ॥१२५॥ इति श्रीभ्द्रभयचम्द्रभुनीन्द्रचरणकमलमबुराधितमस्तक महादेवार्यक्षिय्यस्वरिवम्बापुत्रसम्प्रकृत्व चुरामणि भरतमाण्डीकभाषाप्रवीणश्रुतिज्ञान चक्वति संगीताकर नामधेय पास्वदेव विरिचेते संगीतसम्पसारे नृतीयाधिकरणम् ।

स्वरावृत्ति से राग का यथोचित उपवेशन वैसिकी है, उसके तीन प्रकार प्रकस्पा, अर्घकस्पा और कस्पाद्या है ॥१२४॥

श्रीमद् श्रभयचन्द्र मुनीन्द्र के चरण कमलो में मधुकरवत् साचरण करते वाले मस्तक से युक्त महादेव सार्य के शिष्य, स्वर विद्या सयुक्त, सम्यक्तव्युडामणि भरतभाष्टीकभाषाप्रवीण, श्रुतिज्ञानचकवर्ती, सपीताकर नाम वाले पाश्वेदेव द्वारा विरक्ति संगीतसमयसार का तृतीय स्रिकरण पूर्ण हुसा।

(तीसरा अधिकरण समाप्त हुआ)

१. (क) चार्थ।

२. (क) जैसिकी।

चतुर्थाधिकरणम्

भ्रथ प्रवन्धसमुचितवहृतिषदेशिरागान्, वाडवौडुवसम्पूर्णभेदेन नाम् च कथयामि । तत्र कानिचन रागाङ्गानि कथ्यन्ते-

रागच्छायामुकारित्वात् रागाञ्जानि विदुर्बुधाः । भाषाञ्जानि तर्षेव स्युः भाषाच्छायानुकारितः ।।।।। सञ्जच्छायानुकारित्वादुपाञ्जं कथ्यते वृधैः । तानानां करणं तंत्र्यां कियाभेदेन कथ्यते ॥२॥ कियाया यद्भवेदञ्जं कियाञ्जतदुदाहृतम् । (इतिरागाञ्जभाषाञ्जोषाञ्जक्षयाञ्जवक्षणम्)

ग्रथ स्वरा:--

on how 19

षड्जर्षभश्च ै गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ॥३॥

इसके पश्चात् प्रबन्ध के लिए उपयुक्त अनेक राग, षाडव, और भीडुव सम्पूर्ण भेद से उनके नाम कहता हूं। कुछ उनमे रागाग कहे जाते हैं।

विद्वानों ने रागच्छाया के अनुकारी होने के कारण रागांग बतारे हैं। भाषा और छाया के अनुकारी होने के कारण भाषाङ्ग् होते हैं॥ १॥

भ्रंग की छाया का भ्रजुकरण करने से उपाङ्ग होते है। तत्री पर तानों का करण क्रियाभेद के द्वारा कहा जाता है।।२।।

जो किया का मग हो, वह कियाग कहलाता है। (यह रागाङ्क) भाषाङ्क, उपाङ्क, कियाङ्क के लक्षण हुए।)

(ग्रब स्वर कहे जाते है)

षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, बैबत तथा निषाद ये सार स्वर कहे गये हैं ॥३,४॥

१. (स) तुकारवः । २. (स) मी व ।

धैवतश्च निषादश्च स्वरास्सप्तैव कीर्तिताः।

द्दी द्दी निषाद गान्धारी त्रिस्त्रिश्चर्षभधेवती ॥४॥

चतुश्चतुश्च विज्ञेयाः षड्जमध्यमपञ्चमाः ।*

श्रथ रागाङ्गरागा --

मध्यमादि, शकराभरण, तोड्डि: वेशीहिन्दोन, शुद्धबङ्गालः, म्राज्ञपञ्चम, षण्टारवः, गृजेरी. कोमराग, मालवशी, दीपरागः वराटी इति द्वादश रागाञ्ज सम्पूर्णराग। गौडी देशो च पहीनी, धन्यापि देशास्त्रा च रिहीने इति चत्वारो रागाङ्गपाडवरागाः। भैरवश्रीरागी परिहीनी, मार्गीहन्दोलगुण्डकी धरिहीने इति चत्वारो रागाङ्गीडवरागाः।

(इति विशति रागाञ्जरागा)

यह स्वरव्यवस्था है --

निषाद-गान्धार द्विश्रुतिक, ऋषभ-धैवत त्रिश्रुतिक स्रौर षड्ज, मध्यम, पञ्चम, चतु श्रुतिक है।।४,५।।

भ्रव रागाङ्ग राग ये है --

मध्यमादि, शंकराभरण, नोड्डि, देशीहिन्दोल, शुद्धवगाल, ब्राग्न-पचम, षण्टारव. गुजरी, सोमराग, मालवश्री, दीपराग और वराटी ये बारह सम्पूर्ण रागाष्ट्र राग है। गोंडी और देशी पचम होन, धन्यासी और देशास्त्र, ऋषभ होन ये चार पाडवरागाञ्ज राग है। भैरव और श्रीराग ऋषभपञ्चमहीन तथा मार्गीहिन्दोल और गुण्डश्री धैवतऋषभहीन ये चार श्रीडुवरागाञ्जराग है।

(ये बीस रागाङ्ग राग है।)

१ (क) तोन्दि। २ (क) घण्टाराग।

३ (क) घुर्जरी । (ख) पहिंगी ।

४ (क) न्यासि । ५. (क) चरिहिनौ ।

मावर्शद्वयेऽपिस्वरव्यवस्या सहिता स्वरा अत्रैवोपसम्यन्ते । स्वरप्रकरणण्वेतामिक्षेप
 जीवत ।

कैषिकी, वेसावितः सुद्धवराटी, भाविकामोदः, नाट्टा, भागीरी, वृह्द्दा-क्षिणात्या, लघ्वीदाक्षिणात्या, यौराली, भिन्नपौराली, मचुकरी, रगन्ती, व वेरञ्जि, प्रथममञ्जरी, सालवाहृती, नट्टनारायणः, उत्पती, वेगरञ्जी, तरिक्रुणी, ध्वनिः, गावान्तरी इति भावाङ्ग सम्पूर्णरागा एकविन्नतिः।

श्रय भाषाञ्जवाडवाः।

कर्णाट बङ्गाल " साबेरिश्व" पहीतो । अन्वाली, श्रीकण्ठी, उत्पली ६ इति चयो गहीताः " गौडी, गुद्धा, बोराष्ट्री, अम्माणी इति ब्लारो रागा परिहीताः " सैन्बवीरागो गहीतः " खायारागस्सहीत. इत्येकाद्यर रागा भाषाङ्गवाद्या: । नाम्बति " पष्टीतः । "आहीरिगैरिहीतः । काम्भो-विबेरिहीतः । पुलिन्दी गपहीता । कच्छेल्लि. गवहीतः " । बाहारि" गौल्ली गिलीती । गान्यारगति " ' सपहीत । लिलता त्रावणि, सैन्थव, डोम्बिक, " कालिन्दिससको " ईहितस्य रागा, परिहीतः ।इति पचवद्य रागा भाषाङ्गोद्वाः, (इति सप्तवस्वारीरुहत्यः, परा। आषाङ्गार)

क्षितकी, बेलावलि, शुद्धवराटी, घादिकामोद, नाट्टा, घाभीरी, बृहाक्षिणव्या, जचुराविक्यात्या, गौराली, मिन्नपौराती, सचुकरी, रगन्ती, वैदञ्जि, प्रथममजरी, सालवाहनी, नट्टनारायण, उत्पली, वेगरञ्जी, तरिक्रणी, ध्वनि भीर नादान्तरी ये इककीस भाषाज्ञ सम्पूर्ण राग है।

मन भाषाञ्च षाडव (स्वारह) है। कर्णाटवञ्चल भीर साबेरी पचल्महीन, प्रत्याली, श्रीकण्ठी और उत्पत्ती वे तीनो गान्धारहीन, गौडी, खुदा, सौराष्ट्री भौर भम्माणी वे चार ऋषभहीन, सैन्धवी गान्धारहीन, छावा षडजहीन, है। (वे भाषाञ्च षाडव राग है।)

नागच्चनि, पञ्चमघेवतहीन, ब्राहीरी ऋषभगान्धारहीन, काम्भोजी ऋषभभैवतहीन, पुलिन्दी गान्धारपञ्चमहीन, कच्छेल्लिगान्धार-धैवतहीन, बाहारि (!) धीर गौल्वी गान्धार-निवादहीन, गान्धारगति पड्जपञ्चमहीन, लिलता, त्रावित, तैन्छत, डोम्बनी, सैन्धवी, कालिन्दी और सक्त यह सात राग पञ्चस-ऋषभ हीन है। ये पन्द्रह धौडुव भाषाञ्ज राग है। इस प्रकार ये सैतालीस भाषाञ्ज राग है। इस प्रकार ये सैतालीस भाषाञ्ज राग है।

१. (क) भारमि । २. (क) अध्टिदाक्षिणात्या । ३. (क) सेरञ्जि ।

४. (क) नर नारायणी। ५. (क) उत्पल। ६. (क) दनि। ७ विम्वाहाल।

प. (क) सौबीरक्ष्य । ६. नोलोत्पली । १०. (क) सहीना. । ११. परिहोना: ।

१२. (क) तिहीतः । १३. (क) नार प्यतिः । १४. (क) ग्राहरि । १४. (क) कण्यत्तिः । १६. (क) बोहारी । १७. (क) वति: । १५. (क) दोम्बनि । १६. (क) ससिरौ ।

मय उपाङ्गरागाः —

सैन्यववराटी, कुन्तलवराटी, श्रयस्थानवराटी, द्वाविडवराठी, प्रतापवराटी, हतस्वरवराटी, तुरुप्वतीडी, सीराप्ट्राज़ेरी, दक्षिण गुजेरी, द्वाविडगुजेरो, कर्णाटगीड, द्वाविडगीड, छायावेवाउसी (!) मैरेबी, सिहलकामोद, देवाल, महुरि, छायानाट्टा इत्यख्टादशोपाङ्ग सम्प्रणेरागा।

ग्रयोपाञ्जेषाडवाः ।

महाराष्ट्र गूजरी, सम्भाइति, कुरूञ्जि, रामकी एते चत्वारी रागा रिहीना' हुज्जी यमहोना। मल्लारिगंहीन । भल्लाति रिहीनः इति सस्त रागा उपाञ्जधाडना।

ग्रथ उपाङ्गा ग्रोडुवा ।

छायानोड्डि, देशालगौड, तुरूष्कगोड, प्रनापवेलाउलि , पूर्णाट एते पञ्चरागा परिहीना । मल्लार गनिहीन पडेते उपाङ्गा शौडुवा । इत्युपाङ्गरागा एकनिशत् ।

अब (प्रठारह) उपाङ्ग राग (सम्पूर्ण) है। ये है सैन्धवदराटी, कुन्तलबराटी, प्रपस्थानवराटी, द्राविडवराटी, प्रतापवराटी, हतस्वर बराटी, तुरुक्ताडी, सौराष्ट्रगुजंरी, दक्षिणगुजेरी, द्राविडगुजेरी, कर्णाट मौड, द्राविडगौड, छायाबेलाउली, सैरबी, सिहलकासोद, देवाल, महृरि छायानाद्रा ।

ये ब्रठारह उपागराग सम्पूर्ण है।

बाडव उपाङ्गराग (सात) है, महाराष्ट्रगुर्वरी, खन्भाइति, क्रुर्हाञ्ज, श्रीर रामकी ये चारी ऋषप्रहीत, हञ्जी मध्यमहीत, मल्लारि गान्धारहीन श्रीर भल्लाति ऋषभहीत है। (ये सात पाडय उपागराग है।)

ब्रीडुन उपाङ्गराग (छ) है, छायानोडी, देशालगीड, पुरुष्क गौड, प्रतापवेलावली और पूर्णाट ये पांच ऋषभ-पञ्चम हीन है और सल्लार-निवाद हीन है। ये छ ब्रीडुब उपाग राग है। ये इकतीस उपाङ्ग राग है।

१. (क) पहीन।

२. मुङ्जे।

ध्रव त्रियाङ्गरागाः---

देवकी, तिनेत्रकी एती सम्पूर्ण रागी, स्वभावकी धैवतहीनः षाडव, एते त्रय कियाङ्गरागा ।

इत्येकोत्तरशतसंख्यापरिगणितरागमध्ये लोकव्यवहारसिद्धानां केषांचिद्रागाणां लक्षण वक्ष्ये ।

मध्यमादिश्व तोड्डी च वसन्तो भैरवस्तथा ॥५॥
श्रीराग गुद्धबङ्गालो मालवश्रीस्तयैव च।
वराटो गौडधन्यासी गुण्डको गुजेरो तथा ॥६॥
देशास्या देशिरित्येते रागाङ्गानि विदुर्बुधाः ।
वेलाउलिस्तथान्धाली शाम्बरी कलमञ्जरी ॥७॥
लिलता खसिका नाट्टा तथा शुद्धवराटिका ।
श्रीकण्डीति चेति भाषाङ्गा नव रागा प्रकीर्तिताः ॥६॥

षड्वराटयश्च रामकीः खम्मातिर्मल्हरस्तथा । चतुश्चतुश्च विज्ञेया गौड गुर्जर्य एव च ॥६॥

श्रव कियाङ्ग (नीन) है। देवकी और त्रिनेत्रकी ये सम्पूर्ण राग हैं, स्वभावकी धैवतहीन पाडव है। ये तीन कियाङ्ग राग हैं।

इन गिनाये हुए एक सौ एक रागों में लोकव्यवहारसिद्ध कुछ रागों के लक्षण कहुंगा।

मध्यमादि, तोडी, वसन्त, भैरव, श्रीराग, शुद्धवङ्गल, मालवश्री, वराटी. गौड, धन्यासो, गुण्डकी, गुजरी, देशाख्या ग्रीर देशी ये विद्वानों ने रागाञ्ज राग बताए हैं।

बेलाउलि, धान्धाली, शाम्बरी, कलमञ्जरी, ललिता, बसिका, नाष्ट्रा, खुद्धवराटिका, धीर श्रीकण्ठी ये नौ राग भाषाङ्ग हैं।

छः बराटियाँ, रामकी, खम्भाति, मल्हर, चार गौड, चार गुर्जेरी,

छाया नाष्ट्रा' च मल्हारिः' भलात श्चैव भेरवी। प्रमीरागा निगद्यन्त उपाङ्गानीति कोविदेः ॥१०॥ देवकी सा च विज्ञे या कियाङ्ग मिति कोविदेः । मध्यम ग्राम सम्भूता मध्यमांग्रमहान्विता ॥११॥ मध्यमादिरितिस्थाता गृङ्गीर विनिषुज्यते । एतामेव प्रयुज्यादौ वैणिका वांशिकास्तथा ॥१२॥ पश्चादिममत राग प्रकुर्वन्ति विचक्षणाः ।

ग्रङ्गं घाडव रागस्य सम्पूर्णश्च समस्वरः । षड्जतारस्व मन्द्रश्च न्यासांश म्रहमध्यमः । तोडि नाम प्रसिद्धोऽय रागो हवॅ प्रयुज्यते ॥१४॥ ॥ शनि तोडी ॥*

।। इति तोडी ॥*

छाया नाट्टा, मल्हारि, भलात और भैरवी ये विद्वानो ने उपाङ्ग राग कहे है।।४,१०॥

विद्वानों ने देवकी को कियाङ्ग कहा है।

सम्प्रमादि राग मध्यमग्रामज है, इसका बंश, ब्रह, न्यास, मध्यम है. इसका विनियोग ऋद्भार मे होता है। बीणावादक झीर वंशीवादक झारस्भ में इसी का प्रयोग करते के पश्चात् अभिमत राग का प्रयोग करते है।।११,१२।

॥ मध्यमादि सम्पूर्ण हुए ॥

तोडीराग थाब्वराग का प्रज्ञ हैं। सम्पूर्ण है, इसमें प्रयोज्य स्वरों का समान प्रयोग होता है, तारावधि यड्ज श्रीर मन्द्रावधि यड्ज है। इसका न्यास अंश श्रीर ग्रह स्वर मध्यम है इसका प्रयोग हमें में होता है ।।१३,१४।।

।। तोडी का निरूपण समाप्त ।।

१ (क) नारि । २ (क) मलहरि । ३ (क) तुलात । ४ क्वैद ।

पार्वदेवन जगदेक इतानि रागलक्षणानि अत्यक्षरं तथैव गृहीलानि, भरतकोषं कविमहोदयेन समुद्युतानि च । तान्यवलोषध्यास्थाभिस्तेषा पाठ संबोधित । परवापि ताराष्ट्रितानि सर्वाणि रागलक्षणानि जगदेक इतानीत्यवगन्तव्यम् ।

मार्गहिन्दोलरागाङ्गं हिन्दोलो वेति संज्ञितः ॥१४॥ ग्रंशे न्यासे ग्रहे षड्जः तस्य तारे तु मध्यमः । षड्जस्वरो भवेन्मन्द्रे ताडिलोरिधवर्जितः ॥१६॥ सपयोः कम्पितक्वेव ग्रङ्गारे विनियुज्यते । ग्रयमेव वसन्ताख्यः प्रोक्तो रागविवक्षणः ॥१७॥

।। इति वसन्तः ॥*

भिन्नषड्जसमुद्भूतो मन्यासो घांशभूषितः । समस्वरो रिपत्यक्तः प्रार्थने भैरवः स्मृतः ॥१८॥

श्रीरागष्टक्करागाङ्गं मतारो मन्द्रगस्तथा । रिपञ्चमविहीनोऽयं समशेषस्वराश्रयः ॥१६॥ षडजन्यासम्रह्माशक्च रसे वीरे प्रयज्यते ।

॥ इति श्रीराग ॥

बसन्त या हिन्दोल मार्गेहिन्दोल राग का अङ्ग है। इसका अंध, न्यास, ग्रह स्वर पड्ज है। ताराविध मध्यम है धौर मन्द्राविध पड्ज है। जो त डित है। यह ऋषभ-धैवतहीन है। पड्ज-यंवम कस्पित है। इसका विनियोग ऋज्कार में होता है।।१४, १७॥

।। वसन्त का निरूपण समाप्त ।।

भैरव का जन्म मिन्न षड्ज से हुआ है, इसका न्यास स्वर मध्यम तथा श्रंश स्वर धैवत है। ऋषभ-पञ्चम वर्जित है। प्रार्थना में इसका विनियोग होता है। ।।१८॥

।।भैरव का निरूपण समाप्त ।।

श्रीराग टक्कराग का ब्रङ्ग है, इसकी ताराविध मध्यम ब्रौर मन्द्र, गान्धार रिपम व पञ्चमहीन है। इसमें ब्रन्य स्वरों का प्रयोग समान है।।१६॥

इसका न्यास, ग्रह स्वर षड्ज है। इसका विनियोग वीर में होता है। श्रीराग का निरूपण समाप्त।।

 ⁽ख) पुस्तके प्राय एतायुक्ष एवपाठः । (क) पुस्तकस्य पाठ एतायुक्षीऽपि बहुचं लेखक प्रमाद द्वायत इति ।

शुद्धधाडवरागाङ्गं शुद्धबंगालसज्ञकः ॥२०॥ न्यासांशौ मध्यमेनास्य प्रहर्षे विनियोजनम् ।

(इति शुढक्कालः)*

मालवादेर्भवेदक्कं कैशिकस्य समस्वरा ॥२१॥
सम्पूर्णतारमम्द्रस्या पड्जस्वरिवराजिता ।
पड्जाशम्याससम्पन्ना मालवश्रीरियमता ॥२२॥
मूच्छंना शुद्धमध्या चेत्सैव हर्षपुरी मता ।
श्रृङ्कारे विनियोगः स्यादनयोरुभयोरिप ॥२३॥

(इति मालव श्री हर्षपुर्योः* विभाषा रागराजस्य^३ पञ्चमस्य वराटिका ।

घांशा षड्जग्रहन्यासा धतारा मन्द्रमध्यमा ॥२४॥ समश्रेषस्वरा^४ पूर्णा श्रुङ्गारे याष्टिकोदिता ।

(इति वराटी)*

शुद्धबङ्गाल राग शुद्धपाडव का ग्रङ्ग है। मध्यम इसका अंश और न्यास है, इसका विनियोग हवें में है।

(शुद्ध बङ्गाल का निरूपण समाप्त) मालवश्री मालव कैशिक का श्रङ्ग है ॥२१॥

नालयत्रा नालय कासक का श्रेश्च हारहा। इसमें स्वर समान है। घड्ज स्वर से विराजित है। यड्ज इसका अंश भौर न्यास है और मन्द्रतारावधि सम्पूर्ण है।।२२।।

(मालवश्री का निरूपण समाप्त)

यदि मालवश्री की भूच्छेना शुद्धमध्या हो जाये, तो वही हवंपुरी हो जाती है, इन दोनो का विनियोग श्रङ्कार मे होता है ॥२३॥ (हवंपुरी का निरूपण समाप्त)

याष्टिक के अनुसार बराटिका रागों के राजा पञ्चम की विभावा है, इसका अंश स्वर येवत तथा ग्रह और त्यास षड्ज है, तारावधि भैवत और मन्द्राविध मध्यम है, यह पूर्ण है और इसमें अन्य स्वरो का प्रयोग समान है।

(वराटिका का निरूपण समाप्त)

१. (ख) मत्रस्था। २. एथा पक्तिः (ख) पुस्तके नास्ति। ३. (ख) रागजस्य। ४. (क) समस्लेषस्वरा।

गौडः स्याट्टकरागाञ्ज निन्यासांशयहान्त्रितः ॥२४॥ वर्जितः पञ्चमेनैष रसे वीरे नियुज्यते । जातेश्चाञ्ज निषादिन्या वदन्ति न तु मे मतम् ॥२६॥ (इति गौडः)*

ग्रङ्गं घन्नासिका प्रोक्ता शुद्धकैशिकमध्यमे । पङ्जांश्रप्रहमन्यासा षाडवर्षमर्वाजता ॥२७॥ गाम्बारमध्यमस्वल्पा रसे वीरे नियुज्यते । देशीहिन्दोलराङ्ग्रे षड्जांशन्याससयुता ॥२८॥ रिधत्यक्ता गतारा च शैषेरान्दोलिता स्वरैः । पमन्द्रा हास्यस्युङ्गारे गेया गुण्डकृतिभैवेत् ॥२६॥

(इति गुण्ड कृतिः)*

गौड राग टक्क का अरङ्ग है, इसका त्यास, अंश और अह स्वर निषाद है, पंचम वर्षित है, बीर रस में इसका विनियोग है। कुछ लोग इसे निषादिनी जाति का अङ्ग कहते है, मैं उनसे असहमत हूं।।२४-२६।।

(गीड का निरूपण समाप्त)

धन्नासिका को शुद्धकैशिकमध्यम का अप्जू कहा गया है, इसका श्रंश, ग्रह पड्ज और न्यास मध्यम है, यह ऋषभविजत वाडव है, गान्धार श्रीर मध्यम इसमे श्रल्प है, वीररस में इसका विनियोग होता है।

(धनासिका का निरूपण समाप्त)

गुण्डकृति देशीहिन्दोलराग का अङ्ग है. इसमें अंश और न्यास स्वर पड्ज है। ऋषभ-वैवत इसमें वर्जित है। इसकी ताराविध गान्धार और मन्द्राविध पञ्चम है, शेव स्वर आन्दोलित है, हास्य और ऋङ्गार में इसका विनियोग होता है॥२६॥

(गुण्डकृति का निरूपण समाप्त)

१. (स) रागेरङ्गनिषादिन्या। २. (स) देशि।

रिग्रहांशा च मन्यासा जाता पञ्चमषाडवात् । ममन्द्रा च नितारा च रिघाभ्यामपि भूयसी ॥३०॥ गुजेरी ताडिता पूर्णा श्वङ्कारे विनियुज्यते ।

(इति मुकंरी)*
गान्धारपञ्चमाञ्जाता देशास्था चर्षमीज्भिता ।।।३१॥
प्रहांशन्याससम्बद्धगान्धारा च समस्वरा।
निवादमन्द्रा गान्धारस्कुरितंन विराजिता।।३२॥
वाडवा यदि रागाङ्क बेशे पूर्णेव दुश्यते।

स्यादङ्ग रेवगुप्तस्य गमन्द्रा पञ्चमोज्भिता ॥३३॥ ऋषभांत्रग्रहन्यासा तथा समिनभूयसी । देशी नाम प्रयोक्तव्यो रागोऽय करुणे रसे ॥३४॥ (इति देशी **

(इतिदेशास्या)*

गुर्जरी का जन्म पञ्चमपाडन राग से हुमा है, इसका मह मीर सबा ऋषम है, त्यास सम्बम है, मन्द्रावधि मध्यम सीर तारावधि निवाद, है, श्यम-पैयत इसमें बहुल है, यह ताडिता शीर पृणे हैं श्रृङ्कार में इसका विनियोग होता है।

॥ इति रागाङ्गानि ॥

(गुर्जरी का निरूपण समाप्त)

देशास्या का जनक राग गान्धारपञ्चम है। इसमें ऋपभ नही है। पह, न्यान और म्रश स्वर गान्धार है। समस्त न्वरो का समान प्रयोग है। इसकी मण्डाचि नियाद गान्धार स्कृरित है। यह षाडव है, परन्तु वंग्र में पूर्ण जैसी दिखाई देनी है।।३०,२२॥

(देशास्या का निरूपण समान्त)

देशी रेवगुप्त का अङ्ग है । इसकी मन्द्राविध गान्धार है। इसमें पञ्चम नही है । इसका अका, ग्रह और न्यास ऋषभ है। इसमें खड्ज, मध्यम और निषाद बहुल है.करुण रस में यह प्रयोज्य है।

(देशी का निरूपण समाप्ता) (ये रागाङ्क हए)

१. (स) ऋषभेण विविज्ञिता। २ (स) सम्बन्धः। ३. प्रयोक्तस्याः।

(ब्रथ भाषाङ्गाः)

ककुभप्रभवा भाषा या प्रोक्ता भोगवर्द्धनी । वेलाउली तदङ्कं स्यात्परिपूर्णसमस्वरा ॥३५॥ धैवतांशग्रहत्यासा घतारा मन्द्रमध्यमा ।

षड्जेन कम्पिता सेयं विप्रलम्भे प्रयुज्यते ॥३६॥

(इति वेलाउली)*

विभाषान्धालिका प्रोक्ता जाता मालवपञ्चमात् । बृहती दाक्षिणात्योत्था गहीना मध्यमांशका ॥३७॥ षाडवा षड्जमन्द्रा च निधाल्या मन्द्रमध्यभाक् । पचमन्याससंयुक्ता रसे वीरे नियज्यते ॥३६॥

(इत्यान्धालिका)*

ककुभोत्थरगस्त्यङ्गंधान्ता मध्यग्रहाशका । गतारा स्वल्पषड्जा च पञ्चमेन विवर्जिता ॥३६॥

श्रव भाषाञ्जों का वर्णन करते हैं। वेलाउली ककुओत्पन्न भाषा भोग वढेंनी का श्रञ्ज है। यह सम्पूर्ण श्रीर समस्वर है। इसमें बङ्ज कम्पित है, पेवत इसका श्रश्च ग्रह शौर न्यास है, तारावधि धैवत श्रीर मन्द्रावधि मध्यम है, विश्वसम्भ (श्रञ्जार) में यह प्रयोज्य है।

(वेलाउलि का निरूपण समाप्त ।)

म्रान्वालिका मालवपञ्चम की विभाषा है, वृहती दाक्षिणात्या से उत्थित है। गान्धार-वर्जित पाडव ग्रीर मध्यमांश है। इसका संचार मन्द्र ग्रीर मध्य स्थान में है, मन्द्राविष यङ्ज है और निषाद-वैवत ग्रस्प हैं, न्यास स्वर पञ्चम है, वीर रस में इसका विनियोग होता है।

(मान्धालिका का निरूपण समाप्त)

साम्बरी ककुभ से उत्पन्न रगन्ती का अक्रू है। श्रंश और मध्यम तथा न्यास स्वर वैवत है। ताराविध गान्यार और मन्द्राविध

१. मुक्तारे।

ममन्द्रा शाम्बरी' ज्ञेया कर्तव्या करुणे रसे ।
(इति शाम्बरी) *
गमन्द्रा घरितारा च ग्रहांशम्यास'पञ्चमा ॥४०॥
गमन्द्रा चान्यतेषा च पोक्सा पश्चममञ्जरी ।

गमाढ्या चाल्पशेषा च प्रोक्ता प्रथममञ्जरी । पञ्चमादियंतस्तस्मादुत्सवे विनियुज्यते ॥४१॥ (प्रथम मञ्जरी)*

लिता टक्करागात्तु तदङ्ग^{े ल}िता मता । षड्जाशन्याससयुक्ता ज्ञेया वीरे रिपोजिक्षता ॥४२॥ (इति लिला)*

मग्रहस्याससयुक्ता सांशा तारेण वर्जिता। समस्वरा रिपत्यक्ता समन्द्रा खसिका भवेत्।।४३॥ गान्धारादिर्यतस्तसमात् सङ्कीर्णा करुणे भवेत्।
(इति खसिका)४

मध्यम है। पड्ज ग्रत्प तथा पञ्चम वर्जित है, करुण रस में प्रयोज्य है।
(क्षाम्बरी का निरूपण समाप्त)

प्रथममञ्जरी में मन्द्राविध गान्धार,नाराविधिधैवन या ऋषभ, ग्रह, श्रंश और न्यास पञ्चम, गान्धार-मध्यम का बाहुत्य, तथा श्रवशिष्ट स्वरों की अल्पता है। पञ्चम ग्रह होने के कारण उत्सव श्रादि में इसका विनि-योग है। 13 ४-४ १।।

(प्रथम मजरी का निरूपण समाप्त)

लिता टक्क रागसे उत्पन्न (रागाङ्ग) लितता का ग्रङ्ग है। ऋषभ-पंचम वर्जित है. अश और त्यास पडज है, वीरस में प्रयोज्य है।।४२।।

(ललिता का निरूपण समाप्त)

स्रिका में ग्रह भीर न्यास मध्यम, अंश षड्ज, तारस्थानहीनता, समस्वरता, ऋषभ-पञ्चम का वर्जन, मन्द्रावधि षड्ज है।।४३॥

गान्धारादि (¹) होने के कारण यह करुण रस में विनियोज्य है। (खसिका का निरूपण समाप्ता)

१ सावधि, (ख) सायरी ।२. (ख) बहाशस्य सपंत्रमा । ३. रङ्गंतु । ४. (क) घशिक्षा ४. (क) कौषिकी ।

वड्जांशा सग्रहन्यासा' सम्पूर्णा च समस्वरा ॥४४॥ तथा तारा चमन्द्रा च यावद् गान्धारपञ्चमौ । भाषा या पञ्जरी तस्या अङ्गं नाट्टाभिषीयते ॥४५॥ (इति नाट्टा)*

सौबीरकस्य सौबीरी मुख्यभाषा च या स्मृता । तदक्कं मोदकी नाम्ना सैव सुद्धा वराटिका ॥४६॥ प्रस्याः न्यासांशयोः षड्जः प्रचुरा धनिपास्तथा । सम्पूर्णेयं रसे शान्ते प्रयोगोऽस्याः प्रदर्श्यते ॥४७॥ (इति शुद्धवराटी)*

श्रीकण्डी भिन्नषड्जोत्या गहीना षाडवा भवेत्। धांशन्यासग्रहोपेता तथा धैवतभूयसी ॥४८॥ गुर्वाज्ञा करणे यस्या विनियोग. प्रकीर्तितः। (इति श्रीकण्डी)*

।। इति भाषाङ्गरागा ।।

नाट्टा पिञ्जरी भाषा का अङ्ग है, इसमें अंश, ग्रह धौर न्यास षड्ज है. यह सम्पूर्ण और समस्वर है, ताराविध गान्धार भीर मन्द्राविध पञ्चम है।।४४,४५॥

(नाट्टा का निरूपण समाप्त ।)

शुद्ध वराटो सौबोर की मुख्य भाषा मोदकी ही है। इसका अंश और न्यास पड्ज है और इसमें बैबत, निषाद और पञ्चम की प्रमुखता है, यह सम्पूर्ण है, और शान्त रस में प्रयोज्य है।

(शुद्ध बराटी का निरूपण समाप्त ।) श्रीकण्ठी का जन्म भिन्न पड्ज से हुमा है, यह गान्धारहीन पाडब है, इसका मंद्रा, मुद्द और न्यास बेवत है और धेवत इसमें बहुल है, गुरु की भाजा के पालन में यह प्रयोज्य हैं।

(श्रीकब्डी का निरूपण समाप्त ।) ।। ये भाषाङ्क राग हुए।।

१. (ल) च ग्रहन्यासा। २. (ल) यः। ३. (ख) सौबीर। ४. सम्पूर्णोऽयं।

श्रयोपाङ्गरागाः —

भाषा स्थात्सैन्धवीनामा जाता मालवकैशिकात् ॥४९॥ तदङ्गं गायकेर्जेया सैन्धवीय वराटिका । षड्जांशन्याससंयुक्ता ममन्द्रा सधकम्पिता ॥५०॥ गान्धारबहुला तज्जै. श्रृङ्कारे विनियुज्यते ।

(इति सैन्धववराटी)*

निषादबहुला पूर्णा षड्जमन्द्रा च ताडिता ॥ १ १॥ पूर्वोक्तविनियोगा च रेस्यात् कुन्तलवराटिका ।

मनिधेषु भवेन्मन्द्रा षड्जाशन्यासराजिता ॥५२॥ परिपूर्णा स्वरैस्सर्वेरवस्थानवराटिका ।

(इत्यवस्थानवराटी)*

(इति कुन्तलवराटी)

(भव उपाङ्क राग ये हैं) ---

सैन्धववराटी मालवर्कीशक की भाषा सैन्धवी का श्रङ्ग है. इसमें श्रंश श्रीर न्यास वड्ज. मन्द्राविध मध्यम, वड्ज-बैबत कम्पित, गान्धार बहुल है श्रीर यह श्रृङ्कार रस में प्रयोज्य है ॥४९-४०॥

(सैन्धववराटी का निरूपण समाप्त)

कुन्तलवराटी पूर्ण है, इसमें निषाद बहुल है, मन्द्राविध पड्ज तथा ताडित गमक से युक्त है। पूर्ववत् (श्रृङ्कार मे) प्रयोज्य है।।४१॥

(कुन्तलवराटी का निरूपण समाप्त)

म्रवस्थान वराटी सम्पूर्ण है, इसकी मन्द्राविध मध्यम, निषाद या र्षेवत है, म्रंश भीर न्यास षड्ज है ॥५२॥

(अवस्थानवराटी का निरूपण समाप्त)

१. (क) विनियोगे च।

कम्पिता पञ्चमे षड्जे धमन्द्रा मूरिपञ्चमा ॥५३॥ षड्जांशन्याससम्पन्ना स्यात्प्रतापवराटिका ।

Ĕ16

(इति प्रतापवराटी)* मन्द्रधैवतसंयुक्ता पञ्चमाहतकस्पिता ।।५४॥

षड्जांशम्याससम्पन्ना हतस्वरवराटिका ।

(इति हतस्वरवराटी)*

ऋषभे स्फुरिता पूर्णा^२ निमन्द्रेण विराजिता ॥ ४४॥ षड्जांशम्याससंयुक्ता द्राविडीयं वराटिका ।

पङ्जासन्याससमुक्ता प्रापकाय पराहिका । (इति द्वाविडवराटी)

टक्क रागोद्भवा भाषा योक्ता कोलाहलाख्यया ॥४६॥
तदुपाङ्क रामकृतिः पड्जन्यासोपशोभिता ।
मध्यमाशपत्रीनाच रसे वीरे नियज्यते ॥४७॥

(इति रामकृतिः)*

प्रतापवराटी का अंश और न्यास षड्ज है, पञ्चम और षड्ज इसमें कम्पित है, मन्द्रावधिषड्ज, पञ्चम का बाहत्य है।।१३॥

(प्रतापवराटी का निरूपण समाप्त)

हतस्वरवराटी का अश और न्यास षड्ज है. भैवत मन्द्रावधि है, पञ्चम ग्राहत और कम्पित है।।४४।।

(हतस्वर वराटी का निरूपण समाप्त)

द्वाविडवराटी में अंश और न्यास षड्ज है, इसमे स्फुरित ऋषभ है, यह पूर्ण है और इसकी मन्द्राविध निषाद है।।४४॥

(द्राविडवराटी का निरूपण समाप्त)

रामकृति टक्क राग से उत्पन्स कोलाहलभाषा का सङ्ग है। इसका अञ्चल्दर मध्यम ग्रौर न्यासस्वर यड्ज है। इसमें पचमस्वर बजित है ग्रौर वीररस में इसका विनियोग होता है।।४६-४७।।

(रामकृति का निरूपण समाप्त)

रै. (क) वड्जन्यासमुत्पन्ना । २. (क) भूरि, (स) भूरि । ३. (क) ठक्क । ४. (क) वीर्यों ।

षाडवा ककुभोद्भूता'घांश'न्याससर्वाजता । मध्यमेन निषादेन विहितान्दोलन^३ कमा ॥५८॥ श्टङ्कारे विप्रलस्भास्ये गेया कम्भातिका मता ।

(इति कम्भाती)*
लक्षण विनियोगश्च भवेन्मल्लारिकासमम् ।।५६॥
मल्हारे च गनित्यागः पंचमस्फुरणं भवेत् ।
(इति मल्हारः)

स्वस्थाने ताडितः पूर्णः षड्जांशन्याससंयुतः ॥६०॥ प्रोक्तः कर्णाटगौडोऽय प्रतापपृथिवीभुजा ।

(इति कर्णाट गौड)*
षड्जेनान्दोलितः सांश्चः पञ्चमर्षेभवजितः ॥६१॥
देशवालास्थगौडोऽयमौडुवः परिकीतितः ।
(इति देशवालगौडः)

कम्भातिका का जम्म ककुभ से हुमा है, इसका अंश मीर त्यास भैवत है भीर इसमे पड़ज वीजत है, मध्यम और नियाद म्रान्दीलित है। विश्रतम्भ (शुक्कार) में विनियोग होता है।।४८।।

(कम्भातिका का निरूपण समाप्त) मल्हार का लक्षण श्रीर विनियोग मल्हारी के समान है। मल्हार में गान्धार श्रीर निषाद का परित्याग श्रीर पचम स्फ्रित है।।४६॥

(मल्हार का निरूपण समाप्त) कर्णाटगोड स्वस्थान में ताजित घोर पूर्ण है। इसका ग्रद्धा श्रीर न्यास पड्ज है, यह लक्षण प्रतापनकर्ती (जगदेकमल्ल) ने किया है।।६०।। (कर्णाटगोड का निरूपण समाप्त ।)

देशवालगौड ब्रोडुव है ऋषभ-पत्तम वर्जित हैं, ब्रंश स्वरषड्ज है जो ब्रान्दोलित है।।६१।।

(देशवालगौड का निरूपण समाप्त)

१. (ख) ककुबोदभूता। २ (ख) वाशा सपविवर्जिता। ३. (ख) निहितान्दोलनकमा। ४. (ख) साङ्का

स्फुरितः पञ्चमे बङ्जे गान्धारे तिरिपुस्तथा ॥६२॥ 'निन्यासांशसमायुक्तो द्राविडोगौड उच्यते । (इति दाविडगीडः)*

रिपहीनो निषादान्तो गान्घारबहुलस्तथा ॥६३॥ मन्द्रेण ताडितः प्रोक्तस्तुरुष्को गौड ईरितः। (इति तुरुष्कगौडः)*

गुर्जरी स्यान्महाराष्ट्री रिन्यांसाशताडिता ॥६४॥ निमन्द्रा च पहीनेयमुत्सवे विनियज्यते । (इति महाराष्ट्रगुर्जरी) *

मतञ्जस्य मते प्रोक्ता भाषा मालवपञ्चमे ॥६५॥ सौराष्ट्रिका तदञ्जस्यात् पन्यासाँशा च षाडवा । ख्यातासौराष्ट्रिकालोके ऋषभेण विवर्जिता ॥६६॥ ऋषभेण कम्पिता पूर्ण सौराष्ट्रीगुर्जरी भवेत् । (इति सौराष्ट्रगूर्जरी)*

द्राविडगौड में ग्रंश भीर न्यास निवाद, पंचम तथा वडज स्फरित. गान्धार तिरिपुयुक्त है ।।६२।।

(द्राविडगौड का निरूपण समाप्त)

तुरूष्कगौड मे न्यासस्वर निषाद, ऋषभ-पंचम का वर्जन, गान्धार का बाहल्य, तथा मन्द्र में ताडित है ॥६३॥

(तरूष्कगौड का निरूपण समाप्त)

महाराष्ट्रगुर्जरी में अश और न्यास ऋषभ है, जो ताडित है, मन्द्राविध निषाद है भौर पचम वर्जित है।।६४॥

(महाराष्ट्रगुजेरी का निरूपण समाप्त)

मतङ्क के मत के अनुसार सौराष्ट्रगुर्जरी मालवपंचम की भाषा सौराष्ट्रिका का अञ्ज है। सौराष्ट्रिका में ऋषभ वर्जित है। किन्त सौराष्ट्र गुर्जरी में ऋषभ कम्पित है भीर यह पूर्ण है।।६५ ६६।। (सौराष्ट्रगर्जरी का निरूपण समाप्त ।)

१. निरथासांश । २. (क) तौरुको । ३. धूर्जरी । ४. एवँव पक्तिः (क), (ख) पुस्तकयो: ।

मध्यमे कम्पिता पूर्णा स्वरेष्वन्येषु ताडिता ॥६७॥
सुरीतिगूं जरी गाने रम्या दक्षिणदेशजा ।
(इति विक्षण गर्जरी)*

ऋषभे मन्द्रताराभ्यां स्फुरिता द्राविडी भवेत् ॥६८॥ गुजरी परिपूर्णेयं प्रहर्षे विनियुज्यते ।

(इति द्राविडगुजंरी)*

उपाङ्गत्वेन नाट्टाया व्हायानाट्टा समीरिता ॥६६॥ षड्जाशन्याससम्पन्ना गनिभ्यां कम्पिता तथा ॥ पमन्द्रा परिपूर्णा च रसे वीरे नियुज्यते ॥७०॥ (इति छायानाट्टा) व

भ्रान्थालिकाङ्गं मल्हारी मध्यमांशग्रहान्विता । रिमन्द्रा च गशून्या च श्रङ्कारे ताडितस्वरा॥७१॥ (इति मल्हारी)*

दक्षिणपुजरी पूर्ण है, इसमे मध्यम कम्पित तथा मन्य स्वर ताडित है, गाने में दक्षिणगुजरी सुरीतिमय भीर मनोहर है ।।६७।। (दक्षिण गुजरी का निरूपण समाप्त ।)

द्राविडगुर्जरी सम्पूर्ण है, मन्द्र भीर तार ऋपभ स्फुरित है। इसका विनियोग हर्ष में होता है।।६८॥

(द्राविडगुजेरी का निरूपण समाप्त)

छायानाष्ट्रा नाष्ट्रा का उपाज है. इसमें अश और न्यास षड्ज है. मन्द्राविध पचम, गान्धार-निपाद कम्पित है, यह पूर्ण है और बीर रस में इसका विनियोग होता है।॥६६-७०॥

(छायानाट्टा का निरूपण समाप्त)

मल्हारी आन्धालिका का अङ्ग है, इसका अंश और ग्रह मध्यम है, सन्द्रावधि ऋषभ है। इसमे गान्धार बजित है, प्रबोज्य स्वर ताडित गमक से युक्त हैं और इसका विनियोग श्रृङ्गार मे होता है॥७१॥

(मल्हारी का निरूपण समाप्त)

१. शून्येषु । २. (क) घूर्जरी । ३. (क) नष्टाया ।

हिन्दोलकस्यच्छेवाटी'माषा अल्लातिका भवेत् । षड्जांशकग्रहत्यासा रिहीना षाडवा भवेत् ॥७२॥ षमन्द्रोपाङ्गरूपा च प्रृंगारे विनियुज्यते ।

(इति भल्लातिका)*
भिन्नषङ्जसमुद्भूता धांशन्यासप्रहान्विता ॥७३॥
समशेषस्वरा पूर्णा गाञ्चिता तारमन्द्रयोः ।
देवादिप्रार्थनायां तु भैरवी विनियुज्यते ॥७४॥
हित भैरवी)*

(क्षत नरपा) (इत्युपाङ्गरागाः ॥ (म्रय देवकी कियाङ्गरागः³) समन्द्रा मध्यमव्याप्ता षड्ज न्यासांशघग्रहा ॥

समस्वरा निमन्द्रा च वीरे देवकृति र्भवेत् ॥७५॥
(इति देवकीकियाक्टराग)*

क्षेत्राटी हिन्दोल की भाषा है, यही भल्लातिका है। यह उपांग है। इसमें भंग, यह भीर न्यास पड्ज है ऋषभ वर्जित है, पाडव है, भैवत सन्द्रावधि है, ऋष्कार मे विनियोग है।।७२।।

(भल्लातिका का निरूपण समाप्त)

भैरवी का जन्म भिन्न षड्ज से हुमा है, इसका ब्रग्न, न्यास, ग्रह धैवत है, अन्य स्वर समपरिमाण है, पूर्ण है, मन्द्रावधि क्रोर तारावधि गान्धार है, इसका विनियोग देवता इत्यादि की प्रार्थना मे होता है ।।७३, ७४।।

(भैरवी का निरूपण समाप्त ।)

(ये उपाङ्ग राग हुए)

स्रव किया ज़ूराग देवकी का निरूपण किया जाता है— इसमें भ्यास भीर अंश पड्ज, ग्रहस्वर धेवत, मन्द्रावधि पड्ज, ताराविष मध्यम है, सभी स्वर समान हैं, वीर रस में विनियोग है, मन्द्रा-विष निषाद भी है।।॥४॥

(देवकी का निरूपण समाप्त)

१. (क) देवाटि । २ (ख) गान्विता ।

३. रागस्च्यां पठित एव रागः, लक्षणमस्यादशं इये नास्ति, भरतकोषे जगवेकोक्तोऽत्र सञ्जूषुतः ।

सामान्यञ्चं विशेषच द्विविञ्घं रागलक्षणम् । चतुर्विघं च सामान्यं विशेष चांशकादिकम् ॥७६॥

यस्मिन् वसति रागध्च यस्माच्चैव प्रवर्तते । नेता च तारमन्द्राणां योऽत्यर्थमुपलभ्यते ॥७७॥ प्रहापन्यासविन्याससंन्यासन्यासगोचरः ।

परिवार्य्य स्थितो यश्च सोऽशः स्याद्दश लक्षण ॥७८॥

्हत्यशलक्षणम्। इति श्रीमदभयचन्द्रमुनोद्धचरणकमलमधुकरायितमस्तक महादेवार्य्यीशय्यस्वरविमलविद्यापुत्रसम्य-क्त्व चूडामणि भरतभाण्डीक भागाप्रवीण श्रुतिज्ञानचक्रबीतसङ्गोतरत्नाकर

नामधेय पार्श्वदेविवरित्रते सङ्कीत समयसारे चतुर्थाधिकरणम् ।

राग का लक्षण दो प्रकार का है, सामान्य और विशेष। सामान्य चार प्रकार का है और अश इत्यादि विशेष लक्षण है।।७६।।

भंश लक्षण यह है जिसमें राग का निवास हो, राग जिससे प्रवृत्त होता है, जो तार एक मन्द्र भवधि का निवासक है, जो बहुलतम रूप में उपलब्ध होता है, यह, अपन्यास, वित्यास, सन्यास और न्यास के साथ जिसकी सगित है, जो राग को चेर कर स्थित होता है, वह 'भंश' स्वर है ॥७७-७॥॥

(ग्रंश लक्षण समाप्त)

श्रीमद् श्रभयचन्द्र मुनीन्द्र के चरणकमलों में मध्करवत् आचरण करने वाले मस्तक से युक्त महादेव श्रार्थ के शिष्य, स्वरिवद्या से युक्त, सम्यवस्वचुड्यामणि, भरतभाष्डीक भागाप्रवीण, श्रुतिज्ञानचक्रवर्ती, सञ्जीताकर नाम वाले पाश्वेदेव द्वारा विरचित सङ्गीतसमयसार का चतुर्यं प्रधिकरण पूर्ण हुग्रा।

(चतुर्थ अधिकरण समाप्त हुआ)

१. (ख) मितो ।

पंचममधिकरणम्

ग्रथ निवद्यप्रवन्धाः —

भ्रथ वक्ष्ये निबद्धञ्च' विभागेन समासतः । प्रबन्धं रूपकं वस्तु निबद्धस्याभिधात्रयम्र ॥१॥

प्रबन्धः ---

चतुर्भिर्धातुभिः षड्भिरुचार्ज्जः यैस्मात् प्रबध्यते । तस्मात् प्रबन्धः कथितो गीतलक्षणकोविदैः ॥२॥ रागाद्यारोपणे हेतुः स्यादस्मिन् रूपकाभिषा । उद्ग्राहाद्यास्तु चत्वारः स्वरादीनि च षट् तथा ॥३॥ वसन्ति यत्र स^र जेयः प्रबन्धो वस्तु संज्ञया ।

उद्ग्राह —

.... स्रादाबुद्ग्राह्मते गीतं येनोद्ग्राह[.] प्रकीर्तितः ¹ ॥४॥

श्रव निबद्धप्रबन्ध कहते है ।

अब मैं विभागानुसार संक्षेप पूर्वक निवद्ध अवस्थ कहूंगा। इसके तीन नाम है, प्रवन्ध, रूपक और वस्तु। चार धातुओं और छः अक्लों से प्रवद्ध होने के कारण इसे 'प्रवन्ध' कहा जाता है।। १,२॥

राग इत्यादि के धारोपण में हेतु होने के कारण इसका नाम 'रूपक' है। उद्ग्राह इत्यादि चार (घातु) ग्रीर स्वर इत्यादि छः (ग्रङ्गों) का वासस्थान होने के कारण इसे 'वस्तु' कहते हैं। ग्रारम्भ में गीत के उद्ग्रहण (उठाकर ग्रहण करने) के कारण उद्ग्राह का नाम 'उद्ग्राह' है।।३,४।।

१. (स) निषिष्यं च। २ (क) भिषाश्रयम् । ३. (क) भागै ।

४. (क) रोमाखारोपणान्नेतु., (ख) रामान्वारोकणा ।

५. (क) संज्ञेयः । ६.(क) सकीर्तितः ।

मेलापकः---

प्रोक्तो मेलापकस्तज्ज्ञेरुद्ग्राहध्रुवमेलनात् ।

ध्रुवः —

प्रबन्धेषु ध्रुवत्वेन ध्रुव इत्यभिधीयते ॥५॥

माभोगः —

स्वयं यत्र प्रबन्धे स्यादनेनैव' च पूरणा । ग्राभोगः कथितस्तेन गीतिवद्याविशारदैः ॥६॥ ध्रुवस्याभोगकरणादाभोग इति केचन ।

वर्ज्यधातव ---

वज्यौँ मेलापका भोगौ प्रवन्धेषु द्विधातुषु ॥७॥ त्रिधातुकप्रवन्धेषुतयोरैकं विवर्जयेत् । एलाया^{*} ढेक्क्किमायां च स्यादन्ते नियमादिमौ ॥≒॥≉ म्रन्येषु च प्रवन्धेषु स्यातां गीतानुसारत । म्राङ्गुत्वमेषां केतापि यदुक्त तक्ष साम्प्रतम् ॥६॥

उद्ग्राह और ध्रुव को मिलाने वाला होने के कारण 'मेलापक' अन्वयं है। प्रवन्धों में ध्रुव (अविलोपी) होने के कारण 'ध्रुव' की ग्रन्वयंता है, प्रवच्ये में पूर्णता का कारण होने के कारण आभोग का नाम 'आभोग' है।।५-६।। कुछ लोगों के अनुसार ध्रव की परिसमास्ति या परिप्रणंता के कारण

इसे आभोग कहा जाता है।

डिधातु प्रवन्धों में मेलापक और आभोग और त्रिधातु प्रवन्धों में इन दोनों में से एक वर्षित कर देना चाहिये। एला और ढेव्क्किका में इन दोनों का मस्तित्व अनिवार्य है।।७,८।।

अन्य प्रबन्धों में ये गीतानुसार होना चाहिये। कुछ लोगो ने उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग इन को अङ्ग कहा है, परन्तु यह ठीक नहीं।। ६, १।।

१ (क) यदनेनैव पूरणा, (ख) अनेनैव प्रपूरणम्।

२ (ख) येलाया ढेकिकाया ।

मण्डावेते श्लोकास्सिह्भूपालोद्षृत पाठानुसारः । संबोधिता. ।

देहस्यैवं निबद्धस्य घारणाद् घातवस्तिवमे । त्रिविष प्रवन्धाः —

द्विधातुर्वा त्रिधातुर्वा चतुर्धातुरवापि वा ॥१०॥ प्रबन्धास्त्रिविधा ज्ञेया गीतविद्याविद्यारदैः । मञ्जानि तु प्रबन्धानां वदामः साम्प्रतं कमातु ॥११॥

ग्रङ्गानि –

नेत्रे करौ च पादौ च षङ्क्षानि यथा तनोः ।
स्वरः पदञ्च विरुदं पाटतेनौ तथा परौ ॥१२॥
तालस्वेति प्रबन्धानां षड्क्ष्मानि विदुर्द्धं वाः ।
मङ्गलद्योतकस्तेनः पदमर्थप्रकाशकम् ॥१३॥
तस्मादङ्गल्यमनयोनेत्रवद्यतिपादितम् ।
कराभ्यामुदयो यस्मात् पाटस्य विरुद्धं च ॥१४॥
तेन कार्य्यं कारणवदुपचारो निरूपितः ।
स्याद् गति र्मवत्तानाभ्यां पादाभ्यामिव देहिन. ॥१५॥
प्रबन्धस्य यतस्तस्मादुक्त पादास्यामिव देहिन. ॥१५॥

'निबद्ध' के देह को इस प्रकार धारण करने के कारण ये 'धातु' हैं। गीतिविद्याविद्यारदों को वे निबद्ध प्रवत्य द्विषातु, त्रिधातु स्रयवा चतुर्धात् समभने चाहिये।।१०।।

अब प्रबन्धों के अङ्ग कम से कहते हैं।।११।।

जिस प्रकार मानव शरीर में नेव, हाम और चरण, ये छ मङ्ग हैं, उसी
प्रकार, म्बर, पढ़, विरुद्ध, पाट, तेन भीर ताल, ये प्रबन्धों के छः झङ्ग
बुढिमान लोग जानते हैं। 'तेन' मङ्गलवाची हैं, 'पद' (सार्षक शब्द) मर्ष का प्रकाशक है, इसीलए 'तेन' और 'पद' प्रवन्ध के नेव की तरह झङ्ग हैं।
'पाट' भीर 'विरुद्ध' का जदय हार्यों से होता है. इसीलिए ये प्रवन्ध के हाथ हैं, यह संज्ञा कार्य आर्थ में कारण के प्रयोग की भीति भीपचारिक है। जिस प्रकार मनुष्य की गति चरणों के द्वारा होती है, उसी प्रकार 'प्रवन्ध' की गति का कारण होने के कारण 'स्वर' भीर 'ताल' प्रवन्ध के चरण हैं।

१. (क) नेत्राकरी च । २. (क) पाठ । ३. (क), (ख) पादस्य ।

४. (क) स्याद्गतस्वर ।

एतेवां लक्षणमभिवीयते— स्वयं यो राजते नादः स्वरः स परिकीर्तितः ॥१६॥ पदं' स्वराधिकरणमर्थस्य प्रतिपादकम् । संस्कृतं प्राकृतञ्चैवमपभ्रशमिति त्रिद्या ॥१७॥ विक्शब्दो विरुद्धार्थो महाराष्ट्रे प्रसिद्धितः । परेभ्यस्तत्प्रदानेन विरुद्द सूरिभिः स्मृतम् ॥१८॥ तद्वीररससयुक्तः द्विषामुद्वेगदायकम् । स्सान्तरेण यद् युक्तं तत्पद विरुद्द स्मृतम् ॥१९॥ सन्दोहो वाद्यवर्णानां पाटस्तालानुगो भवेत् । तेन्नतेन्नति यो वर्णो गीतेऽसी तेन्नको पतः ॥२०॥ तालः कालिकयामानं ज्ञे य संगीतसगतः ।

भ्रब इनका लक्षण कहा जाता है। जो स्वय राजित (शोभित) होता है, यह नाद 'स्वर' है।।१२-१६।।

'पद' झर्च का प्रतिपादक और स्वर का आधार है। वह 'पद' तीन प्रकार का है, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्र शा।१७॥

विरुद्ध के मर्थ में 'विरु' शब्द महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है, शत्रुम्रों को (विरोध) प्रदान करने के कारण विद्वानों ने उसे विरुद' कहा है ॥१८॥

वह वीर रस संयुक्त होने पर शत्रुओं को उद्वेग देता है। धन्य रस से युक्त पद भी 'विरुद' कहलाता है।।१६।।

वाद्याक्षरों का समूह 'पाट' तालानुवर्ती होता है।

'तेल, तेल' इत्यादि वर्ण गीत मे तेलक कहलाता है, सङ्गीत के सङ्ग से काल और किया नाम ताल है ॥२०॥ ये प्रबन्ध के श्रंग हुए।

१. (क) परं। २ (क) विदु शब्दाविदद्धार्थो । ३. (क) विद्यस्सुरिभिः स्मृतः । ४. (क) पादन्तरे यसुक्तं । ५. (क) सन्वेहो । ६. (ख) ये वर्णा।

ग्रव प्रकृत्वकातयः-

चम्पूरच कविता सेना' नीतिरचैव' तथा' श्रुतिः ॥२१॥ द्व्यङ्गादीनां प्रबन्धानां जातयः पञ्च कीर्तिताः ।

गणपद्ममयी चम्पू ^भ, शक्तिव्युत्पत्तिरस्यासः कविता, हस्त्यस्व-रथपदातयः सेना । भेदः परीक्षा विश्वासो वचनं मित्रकार्य्याणि नीतिः, शिक्षाज्यौतिषनिच्कतिमध्दष्क्रन्दोच्याकरणानि श्रृतिः ।

तारावल्यादयः' संज्ञा जातीनां कैष्टिचदीरिताः ॥२२॥* ग्रंगसंख्यावियोगात्तु नैवैताः सम्मता मम । (इति प्रवन्धजातयः)

त्रिविधप्रबन्धाः —

म्रनियुं क्तारच नियुं क्ता तथा चैवोभयात्मकाः" ॥२३॥ प्रबत्धास्त्रिविधास्ते च प्रोक्ता गीतविद्यारदैः । भ्रंगमात्रेण' विहिता स्रनियुं क्ता इतीरिताः । छन्दस्तालादि' नियमान्त्रियं क्तास्ते निरूपिताः ॥२४॥

(ये प्रबन्ध अंग हुए)

भव प्रवन्ध-जातियो का निरूपण करते हैं—चम्पू, कविता, सेना, नीति भौर श्रति, दव्यक्र भ्रादि प्रवन्धों की ये पाँच जातियाँ है।

चम्पू गण घोर पद्य से गुनत होती है, कविता के तीन अज़ शक्ति, ज्युत्पत्ति घोर अभ्यास है, तेना के चार अज़ हाथी, घोड़े, रख घोर पैदल है, नीति के पांच अज़ भेद, परोक्षा, विश्वचास, वचन घोर मित्र-कार्य्य है, भृति के छः अज़ थिक्षा, ज्योतिष, निरुक्त, निषण्ट, छन्द घोर व्याकरण है।

कुछ लोगो ने प्रबन्धजातियों के 'तारावली' इत्यादि नाम कहें हैं, परन्तु जातियों से अङ्गसस्या का सम्बन्ध नहीं, इसीलिये मैं उनसे असहमत हं।

(ये प्रबन्धों की जातियाँ हुई।)

गीतज्ञों ने तीन प्रकार के प्रवन्ध, अनिर्युक्त, निर्युक्त और उभयात्मक बताये हैं, जिनमें अञ्जमात्र हों, वे अनिर्युक्त हैं।।२०-२४।।

१. (क) येना । २. (क) क्वेति । ३. (क) यथा । ४. (क) स्त्रू: १ ४. (क) वञ्चनसिति कार्स्याणि । ६. (क) वश्यावयः । ७. (क) वैतोसवात्मिकाः । ८. (क) प्रश्नेवा । ६. (क) सागमात्रेण । १०. (क) कंन्वास्तीस्तीलार्थि । ^क संज्ञा एतास्ताङ्गं वेनेनोकाः ।

क्वचिङ्गं क्वचिच्छन्दो गीते यस्मिन् विराजते ॥२५॥ उभयात्मकमित्याहुर्गीत गीतविद्यारदाः ।

स्रनियु क्लप्रबन्धाः---

तालार्णवो विचित्रञ्च मण्डनं राहडी तथा ॥२६॥ लोली, बोल्लरि, दंती स्यादनिर्युक्ता पतायुताः ।

निर्युक्तप्रबन्धा —

धवलरुच्चरी चैव वदन अम्पटस्तथाः ॥२७॥ चट्यां चित्रपदी चेत्र सिह्पादस्तथेव च । पदतालसमायुक्ताः मङ्गलं स्तवमञ्जरी ॥२८॥ ग्रमी सर्वप्रवन्धारच निर्युक्ताः परिकीर्तिताः । तालतेत्रकयोवीं पि निर्युक्तः परिकीर्तितः ॥२६॥ सिवता सहितो वर्णो नन्दनस्तिवतायुतः । पतेता सहितस्तोऽयमभिनन्दन उच्यते ॥३०॥ पतावे द्वस्तिला च विपातः रणरङ्कः ।

छन्दताल इत्यादि के नियम से युक्त निर्युक्त है। जिस गीत में कही श्रंग श्रौर कही छन्द हो, वह उभयात्मक है।

तालार्णव, विचित्र, मण्डन, राहडी, लोली, ढोल्लरि मौर दन्ती, पद-ताल से युक्त अनिर्यक्त प्रबन्ध है।

धवल, चच्चरी, बदन, ऋम्पट, चर्या, त्रिपदी सिहपाद, मङ्गल धौर स्तवमञ्जरी ये पदतालयुक्त प्रवन्ध निर्युक्त है।

श्रयवा ताल श्रोर तेल्न से युक्त प्रबन्ध भी निर्युक्त है ॥२५-२६॥ वर्ण स्वर, विरुद, तालयुक्त, नन्दन तेनविरुदतालन्वित है श्रोर श्रभिनन्दन पदतेनतालयुक्त है ॥३०॥

 ⁽क) तोलडोल्लरिवन्ती, (क) लील्लीठोम्लरिवन्ती । २ (क), (ल), चरिजा।
 (ल) त्रिपदी । ४ (क) ताले । १ (क) पति । ६ (ल) महिनन्दन ।
 (क) पाताक । ६ (क) वितात । १ (क) रणलक्कत ।

'पास्वतैनंतंनं चैव ह्यानियुंक्ता भवन्त्यमी ॥३१॥
तापसैमंञ्जलाचारो गद्यं चैवीभयात्मकौ ।
तापास्वरंष्ठशुक्तचञ्चः शुक्तसारी च तैः स्मृतः॥३२॥
ग्रामोदः स्यात् "सपातेतैस्तीवतापस्सुदर्शनः ।
पाताविदः कन्दुक्रच्य तेः स्मृतो हर्षवर्द्धनः ॥३३॥
पपातेतैः प्रमोदस्च पावितेतैमैनोरमः।
ग्रञ्जूष्ट्यनिस्तापतेतैरनिर्युक्ता अमीसमृताः ॥३४॥
'ताविस्वतैस्त्रिपयकस्तापाविस्वरैच्य पद्धकी ।
निर्युक्तौ कथितावौती गीतविद्याविद्यारदः ॥३४॥
सपावितेतायुक्तोऽसौ सिहलीलेतिनामतः ।
ग्रन्तर्युक्तो भवेद्देश गीतलक्षणकोविदः ॥३६॥
'पदतालस्वरैस्तेन्त विष्टाभ्याञ्च गीयते ।
निर्युक्तः शरभलीलः' प्रबन्धः कथ्यते बुधैः ॥३॥।

हंसलीला पदतालविरुतयुक्त, रणरङ्ग विरुद्धपाटतालयुक्त श्रीर नर्तन पाटस्वरतेनयुक्त है. ये अनियंक्त है ॥३१॥

मञ्जलांचार नालपदस्वरयुक्त, गद्य उभयात्मक, शुक्रचञ्चु तालपाट-स्वरयुक्त श्रीर शुक्रसारी भी इन्हीं से युक्त है ॥३२॥

म्रामोद स्वरपाटतेनतालयुक्त, सुदर्शन तेनविरुदतालपदयुक्त, कन्दुक पाटतालविरुदपदयुक्त भौर हर्षवद्धन भी इन्ही से युक्त है ॥३३॥

प्रमोद पदपाटतेनतालयुक्त, मनोरम पाटविरुदतेनतालयुक्त, श्रौर श्रङ्क-ध्वनि तालपदतेनतालयुक्त है, ये अनिर्युक्त कहे गये है।।३४॥

त्रिपयक तालविरुवस्वरतेनयुक्त, पद्धवी तालपादविरुवस्वरत्न है. इन्हें गीतज्ञों ने निर्युक्त कहा है। सिहलील स्वरपाटविरुवतेनतालयुक्त है. इसे गीतज्ञों ने अनिर्युक्त कहा है।।३४. ३६॥

शरभलील पदतालस्वरतेम्नविरुदयुक्त और निर्युक्त प्रवन्ध कहा जाता है।।३७॥

 ⁽क) पादवंकं । २ (क) वैबीमयारियका । ३. (क) सपातेनं . । ४ प्रपातेनं ।
 ५ (क) तापनेसं . । ६. (क) तापन्यक्षे । ७. (क) तापविद्येष्य (ख) तापाविद्येषय . (क) पदितं , (ख) वर्दे । ६. (ख) मवेदे । १० (क) पप्द । ११. (क) सप्तभो लील. ।

प्रतापवर्द्धंनस्तस्मादुमातिलकसंज्ञकः ।
पञ्चाननः पञ्चभङ्गी श्रीरङ्गः श्रीविलासकः ॥३६॥
ग्रानियुंक्ता ग्रमीसर्वे पङङ्गा इति कीर्तिताः ।
इति द्विधानुकास्सर्वे कथितास्तदनन्तरम् ॥३६॥
त्रिश्चानुकानहं वक्ष्ये द्वयङ्गादि कमभेदतः ।
लभ्मको रससन्वोहो हसपादस्तर्थव च ॥४०॥
हरिर्विजयसज्ञः स्यादेकताली तथैव च ।
ध्विनुङ्गुट्टिन नामापि पदताल समायुता ॥४१॥
वितायुतोऽङ्क्वारी स्यादनिर्युक्तास्समीरिताः ।
द्विपदी च पता युक्ता कन्दश्चेव विपायुतः ॥४२॥
निर्युक्तो कथितावेतौ गीतज्ञानविचक्षणः ।
जयमाला चक्रवाली तथा रागकदम्बकः ।॥४३॥
कालाणंवी भेमम्बङ्ग्य रासकश्चोभयात्मका ।
गीयन्ते पतालाभ्याममी गीतविव्यारदेः ॥४४॥

प्रतापवर्द्धन उमातिलक, पञ्चानन, पञ्चभङ्गी, श्रीरङ्ग, श्रीविलासक, ये सभी पडङ्ग श्रीर श्रनिर्युक्त है। ये द्विधातुक प्रवन्ध कहे गये, श्रव द्वयङ्ग श्रादि लक्ष्य भेद से त्रिधातु प्रवन्ध कहुगा।

लम्भक, रससन्दोह, हसपाद, हरिविजय, एकताली और ध्वनिकुट्टनी पदतालयुक्त है ॥३५-४१॥

श्रङ्कारी विरुदतालयुक्त है ये अनिर्युक्त कहे गये है। द्विपदी पदताल-युक्त, कन्द किस्टपाटयुक्त है, ये दोनों गीनको ने निर्युक्त बनाये है। जयमाला, चक्रवाल, रागकदम्ब, कालाणंब, भोम्बड, रासक गीतक्रों द्वारा पदतालयुक्त उभयात्मक रूप में गाये जाते है। ।४२-४४॥

१ (क) पञ्चभिद्ध । २. (क) प्रवितासक । २. (ब) षडङ्गागीति । ४. (क) तञ्चको । ५. (क) पम । ६. (ब) त । ७. (क) विनायुक्तोऽस्वजाति. । ६. (क) यनिर्युक्ता ६. (क) द्विपरि, (ब) विषयी । १०. (क) रागकदम्बकम् । ११. (क) वालोनेचो । १२. (क) गीयन्ते पाद-तालास्या ।

स्वरार्थस्तापसैर्जेयः स्थात्तपासिह् विकनः । कैवाड र पाटकरणी ताविषा सहिता बुभी ॥४४॥ वाविसेः व स्वरूप्णं पतेता लिलता तथा । र तेपासीस्त्रकरणमनिर्युक्ता स्रमी स्मृतः ॥४६॥ स्रायांवृत्तद्विपथका र ये गाया र वण्डकादयः । एते स्युः स्वपतायुक्ता मातृकाः पवितायुताः ॥४७॥ वण्डः पतेता सहितो निर्युक्ता कथिता स्रमो । पपाता सहितो ज्ञेयः सिह्विकमनामक ॥४६॥ कलहसः कौञ्चपदः स्वपतासिहतावुभौ । गीतविद्याविषेषज्ञै कथिता उभयात्मकाः ॥४६॥ श्रीवर्द्धन हित स्थातः पाताविपतितो र बुधैः । विद्यत्वरपदालीः स्वरप्तस्तरी च पञ्चापि ॥४०॥ ज्ञया सा गजलीला वर्तनिविवर्तनी च पञ्चापि ॥४०॥ ज्ञया सा गजलीला वर्तनिविवर्तनी च पञ्चापि ॥४०॥

स्वरार्थं तालपदस्वरयुक्त है श्रौर सिहविकम भी । कैवाड श्रौर पाटकरण दोनों तालविरुदपाटयुक्त है ॥४५॥

स्वरकरण तालविरुदस्वरयुक्त, ललित पदतेनतालयुक्त और मिश्रकरण तेनपाटस्वरयुक्त है, ये श्रनिर्युक्त कहे गये है ।।४६।।

भार्या, वृत्त, द्विपथक, गाथा, दण्डक इत्यादि स्वरपदतालयुक्त है भीर मानुकाएँ विरुद्दपदतालयुक्त ॥४७॥

दण्ड पदतेनतालयुक्त है, ये निर्युक्त कहे गये है । सिहविकम पदपाट-तालयक्त है ।।४८।।

कलहस श्रीर कौञ्चपद स्वरपदतालयुक्त है श्रीर गीतज्ञों द्वारा उभगातमक बताये गये हैं॥४६॥

श्रीवर्द्धन पाटतालविरुदतेनतालयुक्त है, स्वरपदकरण, स्वराङ्क, गजलीला, वर्तनी भौर विवर्तनी विरुदस्वरपदतालयुक्त हैं ॥५०॥

१. (क) हिंसविकम.। २. (क) कैवावादपालकठणा। ३. (क) ताविषै।

४. (क) पेतारौ. । ५ (क) द्विपदुका । ६. (क) गावा दण्डकाविला-(स) दण्डकाद्विला: ३ ७. (स) घडा । ६. (स) सिहविकान्त । ६. (क) पाताभिषयतो ।

विज्ञेयंबन्धकरण श्विषातायुतं बुधैः । प्रबन्धस्तेन्नकरणं स्वतेतावियुतः समृतः ॥४१॥ तेपासपयुतः प्राज्ञैस्वयुरङ्ग इतीरितः । श्रित्यं व्याप्त सम्प्रः ॥४२॥ सार्व्यवता समी प्रोक्ता गीतशास्त्रविशारदैः ॥४२॥ तात्रेपसयुता तञ्जीनियुक्ता सा चतुष्पदी । सविताययुता तञ्जीनियुक्ता सा चतुष्पदी ॥१३॥ प्रपातास्वयुता जेया त्रित्रङ्गी चीभयात्मिका । स्वतावित्यसिह्तो जयशीरिति कीतितः ॥४४॥ स्याद्वस्तु विजयशीर्म्च वर्णस्वरचतुर्मुखी । स्वपापतातेसहिता विजया गीत कीविदैः ॥४॥ प्रबन्धा वर्धनानन्दस्तथा हरविनासकः । कथ्येतं प्रविपातित सहिताविति कीविदैः ॥४॥ कथ्येतं प्रविपातित सहिताविति कीविदैः ॥४॥ कथ्येतं प्रविपातित सहिताविति कीविदैः ॥४॥ कथ्येतं प्रविपातित सहिताविति कीविदैः ॥४॥

बन्धकरण स्वरविरुद्पाटतालयुक्त और तेन्नकरण स्वरतेननाराविरुद-युक्त कहा गया है।।४१।।

चतुरङ्ग तेनपाटस्वरपदयुक्त है. ये प्रयन्ध गीतज्ञो द्वारा अनिर्युक्त कहे गये है ॥५२॥

चतुष्पदी तालतेनपदस्वरयुक्त श्रीर हयलीला स्वरिक्दतालपदयुक्त कही जातो है ॥५३॥

उभयात्मक त्रिभाङ्गी पदपाटनालरवरयुक्त है जयश्री स्वरतालविरुद-तेनपदयुक्त है।।४४।।

वस्तु, विजयश्री, वर्णस्वर और चतुर्म्मृख, गीतज्ञो को स्वरपाटपदताल-तेनयुक्त समभना चाहिये ॥४१॥

वर्द्धनानन्द श्रौर हरविलासक विद्वानो के द्वारा पदविरुद्दपाटतेनताल सहित कहा है ।।५६।।

१ (क) लब्धकरण । २ (क) स्वपताकेऽपि सहिता । ३ (क) परविलासक: । ४. (क) कथ्यते पविपातेता ।

स्रित्यंक्ता सभी सर्वे निर्युक्तो वस्तुसंज्ञकः । (इति विवातुप्रवन्याः) पतायुक्ता वेक्किका च एला सपवितायुता ।।१७।। गीतविद्याविशेषज्ञेः स्मृती तावुभयात्मकौ । प्रोक्ताविमौ चतुर्घात् कविज्ञ्जोम्बर्ड रासकौ ।।४८।। पूनः प्रवन्यास्त्रिविवास्ते "कथ्यन्ते यथाकमम् ।

पुनस्त्रिविधाः प्रबन्धाः —

सुडकमगता केचित् केचिदालिकमस्थिताः ॥१९॥

"तथान्येविप्रकीर्णाख्या मुनिभिः प्रतिपादिताः ।
तत्र सुडकमः प्रोक्त. पञ्चधा "गीतवेदिभिः ॥६०॥

"भादावतिजघन्यः स्याज्जघन्यस्तदनन्तरम् ।
ततोऽपि मध्यमाख्य स्यादृत्तमाख्यस्ततः "परम् ॥६१॥

ये सब ग्रनिर्युक्त ग्रौर वस्तु निर्युक्त है।

(ये त्रिधातु प्रवध हुए)

ढें क्किका पदतालयुक्त और एला स्वर्णदिवस्दतालयुक्त है।।४७।। गीतओं ने इन दोनों को उभयात्मक कहा है। ये चतुर्धातु कहे गये है और कही कही भोम्बड भीर रासक भी।

(एक अन्य दिष्ट से भी त्रबन्ध त्रिविध होता है)

कुछ प्रबन्ध सुडकमगत है और कुछ ग्रालिकमगत । मुनियो ने कुछ प्रबन्ध विप्रकीर्णनामक कहे है ।

गीतज्ञो ने सुडकम को पञ्चविध कहा है।।५८-६०।।

एक म्रितिज्ञचन्य और दूसराज्ञचन्य है। उनमें भी एक मध्यम और दूसरा उत्तम है। भीर एक मध्युत्तम है, उनका लक्षण कहा जाता है।।।६१।।

१. [क] पदसञ्जक । २. [क] ढिब्ह्वताच । ३ [कव] सापवितायुता ।

४. [क] श्रुतौता। ५ चतुर्वातु,[ख] चतुर्वातः। ६ [क] क्वविच्वेम्बहरासकौ।

७. [क] प्रवलदा। ६. [क] ताथानै। १. (क) तस्प्रसूदुकम. ।

१०. (क) परूचवा। ११. (क) माघारविजयन्यस्या। १२. (क) दुत्तमाद्य।

ग्रःयुत्तमस्तती जेयस्तेषां लक्षणमुज्यते ।
भोम्बडी गण्डतालेन ततोनिस्सार भोम्बडः ॥६२॥
कुड्वकेन ततो लम्भो लम्भो निस्सारकेण च ।
भम्पतालेन लम्भर्स 'रासक्रसेक तालिका ॥६२॥
"असावतिजघन्यास्यः 'मूडो गायकसम्मतः ।
''डेक्क्की ततो दितीयेन भनेतालेन भोम्बड ॥१४॥
मण्डेन भोम्बडरचाथ ततो निस्सारकोम्बडः ।
(''लम्भकोऽय कुड्वकेन ततो निस्सार लम्भकः ॥१५॥
झम्पतालेन लम्भर्स ''रासक्रश्चैकतालिका ।)
मुडो जघन्यनामायं गीतजैस्समुदाहृतः ॥६६॥
एलापूर्व ततो ढेक्की तस्मादगारिगभोम्बड ।
दितीयभोम्बडरचाथ ततो मृट्टेन भोम्बडः ॥६७॥
भोम्बडोऽय' तृतीयेन ततो निस्सारभोम्बड ।
रासक्रस्चैकताली च सूडोऽय मध्यमः स्मृत ।
करणं 'प्रागयैलास्यादहिक्कितवनन्तरम्' ॥६६॥

मण्ड ताल में गाया जाने वाला भोन्बड, निसारु ताल में भोन्बड, कुडुक्कताल में लम्भ, निस्सारुताल में लम्भ, भ्रम्पताल में लम्भ तथा एकताली गायको की दृष्टि में ये मुड ग्रतिजवन्य है।

द्वितीय ताल मे ढेड्की, मण्डमें भोम्बड, निस्सार में भोम्बड, इन्हे गीतज्ञों ने जघन्य सुड कहा है।।६६।।

एला, ढेड्की, गारुगि में भ्रोम्बड, द्वितीय ताल में भ्रोम्बड, मृहताल में भ्रोम्बड, तृतीय ताल में भ्रोम्बड, निस्सारुताल में भ्रोम्बड, द्वृतिस्सार में भ्रोम्बड, मम्पा में लम्भ, रासक और एकताली यह मध्यम सुंड है।।६७-६६॥

१. (क) क्तोऽन्धो ! २. (क) मट्ट । ३ (क) निस्सार । ४. (क) लम्बो ।

प्र. (क) ग्रम्भो । ६ (क) लाभश्च । ७ (क) म्चैककालिका । प्र. (क) ग्रायसाव ।

 ⁽क) सुन्दो । १०. (क) ढिच्ह्री । ११ (क) लम्बकोड । १२. (क) कासक ।

१३ (क) यकृतियँन । १४ (क) कृतानिस्सारो । १४.(क) प्रागर्चेना ।१६.(क) डेक्किका *कोष्टक स्थित पक्ती द्वय पुनरावृत प्रतीयते ।

'गारुया भोम्बडरुवाय द्वितीयेनापि भोम्बडः ।
तृतीये भोम्बडरुवाय ततो निस्सारुभोम्बडः ।।७०॥
भोम्बडरुवेकतालेन ततो मट्टेन भोम्बडः ।।७०॥
भोम्बडरुवेकन भम्पातालेन लम्भकः ।
'रासकरुवेकताली च सुडः स्यादुत्तमाभिषः ।।७२॥
गद्य ततरुव करण वर्तन्येला' च ढेक्किका ।
'गारुया भोम्बडरुवाय द्वितीयेनापि भोम्बडः ।।७३॥
भोम्बडरुवेकतालेन त्रतिमट्टेन भोम्बडः ।।७३॥
भोम्बडरेवेकतालेन तिमट्टेन भोम्बडः ।।७३॥
भोम्बडोऽय तृतीयेन ततो निस्सार्भभोम्बडः ।।७४॥
भोम्बडोऽय तृतीयेन ततो निस्सार्भभोम्बडः ।।७४॥
भोम्बडो 'द्वतिस्सारो भम्पातालेन लम्भकः ।
रासकरुवेकताली च 'सुडः स्यादुत्तमोत्तमः ।।७४॥

करण, एला, ढेव्ह्निका, गार्शाग में भोम्बड, द्वितीयताल में भोम्बड, तृतीय ताल में भोम्बड, निस्सास्ताल में भोम्बड, एकताल में भोम्बड, मट्ट में भोम्बड, नृतीय, निस्सारु तथा कुडुक्क ताल में भोम्बड, भम्पा में लम्भक, रासक और एकताली ये सुड उत्तम कहा गया है।।७०, ७१।।

गद्य, तदनन्तर करण, वर्तनी, एला, ढेब्ल्किका गास्ती में स्कोम्बड, द्वितीय में स्कोम्बड, एकताल में स्कोम्बड, प्रतिषट्ट और तृतीय में स्कोम्बड, निस्सारु ग्रीर द्वृतनिस्सारु में स्कोम्बड, सम्पाताल में लम्भक, रासक ग्रीर एकताली ये उत्तमोत्तम सुड कहे गये हैं ॥७२-७४॥

१ (क) गारुगो।

२. (क) सारक।

३. (क) न्येडा।

४ (क) गारुग्यो।

५. (क) निस्सार।

६ (क) घृतनिस्सारो।

७. (क) सूढ ।

उत्तमोत्तमः सुडान्तर्गतैलागानमादृतम् ।
रागस्य नियमाद् 'धातुः नैति रागान्तरेण यत् ॥७६॥
तदुक्तरसरागाभ्यामौनित्यात्सैव गीयते ।
प्रीक्ष्या तेनैव रागेण सुडोऽपि परिगीयते ॥७७॥
'श्रत उत्तमसुङे तु रागस्य नियम निवा ।
छन्दस्वती सङ्कर्रेला मात्रैला परिगीयते ॥७६॥
अध्ये मङ्कुडस्य (') रागस्यानियमेन तु ।
'वर्णेला, वर्णमात्रैला रेक्षास्यैला च गीयते ॥७६॥
उत्तमोत्तमसुङे तु प्रथम 'मातृका भवेत् ।
'पञ्चतालेक्वरो यद् वा हृद्य गद्यमथापि वा ॥६०॥
प्रात्मिननेला च 'ढेङ्को च 'ततो गाहगितालत ॥६१॥
प्रात्मिननेला च 'ढेङ्को च 'ततो गाहगितालत ॥६१॥

उत्तम सूडो के अन्तर्गत एलागान सम्माननीय है। राग के नियम के कारण उसका धातु (गेय पक्ष) दूसरे राग मे नही जाना। इसीलिए कहा गया है कि एला रस-राग के श्रीचित्य के श्रनुसार ही गाई जानी है। सूड भी प्रौढतापूर्वक राग के द्वारा ही गाया जाना है।।७६, ७७॥

ग्रत उत्तमसूड मेराग के नियम के बिना छन्दोयुक्त सङ्कर एला मात्रानिर्मित एला गाई जाती है।।७≂।।

बीच बीच में मङ्कुड (?) और राग के नियम के बिना वर्णेला, वर्णमात्रैला श्रौर देशाख्या एला गाई जाती है ।।७६।।

उत्तमोत्तम सूड मे पहले मातृका होना चाहिये। पञ्चतालेश्वर श्रयवा सुन्दर गद्य भी गाया जाता है।। ६०।।

प्रतापचकवर्ती (जगदेकमल्ल) ने यह झालिकम कहा है। इसमे एला, ढेक्को तथा गारुगि, द्वितीय प्रतिमट्ट और निस्सारुताल में भ्रोम्बड, लम्भक,

 ⁽ख) गातु । २. (क, भ्रन्तरुत्तम । ३. (क) वर्तेला वर्तमानैला ।

४. (क) मातृको । ५. पञ्चताले स्वरो । ६. (क) ढेड्कीच । ७. (क) तरोगातृगि ।

द्वितीयेन च तालेन प्रतिमट्टामिधेन' च ।
ततो निस्सारुतालेन फोम्बडो लम्मकस्तवा "।। २।।
रासकर्ष्यकताली "च स्थायिनो नवकीर्तिताः ।
रोषा सञ्चारिणः यट् च परिवृत्तिसिहिष्णवः "।। २।।
'उत्तमे प्राक् स्वरार्थं स्यात् 'स्वराङ्को वा घटोऽयवा ।
करण वा "त्रिमञ्जिर्वा यद्वा कौञ्चपदामिषः ।। ।। ।।
'भवेच्छरभलीलो वा पञ्चमञ्जिरथापि वा ।
तत्रैला ढेङ्किका चैव ततो गारुगितालतः ।। । ।।
द्वितीयेन च तालेन '"ततो निस्सारुतालतः ।
भोम्बडो लम्भको ''रासरुपैकतालीति कीर्तिताः ।। । ।।
स्थायिनोऽल्टापि "होने तु पञ्च सञ्चारिणः स्मृताः ।
एला स्थान्मध्यमे पूर्व ढेङ्किकातदनन्तरम् ॥ । ।।
गारुग्यास्थेनतालेन द्वितीयेन च भोम्बडः ।
ततो निस्सारुलम्भव्य रासकर्षकतालिका' ॥ ।। ।।

रासक और एकताली ये नौ स्थायी कहे जाते है, शेष परिवर्तनशील **और** सञ्चारी है।।s१-s३।।

उत्तम मे स्वरार्थ, स्वराङ्क, घट, करण, त्रिभङ्कि, कौञ्चपद, बरभलील, पञ्चभङ्की, एला और ढेकिका, गारुगि, द्वितीय और निस्सास्ताल में फ्रोम्बड, लस्भक, रासक और एकताली कहे गये है। ब्राठ स्थायी हैं और पौच सञ्चारी।

मध्यम सुड मे एला, ढेंकिका, गारुगि बौर द्वितीय ताल में फ्रोम्बड.

१. (क) प्रति बट्टा। २. (क) लम्बक । ३. (क) श्चैकतालेच ।

४. (क) रीतिस्साहिष्णव । ५. (क) वत्तम, । ६ (क) साराङ्को पाठदोढवा ।

७. (क) था। द. (क) भिद.। १. (क) मेवच्छरभलीलो।

१०. (क) भोम्बडो लम्बकस्ततः । ११. (क) रागश्चैकताली । १२. (क) ध्टाबिन्येतु ।

१३. चैकतालिकः।

इति सप्त समुद्दिष्टाः प्रबन्धाः स्थायिनो बुद्दैः ।
कमे शेषाश्च चत्वारो यथाश्चि समीरिताः ॥ ६॥ जमन्ये 'प्रथमं ढेक्क्क्री द्वितीयेन तु भोम्बडः ॥
निस्सारुणापि तालेन लम्मो रासंकतालिका ॥ ६०॥ थहेत स्थायिन प्रोक्तात्वयोऽन्ये तु 'यथारुचि ।
"भवन्यतिजधन्ये तु मट्टतालेन भोम्बडः ॥ ६१॥ निस्सारुभोम्बडो लम्भो रासक्रद्यके तालिका ।
पञ्चेत स्थायिनो क्षेत्रा द्वावन्यौ तु यथारुचि ॥ ६२॥ त्यक्त कुडुक्कनिस्सारुमम् वात्री यु वयारुचि ॥ ६२॥ स्यन्त कुडुक्कनिस्सारुमम् द्वादि ध्ववन्यसेत् ॥ स्वन्यसेत् ॥ स्वन्यस्व स्वन्यस्वस्व स्वाद्व स्थाद्व स्वाद्व स्थाद्व स्थाद्य स्थाद्व स्थाद्य स्थाद्व स्थाद्य स्थाद्व स्थाद्य स्थाद्व स्थाद्व स्थाद्व स्थाद्व स्थाद्य स्थाद्

निस्सारु में लम्भ, रामक श्रीर एकताली ये सात स्थायी प्रवन्ध है, क्षेष चारों का प्रयोग यथारुचि है।।८४-८६।।

जबन्य में ढेड्डी, ढिनीयताल में फोम्बड, निस्सारुनाल में फोम्बड निस्सारुताल में लम्भ, रासक ग्रीर एकताली ये छ स्थायी कहे गये है, अविशय्य यथार्शव प्रयोज्य है।

म्रति जघन्य सुड के म्रन्तर्गत सट्टनाल मे भोम्बड, निस्सारुभोम्बड, लम्भ, रासक श्रीर एकताली ये पॉच स्थायी ब्रीर शेष दो यथारुचि प्रयोज्य हैं ॥६०-६२॥

कुडुक्क और निसारताल में गेय लम्भक के ब्रतिरिक्त श्रन्य प्रबन्धों के ब्रारम्भ में भ्रुव रखना चाहिये, बन्तर में चण्ड (खण्ड ?) निस्सार होना उचित हैं। घ्रुव इत्यादि का ब्रारम्भ मट्टताल से होता है।।६३॥

यदि एक ही नानार्थक प्रवत्म (मूलरूप से) एक ही ताल मे गाया जाता है, तो वह विभ्रकीण सूड कहलाता है। प्रवत्म विनियोगपूर्वक एक एक करके भी गाना चाहिये॥६४॥

१. (क) प्रथमे । २ (क) नैतु । ३. (क) भवतेती । ४. (क) वठाडिस्याद्ध्रुवादिक । १. (क) नालारू वेण । ६. (क) ससुद्ध ।

ध्य सूडकमाधितप्रबन्धलक्षणं वक्ये —

जवबाहः प्रथमार्चे यः ढेक्किकायां विष्मियते ।। १५।। भावृत्यासौ च गातव्यः समे वा विषमग्रहे । ढितीयार्ढं तु तेनैव सकृद्गीतेन गीयते ।। १६।। मेलापकस्ततस्तालगुक्तो गेयो विकल्पतः । उद्ग्राहे चैव मेलापे ढेक्कितालो भवेद्यतः ।। १७।। तस्मादस्य प्रवन्थस्य नाम ढेक्किति कीर्तितम् । तालोऽत्रान्यो लयश्चान्यस्ततो वारद्वयं बुषै ।। १६॥। एकगीतश्च्वस्याद्यं सानुप्रासं पद्वयम् । अन्यगीतेन गातव्यस्तृतीयोऽश्चिश्चँ वाश्रयः ।। १६॥। आन्यगीतेन गातव्यस्तृतीयोऽश्चिश्चँ वाश्रयः ।। १०।। उद्ग्राहतालमानेन तस्य न्यासो विधीयते ।। १००।।

श्रव सुडक्रमाश्रित प्रवन्द कहुंगा।

ढेंकिका में प्रथमार्थ के धन्तर्गत उद्बाह एक आवृत्ति के द्वारा सम-प्रह अथवा विषमग्रह का आश्रय लेकर गाना चाहिये। दितीयार्थ उसीको एक बार गाने पर गाना चाहिये। तत्पञ्चात् मेलापक तालयुक्त झलाप युक्त गाया जाता है। उद्गाह और मेलापक मे डेब्ब्रीताल के प्रयोग के कारण इस प्रवन्थ का नाम डेब्ब्री है।

यदि तान अन्य हो तय अन्य हो, तथा एक ही ढङ्ग से गाये हुए धूव के आदिम दो पद सानुप्रास हो और दो बार गाये गये हों, ध्रुवाश्वित तीसरा वरण अन्य धातु के द्वारा गाया हो, तत्पश्वात एक बार आभोग और एक-बार धूव गाकर उद्धाहसम्बन्धी तालमान से यदि न्यास किया जाये।।१३-१००।।

तो दो तालों से युक्त यह ढेंकी स्वहल (बहुल ?) नाद होती है।

१. (क) देक्कितायान्।

२. (क) वैक्ट्रिति।

३. (क) स्मृतिर्यस्तु अवाश्रयम् ।

४. (क) सक्कद्वित्वा ।

एवं स्वहलनादैषा ढेङ्की तालद्वयान्विता । (इति ढेङ्कीसामान्य लक्षणम्)

उद्ग्राहस्यादिम भागं गायेद् वारद्वयं ततः ।।१०१।।
सक्कदेव द्वितीयार्द्वं ततोऽपि गमकैर्युतम् ।
भैमलापकं विकल्पेन ततो वारद्वयं घृत्वम् ।।१०२
ग्राभोगं च सक्कद्गीत्वा 'घृत्वेण न्यास इध्यते ।
भागोऽपि भोम्बडे कार्य्यं इति केचित्प्रचक्षते ।।१०३
गीतेन प्रावतनेनैव ' यत्रोद्ग्राहः पदान्तरै. ।
विवक्षितार्थशेषस्य पूर्णत्वापादनाय च ।।१०४।।
"ग्रपरः क्रियते योऽसौ स भागः 'परिकीतित ।
शरीरस्य यथा ' 'छाया भवत्यव्यभिचारिणी ।।१०४।।
' हासन्द्वियुता चैव भोम्बडे गमकस्थितिः ।

(इति तारजो भोम्बङ)
(यह ढेङ्कीसामान्य का लक्षण हुम्रा)
उदुग्राह का श्रादिम भाग दो बार गाना चाहिये ॥१०१॥

दितीयार्द्ध एक बार गाने के पश्चात् विकल्पपूर्वक गमकयुक्त मेलापक गाना चाहिये।।१०२॥

तस्पश्चात् एक बार आभोग गाकर धृतके द्वारा न्यास उचित है। कुछ लोगो का कथन है कि भ्रोम्बड मे भागभी करना चाहिए।।१०३।।

विविश्वत शेष अर्थ का प्रतिपादन करने के तथा पूर्णता का आपादन करने के लिए, पुराने स्वरक्षीन्तेवश के द्वारा अन्य पदो से किया जाने वाला उद्श्राह ही 'भाग' कहलाता है। जिस प्रकार (इसा-बृद्धिकुन) छाया सर्वेव शरीर के साथ रहती है, वैसी ही गमक की स्थिति फोम्बड में है। (यह फोमबडसामान्य का लक्षण हआ)

 ⁽क) वास्त्रय । २. (क) मेलापि कान्तिकत्वेन । ३. (क) ब्रुतम् ।

४ (क) ध्रुवेन्यासस्स (ख) स्त्रविण न्यास । ५. (क) भोगोऽपि।

६. (क) प्रोक्तने । ७ (क) मन्त्रोद् ग्राह्म. । ६ (क) अपर । ६. (क) भार ।

१०. (क) रामा । ११. (क). हास वृद्धि यथा ।

तारजोऽतारजद्वति भोम्बडो जातियुगमकम् ॥१०६॥
तारघ्वनिस्समुद्दिष्टो गायकैः स्थानकास्थ्या ।
तेन तारेण संयुक्तो भोम्बडस्तारजः स्मृतः ॥१०७॥
भौतरजस्य परिज्ञेयं तत्र भेदचतुष्टयम् ।
तच्च 'दुष्करमेवोक्तं गीतविद्याविद्यारदैः ॥११६॥
स्रादौ प्रतापतिलको भवेत्प्रतापसङ्गमः ।
ततोऽज्वतप्रतापः स्यात् ततः प्रतापवद्वैनः ॥१०६॥
उद्ग्राहे स्थानकस्थित्या प्रतापतिलको भवेत् ।
प्रतापसङ्को मेलापे स्थानकस्य निवेशनात् ॥११०॥
(इति तारजो भोम्बड)

(यह भोम्बडसामान्य का लक्षण हुआ।)

भोम्बड को दो जातियाँ तारज और अतारज है। गायकों ने तार घ्वनि को 'स्थानक' कहा है। उस तार से युक्त भोम्बड 'तारज' कहा गया है।।१०४-१०७।।

तारज भोम्बड के चार भेद है, जो गीतज्ञो की दृष्टि में दुष्कर है।।१०=।।

प्रतापतिलक, प्रतापसङ्कम, श्रचलप्रताप भीर प्रतापवर्द्धन ये चार तारज भोम्बड है ॥१०६॥

उद्धाह में 'स्थानक' की स्थिति से प्रतापत्तिकक, मेलापक में स्थानक के निवेश से प्रतापसङ्ग, धृव में स्थानक के प्रयोग से अचलप्रताप और स्राभोग में स्थानक सम्मिलित करने से प्रतापबर्द्धन होता है ॥११०-१११॥

(यह तारज भोम्बड हुआ)

१. (क) फारज। २. (क) तारजस्य। ३. (क) दुर्भर। ४. (क) प्रतापवर्द्धनम्। ५. (क) स्मृती चलत्प्रतापो।

ततः प्रभूतगमकस्ततोऽल्पगमकाभिषः ।
त्रिधातुकतृतीयः स्यादतारजभिदा त्रयम् ॥११२॥
अनेकगमकत्वेन विपुलायासयोगतः ।
प्रभूतगमकोनाम भोम्बडो दुष्करः' स्मृतः ॥११३॥
अल्पेस्तु गमकः कृष्तः स्यादल्पगमकाभिषः ।
गमकानामबाहुल्यादक्लेशेन च गानतः ॥११४॥
त्रिधातुकः परिज्ञेयो मेलापेन च वर्जितः ।
त्रिधातुकः लरिज्ञेयो मेलापेन च वर्जितः ।
त्रिधातुकाल्पगमकौ सुकरौ परिकीर्तितौ ॥११४॥
सप्तैतं कथिता भेदास्ताले गारुगिनामिन ।
एव द्वितीयतालेऽपि सप्तभेदा भवन्ति ये ॥११६॥
उद्यद्भताप प्रथमं भवेत्सः प्रतापयोगस्तदनन्तरस्स्यात् ।
स्थिपप्रतापक्षच भवेद्मताप सथेखरो दुष्कर नामधेय ॥११७॥
उद्यत्प्रतापस्च भवेद्मताप सथेखरो दुष्कर नामधेय ॥११७॥
उद्यत्प्रतापसुद्याहे स्थानकस्य निवेशनात् ।
प्रतापयोग मेलापे वदन्ति स्थानकस्य निवेशनात् ।।

अतारज के तीन भेद 'त्रभूतगमक', 'अल्पगमक' श्रौर 'त्रिधानुक' है ॥११२॥ 'त्रभूतगमक' भोम्बड अत्यन्त परिश्रमसाध्य होने के कारण दुक्कर कहा गया है ॥११२॥ 'अल्पगमक' में अधिक गमक नही होते, अत गाने में कष्टसाध्य नहीं है। त्रिधानुक मेलापकहीन होता है, अल्पगमक श्रौर त्रिधानुक सुकर है ॥११४-११४॥

ये सात भेद गारुगिताल मे और सात भेद द्वितीय ताल मे भी होते है।।११६॥ उद्यत्प्रताप भारम्भ मे तदनन्नर प्रतापयोग, उसके परचात् स्थिरप्रताप और उसके परचात् दुष्करप्रतापशेखर होता है।।११७॥

उद्यत्प्रताप उद्ग्राह में, प्रतापयोग मेलापक मे, स्थिरप्रताप ध्रुव में तथा प्रतापक्षेत्रर आभोग मे स्थानक के प्रयोग से होता है।।११८॥

१. (क) दुःकर. ।

२. (क) गमक।

३ ई(क) दुकर।

४ (क) विशेषणात्।

धूबे स्थिरप्रतापं च स्थानकस्य निवेशनात् ।
प्रतापशेखरं प्राहुराभोगे स्थानकान्वयात् ॥११६॥ च्यान्योऽपि प्रूरिगमको गमकः सुक्षपूर्वकः ।
निषातुकास्य विक्रेया दुष्कराः सुकरास्त्रयः ॥१२०॥ प्रभूतगमकाखेषु त्रिषु यल्लक्षणं कृतम् ।
तदेव भूरिगमकप्रभृतिष्वगम्यताम् ॥१२१॥ केवलं तालभेदेन 'नामभेदः प्रकीतितः ।
प्रस्थेप्रपि भेदा विद्यन्ते स्नोम्बङस्य पुनस्त्रयः ॥११२॥ गद्यजः पद्यज्ञस्वैव गद्यपद्यमयस्त्रया ।
कमेण लक्षणं तेषां 'यथावत्प्रतिपाद्यते ॥१२३॥ संस्कृतेर्वेश्वविषि सानुप्रासः पद्यभवित् ।
गीतविद्धिः स विज्ञेयो स्नोम्बडो गद्यजाह्नयः ॥१२४॥

भूरिगमक (प्रभूतगमक,) सूक्ष्मगमक, (घल्पगमक) धौर त्रिधातुक तीनों दुष्कर एवं सुकर होते हैं ।।११६-१२०।।

प्रभूतगमक इत्यादि तीनों में जो लक्षण किया है, वह भूरिगमक इत्यादि में भी समक्रना चाहिये॥ १२१॥

केवल तालभेद से नामभेद हो जाता है। फोम्बड के भन्य तीन भेद भी होते हैं॥,१२२॥

प्रबन्ध के धन्य तीन भेद, गद्यज, पद्यज धौर गद्यपद्यमय हैं, इनका क्रमशः यथावत् लक्षण प्रतिपादित किया जाता है।।१२३॥

गद्यज भोम्बड में अनुप्रासयुक्त संस्कृत या देशजं पद होते हैं

किसी भी छन्द में निबद्ध भोम्बड पद्यमय होता है भौर गद्यपद्यमय (उभयात्मक) होता है ॥१२४॥

१. (क) दु:खेदः परिकीतितः ।

२. (क) पुन: स्वबम् ।

⁽क) यथाव: ।

छन्दसा येन केनापि निबद्धः पद्यजः स्मृतः ।

फ्रोम्बडो गद्यपद्याभ्यां गद्यपद्यमयो भवेत् ॥१२४॥

फ्रोम्बडो गुरुकरं त्यक्त्वा प्रभूतगमकं तथा ।
गद्यजं पद्यजञ्जेव गद्यपद्यमयं तथा ॥१२६॥

लघुकेखरताले स्पुरत्येऽस्पगमकादयः ।

'प्रतिमट्टे तृतीये च मट्टे निस्सारुके तथा ॥१२७॥

क्ष्युकेखरताले स्पुरत्येऽस्पगमकादयः ।

'प्रतिमट्टे तृतीये च मट्टे निस्सारुके तथा ॥१२७॥

क्ष्युकेखरताले चेव चण्डपूर्वतृतीयके ।

एतेषु भ्रोम्बडा (प्रोक्ता) ये प्रोक्ता लघुशेखरे ॥१२८॥

कुडुक्कास्थ्येन तालेन भ्रोम्बडो गीयते यदा ।

प्रदेरिप विना कार्य्या तदाभोगस्य कत्पना ॥१२६॥

एवमण्टादश प्रोक्ता भ्रोम्बडा गीतवेदिभिः ।

उद्ग्राहेऽङ्घि 'द्वय प्रासै प्रतिपाद गणाश्च षट् ॥१३०॥

प्रभूतगमक भीर दुष्कर भोम्बड को छोडकर गद्यज, पद्यज तथा गद्यपद्यमय भरपगमक इत्यादि भोम्बड लचुगंबर ताल में होना बाहिये। प्रतिमट्ट, नृतीय मट्ट, निस्साहक, चण्ड निस्साहक, भौर चण्ड नृतीय ताल में वे मोम्बड उचित है, जो लचुशेखर में बताये गये हैं ॥१२४-१२=॥

जब भोम्बड कुडुक्क ताल में गाया जाये, तो झाभोग पदहीन उचित है ॥१२६॥

गीतकों ने इस प्रकार झठारह भोम्बड बताये है। (ये भोम्बड हुए)

उद्ग्राह में दोनों चरण प्रासगुक्त हों, प्रत्येक पाद में छ गण हों, पाद के मन्त में 'प्रयोग' हो, तत्पक्चात् 'पल्लव' पद हो —

१. (क) मतो । २. (क) फोम्बडो दुकरं । ३ (क) प्रतिमटे येष । ४. (क) इस्त्र । ५. (क) उदैरिप । ६. (क) त्रसं।

पादस्यान्ते प्रयोगः स्यात् पल्लबाख्यं प्रवः ततः ।
पल्लबाख्ये पदे नास्ति "नियमो गणवणंयोः ।।१३१॥
प्रतेनैव प्रकारेण द्वितीयाङ्घ्रेः प्रकल्पना ।
वैगीत्वा ततस्तृतीयाङ्घिरोयो मेलापको भवेत् ।।१३२॥
एलापादत्रये गीतमेकमेव विषीयते ।
सप्रासोऽय ध्रुवो गेयः गातुनिम्ना विराजितः ।।१३३॥
ध्रुवं गीत्वा ततो न्यासः सर्वेनासु प्रशस्यते ।
(इयोना)

स्वरास्यं करणं पूर्वं 'पाटास्यं करणं तथा ।।१३४॥
तृतीयं बन्धकरणं तुर्यं स्वरपदात्मकम् ।
पञ्चमं चित्रकरणं षष्ठं तेन्नकपूर्वकम् ।।१३४॥
सप्तमं मिश्रकरणं तेषां लक्षणमुख्यते ।
धातुद्वयं स्वरैरेव नैरन्तर्योणं गीयते ।।१३६॥
'द्रुतशेखरतालेन करणे स्वरपूर्वके ।
करणं करणास्थेन तालेन किल गीयते ।।१३९॥

पत्लव में गणों भीर वर्णों का नियम नही है, इसी प्रकार से दूसरा चरण हो, तरस्वात् तीसरें चरण में मेलापक हो, तव एला प्रवन्स होता है।।१३२।। एला के तीनों चरणों में गेय पक्ष सदृश होता है, धूव में गायक का नाम श्रीर अनुप्रास उचित है, धूव गाने के एकचात् न्यास सभी एलाओं में

प्रशंसनीय होता है।

स्वराष्ट्य, पाटास्य, बन्ध, स्वरपदात्मक, चित्रक, तेन्नक भीर मिश्र ये सात करण है, उनका लक्षण कहा जा रहा है।।१३३।।

'स्वर करण' में दो 'धातु' द्वुतशेखर ताल में निरन्तर गाये जादे हैं ॥१३४-१३६॥

करण 'करण' नामक ताल में गाया जाता है, परन्तु ऐसा प्रचार में दिखाई नहीं देता।

१. (क) वास्ति । २. (क) विस्ता। ३. (क) येला। ४ (क) प्रवस्येते । ५. (क) पाठाच्या । ६. (क) घृवशेखर ।

वृष्यते तन्न लक्ष्येषु युक्तियुंका तु टिप्पणे ।

इष्टस्वरो स्रहस्तिस्मन्नेतन न्यास इष्यते ॥१३६॥

प्राभोगे वर्णनीयस्य नाम गातुश्व निक्षिपेत् ।

"द्विगयिवादिमं त्वंशं सक्रदेव द्वितीयकम् ॥१३६॥

तृतीयं तु सक्रद्गीत्वा ध्रुवं गायेदनन्तरम् ।

उद्याहेण ततो न्यासः करणे स्वरपूर्वके ॥१४०॥

गानप्रकारो यस्यैव मङ्गलारस्मकं हि तत् ।

गीत्वा पूर्वं द्विष्द्याहं सक्रत् गायेत् ध्रुवं ततः ॥१४१॥

"उद्याहेणस्यान्तरं भागं गीत्वाभोग ध्रुवं ततः ॥

उद्याहं पुनर्न्यासः क्रियते यत्र तद्भवेत् ॥१४२॥

करणं कीर्तिलहरीसंजं श्रुतिसुखावहम् ।

उद्याहं धृवयोगेन पूर्ववद् यत्र द्वयते ॥१४३॥

ध्रुवकार्धं ततो गयमाभोगाद्यि पूर्ववत् ।

ध्रानन्दवद्वंन नाम तदेतक्रण मतम् ॥१४४॥

भत इस सम्बन्ध में युक्ति देना उचित है। इसमे इच्ट स्वर के द्वारा ग्रहण करके ग्रशस्वर के द्वारा न्यास वाञ्छनीय है।।१३७, १३८॥

ष्ठाभोग में 'वर्णनीय' और गायक का नाम रखा जाना चाहिये। स्रादिस स्रक्ष को दो बार और द्वितीय स्रक्ष को एक बार गाना जिनत है तृतीय स्रंध एक बार गाने के पश्चात् प्रुव का गान होना चाहिये तथा इस स्वरकरण में त्यास उद्धाह के द्वारा होना जिनत है। जिसका गान ऐसा है, वह करण मङ्गालारम है। दो बार उद्धाह, एक बार प्रुव, उद्याह का स्नात्र भाग, स्नाभोग और प्रुव का गान जिससे हो, बह श्रुतिसुखद 'कीर्तिलहरी' है।।१३६-१४३।

उद्याह ग्रीर धुव का गान पूर्ववत् जिसमें हो, तत्पस्वात् ध्रुवक का मर्द्धहो, ग्राभोग इत्यादि भी पूर्ववत् हो तो ग्रानन्दवर्द्धन नामक करण होता है।।१४४॥

१. (क) त्रपिप्पणे । २. (क) दीवयि ।

३. (क) उद्ग्रहस्यन्तिमं भोग गीतवोग ध्रुवंतत । ४. (क) करणा ।

संज्ञानितयमुक्तं यद्मञ्जलारम्भपूर्वकम् ।
स्वराख्ये करणे स्पष्टं तत्स्यावन्येषु षट्स्विष ॥१४५॥
स्वरं: सहस्तपाटैस्व "व्यत्यासरिवतेरिप ।
तदुक्तं गीततत्वज्ञं: करणं पदपूर्वकम् ॥१४६॥
(इति पदकरणम्")
स्वराह्व हस्तपाटाश्च समं स्यु: मुरजाक्षरैः ।
धातुद्वये परिज्ञेयं तत्पाटकरणं द्विषा ॥१४७॥
(इति वित्रकरणम्)

स्वराः मुरजपाटाश्च यत्रस्युर्घातुयुग्मके । तद्बन्धकरणं नाम विज्ञेयं गीतकोविदैः ॥१४८॥ (इति बन्धकरणम्)

धातुद्वयं भवेद्यत्र स्वरेरथ पदैरिष । तदुक्तं गीततत्वज्ञैः करणं पदपूर्वकम् ॥१४६॥ (इति स्वरपदकरणम्)

स्वरास्सतेन्नका यत्र दृश्यन्ते धानुग्रुगमके । तदुक्तं तेन्नकरणं चालुक्यवसुधाभुजा ।।१५०।४ (इति तेन्नकरणम्)

मञ्जूलारम्भ इत्यादि जो तीन नाम स्वरकरण में स्पष्ट किये गये हैं, वे फ्रन्य छहों में भी होगे । जो व्यत्यस्त स्वरों भ्रौर हस्त पाटों से विरिचत हो, उसे गीतज्ञों ने 'पदकरण' कहा है ।।१४४,१४६।।

जहा दोनों धातुम्रो में स्वर मौर हस्तपाट समान हों, वह पाट करण द्विविष (चित्रकरण) है ।।१४७॥

जहां दोनों धातुओं मे स्वर धौर मुरजपाट हों, वह बन्धकरण है। जहां दोनों धातुओं मे स्वर धौर पद हों, वह स्वरपदकरण है।।१४६।। जहां दोनों धातुओं में तेनक युक्त स्वर हों, उसे चालुक्य नरेश (जगदेक) ने तेककरण कहा है।।१४०।।

१. (क) मुक्तवा । २. (क)पार्व । ३. (क) स्वरपदकरणम ।

स्वरैः पाटैस्तथा तेम्नैयंत्र धातुद्वयं भवेत् । तिम्मश्रकरणं ज्ञेयं प्रान्ते विरुदसंयुतम् ॥१४१॥ (इति मश्रकरणम्) (इति करणम्)

गीत्वा द्विवारमृद्ग्राह झृवाभोगावनन्तरम् । ध्रुवकेण पुनमृ क्तिर्वतंत्र्यां सूत्रयेद् बुधः । ।१४२॥ "प्रतितालो द्वृतो मट्टः कङ्कालश्च कुडुक्ककः । "वर्तन्त्र्यां न भवन्त्येते तालास्त्वन्ये भवन्ति हि ॥१४३॥

*स्वराख्यकरणाद् भेदो वर्तन्यामयमेव तत्। विलम्बितो लयस्तस्यां करणे तु द्वृतो लयः।।१५४।। (इति वर्तनी)

प्रतितालादयः पञ्च वर्तन्यां ये निवारिताः। तैरेव गीयते या सा वर्तन्येव विवर्तनी ।।१५५॥

जहाँदोनों धातुक्षों मे स्वर, पाट तथा तेन्न हो. वह अन्त में विरुद समुक्त मिश्रकरण है।।१४४-१५१।।

दो बार उद्श्राह गाने के परचात् ध्रुव श्रीर ग्राभोग का गान ग्रीर ध्रुव से समाप्ति वर्तनी मे उचित है। वर्तनी मे प्रतिताल, द्रुत, मट्टु, कच्छाल श्रीर कुडुक्क तालों का प्रयोग न होकर श्रन्य तालो का प्रयोग होता है। स्वराख्य में लय द्रुत होती है श्रीर वर्तनी मे विलिम्बत, दोनों में यहीं भेद है।।१४४।।

(यह वर्तनी प्रबन्ध हुआ)

वर्तनी मे जो प्रतिताल झादि पाँच ताल वर्जित हैं, जो उन ही में गाई जाये, वह विवर्तनी है विवर्तनी में पहले तालवर्जित स्वरालाप होता है।।१४४-१४६।।

 ⁽क) बुधै । २. (क) इति प्रालो घृतो । ३ (क) वर्तन्यानि ।

४. (क) स्वराज्य।

 ⁽क) वर्तन्यां विदारिता: ।

मादौ यत्र स्वरालागः क्रियते तालवर्जितः । 'विवर्तनी समाख्याता सा स्यादालापपूर्विका ।।१४६॥ (इति विवर्तनी)

स्वरैरभीष्टो यत्रार्थः सप्तभिः प्रतिपाद्यते ।
स्वरार्थोऽसौ द्विधा ज्ञेयः सुद्धिमश्रविभेदतः ।।१५७॥
क्रमेण ब्युत्कमेणेति प्रत्येक तौ द्विधा मतौ ।
शेतुद्ध्या रागश्रुतिस्थानकृतया तस्य सम्भवः ।
शुद्धः स्वरार्थो विज्ञेयः केवलैस्सप्तभिः स्वरैः ।।१५६॥
यत्र स्वरार्थो विज्ञेयः केवलैस्सप्तभिः स्वरैः ।।१५६॥
स्वरार्गा सप्तानामेकैकं प्रथमाक्षरम् ।
श्रद्धारान्तरसम्मिश्र गीयते स तु मिश्रकः ।।१५६॥
श्विस्तनाभिनवेदेषुरसारचेतिहिता भिदः ।
एकादिस्वरभेदेन स्वरार्थः सप्ताधा स्मतः ।।१६०॥

(यह विवर्तनी हुई)

जिसमें सात स्वरों के द्वारा ही समीष्ट सर्व का प्रतिपादन होता है, वह 'स्वराय' प्रवन्ध शुद्ध और मिश्र दो प्रकार का है ॥१५७॥

वे दोनों भी कम भौर व्युत्कम से दो प्रकार के होते हैं।

राग भ्रीर श्रुतिस्थान की बृद्धि से 'स्वरायं' का जन्म होता है । बुद्ध स्वरायं केवल सात स्वरो के द्वारा होता है, जहाँ एक एक स्वर के परचात् एक एक भ्रन्य श्रक्षर होता है, वह 'मिश्र' कहलाता है ॥१४८-१४६॥

उसके भेद (८७६४४३२१) हैं। एकस्वर इत्यादि भेद से स्वरार्थ सात प्रकार का है।।१६०।।

१. (क) वर्तन्यां वा वितन्या ।

२. (क) विभेदकः।

३. (क) श्रुरवा।

Y. (क) शशिस्कान्वान्ति देवेषु ।

५. (क) क्वैविहिताभिदः (ख) चेति हितामिषाः ।

स्राभोगो'ऽन्यपर्वश्चास्य ग्रहेणैव प्रमुच्यते । (इति स्वराणः)
स्रपादः पदसन्दोहो गद्य पोद्या तिष्य्यते ॥१६१॥
वृत्तगिस्य तथा चृर्णमन्यदुत्किलिकाभिधम् । ।
लिततं च तथा खण्ड चित्रं तत्त्वश्म कय्यते ॥१६२॥
पद्यभागान्वितं गद्यं वृत्तगन्धि निगवते ।
स्रसमस्तैः समस्तैवां द्वित्रेस्त्रिचतुरैः पर्वः ॥१६३॥
रचितर्वे चृर्णमास्यातं गद्यं गद्यवित्रारवैः ॥१६३॥
रचित्रे चृर्णमास्यातं गद्यं गद्यवित्रारवैः ॥१६४॥
भैसमस्तैः पञ्चवेवेद्वं "पुर्वलेतितमिरितम् ॥१६४॥
भैसमस्तैः पञ्चवेवेद्वं "पुर्वलेतितमिरितम् ॥१६४॥
गद्यं लण्डमिति प्राहुगंद्यभैदिवजारदः ।
गद्यं लिष्टमिति प्रोक्तं नागारीतिसमन्वितम् ॥१६६॥
गद्यं वित्रमिति प्रोक्तं नागारीतिसमन्वितम् ॥१६६॥

भन्य पदों के द्वारा इसका माभोग होता है श्रीर ग्रह से ही न्यास । (यह स्वरार्थ हमा)

पादसहित शब्द समूह गद्य है, यह बृत्तगन्धि, चूर्ण, उत्किलिका, लिति, लण्ड तथा चित्र, इन छ प्रकारों का होता है, इनका लक्षण कहा जा रहा है।।१६१,१६२।

पद्मभागयुक्त गद्म वृत्तगिध कहा जाता है, असमस्त या समस्त तीन बार पदों से रिचत गद्य 'चूर्ण' कहा गया है, गौडरीति से युक्त गद्म उत्कतिका' है।।१६३-१६४।।

समस्त पाँच छ पदों से बढ़ गद्य 'ललित' कहा गया है, प्रकान्त रीति जैली से तथा बड़े छोटे पदो से युक्त गद्य 'खण्ड' कहलाता है, विविध रीतियों से युक्त गद्य 'चित्र' है ॥१६५-१६६॥

१. (क) भाभोगोपपदै । २. (क) दुक्कलिका । ३ (क) स्तै:।

४. (क) राज्यितः । ५. (क) समस्तः पञ्चववैर्वयः । ६. (क) लालितः । ७. (क) प्रकास्ति ।

वृत्तगन्विति पाञ्चाली रीतिष्काग्तो रसो सवेत् ।
वृत्तिस्व भारती'त्रेया सायवेदसमृद्भवे ॥१६७॥
"वृर्णेस्यात् सात्वती वृत्तिः वैदर्भी रीतिष्तामा ।
शान्तो रसो विजानीयाद् "गद्यविद्याविशारदैः ॥१६८॥
उत्कलिकाह्नये रीतिगी'ती वीरसो भवेत् ।
वृत्तिरारभटी जेया गीततत्वविचलणैः ॥१६८॥
ललिते पाञ्चालरीतिः स्यात् कैशिकी वृत्तिष्तमा ।
रसः शृङ्कारनामायपादिशास्त्रार्थं सम्मतः " ॥१७०॥
खण्डगद्ये रसो हास्यो वैदर्भी रीतिरिष्यते ।
सात्वती वृत्तिरिष्टा मे पूर्वशास्त्राविरोधतः ॥१७१॥
चित्रगद्ये च वैदर्भी रीतिवृत्तिस्व कैशिकी ।
रसः शृङ्कारसंजीऽयः गीतजैस्समृदाहृतः ॥१७२॥

सामवेदोत्पन्न वृत्तगन्धि में पाञ्चालीरीति, शान्तरस, भारती वृत्ति होती है।।१६७।।

चूर्ण में सास्वतीवृत्ति, उत्तम वैदर्भी रीति भीर शान्त रस होता है।। १६८।।

उत्कलिका में गौडी रीति, बीर रस, ब्रारभटी बृति होती है।।१६८॥ 'ललित' में पाञ्चाल रीति, कैशिकी वृत्ति भौर ब्रादिमशास्त्र-सम्मत श्रृंगार रस होता है।।१७०॥

लण्डगद्य में हास्य रस, वैदर्भीरीति श्रीर सात्वती वृत्ति मुक्ते प्राचीन शास्त्रों से श्रविरुद्ध होने के कारण श्रमीष्ट है।।१७१।।

चित्र गद्य में वैदर्भी रीति, कैशिकी वृत्ति बौर शृङ्कार रस गीतक्षों ने बताया है।।१७२॥

१. (क) भारते। २. (क) पूर्णे। ३. (क) गद्य पद्य विशारदा.।

४. (क) गीड । ५. (क) वास्त्रायं । ६. (क) सङ्गता । ७. (क) गद्यं ।

ब. (क) भरतमे:।

प्रणवाद्यं भवेद् गद्यं भेयं 'तालिविविजितम् ।

मिथस्स यमके पड्भिरष्टभिवां समन्वितम् ॥१७३॥
पदान्येतानि 'मेधावी गायेद् गौतानुसारतः ।
गद्येऽनुयायिनः कार्य्यां गौतस्य नियमो बुन्नैः ॥१७४॥
मध्ये मध्येऽत्र गमकाः सर्वे वर्णार्ष्य युक्तितः ।
गद्यरिया विधातव्या प्रविलम्बिविषम्बिताः ॥१७४॥
'अतालपदपर्य्यन्ते स्वरा ज्ञेया विचक्षणे ।
मध्ये मध्ये तु गद्यस्य स्वरा प्रान्तेऽयवा मताः ॥१७६॥
ततः प्रवन्यनामाञ्च सतालपदयुग्मकम् ॥१७७॥
प्रस्येकं द्विः प्रगातव्य तदेतत्यद युग्मकम् ॥१७७॥
प्रयालस्यविलम्बाभ्या गीतमक्षरवर्जितम् ।
प्रनुयायि सतालञ्ज 'द्यातु गायन् ततः परम् ॥१७७॥।
धुर्मे तालविलम्बेनाशस्य 'नामाञ्चित पदम् ।
ततो विलम्बताल च पत्वा पर्व यतिः कृतः ॥१७६॥

गद्य के आरम्भ में प्रणव होता है, वह तालरहित और छ या झाठ यमको से युक्त होता है।।१७३।।

मेधाबी व्यक्ति को ये पद गीतानुसार गाने चाहिये, इस गद्य में बुद्धिमानो को अनुवर्ती गीत का नियम रखना चाहिये॥१७४॥

मध्य मध्य मे युक्तिपूर्वक सभी गमको श्रीर वर्णों का प्रविलम्बित श्रीर विलम्बित रूप में गद्य की रीति से रखा जाना उचित है।।१७४।। तालरहित पद अन्त में तथा गद्य के मध्य मध्य मे या प्रान्त से

स्वर होना उचित है।।१७६।। तत्पश्वात् दो पद नाल सहित होना चाहिये, जिसमे प्रवन्ध का नाम हो, उन दोनो पदो मे प्रत्येक पद दो बार गाना चाहिये।।१७७॥

श्रव विलम्बित का श्राश्रय लेकर पूर्व किये हुए विराम के अनुसार जिस भाग के द्वारा 'यति' किया गया हो, उसी से विराम उचित है। सस्कृतिमिश्रित गद्य 'सस्कृत' कहा गया है।।१७५-१८०।।

१. (क) गाल । २. (क) वेदानि । ३. (क) ग्राताल पदपम्यंन्ता ।

Y. (क) गातुगवि । ५. (क) नामस्य नामाञ्चित ।

'मागेन येन तेनैव गद्यो न्यासो विधीयते ।
देविकात् संस्कृतं प्रोक्त गद्या संस्कृतिमिश्रितम् ॥१८०॥
'षट्मकारा गतिगंद्यो 'द्रुता चैव 'विलम्बिता ।
'मध्या, द्रुतविलम्बा च द्रुतमध्या तथापरा ॥१८०॥
द्रुतमध्या' विलम्बा च तासां लक्षणमुच्यते ।
'द्रुता लघूनां बाहुल्यादल्यत्वेन विलम्बिता ॥१८०॥
लघूनां च गुरूणां च समत्वे मध्यमा मता ।
गुर्वक्षराणां प्राचुर्यात् भवेद्दुतविलम्बिता ॥१८३॥
गुर्वक्षराणां प्राचुर्यात् भवेद्दुतविलम्बिता ॥१८३॥
गुर्वक्षराणां प्राचुर्यात् भवेद्दुतविलम्बिता ॥१८४॥
प्रदेशकं पद्विभे ग्रं ग्रंग मध्यविलम्बिता ॥१८४॥
प्रत्येक पद्विभे ग्रंग पट्यकारा गित्भवेत् ।
प्रयंक पद्विभे गर्या पट्यकारा गित्भवेत् ।

'गर्य' में छ प्रकार की गति है, द्वृता, विलम्बिता, मध्या, द्वृतिब-लम्बा तथा द्वृतमध्या ।।१८१।।

उनका लक्षण कहा जाता है।

लघुओं के बाहुत्य से द्रुत, अस्पत्व से विलम्बित, लघुओं और गुरुओं की समानता से मध्यम, गुरुओं की अधिकता से द्रुतविलम्बिता, गुरु सक्करों की अस्पता से द्रुतमध्या, तथा गुरुओं और लघुओं के मिश्रण से मध्यविलम्बिता गति होती है।

इस प्रकार छः प्रकार के गद्य में प्रत्येक प्रकार के अन्तर्गत छः प्रकार की गति होती है। इस प्रकार गद्याध्रित भेद छत्तीस होते हैं।।१८२-१८५।। (यह गद्य हुमा)

 ⁽क) नागेन । २. (क) सप्रकारा । ३. (क) घृता। ४. (क) चेद बिलम्बिद्धाः
 ५. (क) सच्यावृत बिलम्बाच । ६. तती मध्या। ७. (क) घृताः

व. (क) गत्य।

लम्भकस्वोपम्भस्व विलम्भस्वाध क्षाणम् ।
पदमेकं पदे द्वे वा किविद्गमकसंयुते ॥१८६॥
सक्चद् गीत्वा ततो गेयं द्वौ वारौ ध्रुवकाभिषम् ।
ध्राभोग च ततो गीत्वा ध्रुवेण न्यास इष्यते ॥१८७॥
इत्येष लम्भकः प्रोक्तः भागीद्वित्रैविभूषितः ।
विलम्भकः प्रोक्तः प्राक् ध्रुवाभोगे च तालभाक् ॥१८८॥
विलम्भकः परिक्रयो ध्रुवे न्यासेन संयुतः ।
पदैनिनाविधैयँस्मदेकगीतैः पुनः पुनः ॥१८६॥
उद्ग्राहे वा ध्रुवे वापि द्वयोविभोगविजतः ।
उपलम्भ इति प्रोक्तः स नाम्ना गीतकोविदैः ॥१६०॥
(तम्भकः)

'ब्रादितालसमायुक्ते गमकादिविवर्गिते । रासके भोम्बडस्यैव शेषं लक्षणमीरितम् ॥१६१॥

सब लस्मक, उपलस्म भ्रौर विलस्म का लक्षण प्रस्तुत है। कुछ गमक्यूक्त एक या दो पद गाकर, दो बार धृवक गाना चाहिये, तत्त्रक्वात् क्षाभोग गाकर धृव द्वारा न्यास उचित है। इस प्रकार लस्मक होता है। दो तीन भागो से युक्त, तालहीन, आलायपुक्त विलस्भक है, जिसका न्यास धृव से होता है। एक ही प्रकार से गाये हुए विविध पदों से उद्भाह धृव या दोनों में गाया हुआ झाभोगवजित उपलस्भ कहा जाता है।।१८६-११०।। भ्रावि ताल से युक्त गमक इत्यादि से हीन रासक में भ्रम्य लक्षण भोम्बड के ही है।।१८१।

१ (क) विलम्बश्च ।

२- (क) द्वित्रि ।

३. (क) श्रकालानाभयुक्त ।

४. (क) पद्यै।

५. (क) गीते।

६. (क) इति।

घन्यैयेस्त्रिविषः प्रोक्तः गणमात्रादिभेदतः । 'रासकः किन्तु नास्त्यस्य लक्ष्ये कुत्रापि दर्शनम् ॥१९२॥ घानापं केचिदिच्छन्ति रासके प्राङ्मनीषिणः । केचियेकपदोद्याहं ^शरासकं प्रतिपेदिरे ॥१९३॥

(इति रासक* लक्षणम्)
द्विष्द्याह धृवं द्विष्व गीत्वाभोग सकुत्युनः । घृवं गीत्वा ततः कार्य्यों न्यासो गीतविद्यारदैः ।।१६४॥
'धनदुता घनप्रासा यत्या च घनया युता' । एकतालाख्यतालेन गेया त्यादेकतालिका ।।१६४॥ घालापिनिमितः 'कैश्चिदस्या उद्याह इध्यते ।

> (इत्येकताली) (इति शुद्धसूडाः)

ध्य सालगत्रुडकमं वक्ष्ये—

मादौ ध्रुवस्ततो मण्ठः प्रतिमण्ठश्च नम्भकः ॥१९६॥

प्रन्य लोगों ने जो गण मात्रा धादि के भेद से त्रिविध रासक कहा है, उसके कही लक्ष्य में दर्गन नहीं होते। कुछ पूर्वीचार्व्यों ने 'रासक' में धालाप भी बताया है, कुछ लोगों का कथन है कि रासक में एक पद का उदबाह होता है।।१६२।

(यह रासक हुआ)

दो बार उद्घाह, दो बार झूब, एक बार माओग, पुनः धूब मौर पुनः न्यास (एकताली में हैं) एकताली घनदूत, घनप्रास भौर घनयति रख कर एकताल में गाई जानी चाहिये। कुछ लोगों की दृष्टि में इसका उद्-ग्राह मालापनिर्मित होता है।

(यह एकताली हुमा)

(शुद्ध सुड समाप्त हुए) ग्रव सालग सुडों का कम कहुँगा—

भ्रुव, मण्ड, प्रतिमण्ड, लम्भक, अब्बताली, रासक भौर एकताली (ये सालग सुढ प्रवत्म हैं)।

१. (क) रासक: । २. (क) रासके । ३. (क) रागकं । ४. (क) रागक । ४. (क) बनाइत । ६. (क) युन: । ७. (क) योग्व । ८. (क) घृवा मट्टा ।

a. (क) प्रतिबद्धा । *तिबधस्माङ्ग नोत्तः ।

'म्रड्डताली रासकरच ह्यं कताली च कीर्तिता । मादौ पादौ समगणयुतौ' घातुसाम्यौ ततस्तत्ं । तुल्यो बाऽङ्घिस्त्वधिक' इतरो घातुनान्येन युक्तः । स्यादुद्याहेऽत्र पदसहितो गेय एव द्विवारं । त्वङ्घीगीत्वा सक्रदपि पुनर्यस्यते चोद्यहे सः ॥१९७॥

स ध्रव एकादशया-

^{*}शसिहासहंसमाघवनीलोत्पलतापसप्रजानाथाः । हरिहरनरपतिशका एकादश ते कमादुक्ताः ॥१६८॥ भवति शशाङ्कः कमशो मधुरतरो मन्द्रमध्यताराख्ये । तेषामिष विशदानां व्युत्कमतो जायते ^{*}हासः ॥१६६॥ तेषामिष स्फुटानां मध्यादीनामसौ हसः । सकुमाराणां तेषां मध्यानानां वसन्ताख्यः ॥२००॥

प्रारम्भ के दो पादो में गण और गेयपक्ष समान हों, तत्पचात् वैसा ही दूसरा चरण क्रम्य गेय से युक्त उद्बाह में हों, इसे पदसहित गाकर दो -वरणों का गान करने क्षोर उद्बाह डारा ही न्यास करने से 'धृव' होता है, वह ग्यारह प्रकार का है। ११६६॥

उन ग्यारह ध्रुवों के नाम कमश शशी, हास, हंस, माघव, नीलो-त्पल, तापस, प्रजानाथ, हरि, हर, नरपित और शक है।।१६७॥

कमका मन्द्र, मध्य और तार में मधुरतर होने वाला 'घाशी' और इसके विपरीत कम से मधुरतर होने वाला झुव 'हास' होता है ॥१६६॥

मध्य, मन्द्र, तार मे यदि क्रमशः मधुरता स्पष्ट होती तो 'हस', और मन्द्र, तार मध्य मे क्रमशः यह विशेषता हो, तो 'वसन्त' होता है गृ१६६॥

यदि मन्द्र, मध्य, तार मे कमशः 'विकास' हो, तो कुमुद (नीलो-त्पल)', यदि उनमे प्रसाद गुण धौर 'लीन' गमक हो, तो 'तापस' होता है ॥२००॥

११ (क) प्रबृठताता । १२, (क) समणपुतौ । १३, (क) शतस्त । १४, (क) तदेक । १ण (क) नव्यते । १, (क) मानव । २, (क) विषदाना । २. (ख) भास ।

तेषां विकासभाजामभिपूर्वाञ्चो'भवेत्कुमुदः । तेषां 'प्रसन्नभाजां लीनानां तापसो भवति ॥२०१॥ प्रचुरस्फुरितैस्तैरिप सुव्यक्तो भवति कमलभवः। तैरेव 'तिरिपूबहलैः कमलापितनामको भवति ॥२०२॥ तैरेव रित्रिभन्नैश्शैलस्तावल्सभो भवति । ^४तैरान्दोलित बहुलैर्जायेतासौ वसुन्धराधीशः ॥२०३॥ तैरेव कम्पबहुलैः सहस्रनयनाभिधो भवति । (इत्येकादश ध्रवाः)

भट्टरच प्रतिमट्टरचलम्भकरचाड्डतालिका ॥२०४॥ रासकद्यकताली च "ध्रुवकेणपिगीयते। गेयः "स्यात्सकृदुद्ग्राहो द्विवारं ध्रुवकस्तथा ॥२०५॥ गीत्वाभोगं सकुन्त्यासः ध्रुवो 'लम्भकजातिकः।

''मट्टादितालषट्केन यदा गीयेत लम्भकः ॥२०६॥

उनमें यदि 'स्फुरित' गमकों का प्राचुय्यं हो तो 'कमलभव' **श्री**र 'तिरिप्' गमको की बहुलता से 'कमलापति' होता है ॥२०१॥

'तिरिप्' और भिन्नयमक कमशः तीनों में होने पर 'हर' और 'मान्दो-लित' यमको की बहुलता से 'नरपित' होता है ।।२०२॥

यदि तीनों स्थान 'कम्पित' नामक गमकोंसे युक्त हों तो 'शक' होता है।

(मे ग्यारह ध्रुव हुए) मट्ट, प्रतिमट्ट, लम्भक, ग्रड्डताली, रासक ग्रीर ध्रुवक के द्वारा

भी गाये जाते हैं। एक बार उद्ग्राह दो बार ध्रुव, तत्पश्चात् माभोग गाकर न्यास करने से 'लम्भक' घ्रुव होता है ॥२०३, २०४॥

जब 'लम्भक' को मट्ट इत्यादि छः तालों से गाया जाता है, तब 'लम्भक' का नामकरण ताल के धनुसार हो जाता है।।२०६॥

१. (स) द्वाक्ट्रो । २. (क) प्रसङ्ग भावां । ३. (क) तीरेषु । ४. (क) त्रियु । ४. (क) तैरान्दोलितैक्सविते । ६. (क) महाच प्रतिमद्राच । १. (क) ध्रुवः केनापि । १०. (क) स्था सब् मदाहो । ११. (क) लम्बक । १२. (क) महादि ।

तत्तत्तालाभिधानेन सम्मकः कथयन्ति च ।
गुण्डकीः गूर्वेरी चैव रामकीः 'कलमञ्जरी ।।२०७॥
छायागोडस्च देशास्या वराटो कथिता तथा ।
बुधैः सालगनाट्टा च रागास्सालगसंज्ञिताः ।।२०६॥
छायायामलमित्यर्थं गीयत इति छायालगम् ।
(तदेव सालगनित प्रसिद्धम्)

वयगानस्य:

एकैकघोऽपि' गातव्यः प्रबन्धो विक्रियोगतः ॥२०६॥ चमत्कारं जनयितुं विक्रोबेकुश्वभाषतेः । भ्रतुसारस्कानुसारः' 'वैक्वीसरामिधः परः ॥२१०॥ खल्लोत्तरं च कुरुषुः पट्टम्तरनवान्तरौ । उच्यते समयस्तस्माद् विद्वयं परिवर्तनम् ॥२११॥ नवधा रूपकं प्रोक्त, गोतविद्याविचक्षणैः । कमेण सक्षणं तेषां वक्ष्ये लक्ष्यानुसारतः ॥२१२॥

गुण्डकी, गुजरी, रामकी, कलमञ्जरी, छायागीड, देशास्था, भीर बराटी 'सालग' नामक राग हैं।।२०८।।

इनका छाया में गाना पर्य्याप्त है, इसीलिए ये 'छायालग' या 'सालग' कहलाते है ।

श्रव गाने का कम बताया जाता है :-

सभापति की विनोदगोष्ठियों में चमत्कारोत्पादन के लिए एक एक प्रबन्ध भी विनियोगपूर्वक गाना चाहिये। अनुसार, सानुसार, उत्तर, सत्लोत्तर, कुक्यु, पट्टान्तर, नवान्तर, समय श्रीर परिवर्तन, रूपक के ये नौ प्रकार हैं, लक्ष्य के अनुसार कमशः उनके लक्षण कहूंगा।।२०६, २१२।।

ताल भीर राग में प्रमाणित, पूर्व वस्तु के सदृश नवीन 'वस्तु' भनु-सार है, जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब हो ॥२१२॥

१. (क) फनमञ्जरी । २. (क) छाववानन (ख) छाववानन । ३. एकैकस्सींपि । ४, (क) रसानुसार: । ३. (क) ततोसारामिदः । ३. (क) नवौतत: १

तालरागप्रमेयञ्च सवृषं पूर्ववस्तुतः ।
नवं वस्तवनुसारास्यं दर्पणे प्रतिविम्ववत् ।।२१३॥
इदमेव गुणैरीषत्सदृषं पूर्ववस्तुनः ।
सानुसाराभिषं ज्ञेयं गीतलक्षणकोविदैः ।।२१४॥
सममात्रं विशिष्टार्थं किचित्तालिकिष्मिवतम् ।
'कडालश्रुतिसंयुक्तमुत्तरं' गीतमुच्यते ।।२१४॥
स्वस्थानकपरित्यागात् स्थायानेवादिरूपके' ।
'नीचोच्चस्थानकैरस्यगानं सहलोगितः ।।२१६॥
एकस्यैवपदार्थस्य बहुनां वोषमाविधः ।
'यः स्यादिष्टार्थनिर्वाहः कुरुपुः परिकीर्तितः ।।२१७॥
परीक्ष्यमाणयोस्तज्जैरम्योपंदि वस्तुनो ।
ग्राधिक्यपनिर्वयं पट्टान्तरिमित स्मृतम् ।।२१६॥
प्रथंभाषाक्रियारागधानुमानुलयेषु च ।
'रसरीत्योर्नवत्व यन्तव इत्यभिषीयते ।।२१६॥

यदि यह गुणों के द्वारा पूर्व वस्तु के साथ कुछ सादृश्य रखती हो, तो 'सानुसार' है ।।२१३।।

यदि विशिष्टार्थयुक्त, सममात्रामय और कुछ विलम्बित ताल से

युक्त, एवं कडालश्रुतिसयुत हो, तो 'उत्तर' गीत है ॥२१५॥

पूर्वरूपक में गाये हुए 'स्थान' का परित्याग करके उन्ही स्थायों को म्रपेक्षया नीचे ऊँचे बन्य 'स्थानों' द्वारा गाने से 'खल्लोक्षर' होता है।।२१६॥ एक ही पदार्थ का अनेक उपमा इत्यादि के द्वारा इस्टार्थनिवाह

'कूरुप' कहलाता है ।।२१७।।

यदि विशेषज्ञ परीक्षणःय दोनों वस्तुम्रों में गुणाधिक्य के भनुसार तारतम्य निश्चित न कर सकें तो 'पट्टान्तर' कहा जाता है ॥२१६॥

भर्ष, भाषा, किया, घातु, मातुँ और लय में रस-रीति की नवीनसा हो तो 'नव' कहलाता है ।।२१⊲।

१. (क) चडाल। २ (क) मुतारं। ३. (ख) स्थेया नैवादि । ४. (क) निजोक्य । ४. (क) वस्लोत्तरं। ६. (क) सम्या। ७. (क) रसरीत्यार्णवस्तवः॥

'गजाद्यारीहणादी तु समये नुपवर्णनम्'।

तदानीमेव रचितं भवेत्तत्समयाभिषम् ॥२२०॥ रूपकं स्थानके रागे ताले गीयेत गायकैः । परिवृत्यान्यथा गीतं तदेव परिवर्तनम् ॥२२१॥ रीतयस्सन्ति कथिताः षडेव कथयामि ताः । चोक्षगायनरीतिरच योगिरीतिः कवचिद्भवेत् ॥२२२॥ मिलनगायनरीतिरच रीतिस्सा योषितां क्वचित् । क्वचित्रं रीतिरच रीतिस्सा योषितां क्वचित् । स्वचित्रं रीति कथकसज्ञिताः ॥२२३॥ रीतिर्भिङ्गरितियोक्ता रीतिलक्षणकोविदैः । इति श्रीमदभयचन्द्रमुनीन्द्रचरणकमलमधुकरायितमस्तक-महावेवार्योध्ययन्दिमलिव्यापुत्रसम्यक्त्वन्द्रमणिनरत-माण्डीकभाषाप्रविग्वष्य्वात्रात्वानक्वतियोगाकरतास्यवार्वं वेव विरिवतं सगीत्वसमयारे पञ्चमाधिकारयथा ।

राजाओं के गजारोहण इत्यादि के समय तत्काल रिवत नृपवर्णन 'समय' कहलाता है। दूसरों के द्वारा गाये हुए गीत को अन्य स्थान, राग और ताल में दूसरे ढंग से गाना 'परिवर्तन' है।।२२०-२२१।

रीतियाँ छ कही गई है, उनका वर्णन करूँगा।

चोक्षगायनरीति, योगिरीति, मिलनगायनरीति, नारियो की रोति, कही पेरणरीति श्रोर कही कथकरीति होती है।।२२३॥

श्रीमद् श्रभयचन्द्र मुनीन्द्र के चरण कमलो मे मधुकर वत् धाचरण करने वाले मस्तक से युक्त महादेव धार्य के शिप्य, स्वर-विद्या से युक्त, सम्यक्त्वचुडामणि, भरत भाष्डीकभाषाप्रवीण, श्रुतिज्ञानचत्रवर्ती सगीता-कर नाम वाले पाव्वदेव द्वारा विरचित सगीतसमयसार का पचम ध्रधिकरण पूर्ण हुमा।

१. (क) गजक्चारोहणादि ।

२. (क) वर्णनीम् ।

३. (क) रूपके स्थानके।

४. (क) उक्तगायनरीतिश्व ।

षष्ठमधिकरणम्

भ्रय गीतानुगामित्वाद वाद्यमत्र प्रवर्ण्यते' । उद्शक्तमतः किञ्चित्' सर्वलोकानुरञ्जनम् ॥१॥ चतुर्विषवाद्यम्—

ततं ततोऽवनद्धञ्च घनञ्च सुषिरं तथा ।
चतुर्विधमिदं प्राहुरातोखं वाखवैदिनः ॥२॥
ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम् ।
कांस्यं घनमिति प्रोवतं सुषिरं सुषिरात्मकम् ॥३॥
वीणा चालावणी चैव किन्नरी लघुपूर्विका ।
वृहत्किन्नरिका चैव शकनीत्यादिकं ततम् ॥४॥
पटहरच हुड्कका च ढक्का च तदनन्तरम् ।
मृदङ्कः पॅकरटेत्याद्यमवनद्यमुदाहृतम् ॥४॥

गीतानुगामी होने के कारण श्रव उद्देश-पूर्वक लोकानुरञ्जक वाद्य का कुछ वर्णन किया जाता है।।१।।

वाद्यक्षों ने चतुर्विध वाद्य, 'तत', 'अवनद्ध', धन भौर 'सुषिर' कहा है।।२।।

तन्त्रीयुक्त 'तत', पुष्करवाद्य 'भवनद्ध', कांसे का बना हुमा 'घन' श्रौर छिद्रयुक्त वाद्य 'सुषिर' कहलाता है ॥३॥

वीणा, श्रलावणी, लघुकिन्नरी, बृहत्किन्नरी, श्रकनी (!) इत्यादि 'तत' हैं ॥४॥

. पटह, हुडुक्का, ढक्का, मृदञ्ज, करटा इत्यादि 'भवनद्ध' हैं ।।५॥

१. (क) प्रवतंते । २. (क) किञ्च । ३. (क) वकन्नित्यादिक ।

४. (क) करडीताद्या ।

तालश्च कांस्यतालश्च घण्टिका क्षुद्रपूर्विका ।
पट्टस्च शुक्तितरित्याच चनवाचमुदाहृतम् ॥६॥
वंशश्च महुरी चैव शह्वः श्रुङ्गस्तयैव च ।
इत्याचनेकघा प्रोनतं सुषिरं वाचवेदिभिः ॥७॥
एकहस्तेन हस्ताभ्यां कोणेनाङ्गुलिभिस्तया ।
नाना प्रकारं फूल्कारं श्रुतिसौक्यविघायिभिः ॥६॥
वहप्रकारमेव स्याद वादनं लोकरञ्जनम् ।

पञ्चवा वादनमेदा ---

तत्सर्व पञ्चथा भूयः शुष्क गीतानुग तथा ॥६॥
नृत्यस्य चानुयायिस्यादुभयानुगमीत्यपि ।
तत्र्यास्चानुगत प्रोक्तं वाद्यविद्याविशारदैः ॥१०॥
विना गीतविना नृत्त वाद्यं शुष्कमुदाहृतम् ।
अन्वर्थसज्ञया ज्ञेय शिष्ट वाद्यचत्रत्यम ॥११॥

ताल, कास्यताल, क्षुद्रघण्टिका, पट्ट ग्रौर शुक्ति इत्यादि घनवाद्य है ॥६॥

वंश, महुरी, शङ्ख, शृङ्क इत्यादि श्रनेक सुषिरवाद्य है ॥७॥

एक हाथ से, दोनों हाथो से, कोण से, हाथ की झँगुलियों से तथा सुखदायक फूँको से इन वाद्यो का लोकरञ्जक वादन होता है।

वाद्यविद्याविकारकों ने पाँच प्रकार का वाद्य, 'शृष्क', 'गीतानुग', 'नृत्यानुग', 'गीतनृत्यानुग' और 'तन्त्र्यनुग' कहा है ॥=-१०॥ गीतनृत्तरहित वाद्य 'शुष्क' है, अविशष्ट चारों वाद्य अन्वर्ष है ॥२१॥

१. (क) मुहुरीक्यैता।

२. (क) स्मृत्यस्य । ३. (क) नृत्यं ।

धन्यमेवहेतव :---

क्रियाभेदाद् वाद्यभेदात्तर्थेव' व्याप्तिभेदतः। बीणाभेदाद् भवन्त्यन्ये तंत्रीसंख्यावशादपि ॥१२॥ भजते सर्ववीणानामेकतन्त्री प्रधानताम्।

दशविषवीणावाद्यम्*--

छन्ते । धारा कैक्टी च कङ्कालो वस्तुतूर्णकी । गजलीलाभिधानञ्च "तथैवोपरिवादनम् । दण्डकञ्च तथा जेयं वाद्यं पिक्षस्ताभिधम् ॥१४॥ एतद्दशविद्यं " नाम्ना बीणावाद्यं समीरितम् । खितते के समायुक्तो बहुधा स्फुरितः करः ॥१४॥ सस्पुष्टतारं छन्दाख्यो यत्या च समलङ्कृतः । उत्क्षेपः परिवर्तक्च ताम्यां स्याद्यत्र कर्तरी ॥१६॥ रेफेण सहिता " तद्वदुल्लेखो रेफसयुतः । एव समुदित प्राहुर्धाराख्य "वादमं बुधाः ॥१७॥ सुक्षेन स्फुरितेनापि निर्धोषेण च पाणिना । सयुक्तं चार्धकर्तया कैकुटीवादनं विदु. ॥१८॥ समुक्तं चार्धकर्तया कैकुटीवादनं विदु. ॥१८॥

कियाभेद, वाद्यभेद, व्याप्तिभेद, वीणाभेद और तंत्रीसंख्याभेद के कारण अन्य प्रकार भी होते है।।१२॥

समस्त वीणाग्रो में 'एकतत्री' प्रमुख है।

सनस्त पाणांशा न एक्सना अनुस्त है। छन्द, धारा, केंकुटी, केंकुल, वस्तु, तूर्णक, गजलील, उपरिवादन, दण्डक तथा पक्षिरुत ये दशविध वीणा वाद्य है।

'खसित' से युक्त, जिसमें हाथ बहुधा स्कृरित हो, तार स्थान का स्पर्श हो रहा हो और जो यित से अलङ्कृत हो वह 'छन्द' है।

जहाँ उत्क्षेप और परिवर्त से युक्त रेफसहित कर्तरी हो और उत्क्षेस भी रेफयुक्त हो, उसे बृद्धिमानो ने 'धारा' (दूसरा नाम 'दारा')

 ⁽क) बच्यमेदात् । २. (क) दोरंक कुटल । ३. (क) तुणंक । ४ (क) तथोबो ।
 १. (क) एवहश्रमिद । ६. (क) स्वस्तिकेत । ७. (क) तडा । ६. (क) द्वाराक्य ।
 व्यविषयीणावाद्यावस्त्रभणानि भरतकोषोव्यत्त्यात्रानुसार स्वशीधतानि ।

कर्तरीत्रयसंयुक्तं स्फुरितै सूच्छितंयुँतम् ।
कङ्कालनामकं वाद्यं प्राहुवीणिककोविदाः ॥१६॥
कर्त्वयं स्वसितेनापि कुहरेण परिस्फुटम् ।
तारः सस्पृत्वते यत्र तद्वाद्यं वस्तुसज्ञकम् ॥२०॥
कर्तरीस्रासिताभ्यां यत् कुहरेण च सङ्गतम् ॥
'निघोंपरेफगमकैस्तूणं तत्करण विदुः ॥२१॥
कर्त्वया स्वसितेनापि सूच्डितंैः स्फुरितंैः करं ।
विरच्यते तु यद्वाद्यं गजलीलमितीरितम् ॥२२॥
प्रश्नस्तादुपरिष्टाच्च यत्रं यातः करस्य च ।
रेफकर्तरिनिष्कोटैस्तलेनोपरिवाद्यकम् ॥२३॥
निक्षिय्तपरिवर्ताभ्यां कर्त्या च सरेफया ।
मानेन स्वसितेनापि मण्डितं दण्डक विदुः ॥२४॥

वाद्य कहा है स्फुरित और निर्घोष—तथा अर्धकर्तरी से युक्त हाथ से किया जाने वाला वाद्य केंक्र्टी है।।१३-१८।।

वैणिकों ने कहा है कि मूछित नामक स्फुरितो ग्रौर तीनो कर्तरियों से यक्त वाद्य 'कङ्काल' हैं ॥१६॥

कर्तरी, स्रसित तथा कुहर के द्वारा जहाँ तार स्थान का स्पष्ट स्पर्श होता है, वह 'वस्तू' वाद्य है।।२०॥

निर्घोष श्रीर रेफ गमको के द्वारा 'तूर्ण' करण होता है, जो कर्तरी, स्रसित श्रीर कुहर से सङ्गत हो ।।२१।।

कर्तरी, खसित तथा मूर्च्छित स्फुरित करो से युक्त वाद्य 'गजलील' होता है ॥२२॥

जहाँ रेफ, कर्तरी और निष्कोट के द्वारा, ऊपर नीचे गिरने वाले हस्त और हथेली के द्वारा वादन हो, वह उपरिवाद्य है ॥२३॥

रै. (ख) अमरै: । २. (ख) मूज्छित: ।३ (ख) यवयात करी कमात्। ४. (ख) तिक्षिप्य (क) विक्षिप्त । १. (क) मन्दित ।

समस्त हस्तसंयोगाद् वाद्यं पक्षिरुतं मतम् । इत्युक्तं दशघा वाद्यं गीतलक्षणवेदिभिः ॥२४॥ सकलं निष्कलञ्चेति वाद्यमेतदृद्विधा भवेत् । कथितं राङ्करेणेदमेकतंत्रीसमाश्रयम् ॥२६॥

शङ्करोक्तं द्विविधवाद्यम्--

तथा' जीवा विधातव्या लग्ना' नादे यथा भवेत् । यत्तथा जीव्यते ' नादस्तेन जोवेति सा मता ॥२७॥ तित्रका पत्रिकाया' तु किञ्ल्लिगति नोऽथवा' । लग्ना सैन कला जेया वीणाप्रावीण्यशालिभिः ॥२८॥ तदुक्त सकलं वाद्यं यत्र स्थूलो भवेद् ष्विनः । स्रसस्पर्शेन' तर्जन्या दोरिकापत्रिकाविध ॥२६॥

निक्षिप्त तथा परिवर्त, रेफसहित कर्तरी से युक्त खसित से युक्त बाद्य 'दण्डक' होता है।।२४।।

'पिक्षिरत' नामक वाद्य समस्त हस्तों के संयोग से होता है। इस प्रकार गीतलक्षणको ने दशविध वाद्य कहा है।।२४॥

शङ्करोक्त एकतत्री वाद्य दो प्रकार का होता है, 'सकल' स्रौर 'निष्कल'।।२६।।

ऐसी जीवा बनाना चाहिये, जिसके लगने पर नाद हो, उसे जीवा इसलिये कहा जाता है कि वह नाद को जीवन देती है।।२७।।

जबिक तंत्री पत्रिका पर कुछ लगती है ग्रौर कुछ नही लगती, तब लग्ना जीवा 'कला' कहलाती है ॥२६॥

दोरिका तक पत्रिका जव तर्जनी से श्रसंस्पृष्ट हो श्रौर ध्वनि स्थूल हो, तो 'सकल' वाद्य कहलाता है।।२६।।

 ⁽क) जवा। २ (क) लम्लादेव : ३, (क) जीयते ।
 ४. (क) पुत्रकाया । ५. (क) वायवा । ६. (क) ब्रसंस्पर्शिति ।

सार्य्येते कब्रिका 'यत्र सकलं तदिष च स्मृतम् । विन्दोरुदय 'सिद्ध्यर्थ जीवाहीना विश्रीयते ।।३०॥ निषादस्वरतोऽधस्तात् कब्रिका नैव सर्पति । यत्र स्यात्तर्जनीस्पर्शो 'निष्कलं तन्निगद्यते ॥३१॥ विश्वकर्मकोमारणा—

सन्निविष्टा तथोत्सिप्ता गृतीया चोभयात्मिका ।
सङ्ग तत्र्याः परित्यज्य ससपेंद्यत्र सारणा ।।३२।।
सन्निविष्टाभिधाना सा सारणा कथिता बुधैः ।
स्पर्श स्पर्श समुत्सृज्य तंत्रीमुरप्तृत्य सारणम् ।।३३॥
यत्रापि सोदितीक्षिप्ता निष्कले सकलेऽयवा ।
भवेत्कुत्र विद्वत्थिप्ता संस्पृष्टा कुत्र विद् भवेत् ।।३४॥
इति "कियाद्वयोयोंगात्सारणा सोभयात्मिका ।
सारणा ति.प्रकारेयमेकतंत्रीसमाक्षिता ।।३४॥

⁽दोरिका से पित्रका तक अंगुली के ग्रसस्पर्ध से) जहा किन्नका का सारण होता है, वह भी निष्कल कहलाता है। बिम्दु के उदय की सिद्धि के लिए हीन जीवा बनाई जाती है।।३०।।

निषाद स्वर के नीचे किन्नका नहीं सरकती, जहाँ तर्जनी का स्पर्श हो, वह 'निष्कल' वाद्य है।।३१।।

सिन्निष्टा, उत्झिप्ता और उभयात्मिका (ये तीन प्रकार की सारणाएँ है)। तंत्री का सङ्ग छोडकर सारणा जहां सरकती है, वह बुद्धि-मानों ने 'संस्पृट्टा' सारणा बताई है।

जहाँ फूदक कर तंत्री का स्पर्ध कर करके और छोड कर, सकल या निष्कल बाब में, सारणा हो वह उत्सिप्ता कही गई है। जहाँ कही उत्सिप्ता कही संस्पृष्टा हो, वह 'उभयारिमका' सारणा है। इस प्रकार एकतंत्रीसमा-श्रित ये तीन सारणाएँ है। ॥३२-३५॥

१. (स) तत्रिका। २. (क) बिम्बादुदय। ३. (क) स्पर्शात्।

४. (क) किप्ता । ५. (क) मुत्पत्य । ६. (क) यद्यापि । ७. (क) त्रयादयो ।

श्रन्यासामपि' वीणानां यथौिवत्येन सारणा । हस्ते व्यापारमेवाः —

षातः पातस्य संलेख उत्लेखश्चावलेखकः ॥३६॥ छिल्नस्सन्धितसंज्ञस्य भ्रमरश्चिति दक्षिणे । हस्ते व्यापारभेदाः स्युविमे स्पुरितपर्षणे ॥३७॥ मध्यमाकान्ततर्जन्या भ्यदा तत्री निहन्यते । ततो षातो भवेत्पातस्तर्जन्यवैकया पुनः ॥३६॥ तर्जन्यस्तर्धातस्तु संलेखस्समुदाहृतः । मध्यमान्तर्षातस्तु संलेखस्समुदाहृतः । मध्यमान्तरषातस्तु भवेदुत्लेखसज्ञकः ॥३६॥ मध्यमाबाह्यषातोऽसाववलेख इति स्मृतः । तर्जनीपारवंसलग्ना हतानामिकया बहिः ॥४०॥ तत्री यदा तदा ज्ञेया षातिश्चन्नभिषानवान् । मध्यमानामिकाभ्यां तु बहिस्तत्री यदा हता ॥४१॥

भ्रन्य वीणाम्री की सारणाएँ भी भौचित्य के भ्रनुसार होती है।

घात, पात, संलेख, उल्लेख, बवलेख, छिन्न, सन्धित भीर भ्रमर ये दाहिने हाथ में तथा स्फुरित भ्रीर घर्षण बाये हाथ में व्यापारभेद है ॥३६, ३७॥

जहाँ मध्यमा से झाकान्त तर्जनी से तंत्री का हनन हो वहाँ 'घात' झौर केवल तर्जनी के द्वारा हनन 'पात' होता है ।।३⊄।।

तर्जनी के द्वारा धन्तरघात 'संलेख' और मध्यमा के द्वारा 'उल्लेख' कहलाता है ॥३६॥

मध्यमा के द्वारा बाह्यघात 'भवलेख' कहलाता है।

तर्जनी के पार्श्व से सलग्न तंत्री पर जब ब्रनामिका द्वारा बहिर्घात होता है, तब 'छिन्न' कहलाता है ।

मध्यमा और धनामिका के द्वारा तंत्री पर होने वाला बहिर्घात 'सन्धित' कहा गया है। चारों ग्रेंगुलियों से द्रुत ग्रन्तरघात 'भ्रमर' है।

१. (क) भ्रन्यानामपि । २. (क) भान्त ।

संगीतसमयसार

तदा विचक्षणैरुक्तो घातोऽसौ सन्धिताह्नयः'। **ग्र**ङ्गुलीभिश्चतसृभिरन्तराहननं द्रुतम् ॥४२॥ यदा विरच्यते घातस्तदा भ्रमरको भवेत । तंत्रीपुष्ठे तू संलग्ना वेपते यत्र सारणा ॥४३॥ ख्यातः स्फरितसज्ञोऽसौ घर्षणात्खसितः ³पनः । ग्रङगुलीभिश्चतसृभिः प्रत्येक हस्तयोर्द्धयोः ॥४४॥

उभयहस्तव्यापाराः -

बहियां हन्यते रतत्री इत सा कर्तरीमता। चतुभिर्नखरैः ४ र्युक्तै दक्षिणेनैव पाणिना ॥४४॥ भ्राहतिः कियते यात् साज्ञेयान खकर्तरो। कर्तरीसदशः पाणिर्दश्यते "यत्र दक्षिणः ॥४६॥ तथा कोणाहतिर्वामपाणिना सार्घकर्तरी। घातोऽनामिकयास्त्वन्तः सव्यमध्यमया बहिः ॥४७॥

जहाँ तत्रीपृष्ठ से सलग्न सारणा कम्पित होती है, वह 'स्फूरित' है, घर्षण से 'खसित' होता है ।।४३।।

दोनो हाथों में से प्रत्येक की नारो अँगुलियों से जब द्वा गति में तंत्री का बहिर्घात होता है, तब 'कर्तरी' होती है।

जब दाहिने हाथ के द्वारा चारो नस्त्रो से आधात हो, तो वह 'नस्त्र-कर्तरी' है।

जब दाहिना हाथ कर्तरी की भौति हो और बायें हाथ से कोण का भाषात हो, तो 'अर्धकर्तरी' है ॥४७॥

जब अनामिका के द्वारा अन्तर्घात हो, बायें हाथ की मध्यमा से बहिर्घात, तो वीणावादन मे यह 'रेफ' कहलाता है।

 ⁽क) सन्धिका। २. (क) वृपते। ३ (क) द्वसित । ४. घ्वस्थते। (क), (ख) यत्त । ६. (क) भाहतः । ७. (क) सदशे ।

तदासी' रेफनामा स्याव् वीणावादनकर्मणि ।
सारणायाः परित्यागे तर्जन्या यदि हत्यते ॥४८॥
तंत्रीनादस्सद्भूतो "नाम्ना निष्कोटितस्तदार्" ।
तर्जन्याद्यां कनिष्ठाद्यं द्विरूप परिवर्तनम् ॥४९॥
तयोः पावर्वेन संस्पर्वाद् भ्रमणे रेचिते करे ।
यदा' द्वत स्वरस्थाने' कम्निकाम्येति सारिता ॥५०॥
करः स मुच्छंनामिस्था वैणिकरिभधीयते ।
साङ्गुष्ठाः कुञ्चिताः किञ्चित् चतस्रोऽङ्गुलयो यदा॥५१॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोः स्पर्शात् कथितः कुहरः करः ।
"मञ्जूष्ठपावर्वमिलिता कर्तरी च प्रहत्यते ॥५२॥

कनिष्ठासारणाभ्या च तदा निर्घोष उच्यते "।

उत्पन्न तत्रीनाद 'निष्कोटित' कहलाता है। 'परिवर्तन' दो प्रकार का है 'तर्जन्याद' भीर 'कनिष्ठाद्य' ।।४६।। पाइवें के द्वारा उन दोनों के स्पर्ध से असण होने भीर कर के रेचित

होने पर जब बृत गति से किन्नका स्वरस्थान पर पहुँचती है, तो यह करक्यापार 'मूच्छेना' कहलाता है।

जब चारों ग्रेंगुलियां भीर ग्रेंगूठा कुछ सिकुड़े हो, तब कनिष्ठा भीर ग्रंगुष्ठ के स्पर्श से 'कुहर' हस्त होता है ॥५२॥

कनिष्ठा और सारणा से जब अगुष्ठ के पार्श्व से मिली हुई कर्तरी का हनन होता है, तब निर्घोष कहलाता है।।५३॥

 ⁽क) सारिव । २ (क) सारिणा पपरित्यापे । ३. (क) नादस्तदुद्भृतो ।
 ५. (क) निध्दोदित । ५. (क) यदावृत्त स्वस्थाने । ६. (क) किंमकारव्येन सा मता ।
 ७. (क) साङ्गच्छः । ५. (क) किंम्बतः । १. (क) माङ्गच्छ । १०. (क) मुख्यते ।

दक्षिणे कर्तरी युक्ता तदा स्वलितको भवेत्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरसभागमात्रेणे घर्षणम् ॥५४॥
तत्र्या यदा तदा ज्ञेयः शुक्तवक्त्राभिषः करः।
तर्जन्या षार्यते नादो घातोऽनामिकया बहिः ॥५४॥
भवदा तदा परिज्ञेयो बिन्दुर्नाम्ना विचक्षणः।

बरो वैणिक:---

जितेन्द्रियः प्रगरुभश्च स्थिरासनपरिग्रहः ॥४६॥ शरीरसौष्टवोपेतः करयोविजितश्रमः । सुकारीरो भयत्यक्तो रागरागाञ्जतत्ववित् ॥४७॥ '*गीतवादनदक्षश्च वैणिकः'' कथितो वरः । (इत्येक्तंत्रीवीणावादनतक्षणम्)

द्मालावणीवादनम*—*

वाद्यं लावणिका तज्ज्ञैनिष्कलक्रमयोगतः ॥५८॥ मन्द्रे मध्ये च तारे च बिन्दु. स्यात् स्थानकत्रये ॥ भ्रालावण्या विधातव्यो सूक्तको^{९९} मध्यमः स्वरः ॥५९॥

दाहिने हाथ में कर्तरी से युक्त तत्री का जब उत्क्षेपपूर्वक सारणा के द्वारा हनन किया जाता है, तब 'स्वलितक' होता है। जब तर्जनी और अंगुष्ठ के अग्रभाग से तंत्री का घर्षण होता है, तब 'गुकववव' हस्त होता है। जब तर्जनी के द्वारा नाद का धारण हो और श्रनामिका के द्वारा बिकिधीत हो तब 'बिन्द' होता है।

बहिषांत हो तब 'बन्दु' होता है । जितेन्द्रिय, नागल्भ, स्थिर झासन और परिग्रह से युक्त, झरीर सौष्ठवसम्पन्न, हाथों के द्वारा श्रमजयी, सुजारीर, निर्भय, राग-रागाङ्ग का तत्वज्ञ तथा गीतवादन में दक्ष वैणिक श्रेष्ठ हैं ॥५७॥

(एक तंत्री वीणा वादन लक्षण सम्पन्न हुआ)

निष्कल कम के योग से विशेषकों द्वारा आलावणीवादन होता है।

१. छ्वसितको (क) स्वसितको । २ (क) एत । ३ (क) यवा । ४. (क) वार्षते ।

५. (क) विधि । ६. (क) परातरा । ७. (क) विदु । ६. (क) पर्क्यमः।

६. (क) मव । १० (क) वादक नृत्येच्य । ११ (क) वैदिकः।

१२. (क) क्रुक्यरावर्ष संयुक्तम् ।

बामहस्तस्य तर्जन्या जायते पञ्चमः स्वरः ।
र्भवंतो मध्यमाङ्गुल्या निषादः स्यात् कनिष्ठ्या ॥६०॥
ततस्तु ' मुक्तकः कार्य्यः स्वरः षङ्जाभिधानवान् ।
ऋषभः पञ्चमस्थाने तर्जन्या तदनन्तरम् ॥६१॥
गान्धारो र्षेवतस्थाने मध्यमाङ्गुलिको भवेत् ।
स्रथ दक्षिणहस्तेन सारणा मूर्ण्डना कमात् ॥६२॥
गम्यते ' सन्तकःन्द्रमारोहिण्यवरोहिणि ।
स्वराणां नियमाद्रागेष्वङ्गुलीनियमो नहि ॥६३॥
स्वराणां नियमाद्रागेष्वङ्गुलीनियमो नहि ॥६३॥

द्वितुम्बी किन्नरी लघ्वी बृहती तु त्रितुम्बिका। कथिता पञ्चतंत्रीतिच्छिकिनी वाद्यवेदिभिः।।६४॥ तत्तद्यन्त्रवशादासां व वाद्यभेदस्त्वनेकघा। तत्तवाद्यमिति प्रोक्तपवनद्धमयोज्यते ।।६५॥ (इति तत्वाद्यम)

उसके मन्द्र, मध्य एवं तार इन तीन साधनो में बिन्दु' होता है। ग्रालावणी मे मध्यम मुक्त रखना चाहिये। बायें हाथ की तजेंनो से पञ्चम, मध्यमाङ्गुलि से धैवत, कनिष्ठा से निषाद तत्पश्चात् वड्ज नामक स्वर मुक्त होता है। तत्पश्चात् तर्जनी से पञ्चम के स्थान पर ऋषभ होता है।। इशा

र्षवत के स्थान पर मध्यमा श्रड गुली से गान्धार होता है। मूच्छेना-कृम से दाहिने हाथ के द्वारा सारणा होती है तथा श्रारोह एवं श्रवरोह में नियमपूर्वक दो सप्तको की प्राप्ति होती है। (६२, ६३।।

स्वरों क नियम के अनुसार रागों मे भ्र इ गुली-नियम नहीं है। विदुम्बी लघुकिसरी होती है, वृहती किसरी त्रितुम्बिका होती है तथा वाख के विशेषकों ने सकिनी पचत मी बताई है। १६४। वाखों को यंत्र (वनावट) भेद से बजाने का उच्च धनेक प्रकार का है। १६॥ प्रकार ततवाब का वर्णन कर दिया, ध्रव वस्त्रद्ध कहा जाता है। १६॥ (ततवाब समास्त हमा)

 ⁽क) ततपसुमृताक. । २. (क) वास स्य । ३. (क) वशासान्ता । ४. (क) धवनथ ।

पटहवर्णाः —

भेक्कारमुद्दलीजातं ' देक्कारक्कतनोद्भवम् । प्राहुरेवं विभागेन वाद्यविद्याविशारदाः ॥६६॥ कवर्गेश्च तवर्गेश्च टवर्गेश्च ढवर्जितः । भवेयु, पटहे वर्णा रहाभ्यां सह षोडश ॥६७॥

हुडुक्कावर्णाः-

वादनाय हुडुक्कायामक्षराणि प्रचक्ष्महे । तवर्गरच टवर्गरच² रहाभ्यां सहितावुमौ ॥६८॥ कवर्गः पंचमन्यूनःप्रोक्तान्येतानि षोडशः । ऋङ्कारस्य हुडुक्कायां सञ्चो^र मुख्यः प्रकीतितः ॥६८॥ ढक्कावर्णादिक सर्वं हुड्कासममिष्यते । वादनाय ततो वाद्य वस्तृना कथ्यतेऽभुना ॥७०॥ हस्तलक्षणमेतेषां व्यक्तोवाहरणैः सह ।

ब्रष्टघा हस्ताः—

उत्फुल्लः खलकञ्चैव^४ पाण्यन्तरनिकुट्टकः ॥७१॥

पटह की बाई पुडी में 'किङ्कार' और दाई पुडी में 'देङ्कार' की उत्पत्ति होती है। बाबजों ने विभागपूर्वक इस प्रकार कहा है कि पटह में कवर्ग, नवर्ग. ढकाररहित टवर्गतया रेफ प्रीर हकार ये सोलह वर्ण होते हैं।।६६, ६७।।

श्रब हुडुक्का में बजाने के लिए श्रक्षर कहते है। तबर्ग, टबर्ग, ङकार रहित कबर्ग, रेफ श्रौर हकार ये सोलह वर्ण हुडुक्का मे है। हुडुक्का में फेक्कार का सञ्च मुख्य है।।६६।।

बन्ना श्रादि वाद्यों में भी हुड्नका के समान ही समस्त वर्णे हैं। श्रव वस्तुओं के वादन के लिए 'बाज' और स्पष्ट उदाहरणों सहित इनका हस्तलक्षण कहा जाता है।

उत्फुल्ल, खलक, पाव्यन्तर निकुट्टक, दण्डहस्त, युगहस्त, स्यूल-

१. (क) मुदली । २ (क) ऋकारतवलोद्भवम् । ३. (क) डर्वाजत । ४. (क) दिवगंश्च ४. पञ्चमुख्य प्रकीतित । ६. (क) चलकरवैत । ७. (क) निगृहुक: । वण्डहस्तोऽय गुग्मः स्यात् "स्थूलहस्तस्ततः परम् । पिण्डहस्तः समृतश्चोध्वंहस्तः इत्यष्टघा बुधैः ॥७२॥ प्रष्टविष्ठस्तवभणम्—

ब्दावबहस्तलकाणम्

ग्रथैतेषां प्रवक्ष्यामि लक्षणञ्च प्रयोगतः । हस्तेभ्यः शब्दनिष्पत्तिर्जायते हि परिस्फुटम् ।।७३।। शब्देभ्यः पदनिष्पत्तिः पदेभ्यः पाटसम्भवः । पाटेभ्यो जायते वार्चं वस्तुवर्गो यथाकमम् ।।७४।। ये पताकादयो हस्ताः नाटयशास्त्रे व्यवस्थिताः । तेषु केचन कथ्यन्ते हस्तवाद्योपयोगिनः ।।७५।।

उत्फूल्ल :---

श्रलपद्माह्नयो[®] हस्तो यदा वाद्य^{ः ४} निवेश्यते । लघुपाटे^४ नखाघाताडुत्फुल्लोऽसौ तदा भवेत् ॥७६॥ यथा^{६ (}कग्रोम् कग्रोम्' (कह्ने इति शार्क्कवेवः)*

वलकः--

यदा प्रसारिताङ्गुष्ठः शुकतुण्डो विधीयते । विरलाङ्गुलिघातेन क्रमेण खलकस्तदा ॥७७॥

हस्त, पिण्डहस्त् और ऊर्ध्वहस्त ये ब्राठ प्रकार के हस्त् हैं ॥७०-७२॥

श्रव प्रयोगपूर्वक इनके लक्षण कहूंगा। हस्तो से स्पष्टतया शब्द की निष्पत्ति होती है शब्दो से 'पद', पदो से 'पाट' श्रीर पाटों से कमशः वस्तु वर्ग उत्पन्न होता है। नाट्यशास्त्र में जो पताका इत्यादि हस्त व्यस्थित हैं, उनमें से वादोपयोगी कुछ कहे जा रहे हैं।।७३-७४।।

लघुपाट में नखाधात से जब अलपद्म नामक हस्त का धात होता

है, तो 'उल्फुल्ल' होता है .- जैसे 'कग्रोम्' ॥७६॥

जब ग्रेंग्ठा फैला हुमा होने के कारण शुक्तुण्ड हो, तो उसकी छिदरी ग्रेंगुलियों के ग्राघात से 'खलक' होता है। जैसे 'थॉकिटकिट तकि-टाम्' ॥७७॥

१. (क) स्य । २ (क) तोरहस्त । ३. (क) महपद्या । ४ (क) वर्षे । ५. (क) तथुगठेन चाचात् । ६. (क) ह्रोंकहें । [#]शाङ्गंदेवोद्यरणानि न मुलस्थानि ।

यथा - थोंकिटकिट तिकटाम्' (दांगिडगिडदिगिदां इति शाङ्गेदेवः) पाच्यन्तरनिकृद्रकः —

वामेतरस्य हस्तस्य तर्जन्यङ्गुष्ठघाततः । परिज्ञेयोर्बु धैहंस्तः पाण्यन्तरनिकुट्टकः ॥७८॥

यदा—डेंकिट तकिट ढिकटतिकटात्व । (दगिडदां स्वरिक्त सरिक्त दां दां स्वरिस्वरिदां गिडदां इति शाङ्गदेवः)

बण्डहस्त — पताकाका रहस्ताभ्यामुभाभ्यामुर्ध्वताडनात^३ ।

दण्डहस्ताभिष हस्त विदुर्वाद्यविशारदाः ॥७६॥
--यथा-था था था (दातरिकिटदा खरिखरिदा, इति शार्क्यदेवः)

युगहस्तः--

... विदलाङ्गुलिघातेन पताकाभ्यां यदा भवेत् । रेफैरेबोध्वेहस्ताभ्या ताडनाद् युगहस्तकः ।। ॥ ।।। यषा पर र र (ब्रे ब्रॅ दा दा इति षाङ्कदेवः)

स्यूलहस्तः— अर्ध्वचात्रसम्

क्रध्वंघातद्वयं^४ कृत्वा तालहस्तेन^६ हन्यते । पटहस्य पुटद्वन्द्व[°]स्थूलहस्तस्तदा भवेत् ॥५१॥

दाहिने हाथ की अगुली और अंगूठे के घात से पाण्यन्तरनिकुट्टक हस्त होता है जैसे — डॅकिट, तकिट टकिट तकिट, त।

दोनो पताकाकार हस्तों के द्वारा ऊर्ध्वताडन से 'दण्डहस्त' वाद्य वाद्यज्ञों ने बताया है। जैसे 'था था था था'।।७६।।

(दा तरिकिट दा, खरिखरि दा-यह शा क्रंदेव के अनुसार)

दोनों पनाकाकार हस्तो के द्वारा छिटनी संगुलियों के झाघात और ऊर्ध्व हस्तों के रेफ से 'युगहस्त' होता है, जैसै—'र र र र र'। (शाङ्क्वंदेव के झनुसार द्वे द्वे दा दा)

जब दो उध्वंधात करके हथेली से पटह की दोनों पुड़ियो पर झाघात किया जाता है, तब 'स्यूलहस्त' होता है। जैस —देन्दें दोहड़ें॥ (शार्ज्ज देव के अनुसार खुलुद खुलुद ताल) ॥ ५०, ५१॥

(क) दौगिडगिदगिमदो । २ (क) टेकिट किट किकटत, । ३. (क) उल्लाम्या ।
 ४. (क) य-मर-व्य । ४. (क) ज । ६. (क) -ररररदर । . (क), (ल) पात ।
 ६. (क) कृत पाते । ७ (क) योरहत, (ल) तोचहला । क्रज्यंमातद्वय कृत्वा तत्त्व हस्तेन हम्यते । यदा बावायुटबन्द्व स्पृजहस्तत्त्वादीदत, इति क्राङ्कृदियः ।

यथा—देन्दें दोहडें (खुखुंद खुंखुंद इति शार्क्नदेवः)

पिण्डहस्तः--

रेफहस्ते कृते पूर्वमूर्घ्वहस्ते च कल्पिते । पिण्डहस्ताभिषो हस्तः कथितो वाद्यवैदिभिः ॥५२॥ यथा-तर्राकट तर्राकट कें कें। (थरिकट कें थरिकट कें – इति बार्झदेवः)

ऊर्ध्वहस्तः--

प्रहारे तलहस्तेन दक्षिणेन च पाणिना । दृढं विरिचतं विद्याद्भध्वेहस्त विचक्षणः ॥६३॥ यथा-बर्* थर्नु बर् बर्नु पर्तु यर्नु थर्ष तृ थर्नु थर् पु यर्षित द्यां दा इति सार्ज्वदेन.) (इत्यष्ट्या हस्तलक्षणम्)

बज्ञचा हस्तापाटा — प्रथमः कर्तरी ज्ञेयो द्वितीयस्समकर्तरी । तृतीयो विषमञ्जैव चतुर्थस्समपाणिकः ॥≤४॥

रेफहस्त करने के पश्चात् अध्वेहस्त किस्पत करने पर बाद्यज्ञों ने 'पिण्डहस्त' कहा है।। जैसे. तरिकट तरिकट फें फें, '। शार्जुदेव के कमुसार बाहिने हाथ के द्वारा हथेली का दृढ प्रहार करने से 'ऊध्वे हस्त' होता है। जैसे — 'थर थर तृ थर तृ यर तृ घर वर तृ पर तृ

थर्थ तु । (शार्झंदेवे के अनुसार दिगडदादा) ।। = ३।।

(ये भ्राठ प्रकार का हस्त लक्षण हुआ) दाहिने हाथ की भ्राँगुली भ्रीर भ्राँगुठे के घात से पाण्यन्तरनिकुट्टक

हस्त होता है। जैसे — डेकिट तिकत ढार्किट तिकत'।
पहला कर्तरी, दूसरी समकर्तरी, तीसरी विपमकर्तरी चौचा समपाण, पाँचरा पाणिहस्त, छठा स्वस्तिक, सातवाँ विपमपाण, प्राठवाँ
प्रवचट, नवाँ नागवन्य, दसवाँ समग्रह, इस प्रकार दस प्रकार के हस्तपाट
बताये गये हैं। श्रव स्पष्ट उदाहरणों से युक्त उनके लक्षण कहंगा।

१. (क) विविद्यी, विवित्तो हटे। २. (क) कल्यते।

रे. (क) पिण्ड हास्तामिका इस्ता । ४. (क) प्रहोरर हस्तेन ।

५. (क) दनकिट, दनकिट था।

पञ्चमः पाणिहस्तः स्थात्स्वस्तिकः षष्ठको भवेत् । सप्तमो विषमः पाणिः अष्टमोऽवघटः स्मृतः ॥६५॥ नवमो नागबन्धस्व दशमस्तु समग्रहः । इत्येवं हस्तपाटास्व दशमैव प्रकीतिताः ॥६६॥ एतेषां लक्षण वक्ष्ये स्पष्टोदाहरणैर्युतम् ।

कर्तरी-

यत्रेकेनैव हस्तेन दक्षिणेनेतरेणवा ।। दशा पद्मकोशेन निष्पीड्याञ्य रेफे. शुद्धकर्तरी । यथा-यर्घ पर्धर् थर्थर्थर् ४२ थर्थर्। इत्यप्ट मात्रः कर्तरी पाटः । समक्तेरी*—

कर्तरीभ्यां समं घात कराभ्यां समकर्तरी ।।८८।। फिकिट कनकिट किटके थोदिगि (दिनिरिटि तिरिटिकि इति शार्जुदेव)

विषय कर्तरी -

क्रमेण ताडनाद् द्वाभ्या भवेदिषमक्तरी । टिरि टिरि थो दिगिद टिरि टिरि किद (इति शार्ज्जदेव) समपाणि -

श्चङ्गुष्ठाङ्गुलिसङ्कातौ हस्तयोर्थृगपद्यदा । पीडयेता पुटद्वन्द्व समपाणिस्तदा भवेन् ॥५६॥ यथा दा गिङ दा दा ।इति ज्ञाङ्कदेव)

पद्मकोश आकृति से युक्त वाये हाथ से निष्पीडन के परचान् रेको के प्रयोग से कर्तरी होती है, जैसे थर्थर्थर्थर् थर्थर्थर्थर्' (यह ब्राट मात्र का कर्तरी पाट हथा)।

दोनो हाथों से एक ही समय कर्तरी घात 'समकर्तरी, है, जैसे — फिलकट कनकिट किटभे थोटिंग इतिरिट तिरिटिक''

भिनाकट कनाकट किटक था।दाग दातराट ताराटक दोनो हाथो के द्वारा कमश नाडन से 'विषम कर्तरी' होती है, जैसे — टिरि टिरि थो दिगिद रिरि टिरि किद ।

जब दोनो हाथो मे अंगुष्ठ और अँगुलि के संघात से दोनों पुड़ियों का आघात किया जाये, तब 'समपाणि' होता है ॥७८-८६॥

^{*} चिद्वितानि लक्षणानि विषय पूरणार्थं रत्नाकराहुद्वृतानि, भ्रादर्शद्वयेऽपि खण्डित भ्रन्यत्वात ।

पाणिहस्तः--

विरलाङ्गुलिभियंत्र रचितैः किरिकरेत्यपि । श्रीभावतः प्रयुक्तो यः पाणिहस्तोऽभिधीयते ॥१०॥ यया-किटकिट्ट, किटकिट्ट, किट्टकिट,किटकिट्ट, किटकिट्ट, किटकिट्ट (तरिण्ड दरिण इति शार्क्कदेवः)

स्वस्तिक:--

थो थों यों निकटैनापि कटतट्यासमन्वितः।

एकत्र स्वस्तिकाकारकराभ्या स्वस्तिको भवेत् ॥६१॥

यथा थोनिकट किटतक, थोनिकटतिकट, तिकिट तिकट, थोन-किट थोनिकट, थो थों किटतक, थोनिकटिकटिकट, तिक थों थो किट, तत्थों थों थों, थोंकिटतिकयों, थोनिकटिकटतक, थोनिकटिकटतिक, थोनिकटिकट-तिक. थोनिकटिकटितिक.

यत्र षोडश मात्राभिर्युक्तोऽयंस्वस्तिको भवेत् । विषमपाणि —

त्रप्राङ्गुलिसमायोगात् व्यत्ययात्करयोरिह ॥६२॥ गिरुकिटुभ्रेन्नशब्दैश्च ततोगिनिकरादिभि । करटासयुतैः पार्टः हस्तो विषमपाणिकः ॥६३॥

जहाँ भैंगुलियों को छिदरा रख कर किये हुए अभिघातों से 'किरकिर' इत्यादि बोल निकाले जाये, वहा पाणिहस्त' होता है, जैसे—किटकिट्ट, किटकिट्ट इत्यादि ॥६०॥

जहाँ 'थों थो थों निकट, कट तटि' इत्यादि बोल हाथों को स्वस्ति— काकार करके निकाले जायें, वहाँ 'स्वस्तिक' होता है ॥६१॥

यह 'स्वस्तिक' सोलह मात्राओं से युक्त होता है । जैसे 'थोनकिटतक' क्रम्यादि ।

गिरुकिटुकेन्न तथा गिनिकर' इत्यादि करटावाद्य सम्बन्धी पाटों से युक्त पाट 'विषमपाणिक' होता है। जैसे 'गिरुकिटक, तिंगन किरगिन, इत्यादि।

१. (क) स्वनिको ।

यथा-गिरुकिटक, तिगतिकरीगन, तिगरुकिट, तत्तिगरुकिटत, तिगरुकिट तिकरिगरुकिट, तकींगनत किरगिरुकि, रन निगन, किरगिरुकिरन, नीग-गिरुकि, रननीगनिकर।

द्मवघट ---

धरिकिटैगिरिकिटैरेभिः शब्दैस्तैविषमग्रहात् । भेदेनं हस्तयोरेव पाठोऽवघटसज्ञकः ।।६४॥

यया— घरिकट धरिकट, तकथों घरिकट, दिकिदिकि घरिकट, किटघर किटकिट, किटतिक धरिकिट, किटतिक घरिकिट, घिरिकट घिरू-किट, टिरिकिटि टिकिदिक।

नागबन्धपाट :---

म्रासज्येते करौ यत्र व्यत्ययात्पुटयोर्द्धयो. ।

नागबन्धस्स विज्ञेयः शब्दैर्ननगिडादिभिः ॥१५॥

यथा-ननिकटिकटतक किटतकनगिष्ड, ननिषडनिकटिकटतक, ननिकडिकटतिक, किटतक, ननिकटिकटतिक, ननिकडिकटतिक, किटतिक ननिकट, किटतिक ननिषट.

नागबन्धो भवेदष्टमात्राभिस्सयुक्तस्सदा ।

समग्रह:---

श्रासज्येते समंयस्मात करयोरुभयोस्तलौ ॥६६॥

'धरिकिट घरिकट' इत्यादि शब्दों के द्वारा, विषम ग्रह से, हाथों के ही भेद से 'श्रवघट' नामक पाट होता है। जैसे — घरिकट घरिकट इत्यादि।

जहाँ दोनों हाथ व्यत्यय (गलटने) से दोनो पुडियो पर रख जाते है, वहा 'ननिगड' इत्यादि बोलो से 'नागबन्ध' होता है। जैसे 'ननिकर किटतक' 'किटतक ननिगड' इत्यादि। नागबन्ध में सदैव आठ मात्राएँ होती हैं।।१४।।

१ (क) दुधकिट।

२. सप्तयो ।

साङ्गुष्ठाङ्गुर्लिभहस्तपाटः स स्याद् समग्रहः । पाटोऽसावष्टमात्राभिः शब्दैर्दहतरीत्यपि ॥१७॥ पुनस्तकुकुरिक्या च सयुतेऽसौ समग्रहः । (इति हस्तपाटाः)

पटहे द्वादशवाद्यानि —

बोल्लावणी चलावणी चारुश्रवणिका परम् ॥६=॥ परिश्रवणिकालग्नौ दण्डहस्तोडुवावपि । समप्रहारसज्ञरूच ततः कुडुवचारणा ॥६६॥ करचारणापि तद्वत् स्यात् तयाऽन्यापि कुचुम्बिनी । भवेदणनरवरुचैवं वाद्योदेद्यः प्रदक्षितः ॥१००॥

बोल्लावणी —

पाटादौ पाटमध्ये च पाटान्ते देङ्कृतिर्भवेत् । इत्येककरसम्पन्ना प्रोक्ता वोल्लावणी बुधै ।।१०१।। यथा-दे दे दे था भौ थां दि दि दि दित बोल्लावणि ।

बलावणी-

थों तत्तिकिटशब्देन चोइलीचालना स्फुटम् । वोल्लावणी समं शेष सा मतेह चलावणी ॥१०२॥

जहां दोनो हार्चों की हंघेलियां ग्रॅंगूठे सहित ग्रॅंगुलियों के साथ साथ रखी जाती हैं, वह 'समग्रह' नामक हस्तपाट होता है, उसमें 'वहतरि' या 'तकुकुरि' इत्यादि बोल ग्रीर ग्राठ मात्राए' होती है। (ये हस्तपाट हए)

बोल्लावणी, चलावणी, चारुश्रवणिका, परिश्रवणिका, झलम्न, दण्ड हस्त, उडुब, समप्रहार, कुडुवचारणा, करचारणा, कुचुम्बिनी ध्रीर घनरव ये वाद्योहेश (पटह के बारह बाज) हैं ॥६६-१००॥

जहाँ पाट के झादि, मध्य और झन्त में देख्कार हो, वह एक हाथ से सम्पन्न 'वोल्लावणी' है। जैसे – दें दे दे थाँ या या दे दें दें।

जहाँ थों तत्त्रिकट शब्दों से स्पष्टतया बाई पुड़ी का चालन तथा श्रेष वोल्लावणी के समान हो, वह 'चलावणी' होती है। जैसे थो थों किट यों तो तो किट तो किटतिक यों थों — इत्यादि ॥१०१, १०२॥ यथा-थो यों किट यों तो तो किट तो किटतिक यों यों यों यों बोंकूट तिकट योकिट योकिट तिकट यों यों किट यो यों किट यों। साकश्चिणका—

भेज्क्कारसहित । हस्तपाटमूलाक्षरैर्युतम् । क्रमेण युगपद्वापि वाद्य हस्तद्वयेन तु ।।१०३।। युक्ताष्टादशमात्राभिस्त्र्यस्रभेदेन संयुता । चास्त्रवणिका चेय श्राहुवाद्यविशारदाः ।।१०४।। यथा – भेररेर दरकिट यर षर इति ।

परिश्रवणिका---

कर्तयंवघटाम्यां या मिश्रा च समपाणिना । चतुर्विशतिमात्राभिः परिश्रवणिका मता ।।१०५।। यथा-थर्षर्थर् रिरि थट्टिकुदरुगिड तक थोग-इति

श्रलग्न---

कर्तरीपाणिहस्ताभ्या मुडुवेनैव^{*} वाद्यते । उत्सृज्य कुण्डलीस्पर्शमलग्न: परिकीर्तित ।।१०६।। यथा-किरथरिकर, किरकिरहे, कुतुकारिक, किरकिरकुणरिकु किर-किटतकुथरि, कुथ-इति ।

जहाँ मूल ग्रक्षरो से युक्त ऋड्कार सहित हस्तपाट, कम से अथवा दोनो हाथो से साथ साथ हो, वह त्यस्रभेद युक्त अठारह मात्राओ की 'चारुअवणिका' है।। जैसे 'फेररर दरकिट थरथर'-इत्यादि।।१०३, १०४।।

'परिश्रवणिका' मे चौबीस मात्राएँ होती है और वह समपाणि के द्वारा कर्तरी और अवघट से मिश्रित होती है। जैसे :—थर्थर्थर्रिर थट्टिकु दरुगिड तकथो' इत्यादि ।।१०५।

कुण्डली का स्पर्श नहीं करके कर्तरी ग्रीर पाणिहस्त के योग से उड्ड के द्वारा वादन 'ग्रलक्त' कहलाता है ।। जैसे—किरषरकिर किरकिरहे कुतुकारिक किरकिर कुथरिकु किरकिटतकुथरि कुथ ' ' इत्यादि ।।१०६॥

१. (क) पारज । २ (क) पाठ।

३. (क) श्रेय.।

४. (क) कुडुपेनैव।

वण्डहस्तः---

दण्डहस्तजशब्देन मात्राभिद्विदशैर्युतः। द्वाभ्यां क्रमेण हस्ताभ्यां क्रियते दण्डहस्तकः ॥१०७॥

यथा-'भररतत्त, कृतकृतोत, थरथरथरि, कृतकृतोक, थकुतिस्वितरि, तत्तरित इति ।

उड्व :--

वामदक्षिणहस्ताभ्या शब्दैविषमपाणिजै.। क्रियते यत्र वाद्यज्ञैवीद्यं तदुडुव ै विदु ॥१०६॥ यद्या-गिरिकिट ननीगन, गिणिकर किटबटि, किटबटि तुक्किटबरि कित्तक्किट गिरिगडक्षेतीर, गिरुकिट ननीगन, गिरुकिट तक्कसे।

कुडवचारणाः---

नानापाटाक्षरोद्भूतै शब्दै. कुडुवताडितै. । कृतावृत्त्या तु गारुग्या स्मृता कुडुवचारणा⁸ ॥१०६॥ यथा-क्रेनकिर वरिणिन गिरिकिट तकिनन गिनगिन इत्यादि ।

करचारणा— केवलै करपाटैस्तु वादानाञ्च चतुश्चतु । मात्राभिश्च कृता सैषार्वस्पर्यते करचारणार्वसाश्चरणा

दण्डहस्त से उत्पन्न शब्द के द्वारा, बारह मात्राओं से युक्त दोनों हाथों से दण्डहस्तक उत्पन्न होता है। जैसे—भररतत्त, कुतकृतोन, थरथर-थरि, कृतकृतोत थकृतस्थिरि तत्तरित इत्यादि ॥१०७॥

विषमपाणिजन्य शब्दो के द्वारा दोनो हाथों से किया जाने वाला वाज 'उड्डव' कहलाना है। जेसे '-- गिरिकटननांगन गिणकिरिकटघटि किटघटितुक्तिकथरिकित्तुक्तिकटिगरिगडफेतिरिगडिकटननगिन गिरुकिटतकफें।।१०८॥

विविध पाटाक्षरों से उद्भूत, कुडुव ताडित शब्दो के द्वारा गारुगि ताल में की हुई आवृत्ति से 'कुडुवचारणा' होती है, जैसे — फ्रेनिकरणरि-गिन गिरिकटतिकनन गिनगिन इत्यादि ॥१०६॥

चार चार मात्रा से युक्त नादो के केवल हस्तपाटो से 'करचारणा' होती है । जैसे – थर्थर्थर्थर्थर् रिरिरर् धरिररि' इत्यादि ।

१ (क) तदुबुच । २. (ख) चारुणा। ३. (ख) हस्तपाटाना। ४. (ख) क्षेषा। ५. (ख) कलचारणा।

यथा-थरथर्थरथर् रिरिरर् धरिररि इत्यादि ।

कुचुम्बिनी:---

कालकास्थेन हस्तेन कुकारप्रचुरेण यत् । मात्राभिः षोडशैर्वापि द्वात्रिशद्भि कुचुम्बिनी ।।१११॥ द्विविधा सा च विज्ञेया शुद्धा मिश्रेति सुरिभिः । शुद्धा षोडशमात्राभिरत्याभिरितरा युता ।।११२॥ धनरवः :---

म्रच्छित्रपाटः पाणिभ्यां मात्राभिः षोड्शैः कमात्। उक्तो घनरवो ज्ञेयो वाद्यविद्याविशारदै. ॥११३॥ (इति पटहवाद्यानि)

इति द्वादश बाखानि पटहे कथितानि च । तकारस्व धिकारस्व थोङ्कारप्टेङ्कृतिस्तथा ॥११४॥ फेङ्कारस्व नटेङ्कार पाटवर्णा मृदङ्गजा. । मसुणे वादने प्रोटा गीतवाद्यविशारदा ॥११४॥

कुचुस्त्रिनी सोलह या बत्तीस मात्राक्षी से युक्त होती है, जिसमें ककार की प्रच्रता संयुक्त कालक हस्त का प्रयोग हो ।।१११।।

विद्वानो ने उसके शुद्धा श्रीर 'मिश्रा' दो भेद माने है, सोलह मात्राश्रों से 'शद्धा' तथा बत्तीस मात्राश्रो से 'मिश्रा' होती है ॥११२॥

दोनो हाथों के द्वारा सोलह मात्राश्चों के प्रयोग से 'घनरव' होता है, जिसमे पाट श्रव्छिन्न होते हैं ॥११३॥

(ये पटहवाद्य हुए)

ये वारह बाज पटह में कहे है। तकार, धिकार, थोंङ्कार, टेङ्कार, फ्रेकार, नदेखार, मृदङ्गोत्पन्न पाटवर्ण हैं।

मसूण (कोमल एव स्निग्व) वादन मे प्रौढ गीतवाद्य में विशारद एव वाद्य के द्वारा सङ्क्षति करने वाले मार्दलिक श्रोष्ठ है।

१. (स) स्क्रिमनी।

वाद्यानुयायिनस्सम्यक् प्रोक्ता मार्दलिका' वराः ।

उलमगार्वज्ञिका .--

सरलक्ष्वीपटक्षैव किर्विलक्ष्य घणायिलः ।।११६।। गतिस्थक्षेति पंचैव मदञ्जे वादकोत्तमाः ।

सरलः-

यो वादयति मधुरं कोमलं प्राञ्जलं ऋजु ।।११७।। तमाहुर्भरताभिज्ञास्सरल विरलं जनम् ।

किविल :--

विनावयवहीनःवाच्छब्देऽल्पे चाल्पवादकः ।।११८॥ विवन्धगतिषु व्यक्तः सुहावे 'किविलः ' पटुः ।

चौपट

विषमं प्राञ्जलञ्चैव गुन्थागुन्थिसमायुतम् ॥११६॥ वादयेट्टवणादीना कुशलश्चीपटः स्मृतः ।

गतिस्थ : --

सरलघणायिलचौपटिकिरिविलघटितानि शब्दवृन्दानि । मसृणानि सन्निवेशैनिवरिषकं वादयेद् गतिस्यः सः ।।१२०॥

सरल, चौपट, किनिल, घणायिल और गतिस्थ ये पांच प्रकार के मृदञ्जवादक श्रेष्ठ हैं।

जो मधुर, कोमल, प्राञ्जल, श्रीर ऋजु वादन करता है। उसे भरतमर्मञ्जलोग 'सरल' कहते हैं।

विवन्ध गतियों में भी अवयवहीनता के बिना अल्पशब्द सुहाव में व्यक्त वादन करने वाला 'किविल' है जो टवणा आदि में कुशल वादक विषम,प्राञ्जल, गुन्यागुन्यियुक्त वादन करता है, वह 'जीपट' है।

सरल, घणायिल, चौपट, किरिविल के द्वारा घटित मसूण शब्दवृन्दों को सम्निवेशपूर्वक निरन्तर वादन करने वाला 'गतिस्व' है ॥११४-१२०॥

१. (स) माहलिका ।

२. (स) सुवाहे ।

घणायिलः---

वादे निबद्धशब्दाना कवलीभेदनविना'। यो वादयति निरतः कथ्यतेऽसौ घणायिलः ॥१२१॥

द्विविधं गीतवादनम् --

ग्रङ्गञ्चेवाश्रयाङ्गञ्च द्विविध गीतवादनम् । ग्रज्जं तत्पञ्चधा ज्ञेयमाश्रयाङ्गञ्च पञ्चधा ॥१२२॥ तालधातुपदावृत्तिकविताङ्ग्रीरच े पञ्चधा । शुद्धमिश्रविभेदेन गीताङ्ग वाद्यते बुधै ।।१२३।। जतिर्दुबुक भे शब्द काकः प्रहरणाभिधः। इति पञ्चविध प्राहुराश्रयाङ्गं विनक्षणाः ॥१२४॥ करटापाटवर्णाः स्यः करटेति पुन पनः ।

घनवाद्यम् —

(इत्यवनद्धम्) सुरलक्षणी सुस्वरौ तालौ तज्जै शक्तिशिवौ स्मृतौ ॥१२५॥

वह बादक घणायिल है, जो निवद्ध शब्दों का वादन कवलीभेदन के विना ही करता है ॥१२१॥

गीतवादन दो प्रकार का है, 'श्रङ्क' और 'श्राश्रयाङ्क'। पाच प्रकार का 'ग्रञ्ज' ग्रीर पाँच प्रकार का ग्राश्रयाङ्ग है। ताल, बाद्य, धात्, पद तथा कविता इन पाँच प्रकारों से युक्त गीता द्व का वादन शुद्ध एव मिश्र किया जाता है।।।१२२, १२३।।

जित, दुबुक, भे शब्द, काकु और प्रहरण, ये पाँच प्रकार का गीताङ्क विद्वानो ने कहा है ॥१२४॥

करटा के पाटाक्षर पुनः पुनः 'कर' 'टा' होते है । (भवनद्ध पूर्ण हुआ।)

स्रलक्ष्ण, सुस्वर भाभ, विशेषज्ञो द्वारा शक्ति और शिव कहे गये हैं ॥१२५॥

१. (क) करले, (ख) करली।

२. (ख) गविरा।

'माधाराघेयवदातो बिन्दुनादसमुद्भवौ । लघुगुर्वादिभिमानै वादयेद् बहुभिङ्गिमिः।।१२६॥ वर्णा भेनकिटास्तज्जैः कथिताः कांस्यतालयोः । मनोहरादच सूक्ष्मादच सुस्वनाः शुद्रघण्टिकाः ।।१२७॥ तास्तु घर्षरिका लोके प्रसिद्धा रज्जुसंयुताः । घनवाद्यमिति प्रोक्तं सुषिरं वाद्यमुज्यते ।।१२८॥ (धनवाद्यम्)

सुविरवाद्यम् —

जयस्व विजयो नन्दो महानन्दो यथाकमम् । वशास्त्रतुर्दश द्वादशैकादशदशाङ्गुलाः ।।१२८।। द्विकत्रिकत्रतुष्कास्तु ज्ञेया वशासा स्वराः । कम्पमानार्धमुक्तास्त्र च्यक्तमुक्ताङ्गुलीवहाः ।।१३०॥

ये आधार और आधेय है, तथा विन्दु और नाद के उत्पन्न करने वाले है, इन्हें ढञ्ज ढञ्ज से लघु, गुरु इत्यादि मान से युक्त करके बजाना चाहिये।।१२६।।

कास्य तालों में विशेषज्ञों ने 'क्षेनिकट' वर्ण बताये हैं। मनोहर, सूक्ष्म, सुश्रव्य, शुद्रपण्टिकाएँ (चुष्क) रस्ती से वेंधी हुई, लोक मे, वर्षरिका प्रेपित के प्रसिद्ध है, इस प्रकार घनवाद्य कहा गया है, ध्रव सुपिर वाद्य कहा जाता है। १२०, २२ =।।

जय, विजय, नन्द श्रीर महानन्द नामक वंशो का परिमाण क्रमशः चौदह, बारह, ग्यारह श्रीर दस श्रगुल होता है।।१२२।।

बंघगत स्वर डिश्र्तिक, त्रिश्र्तिक और बतु श्रुतिक जानना चाहिये। इनके व्यक्त करने में अँगुली कम्पित, अर्थमुक्त तथा व्यक्तरूप से मुक्त रहती है।।१२०।।

१. (स) माकारादेश।

२. (स) सुस्वरा: ।

३. (क) देशंगका ।

'अङ्गुलीचारणाः सम्यक् गमकेषु च सप्तसु । ताञ्चेण कलधौतेन कर्तव्या येन केन वा ॥१३१॥ धक्तूरकुसुमाकारवदना सुषिरान्तरा । हस्तत्रयकृतायामा हाहावर्णा च काहला ॥१३२॥ विरुदान्यपि वाद्यन्ते वीराणां पुरतस्तथा । (इति वर्षावयाद्यान)

विज्ञतिः प्रबन्धाः---

यत्यादीनां प्रबन्धामवृता लक्ष्म कथ्यते ॥१३३॥
यतिरोताप्यवच्छेदो जोङणी चण्डणी पदम् ।
समहस्तोऽपि पैसारः तुडुकुस्तु तथा परः ॥१३४॥
स्रोत्वरोऽपि (च) देङ्कारः घल्लणा मलपस्या ।
मलपाङ्गः प्रहरणं चान्तरी च दुवककरः ॥१३४॥
जवनिका पृष्याञ्जलिरिषवणी च निगद्यते ।

सातों गमकों मे भली-भीति अंगुलीचालन होता है। काहला का निर्माण तीबे या सीने से होना चाहिये, उसका मृह मनूरे के फूल की भीति होता है भीर नह लोखनी होती है, उसकी लम्बाई तीन हाम होती है भीर उसमें 'हा, हा' वर्ण होते हैं।।१३२।।

उसमे वीरो के सामने विरुदवादन होता है।

(ये चतुर्विध वाद्य हुए)
अव 'यति' इत्यादि प्रवन्धी का लक्षण कहा जाता है। यित, स्रोता,
श्रवच्छेद, जोहन, चण्डल, पद, समहस्त, पैसार, नुडुक, श्रोत्वर, देक्क्कार,
घल्लणा, भलप, मलपाञ्ज, प्रहरण, अन्तरी, दुवक्कर, जवनिका, पुष्पाञ्जिल
और रिषवणि ये बीस वाद्य प्रवन्ध हैं।

ताल एवं छन्द के परिज्ञान के लिए जो श्रुतिप्रिय विराम बाग्रहीन बनाया जाता है, वह यति है।

१. (क) घंगुष्ठ ।

२. (क) बोद्धारोहिणि ।

वाद्यते वाद्यहीनं सा यतिरित्यभिधीयते ।

मोता---

तालः पाटसमैबैर्णैः क्रियते पाटसम्भवैः । भ्रोताख्योऽसी प्रबन्धः स्यात्केदार इति प्रोच्यते ॥१३७॥ भ्रोतां तां कथयन्त्यन्ये देङ्कार कृति मुक्तकाम् । एषैबोट्टवणी नाम्ना कैदिचदप्यभिधीयते ॥१३८॥

द्मवच्छेर :--

उद्ग्राहयुगलं यत्र वारमेक ध्रुवस्तथा । उद्ग्राहेण पुनर्मोक्षादवच्छेदोऽभिधीयते ।।१३६।। वदन्ति केचिदस्यैव कवितेत्यभिधापनः ।

जोडणी --

पाटानां 'पृथगुक्तानां यत्रैकत्र 'विमिश्रणम् ।।१४०।। जोडणी 'सा परिज्ञेया संज्ञया वाद्यभेदिभि ।

चण्डण .---

गीतानुगस्य वाद्यस्य चण्डणः स चतुर्विधः ।।१४१॥

पाटोत्पन्न पाटसम वर्णों से किया जाने वाला ताल 'स्रोता' प्रबन्ध है, जो केदार भी कहलाता है, कुछ लोगों के मत में झोता का न्यास देक्कार से होता है, कुछ लोग इसी को उट्टवणी भी कहते हैं ॥१३३-१३८॥

जहाँ दो बार उद्गाह भीर एक बार ध्रुव का वादन करके पुन: उद्ग्राह के द्वारा मोक्ष हो वह 'भ्रवच्छेद' है।।१३८।।

कुछ लोग इसी को कविता भी कहते हैं, पृथक पृथक कहे हुए पाटों का एकत्र मिलाना 'जोडणी' है। गीतानुग वाद्य का वादन 'चण्डण' चार प्रकार का है।।१४०-१४१॥

१ (क) पादानां।

२ (क) मंत्र कत्र विमिश्रितम्।

३. (क) जोडणी।

४. (क) गधा।

पदम-

'सुक्तासुक्तिस्तु स प्रोक्तो मोडामोडिस्तथैव च। ग्रर्डस्थितिस्ततस्तस्मात् स्वरपूर्वश्च चण्डणः ॥१४२॥ स्तोकस्तोकेन काय्यं स्यादवादनलघपाणिना । गीतावसाने न्यासः स्यात् सुक्तासुक्तीति "नामतः "॥१४३॥ गीतमानाधिकं वाद्यं गीतमानेन चण्डणम । मोडामोडीति विज्ञेयं न्यासो वाद्यविशारदैः ।।१४४॥ मानेन गायको गायन यत्र मानं विमुञ्चति । वादकेन कृतो स्यासस्तदर्धस्थितिरीरित. ॥१४४॥ गीतवाद्यं च युगपन्न्यस्यते यदि मानतः । सुहावगति संयुक्तो विज्ञेयः स्वरचण्डणः ।।१४६॥

प्रथमं वादयित्वा तू यतिः पाटैन मुच्यते । मध्ये वाद्यप्रबन्धस्य पदं तत्परिकीर्तितम् ॥१४७॥

सुक्तास् क्ति, मोडामोडि, अर्द्धस्थिति और स्वरचण्डण ये चार प्रकार हैं।।१४३।।

जब थोडे थोडे लघुपाणि से वादन हो और गीत के अन्त में न्यास हो तो 'सुक्तासुक्ति' गीत के मान से अधिक है, गीतमान के अनुसार वादन 'मोडामोडि' नामक चण्डण है ।।१४३, १४४।।

मान के अनुसार गाने वाला गायक जहाँ मान का परित्याग करता है, वहाँ वादक का किया हुआ न्यास 'ब्रर्द्धस्थित' कहलाता है। यदि मान के अनुसार गीत और वाद्य का न्यास साथ साथ होता है, तो सुहाव गति यक्त 'स्वरचण्डण' होता है ।।१४५, १४६।।

यदि वाद्य प्रबन्ध के मध्य में यति का वादन करके पाट द्वारा मोक्ष होता है तो 'पद' कहलाता है 📶 १४७॥

१. (क) चुक्काचुक्कि।

२. (क) श्रद्धपासज्ञकस्तस्मात् ।

३. (क) चुक्का चुक्कीति ।

^{¥. (}क) मानतः।

समहस्तः--

ेतकारः प्रचुरो दोभ्या यथौित्येन मानतः । बाद्यते यस्त्रिरावृत्त्या समहस्तः स्मृतो बुद्रैः ॥१४८॥

पैसार —

यत्रातोद्यानि वाद्यन्ते समग्राणि निजैनिजैः। व्याटैक्च समुदार्यक्च पैसार इति कथ्यते ॥१४६॥

तुडुक्का —

उद्ग्राह ध्रुवकाभोगेष्वेकदेशस्य वादनम् । हस्तलाघवतो यत्स्यात् तुडुक्का³ सा निगद्यते ।।१५०।।

ग्रोत्वर ---

ईषद्विलम्बमानेन गम्भीर मधुर तथा । मृदङ्गवादनं यद्वा चोत्वरं स्वष्ट मात्रकम् ॥१५१ ॥

भॅड्यारम्--

ब्रादौ भेङ्कारमुल्लासं विधायोच्चसमन्वितम् । ब्रथवा चोच्चहीनञ्च द्विधा भेङ्कारमुच्यते ।।१४२॥

यदि यथोचित मान के अनुसार बाहुओं से 'तकार' का प्रचुर वादन तीन श्रावृत्तियों से हो. तो 'समहस्त' कहा गया है ।।१४८।।

जहाँ सभी वाद्य प्रपने-श्रपने पाटों और समुदायों के द्वारा बजाये जाते है, वहाँ 'पैसार' कहा जाता है ॥१४६॥

जहाँ हस्तलाघवपूर्वक उद्ग्राह श्रुवक **ग्रौर आभोग में एकदेश का** वादन होता है, वह 'तुडुक्का' कहलाती है ।।१४०।।

जहाँ कुछ विलम्बित मान से मृदङ्ग का गम्भीर, मधुर तथा अध्ट-मात्रिक वादन होता है, वह झोत्वर है।।१५१।।

ग्रादि में चमकता हुमा भेंकार उच्चसमन्त्रित हो ग्रथवा उच्चहीन हो, यह दो प्रकार का 'भेङ्कार' कहा जाता है ॥१५२॥

१. (स) तोधपि। २. (स) पादैश्य ३. (स) तुटुक्का।

वेक्टारः---

स्तोकस्तोकस्य शब्दस्य योऽवसाने स देक्कृतिः । 'स एव नियमेनापि देक्कारो वाद्यते बुधैः १५३॥ ***

मलपम्— यत्रोदग्राह[.] सकृद् द्विर्वा ध्रुवको विविधस्तथा ।

यत्रोदग्राहः सकृद् द्विता ध्रुवका विविधस्तया । स्यादेव तद् द्विदेङ्कारव्यापकाक्षरसङ्गतम् ।।१४४॥ निरन्तरयतिप्राय मलप कथयन्ति तत् । मलपाङ्गम्—

वादियित्वा तु मलप तथाङ्गं वाद्यते पुनः ॥१४४॥ ततो मलपवाद्य यत् मलपाङ्ग तदुच्यते ।

प्रहरणम्--

येन केनापि वाद्येन मात्रा द्वादश षोडश ॥१५६॥ वादयेत् पल्लवद्वन्द्वं सोऽय प्रहरणाभिध ।

बन्तरा---

ैम्रारब्धं सानुसारेण यच्छन्दोगीतवाद्ययोः ।।१५७।। निबद्धमन्तरावाद्यं ऋियते सान्तरा स्मृता ।

बुवक्कर:--

यतिरेवाक्षरद्वन्द्वो वाद्यते स दुवक्करः ॥१५८॥

थोडे-थोड़े शब्द का देकृति सहित अवसान यदि नियमपूर्व कहो, तो

देंकार है ॥१५३॥

जहाँ उद्प्राह एक बार या दो बार हो, विविध ध्रुवक हो, दो दें क्क्सर व्यापक ध्रक्षरों से युक्त हो, जिसमें निरन्तर यित हो, वह 'मलप' है। मलप का बादन करने के परचात् यदि पुन उसके ध्रञ्ज का बादन किया जाये, तो 'मलपाञ्च' कहलाता है। जिस किसी बाध के द्वारा भी बारह या सोलह मात्राधों में दो पल्लव बजाये जाये, तो 'प्रहरण' कहलाता है।

सानुसारपूर्वक धारम्भ किया हुआ जो छन्दंगीत बाध के बीच में निबद्ध हो, वह बाद्ध 'ग्रन्तरा' कहलाता है। दो ग्रक्षरों से युक्त बजाया

हमा यति ही 'दवक्कर' है ।।१४४-१४८।।

१. (स) सयावनियमेनापि । २. (क) श्रारव्यस्यानुसारेण ।

जबनिका:---

स्थिरमानेन सोल्लासं चतुर्मात्राञ्च देङ्क्वंतिम् । वारद्वयं वादयित्वा ततः कृष्यच्चि जोडणम् ॥१५६॥ ततो भात्राष्टकच्छेदो मर्दलाशब्दवादने । पुनर्मात्राष्टकं श्रव्यं भत्रतायात्त्व वादने ॥१६०॥ त्रिरावृत्त्या वादितस्य शब्दात्सात्सावसानतः । भसमो यवनिकापाताच्छब्दो यवनिकाह्नयः ॥१६१॥ पृष्पाञ्चाति —

म्रादौ स्यादष्टमात्रं वाधवा द्वादशमात्रकम् । भ्रन्तरीद्वितये चैव प्रत्येकं चाष्टमात्रिकम् ॥१६२॥ चतुर्मात्रञ्चाष्टमात्रं तकारे वादनं भवेत् । मृदङ्गदेशीपटहकरटामदेलेषु च ॥१६३॥ ^४व्यवर्तनानुगं वाद्यं परिवृत्तिमृदङ्गजा । द्विवारं परिवृत्ति∵ स्यादन्तरिद्वयबद्ययोः ॥१६४॥

स्थिर मान के द्वारा उल्लासपूर्वक चतुर्मात्रायुक्त देंकार को दो बार बजाकर जोडण' करना चाहिये, तत्पश्चात् मर्दना के शब्द वादन में भाठ मात्राग्नों का छेद, पुन करटावादन में भ्राठ मात्रा का श्रव्य यह सब कुछ तीन बार बजाने का शब्द यवनिकापात के सदृश्च हो, तो 'जबनिका' है ॥१४८-१६१॥

धारम्भ में घाठ मात्राओं या द्वादश मात्राओं का बादन, दोनों धन्तरियों में प्रत्येक धन्तरी में बाठ मात्रा का बादन, धौर तकार में चार धौर धाठ मात्राओं का बादन मृदङ्क, देशी पटह, करटा धौर मृदङ्क में होना चाहिए। व्यवर्तन का प्रनुगामी बाद्य मृदङ्क्क परिवृत्ति है, दोनों धन्तरियों की दो बार परिवृत्ति होना चाहिये, चतुर्वात्रायुक्ततकार इत्यादि में दो बार परिवृत्ति करके एक बार देङ्कारसहित घाठ मात्रा बजाने

 ⁽क) मात्राष्ट्रकच्छन्तो । २. (क) शब्दे । ३ (क) शब्दस्यास्याबसूनुक: 1
 (क) समायामनिरापाताच्छन्दोवमनिकाहचयम् । ५. (ख) वेबतेमानुर्ग ।

तकारादौ चतुमात्रे द्विवारं दैपिरवर्तनम् । एकवारं त्वष्टमात्रे वादियत्वा सदेहकृति ॥१६५॥ श्रव्दः पुष्पाञ्जलौ युक्तो हुड्ककाकरटान्तरी । इतरे चान्तरीशब्दा नैव ते सम्मता मम ॥१६६॥ स्रोकेकाद्यमिलनं पैसारादिषु दृश्यते । पष्पाञ्जलिस्य शब्दः किञ्चिवसेदवशादितः ॥१६७

पुष्पाञ्जलिस्य शब्दः किञ्चिद्भेदवशादिह ॥१६७॥ निधवन्तिः—

सैव प्रोक्ता रिघवणी वाद्यविद्याविशारदैः ।

पुनः पुनः यतिर्वाद्ये ै खण्डशो यत्रवाद्यते ॥१६८॥ स खण्डयतिराख्यातो पाटवाद्यान्तराश्रयात् ।

गुण्डसीबाद्यानि —
हुदुक्का च मृटङ्करच करटा काहला तथा ।।१६६।।
कांस्यतालश्च पञ्चेते गुण्डली प्रति निर्मिता. ।
ग्रनिबद्धं निबद्धञ्च वाद्यञ्च हिविधामतम् ।।१७०।।
नियमादप्यनियमादनिबद्ध द्विधा भवेत् ।
जोडणी च प्रवन्धश्च निबद्धमि तद्द्विधा ।।१७१।।

का शब्द पुष्पाञ्जलि मे विहित है । हुडक्का और करटा अन्तरी है, अन्तरी शब्द के द्वारा श्रन्य ग्रहण मुक्ते अभीष्ट नही ॥१६२-१६६॥

पैसार इत्यादि में ग्रनेक वाद्यो का मिलन दिलाई देता है, कुछ झन्तर के कारण यह 'पूष्पाञ्जलि' है ।।१६७।।

बाद्यविद्याविशारदो ने इसे ही रिघवणी' कहा है। ग्रन्य पाटबाद्यो का आध्यस नेने के कारण खण्डरा बजाया जाने वाला 'यति' ही 'खण्डदति' है। हुट्कका, मुदङ्ग, करटा, काहला तथा कास्यताल ये पांच गुक्क के लिए उपयोगी है। वाद्य दो प्रकार का है, 'श्रनिवद्ध' और 'निवद्ध'

॥१६६-१७०॥
'नियमयुक्त' और 'नियमरहित' रूप में 'भ्रानिबद्ध' दो प्रकार का है, जोडणी' और 'प्रबन्ध' ॥१७१॥

१. (क) वादियत्वेन घेड्कृति । २. (क) वादे ।

नियमः—

'मनुजाबियुतः शब्दो वाद्यते यः पुनः पुनः । येन केनापि तालेन सोऽयं नियमशब्दकः ॥१७२॥

टबणा---

श्रुतौ घनघ्वनेर्वाद्यशब्द र न्यासस्य यो भवेत् ।
तज्जैस्स टवणेरयुक्ता प्रयोज्या तु ल्यान्विता ॥१७३॥
रंशब्दानन्दनकश्रुत्या टवणा मण्ठसम्भवा ।
मण्ठताले प्रयोक्तव्या गीतेन त्रिलयेस्तवा ॥१७४॥
मुकुन्दानन्दनश्रुत्या टवणा गारुगीभवा ।
गारुगीविषमेणैव संयोज्या त्रिलयेरिष ॥१७५॥
ईश्वरानन्दनश्रुत्या भम्पातालसमुद्दभवा ।
टवणासौ भवेत्तालत्रिलयेस्सा समग्रहा ॥१७६॥
भास्करानन्दनश्रुत्या कोडातालसमुद्दभवा ।
टवणास्मिन् प्रयोक्तव्या गीतेनैव त्रिभिलयै: ॥१७॥।

जो किसी भी ताल के द्वारा पुनः पुनः ग्रनुजायियुक्त रूप में बजाया जाता है, वह 'नियम' है ॥१७२॥

घनध्वनियुक्त वाद्य शब्द के लय युक्त न्यास से होने वाला शब्द 'टवणा' कहलाता है ॥१७३॥

मण्डसम्भव टवणा मण्डताल में शब्दानन्दन (ब्रह्मानन्दन) श्रृति से गीत श्रीर तीनों लयीं के द्वारा प्रयुक्त की जानी चाहिये।।१७४।।

गारुगीभवा टवणा तीनों लयों के द्वारा विषम गारुगि ताल में मुकु-न्दानन्दन श्रति से प्रयोज्य है।।१७४॥

कम्पाताल में उत्पन्न समग्रहा टवणा तीनों में ईश्वरानन्दन श्रुति से संयुक्त होना उचित है।।१७६।।

कीडातालोत्पन्न टबणा गीत और तीनों लयों के द्वारा भास्करानन्दन श्रुति से प्रयुक्त होना चाहिये ॥१७७॥

१. (क) भनुजायि पुन. शब्दो । २. (क) कालेन । ३ (क) शब्दस्यासस्तु ।

४. (क) हलमाचित: । ५, (क) ब्रह्मानन्दनक खुत्वा।

शशाङ्कामन्दनश्रुत्या 'चैकतालसमृद्भवा । टवणा चैकताले तु प्रयोक्तव्या निभिलेयैः ॥१७६॥ ग्राह्त्यालोकने योज्या टवणा या सानुसारिभिः । विविधेव्यप्तिलब्देश्च वायविद्याविद्यारदैः ॥१७६॥

ृत्त्यमं टवणा त्यक्त्वा सतालमनुयायिमः । वर्तते चेदित्यमा ऽतिवद्धं तत्प्रकीर्तितम् ॥१८०॥ कमेण व्युत्कमेणार्धतदर्धार्थप्रमेदतः । चतुरक्षादितालेन वाद्यते जीडणी स्फुटम् ॥१८१॥ उच्चपालाख्यटकष्यां भिद्यते जोडणी किया । मात्राणामसमाद्धेन नैव सा जोडणी कता ॥१८२॥ उदग्राहाद्यन्वित वाद्य प्रवन्यास्यं प्रवन्यवतः ।

एकतालोत्पन्न टवणा शशाङ्कतन्दन श्रुति से तीनो लयो सहित एक ताल मे प्रयोज्य है।।१७८।।

तालवाद्यचन्द्रकलापटहादिसमाश्रयम् ॥१८३॥

वाद्यविद्याविकारदों के द्वारा सानुसारी विविध व्याप्ति शब्दों से ब्राहत्यालोकन (¹) मे टवणा प्रयोज्य है ॥१७६॥

यदि सताल नियम का परित्याग करके टवणा हो, तो वह 'धनिवद्ध' कहलाती है। कम, ब्युत्कम, बर्घ, बर्घांध प्रभेद से 'जोडणी' चतुरस्र इत्यादि ताल में वजाई जाती है।।१८०, १८१।

उच्चपाल नामक टक्कणी मे जोडणी किया सात्राओं **के ग्रससार्ढ के** कारण भिन्न हो जाती है, श्रत[.] वह 'जोडणी' नहीं कहलाती ।।१८२।।

ं 'प्रबन्ध' नामक, उद्गाह श्रादि युक्त वाद्य, प्रबन्ध कहलाता है, वह ताल वाद्य, चन्द्रकला, पटह श्रादि के श्राधित होता है ॥१८३॥

१. हैक । २ (क) टबर्ण। ३. (क) वर्तकाभेद नियमा।

इति श्रीमदभयचन्द्रमुनीन्द्रचरणकमलमधुकरायितमस्तक महादेवार्व्यास्त्रिष्यस्वरिक्याचित्र्यापुत्रसम्यक्त्व चृडामणिभरतभाष्ट्रीकभाषाप्रयीणश्रुतिज्ञाच चक्रवृति संगीताकरनामथेयपास्यदेवविद्याच् संगीतसम्यसारे पष्टाधिकरणम् ।

श्रीसद् अभयचन्द्र मुनीन्द्र के चरणकमलों में सभुवरवत् आचरण करने वाले मस्तक से युक्त महादेव आर्थ के शिष्ण, स्वरिवद्या से युक्त, सम्यक्त्वचुडामणि, भरत-भाष्ठीकभाषाप्रवीण, श्रुतिज्ञानचक्रवर्तीसगीताकर नाम बाले पाद्वदेव द्वारा विरचित संगीतसमयसार का छठा अधिकरण पूर्णहुमा।

(छठा अधिकरण समाप्त हुआ)

सप्तमाधिकरणम्

नृत्तमुक्तं पुरानेकशास्त्रैयंद् बहुविस्तरैः ।
संक्षित्य' तान्यतिव्यक्त नृत्तसार निरूप्यते ॥१॥
नृत्त स्याद्गात्रविक्षेपोऽजस्थानुकृतिलक्षणः ।
'तालभावलयायत्तो वागङ्गाहाय्यंसत्वजः ॥२॥
नाट्यस्याभिनयांस्तत्र वाचिकाहाय्यंसात्विकान् ।
त्यक्त्वा नृत्तादियोग्य त वक्ष्ये त्रिविधमाङ्गिकम् ॥३॥
'णीज्यानुरिभपूर्वो यत् स्वेप्टायंप्रतिपादक ।
तत्प्रयोगानभीष्टार्थान्नयतीत्यभिनय स्मृत ॥४॥
नृत्त शाखाइकुर वेति त्रिधासौ करणादिभिः ।
नृत्त स्यादाङ्गिक् कर्मं शाखोपाङ्गजमड्कुरम् ॥४॥

पहले अनेक विस्तृत शास्त्रो के द्वारा 'नृत्त' कहा गया है, उन शास्त्रो का संक्षेप करके नृत्तसार स्पष्ट रूप से निरूपित किया जाता है ॥१॥

धवस्थाओं की अनुकृति करने वाला गात्रविक्षेप नृत्त है, वह वाक् मञ्ज, आहार्य्य और सत्व से उत्पन्न तथा ताल, भाव और लय के अधीन है।।२॥

उसमे वाचिक, ब्राहार्थ्य ग्रीर सात्विक ग्रिभनयो का परित्याग करके नृत्त ग्रादि के योग्य त्रिविध ग्राङ्गिक कहुँगा ॥३॥

ग्रभिपूर्वक 'णीज्' धातु से अपने इंग्टार्य का प्रतिपादन करने वाला कार्य्य प्रभिनय है, वह अभीष्टार्यसम्बद्ध प्रयोगो की प्राप्ति करा देता है।।।।।

बह अभिनय, करण इत्यादि के द्वारा नृत्त, शाखा और अंकुर इन तीन प्रकारों का है। नृत्त आङ्गिक है, कम्मं (कर व्यापार) शाखा है और अंकुर उपाङ्गज है।।॥।

१. (क) सक्षेप्य । २ (क) मावताल । ३ (क) निट्घातु। ४. (क) पोङ्गिक ।

मञ्जननि :---

धिरोबक्षः करः पार्खः कटिरुचरण इत्यपि । मञ्जान्येतानि नृत्तज्ञेः षडेव कथितानि हि ॥६॥ तत्र त्रयोदशिवधं शिरो वक्षस्तु पञ्चधा । हस्तभेदाश्चतुः पष्टिहंस्तचारास्त्रिधामताः ॥७॥ चतुर्धा हस्तकरणं हस्तकम्मणि विशतिः । पार्वस्तु पञ्चधा तद्वतु कटिः पादस्तु षड्विधः ॥६॥

उपाङ्गानि--

उपाङ्गानि भ्रुवौ नेत्रे नासागण्डस्थलाधराः'। चिबुकं चेति षट् प्राहुर्नृ त्तविद्याविशारदाः ॥६॥

षङ्गाभिनयाः—

भूकर्मसप्तधातत्रैषट्त्रिशद्दृष्टयःस्मृताः। तारातुद्विवधाैतद्वतुपुटकम्मसमीरितम्॥१०॥

शिर, बक्ष, कर, पार्व्व, कटि श्रीर चरण ये छः श्रङ्ग नृत्यक्रों द्वारा कहे गए हैं।।६।।

शिर के तेरह, बक्ष के पाँच, हस्त के चौसठ, भेद है। हस्त चार तीन प्रकार के हैं ॥७॥

हस्त करण के चार प्रकार है हस्त कर्म बीस है । पार्श्व पाँच प्रकार है, उसी प्रकार किट है, पाद छ. प्रकार का है ॥=॥

भ्रू., नेत्र, नासा, गण्डस्थल, ग्रघर ग्रौर चिवुक ये छ. नृत्तक्षो के श्रनु-सार 'उपाङ्क' हैं ॥६॥

भ्रूकम्में सात, दृष्टियां छत्तीस, तारा द्विविच, पुटकम्में भी द्विविध, दर्शन प्रस्ट, नासा, गण्डस्थल, ग्रधर में प्रत्येक के छः छः शौर चिबुक के सात प्रकार हैं।।११॥

१. (क) गण्डस्थलाम्बरम् । २. (क) कत्त । ३. (क) विवधा ।

भवन्ति दर्शनान्यष्टौ नासागण्डस्थलाघराः ।
प्रत्येकं षड्विधा ज्ञेयाश्चित्रुकं सप्तधा मतम् ॥११॥
प्रत्यङ्गानि पुनर्योवावाद्रुपृष्ठं तथोदरम् ।
ऊरुजङ्गायुगञ्चेति " षडुक्तानि मनीषिभिः ॥१२॥
ततो ग्रीवा नवविधा बाह्वो " दश पञ्च च ।
पृष्ठ त्रिधोदर " पञ्च उरुजङ्को च पञ्चधा ॥१३॥
स्थानानि नवधा चार्यो द्वात्रिशनण्डलानि तु ।
विश्वती रेचकाश्चैन चत्वारः करणानि तु ॥१४॥
शतमप्टोक्तरं त्वङ्गहारा द्वात्रिश्वतीरिता ।
नाट्ये नृत्ये च नृत्ते च नियुद्धे च यथोचितम् ॥१६॥
इत्यङ्गाभिनयाससर्वे प्रयोज्यास्तु विचक्षणे ।
ग्रङ्गविक्षेपमात्र च यत्ताललयसश्चयम् ॥१६॥
नृत्तं देशाश्चयत्वेन बहुधा तत्प्रकीतितम् ।
शिरासि नव वक्षांसि चत्वारि कथितानि च ॥१७॥

प्रत्यक्त छ. ह, ग्रावा, वाहु, पृष्ठ, उदर, उक्त तथा जङ्गायुगा। १२॥ ग्रीवा नवविध, वाहु पञ्चदशविध, पृष्ठ त्रिविध, उदर, उक्त ग्रीर जङ्का पञ्चविध है। । १३॥

स्थान नवविध, चारियाँ वत्तीस, मण्डल बीस, रेचक चार, करण एक सौ ब्राट, ब्रौर ब्रङ्गहार बाईस है।

नाट्य, नृत्य, नृत्त और युद्ध मे यथोचित ये सभी प्रङ्गाभिनय विच-क्षण व्यक्तियों के द्वारा प्रयोज्य है।

जो ताललयाश्रित अङ्गिवक्षेपमात्र देशी नृत्त है, वह देशाश्रित होने के कारण अनेकविष है।

शिरके नौ, बक्ष के चार ॥१४-१७॥

१ (क) दण्ड स्थलाघरम्। २. (क) मुचेति। १. (क) बाह्यः। ४ (क) त्रिद्रो।

चतुः विष्टः कराः प्रोक्ताः पास्वै तच्च चतुर्विधम् । कटिः पञ्चविधा तद्वत् पादः पञ्चविधः स्मृतः ॥१८॥

शिरांसि--

'म्राकम्पित कम्पितञ्च सुतमाधूतमेव' च । म्रवधूतञ्चाञ्चितञ्चं निहञ्चितमथापरम् ॥१६॥ उत्किप्ताधोगतञ्चेति शरांस्याहुर्मनीषिणः ।

प्राकस्पितम्--

सकृद्ध्विधोनयनाच्छनैराकस्पित^{*} ऋजु ॥२०॥ पृच्छा सज्ञा स्वभावोक्तिनिर्देशावहनादिषु ।

कस्पितम्--

दुत तदेव बहुशः कृतं स्यात् कम्पित शिरः ॥२१॥ वितर्करोषविज्ञानप्रतिज्ञातजनादिषु ।

धृतम्--

धुतं शिरः शनैस्तिर्यक् शिरसो रेचनं स्मृतम् ॥२२॥

कर के चौंसठ, पार्श्व के चार,किट के पाँच, पाद के पाँच प्रकार हैं।।१≂।।

श्राकम्पित, कम्पित, धुत, श्राञ्चत, श्राञ्चत श्रौर निहञ्चित ।।१६॥ मनीषियों ने उत्किरत और प्रघोगत ये शिर बताये हैं। एक बार सीधा सिर को ऊपर नीचे हिलाना झाकम्पित है, इसका उपयोग प्रवन, नाझ, स्वसावोक्ति एवं निदेशपालन में होता है, यदि यही किया झनेक बार द्वृत गति में की जाये, तो कम्पित होता है।।२०, २१॥

इसका विनियोग वितर्क, रोष, विज्ञान धौर प्रतिज्ञात व्यक्तियों के स्रिमनय में होता है। धीरे शिर का तिरछा मुकाना 'धृत' है।।२२।।

१. (क) चसु सिन्टः। २. (क) रवावः। ३. (क) श्रकस्पितं। ४. (क) उत्तमामातमेव व । ५. (क) दूर्ता । ६. (क) शिरस्वादुः। ७. च्येत्री ।

पारवावलोकने खेदे निषेधे विस्मयादिषु ।

ग्राष्त्रम्—

सकृत् तिर्यक्समुत्क्षिप्तमाधूत मस्तकं मतम् ॥२३॥ पार्व्वस्थितोर्ध्वं संप्रेक्षणात्मसम्भावनादिष् ।

धवषूतम् —

्र एकदाधोर्गात' प्राप्तमवधूतं विचिन्तने ॥२४॥

मञ्चितम्—

शिर. स्यादञ्चित किञ्चित् पार्वितो नतकंघरम् । रुक्चिन्तामोहमूर्च्छासु तत्कार्य्यं हनुधारणे ॥२५॥

निहञ्चितम्-

मग्नग्रीव तथोत्क्षिप्तबाहुशीर्ष निहञ्चितम्।*
गर्वे स्तम्भे च कान्ताना नानाश्रुङ्गारवृत्तिषु ॥२६॥

पार्श्वकी क्रोर देखने खेद, निषेध विस्मय क्रादि मे इसका विनि-योग है।

एक बार तिरछा उठाया हुआ सिर 'श्राधृत' है ।।२३।। पाइवें में स्थित ऊर्घ्वं वस्तुओं के देखने और स्नात्ससम्भावन इत्यादि में इसका विनियोग है ।

एक बार नीचे गिराया हुग्रा सिर 'श्रवधूत है, इसका विनियोग विचिन्तन मे है ।।२४।।

पाइवं से कन्धो के कुछ भुकने पर तिनक उठा हुग्रा सिर 'ग्रञ्चित' है, रोग, चिन्ता, मोह मूर्च्छा तथा हनुधारण मे इसका विनियोग है।।२४॥

ग्रीवा भुकी हो, तथा वाहु ग्रौर सिर उठे हो, तो 'निहञ्चित' होता है, गर्व, स्तम्भ तथा कान्ताओं की विभिन्न शृङ्कारवृत्तियों में इसका विनियोग है।।२६।।

१. (क) दोग। २. (क) दमेसम्भे च।

ग्रञ्चितनिहञ्चितलक्षणपाठस्सञ्जीतरत्नाकरमनुसृत्य सशोधित: ।

प्रयोगतम् —

सम्यगुन्मुखमुरिसप्तमूर्घ्वं सम्प्रेक्षणादिषु । ब्रघोगतमधोवक्त्रं लज्जाघः प्रेक्षणादिषु ॥२७॥ (इति चिराँसि)

बक्षांसि--

सममुद्वाहितञ्चैव निर्भुंग्नञ्च 'प्रकम्पितम् । वक्षश्चतुर्विधं प्रोक्तं नाट्यविद्याविशारदैः ॥२८॥

समम्-

[°]सकलैरङ्गविन्यासैस्समैःसोष्ठवसयुतैः । स्वभावावस्थितं वक्षः समं नाम्ना प्रकीर्तितम् ॥२६॥

उद्बाहितम् —

उद्वाहित स्यादुद्गत^३ जृम्भणोच्छ्वसनादिषु ।

निर्भु ग्नम्—

प्रोन्नतं प्रोन्नताङ्ग^{ं४} च निर्भु ग्नं गर्वितादिषु ।।३०॥

भली भौति उठा हुमा सिर 'उद्धियप्त' है, जिसका विनियोग कपर देखने इत्यादि में होता है। मुख नीचा होने पर 'म्रधोगत' 'शिर होता है, जो लज्जा के कारण

सिर भुकाने इत्यादि में विनियुक्त है ॥२७॥ (ये शिर श्रङ्ग हुआ)

नाट्यज्ञों ने वक्ष चतुर्विध बताया है, सम, उद्घाहित, निर्मुंग्न ग्रीर प्रकम्पित ॥२०॥

. सौष्ठवयुक्त समान ग्रङ्गविन्यासो से युक्त स्वभावस्थितिसहित वक्ष 'सम' है ॥२६॥

उद्गत वक्ष उद्दाहित है, जिसका विनियोग जमुहाई घ्रौर उच्छ्वास इत्यादि में है।

१. (क) निर्भग्नेच, (ख) निर्मंग्न च। २. (ख) समलै। ३. (क) दुद्गात्रं। ४. (क) प्रोन्मतासः। ५. (क) गमिताविषु।

कम्पितम् ---

निरन्तरोर्ध्वविक्षेपैः कम्पित हसितादिष् । (इति वक्षासि चत्वारि)

परिभाषा ---

ज्येष्ठाङ्गुष्ठाभिधानाद्या तर्जनी स्यात् प्रदेशिनी ॥३१॥ मध्यमा मध्यमा तृर्य्यानामिकान्त्या कनीयसी । मणिबन्धाह्वयः पाणिमूलं कूर्परमुच्यते ।।३२।। वाहमध्यं तयोर्मध्य प्रकोष्ठोंऽसो भजाशिरः । ग्रसकर्परयोर्मध्य प्रकाण्ड पण्डिता विदु. ॥३३॥ धवतानमधोवनत्र तलमुत्तानमृत्तमम् । 'ब्रञ्चित स्यात्प्रसारितं कुञ्चित तूपसंहतम् ॥३४॥ **ंग्राविद्ध**मन्तः सम्भ्रान्तमपविद्ध विपर्य्ययात । (इति परिभाषाः)

ब्रसंयुतहस्ता —

पताकस्त्रिपताकश्च कर्तरी चतुरस्तथा ।।३४।।

प्रोन्नत ग्रीर प्रोन्नताङ्ग वक्ष 'निर्भु ग्न' है गर्वित इत्यादि के श्रीभनय मे जिसका विनियोग है, निरन्तर ऊर्ध्वविक्षेपयक्त वक्ष 'प्रकम्पित' है, जो हसित इत्यादि में प्रयुक्त होता है।

(ये चार वक्षो का निरूपण हम्रा)

मोटा 'ग्रड गुष्ठे' तर्जनी 'प्रदेशिनी' मंभली 'मध्यमा' चौथी 'ग्रना-मिका' भौर भन्तिम 'कनीयसी' कहलाती है।

पाणिमूल को मणिबन्ध, बाहुमध्य को कूर्पर (कुहनी), कुहनी, बाहु श्रीर कलाई का मध्य भाग प्रकोष्ठ, भुजाका सिर ग्रंस (कन्छा) ग्रीर कन्धे तथा कुहनी के मध्य भाग को विद्वान् ,प्रकाण्ड' कहते है ।।३०-३३।। पट (ग्रधोवनत्र) की 'श्रवतान' चित को 'उत्तान', प्रसारित को 'ग्रञ्चित', सिक्डे हुए को कुञ्चित' ग्रन्दर की ग्रोर घुमाये हुए को 'भाविद्ध' और इसके विपरीत को 'अपविद्ध' कहते है।

ये परिभाषाएँ हुई।

१. (क) संक्षेपै.। २. (क) कुर्य्या। ३. (क) त्या। ४. (क) शो।

५. (स) मत्तलम् । ६ (क) श्रचिल । ७ शाबिळा

हंसपक्षोऽर्भवन्द्रश्च सर्पास्या 'मृगशीर्षक'।
श्वराल शुकतुण्डश्च सदशो असर करः ।।३६॥
पद्यकोबस्तूर्णनाभोऽलपद्मो मुकुर कर ।
हसास्यह्स्त काइगृल े स्यान्मुष्टि शिखर कर ।।३७॥
कपित्य कटकास्यश्च सूच्यास्यस्ताम्रचूढक ै।
चतुविशतिरित्येवमसयुतकरा युत ।।३८॥
प्रत्येक नाट्यलोके च वर्तते ऽभिनयाश्रय '।

पताक -

^४ग्राद्याख्या कुञ्चिता किञ्चित् तर्जन्याद्या प्रसारिता ॥३६॥ पताक पातसक्षोभवारणे वादनादिषु ।

त्रिपताक --

पताकेऽनामिका वका त्रिपताकोऽश्रुमार्जने ॥४०॥ 'ललाटरचनाद्रव्यस्पर्शनाचमनादिष ।

कर्तरी —

यद्यत्र तर्जनी मध्यापरभागावलोकिनी ॥४१॥

पताक, त्रिपताक, कर्तरी चतुर, हसपक्ष, धर्घचन्द्र, सर्पास्य मृग-शीर्षक, धरान, गुकतुण्ड, तदश, अमर, पद्ककोष, ऊर्णनाभ, धलपप, मुकुर, हसास्य, कार्र्यूल मुस्टि शिखर, कपित्य, कटकास्य, (कटकामुक्क) सुच्यास्य, ताअचुङक् ये चीबीस समयत हस्त हैं ॥३४-३८॥

इनमें से प्रत्येक धांभनयाश्रित है और नाट्यलोक में विद्यमान है। यदि अगुष्ठ किञ्चित् कुञ्चित हो और तजेंनी इत्यादि प्रसारित हो, तो 'पताक' हस्त होता है। पात, सक्षोभ के वारण और वादन इत्यादि में इसका विनियोग है। पताक में यदि अनामिका वक हो, तो त्रिपताक हस्त होता है, जिसका विनियोग औं सु पोछने, ललाट-रचना, द्रव्य के स्पर्ध भीर भाजमन इत्यादि में होता है।

यदि इस हस्त मे तर्जनी मध्यमा के भपर भाग का अवलोकन करे,

१ (क) सप्तास्यो । २ (क) कांगोल , (ख) कांगूल । ३. (क) चूलक । ४. (क) खेनवात्रय । ५ (क) यञ्चाद्या । ६. (क) ललाम ।

'कर्तर्याख्या वितर्के स्याद् दंष्ट्रयोर्दर्शनादिषु ।

बतुर:-

पताकेऽनामिकामूलस्थाग्रीऽङ्गुष्ठः कनीयसी ॥४२॥ पृष्ठगा ै चतुरस्त्वल्पे नयोक्तौ नयनादिषु ।

इंसपक्षः --

हसपक्ष पताके चेत्³ पृष्ठगा स्यात् कनीयसी ॥४३॥ भोजने स्पर्शने लेपे 'दुरसन्देशनादिष।

द्यवंचन्द्र —

^५म्राद्यापसृत्य वक्रान्याश्चापवत्कुञ्चिता[°] युता. ॥४४॥ ⁵स उक्त ग्रर्धचन्द्राख्यश्चन्द्रलेखादिदर्शने ।

सर्पास्य -

यद्यर्धेन्द्रयुतास्सर्वा ग्रहगुल्यस्सर्पशीर्षकः ॥४५॥ भुजञ्जभगतौ तोयसेचनास्फालनादिष् । मृगशीर्षक -

ज्येष्ठाकनिष्ठे प्रोतिक्षप्ते यद्यस्मिन् मृगशीर्षक 'े ॥४६॥

तो 'कर्तरी' हस्तहोता है, वितर्क मे अथवा दाढो के दर्शन इत्यादि के अभिनय मे इसका विनियोग है। पताक हस्त मे यदि अँगठा अनामिका के मुल मे स्थित हो भीर कनिष्ठिका पीछे हो, तो 'चतूर' हस्ते होता है, इसका विनि योग ग्रह्मत्वदर्शन, नयोक्ति, नयन इत्यादि मे होता है। पताक मे यदि कनिष्ठिका पुष्ठमा हो तो 'हसपक्ष' होता है ॥३६-४,॥

हसपक्ष का विनियोग, भोजन, स्पर्श, लेप, दूर सन्देशन इत्यादि मे है। श्रगुष्ठ को पृथक करके यदि तर्जनी इत्यादि यदि सटी और धनष के समान भकी या मुडी हो, तो 'अर्थचन्द्र' हस्त होता है, इस का विनियोग चन्द्रकला इत्यादि के दर्शन मे है।

यदि सभी अँगुलियाँ अर्धचन्द्रयुक्त हो, तो सर्पशीर्षक हस्त होता है।

(क) कर्तर्यास्या । २ (ख) पृष्ठभागाच्चतु रस्वल्पेनोकेतौ नयनादिख ।

३. चित्।४ (क) भुजगे।५ (क) सेति।

६. (क) बाद्यापञ्चल्य । ७. (क) चारवत् । ८. (क) सयुक्तः ।

E. (स) यद्यद्वेन्दी । (स) लालनादिषु । १०. नगशीर्षक ।

'स्बोल्लासनाक्षविक्षेपस्वेदापनयनादिषु ।

बराल . -

ैसर्पास्ये तर्जनी वका यद्यरालो हितोक्तिषु ॥४७॥ ^३स्यादाशीर्वादसौन्दर्य्यवीर्य्यसङ्कीर्तनादिषु ।

शुकतुष्ड .-

चेद्वकानामिकाराले शुकतुण्डो विसर्जने ॥४८॥ न त्व नाह न कर्तव्य घिगित्यादिषु लक्ष्यते ।

सन्दंशः —

सन्दशस्तर्जनीज्येष्ठायोगोऽरालकरे^{*} यदि ॥४६॥ ^{*}ध्याने पुष्पावचाये वा स्तोके निष्पोडनादिषु । सन्दशस्त्रिप्रकार स्यात् पाश्वेजो मुखजोऽप्रज ॥५०॥ इत्यनेक प्रयोगेष दिगम्बरमतोदितः ।

भ्रमर -

भध्यमाद्याग्रयोगश्चेदराले भ्रमर कर ॥५१॥

इसका विनियोग सर्प की गति, नीर के सीचने श्रीर उछालने इत्यादि मे है। जिसमे श्रगूठा श्रीर कनिष्ठिका उत्क्षिप्त हो, वह 'मृगशीर्षक' है।

उल्लास, पासा फेकने, पसीना पोछने इत्यादि मे इसका विनियोग है।

सपरिय मे यदि तर्जनी वक हो तो 'अराल होता है, हितोक्ति, ग्र.शीवाँद सौन्दर्य प्रीर पराक्रम के वर्णन में इसका विनियोग होता है। यदि 'अराल' और अनामिका वक हो, तो शुक्तुण्ड होता है विसर्जन 'लू नही या मैं नहीं, नहीं करना, है, विक्कार है, हत्यादि धर्षों में इसका विनियोग है। यदि अराल में तर्जनी और अपुष्ठ मिले हो, तो सन्देश होता है, घ्यान, पुष्पचयन, अल्पबोधन और निचोडने इत्यादि भे इसका विनियोग है।

सन्दश तीन प्रकार का होता है, पार्वज, मुखंज और अग्रज। दिग-म्बर के मत्त में यह अनेक प्रयोगों से विनियक्त है।

(क) सील्लास नाक्षानिकोप । २ (क) सर्वास्थे । ३ (ख) स्यादाशीर्वादनेषैय्ये ।
 (क) रोगो रागकरे यदि । ५. (क) कुसुयावचये । ६ (क) मध्यमध्याद्यये ।

कर्णपूरा 'यताब्जादिग्रहादौ चित्रकर्म्मणि ।

पद्मकोष:—

ऊर्ध्वास्याः कुञ्चितास्सर्वा ग्रङ्गुल्यो विरला यदि ।।५२॥ पद्मकोषः कपित्थस्त्रीस्तनोत्फुल्लाम्बुजादिषु ।

अर्णनाभ ·—

पद्मकोषे कराङ्गुल्यो वकाश्चेदूर्णनाभकः ॥५३॥ कुष्ठरोगिणि शार्दू ले शिरः कण्डूयनादिषु ।

धलपवृम :--

ग्रावर्तिन्योन्तराङ्गुल्यः पद्मकोषे भवन्ति चेत् ॥५४॥ ग्रजपद्मस्तु शून्योक्तौ नंद्यावर्तादिकीतंने ।

मुकुर :--

पद्मकोषे युताग्राश्चेदङ्गुल्यो मुकुरः करः ॥४४॥ पूजाभोजनसङ्कोच पद्मादिमुकुलादिषु ।

हंसास्य --

हंसास्यो मुक्रन्ति चेदङ्गुल्यौ सम्प्रसारिते ॥४६॥

अराल मे यदि अंगुष्ठ और मध्यमा के अग्रभाग मिले हों, तो 'भ्रमर' होता है,

कर्णपूर, खिले हुए कमल के पकड़ने तथा चित्रकर्म में इसका विनि-योग है।

यदि सभी अंगुलियाँ विरल, उन्मुख कु वित हों तो पद्मकोष होता है। इसका विनियोग कपित्य. स्त्रीस्तन, खिले कमल प्रादि में होता है। पप्मकोष में यदि हाय की अंगुनियाँ वक होतो 'ऊर्ण' होता है।।४४-

४३।। कुष्टरोग, शार्द्रुल, सिर के खुजाने इत्यादि में इसका विनियोग है।

यदि पद्मकोष में बंगुलियाँ ब्रावितनी हों, तो 'म्रलपद्म' होता है, जिसका विनियोग सून्योक्ति, नन्दावर्त इत्यादि के कीर्तन में होता है।

१. (क) यताब्दादि ।

तप्तमाष' 'प्रहाकारस्निग्धसंबर्द्धनादिषु । काङ्गुल ---

काङ्गूलेऽनामिका वका भृशमन्या प्रसारिता ॥५७॥ ³ चुल्लीविडालचेष्टादौस्तोकेबालास्तनादिषु ।

मुब्टि -

^रतर्जन्याद्यास्तलस्थाग्रा उपर्य्यंड्गुष्ठपीडिता ^४ ॥५८॥ यदि मुष्टि प्रहारासिग्रहनिष्पीडनादिषु ।

शिखर -

ऊर्ध्व प्रसारितोऽङ्गुष्ठो मुष्टौ चेच्छिखर कर ॥५६॥ "स्यादधररञ्जनादौ धनुर्दण्डग्रहादिष ।

कपित्थ --

तर्जन्युतिक्षप्य वका चेच्छिखरेऽड्गुष्ठपोडिता ॥६०॥ कपित्थ स्मरणे चक्रग्रहे निष्पीडनादिषु ।

कटकामुख --

कपित्थेऽन्त्ये समृत्क्षिप्थ वक्रे चेत् कटकामुख ।।६१।।

पद्मकोष मे यदि अगुलियो के अग्रभाग सयुक्त हो, तो मुक्र' होता पजा भोजन सकोच पजा दर्पण इत्यादि मे इसका विनियोग है। मुकर के अन्त मे यदि दो अगुलियाँ फैली हो, तो हसास्य होता है,

तप्तमाय के ग्रहण के आकार (1) स्निग्ध वस्तु और सवर्द्धन के श्रभिनय मे उसका विनियोग है। काड्गूल मे अनामिका वक तथा अन्य ध्रगुलियां प्रसारित रहती है।

चुल्हे विलाव की चेष्टा ग्रत्पत्व, बाला-स्तन इत्यादि मे उसका विनियोग है। यदि तर्जनी इत्यादि अगुलियो के अग्रभाग हथेली पर हो भीर अगुष्ठ के द्वारा दबे हुए हो तो 'मुर्ष्टि' होता है।

प्रहार खडगग्रहण और निचोडने इत्यादि मे इसका विनियोग है, यदि मुब्टि मे अगुष्ठ ऊपर की ओर फैला हो तो 'शिखर' होता है।

१ (क) सप्त । २ (ख) सार । ३ (क) चल्लिशिलाभ ज्येष्ठादि, (ख) चल्लीचिलाक ज्येष्ठादि । ४ (क) तर्जन्याग्री । ५ (क) उपगारवृत्तिषु । ६ (क) मृद्दा । ७. (क) दवर। (क) = कपिकामुखा।

प्रग्रहाकर्षणादर्शधारणादिषु लभ्यते ।

सुच्यास्य -

सूच्यास्य कटकास्ये चेत् तर्जनी स्यात्प्रसारिता ।।६२।। साधुवादे प्रदर्शने प्रयोज्यस्तर्जनादिषु ।

ताम्बच्डक —

भ्रमरेऽन्त्ये तलस्याग्ने स्याताञ्चेत्ताम्रचूडक ै।।६३।। स शीघ्रतालपातादौ बुधैर्हस्त प्रयुज्यते । (इत्यमयुक्तहरता)

संयुक्तहस्ता ---

पुजाल्या । इस्तोऽञ्जलिः कपोतञ्च कर्कटा वर्धमानक ॥६४॥ कटकावर्द्धमानरुच स्वस्तिको गजदन्तक । । दोलोऽबहित्थस्चोत्सङ्गो निपध पुप्पपुट कर ॥६४॥ मकररुचेति समुक्ता हस्तास्ते त्रयोदश । अञ्चलि —-

⁸पताकयोस्तलक्लेपादञ्जलि क्षालनादिप ॥६६॥

म्राधररञ्जन घनुग या दण्ड के ग्रहण में इसका विनियोग है। यदि शिखर में तर्जनी उठकर टेडी और अगुण्ठ से दगे हुई तो तो कपित्थ होता है।

स्मरण चत्र ग्रहण निर्धीतन त्यारि म इसवा विनियोग है। यदि कपिन्य में प्रतिनम दो खेंशिनयों उत्तर तरी हुई हो तो वटकामुख होता है जा प्रगत प्राप्तपण द्याणाराण त्यारि में उपलव्य है। यदि कटकामुख में त्रजी फैरी हो जा मुनागल नोना है। साधवार प्रदर्शन, तर्जन हत्यादि से इसका विनियाग है।

यदि भ्रमर संग्रतिस ग्रागिता ता के श्रयं सही तो ताम्रचूड' होता है।।८४६३।।

बुद्धिमानों के द्वारा उसका प्रयोग गीध्रतात्रपात श्रादि मे होता है। (ये असयूत हस्त हुए)

ग्रञ्जलि वपोत, वर्कट वधमान, वटकावर्द्धमान स्वस्तिक, गज-१ लक्ष्यते । २ (क) चेत् । ३ चण्डल । ४ पानानी,।

१ (क) गजदन्तिक (ख) राजदन्तक । २ (ख) पताकत्यलयो ।

'महेशगुरुपुज्यानामयं स्यादिभवादने । कपोत :--

> सर्पशीर्षद्वयोः इलेषात् कपोतोऽङ्गुलिघर्षणे ॥६७॥ प्रणामेऽभयशीतार्ते गुरुसम्भावनादिषु ।

कर्कट

पद्मकोषयुगाङ्गुल्य अन्योन्यान्तर निर्गताः ।।६८॥ चेत्कर्कटोऽङ्गसम्मदंहनुशङ्खग्रहादिषु ।

वर्द्धमान --

वर्द्धमानः कपित्थेन वेष्टितो मुक्लो यदि ॥६९॥ सर्वसङग्रहसंक्षिप्तसत्यवाक्यादिष स्मतः ।

कटकावर्ड मान --कटके न्यस्तकटक, कटकावर्द्धमानक, ॥७०॥

³कुम्ताद्यायुधसङ्ग्राहकाहलावादनादिष् ।

स्वस्तिकः---

यूतमणिबन्धोत्तानारालावन्योन्यपादवंगौ ॥७१॥

दन्त, दोल, ग्रवहित्थ, उत्सङ्ग, निषध, पृष्पपूट ग्रीर मकर ये तेरह सयुक्क

हस्त है।

दोनोंपताक हस्तो की हथेलियाँ मिलने से 'अजलि' होता है, प्रक्षालन श्रादि (जिनेश), महेश, गुरु तथा पूज्य जनों के स्रिभेवाद में इसका विनियोग होता है, सर्वशीर्प हस्तों के सयोग से कपीत होता है। प्रणाम, स्रभय, शीतार्न, गुरु सम्मान इत्यादि मे इसका विनियोग है। यदि पद्मकोष हस्तों की अँगुलियाँ एक दूसरे मे निकल गई हों, तो 'कर्कट' होता है।

श्रद्धमर्दन, ठोडी, शृद्ध इत्यादि के ग्रहण इत्यादि में इसका विनि-योग है।

कपित्य के द्वारा यदि मुकूल वेष्टित हो, तो वर्द्धमान होता है, सर्व-सग्रह, संक्षिप्त, सत्य वाक्य इत्यादि में इसका विनियोग है। यदि कटक

१. (क) जिनेश । २. (क) अन्योत्याङ्गुल्य निर्गताः । ३. (क) कुन्ताच्यायः ।

स्वस्तिकः सर्वसङ्कीर्णबन्धनानयनादिषु । गकदन्तः :---

पुरः प्रसारितौ किंचिदुत्तानौ सर्पशीर्षकौ ॥७२॥ गजदन्तशिलावत्सगुरुभारग्रहादिषु ।

दोल:-

दोलाहस्तः पताकौ द्वौ प्रलम्बितभुजौ यदि ॥७३॥

ेविषादसम्भ्रमन्याधिलीलामूर्च्छामदादिषु ।

ग्रवहित्य:--

मबहित्यः ज्ञुकतुण्डौ वक्षसोऽभिमुखौ युतौ ।।७४। शर्नरघोमुखाविद्धौ दौर्बल्योत्कण्ठितादिषु । उत्सङ —

. पराङ्मुखावरालो द्वावृर्ध्वास्यो सङ्गतौ यदि ।।७४।।

हस्त पर कटकहस्त रखा हो, तो कटकावर्द्धमान होता है। माला इत्यादि आगुधो के ग्रहण, काहला इत्यादि के वादन में

इसका विनियोग है।

श्रराल मुद्रा मे यदि दोनो हाथ उत्तान हो एक-दूसरे के पार्श्व में गये हों, शौर उनकी कलाइगों जुडी हों, तो स्वस्तिक' होता है, सङ्कीर्ण बन्धन में बौधकर लाने इत्यादि में इनका विनियोग है।

यदि सर्पशीर्षंक हाथ कुछ उत्तान और सामने फैले हो, तो 'गजदन्त' होता है।

शिला, नत्स ब्रथवा ब्रधिक भार के उठाने मे इसका बिनियोग है। यदि दोनों पताक हस्तों में भुजाएँ फैली हो, तो दोलाहस्त होता है।।६४-७३।।

विषाद, सम्भ्रम, व्याधि, लीला, मूर्च्छा ग्रौर मद मे इसका विनि-योग है।

यदि शुकतुण्ड अवस्था में दोनो हाथ वक्ष के सामने हों भीर धीरे से माविद्ध होकर भधोमुख हो जायें, तो 'भवहित्य' होता है।

१. (स) विवादसभ्रयाम्याघि । २. (क) वौविल्यात्खाण्डिताहिषु ।

उत्सङ्गः स्यात् प्रियाद्दलेषकन्दुकादिनिवारणे । --

निवध — निवधो दक्षिणो मुख्टिविमकुर्परमध्यगः ॥७६॥

ानवधा दक्षणा मुष्टिवामकूपरमध्यगः ॥७६॥ प्रकाण्डो दक्षिणो वास्यादघृतौ गर्वादिदर्शने । पुष्पपुटः---

कनिष्ठापार्श्वसदिलष्टावृत्तानौ सर्पशीर्षको ॥७७॥

पुष्पपुटः पुष्पाञ्जलिजलदानादि कर्मसु ।

मकर '— मणिबन्धे युतावत्तानावतानौ पताककौ ॥७८॥

मकरः सिंहशार्द् लमकराभिनयादिषु ।

(इति संयुत हस्तास्त्रयोदश) नत्यजास्सप्तविशति हस्ता —

चतुरस्रानुद्वृत्तौ च करौ श्विस्तिकवद्युतौ ।।७६।।

'दौबंत्य' एव उत्कण्ठित इत्यादि मे इसका विनियोग है। यदि दोनों अरालहत्त पराङ्मुल अवस्या में परस्पर जुडे हुए और उन्मुख हो, तो 'उत्सङ्ग' इस्त होता है, प्रिय के आस्त्रेष और गेंद इत्यादि के रोकने मे इसका विनियोग है।

यदि दाहिना हाथ 'मुष्टि' अवस्था मे बार्ये हाथ की कुहनी पर हो, अथवा वहाँ दाहिना प्रकाण्ड हो. तो 'निषध' होता है।

र्षेय्यं, गर्व प्रादि के प्रदर्शन में इसका विनियोग है। कनिष्ठा यदि पार्श्वलग्न हो और संपंशीर्षक श्रवस्था में दोनो हाथ उत्तान हों तो 'पुष्प-पूट' होता है।

पुष्पाञ्जलि, जलदान, इत्यादि, कार्यों में इसका विनियोग है। यदि चित होकर दोनों हाथ पताक धवस्था में कलाइयो पर संयुक्त हों, तो 'सकर' होता है, सिंह, शार्डू ल, मगर इत्यादि के ग्रभिनय में इसका विनि-योग है।

(ये तेरह संयुक्त हस्त हुए)

 ⁽क) उत्ताली । २. (क) धानावि । ३. (क) काक ।

सूचीमुखी तलास्यी च रेचितावर्धरीचती'।
ग्राविद्धवकी पल्लवावरालकटकामुखी ॥८०॥
'नितम्बी केशबन्धी च हस्तावुत्तानवञ्चिती।
'लतास्यी करिहस्तो' च पशवञ्चितको करी ॥८१॥
पक्षप्रद्योतको दण्डपक्षी गरुडपक्षती।
मुण्टिक स्वस्तिकाहुरुव पार्वमण्डलिनी करी॥८२॥
उरोमण्डलिनी हस्तावुर पार्वाद्धंमण्डली।
नलिनोपद्मकोपास्यावृत्वणी ललिती करी॥८३॥
बलितावितिहस्ता स्युन्नृत्यजासस्प्तविशति।

खटकास्यावभिमुखो वक्षसाङटाङ्गुलान्तरे ॥=४॥ ^४स्थितौ समानकृर्परावसाग्नौ **चतुरस्रको ।** उ**द्युतो** —

^{'व्यावृत्तहसपक्षी द्वावुद्वृत्तौ हसपक्षकी ॥८४॥।}

चतुरस्रउद्वृत्तं, स्वन्तिवं, सूत्रीमृतः, तलास्य, रीवतः, प्रश्नरेचितः, स्राविद्वववत्र, पत्तवः सरालवन्त्रामुनः, नितन्त्र, केशवन्त्रः, उत्तानव-क्रिवतः, लताख्यः करिहस्त, पत्तविज्यत्वः पक्षप्रयानकः, टण्डणकः, सरह पक्ष, मृष्टिकः पादवंगस्त्रीं। ॥७४-६।।

उरोमण्डली, उर पादर्भाई नण्डली, नालनीपद्मकोष, उल्वण, लिलत श्रौर वलित ये सत्ताईस नृत्यज हम्त हे ।

वक्ष में आठ शगुन के अनार पर स्थित ऐसे हस्त 'चतुरस्त्र' कह-लाते हैं जो प्रशिमुख हो और जिनम कुटनियाँ कन्धो की सीध में रहें । ब्यावृत्त किये ट्रण हमपक्ष हरन 'उद्वृत्त' कहलाते हैं ।

मणिबन्ध पर जुडे हुए स्वस्तिकवत् हस्त 'स्वस्तिक' कहनाते हैं । जिनमे ग्रॅगूठ हथेली के मध्य मे हो, भुजाएँ तिरछी फैली हो ग्रौर

१. (क) रेभिको । २ (व) नितस्वे केशवत्ये च । ३ (क) अरास्यो । ४ (क) करिहस्यो । ४. (क) स्थितौ—मानकूरस्यजान्नो । ६. (क) व्यावृत्त । ७ (क) बृद्धृतौ । स्वस्तिको---

'स्वस्तिको मणिबन्धे तु युतौ स्वस्तिकवद्युतौ । सवीमुको —

सूचामुखा-

तलमध्यस्थिताङ्गुष्ठावृत्तानौ सर्पशीर्षकौ ॥८६॥ तिर्य्यक् प्रसारितमुखौ सूचोमुखकरौ वरौ ।

तलमुखौ ---

चतुरस्रकरौ हंसपक्षावन्योन्यसम्मुखौ ॥ ५७॥ तिर्य्यग्वक्षः स्थलस्यौ तु करौ तलमुखौ मतौ । रेखितौ, प्रथंरेखितौ —

प्रसारितोत्तानतली हंसपक्षी दुतभ्रमी ।। ८८।। रेचिती चतुरस्रश्चेदत्रैकस्त्वधंरेचिती । माविद्यवन्त्री—

'प्रकाण्डकुटिलाविद्धौ करा**वाविद्धवक्रकौ** ।। ८६।। पल्ल**बौ**---

मणिवन्धेन युक्ती द्वौ पताकौ पल्लवौ स्मृतौ ॥६०॥ घरालकटकामुलौ –

ग्ररालकटको हस्ता**वरालकटकामुखौ** ।।६०।।

जो सर्पंशीर्षक म्रवस्था में उत्तान हो, वे सूचीमुख' हस्त हैं। यदि अतुरस्र भ्रवस्था में हसपक्ष हस्त परस्पर सम्मुख हो, और तिरखे होकर वक्षस्थल पर स्थित हों तो 'तलमुख' कहलाते हैं।

यदि प्रसारित हो कर उत्तानतल हंसपक्ष द्रुत भ्रमण से युक्त हों, तो 'रेचित' है।

यदि दोनों हाथो मे से एक चतुरस्र हो, तो 'अर्थरेचित' है। यदि आविद्ध हस्त प्रकाण्ड पर टेढे हो, यो 'आविद्धवक' है।।७४-

दशा दो पताक हस्त मणिवन्ध पर जुड़े हों, तो 'पल्लव' है। ग्ररालकटक श्रवस्था मे दोनों हस्त 'श्ररालकटकामुख, कहलाते है। यदि ऊर्घ्व हस्त

१. (क) स्वस्तिका। २. (क) चुतौ। ३. (क) विच्युतौ।

४. (क) घूतभ्रमी । ५. (क) स्पर्धरेचितौ । ६. (क) प्रकाण्डे कुपिताविद्धौ ।

नितम्बौ--

नितम्बौ पार्श्वयोरूध्वौ 'बाहुशीर्षाद् विनिर्गतौ ।

केशदेशाद् विनिष्कान्तौ पार्श्वद्वयसमुद्गतौ ।।६१।। केशबन्धकरौ प्रोक्तौ तौ दिगम्बर सूरिणा ।

उत्तानबञ्चितौ —

उत्तानवञ्चितौ किञ्चित्पाइवंगौ त्रिपताककौ ॥६२॥ लता**इयौ**—

प्रसारि तो लताख्यो तु सम्यक् तिर्थक् प्रसारितौ । विलोलित "पाश्वीत्पाश्व लताहस्त समुन्नत ॥६३॥ करिहस्तः —

कर्णस्थ[ः] त्रिपताकोऽन्य करिहस्तः प्रकीर्तित । पक्षवञ्चितौ--

कट्यग्रविनिविष्टाग्रौ पताकौ पक्षवञ्चितौ ॥६४॥

बाहुद्यीर्ष से निकलकर दोनो म्रोर हो, तो 'नितम्ब' हस्त कहलाते हैं। केशस्थान से निकल कर दोनो पादवों मे गये हुए हस्त **दिगम्बर** सूरि ने 'केशबन्ध' बताये हैं।

त्रिपताकहस्त कुछ पार्श्व मे गये हुए हो, तो 'उत्तानवञ्चित' कह-लाते है ॥६०-६२॥

भली भाँति तिरखे फैलाये हुए हस्त 'लताख्य' कहलाते हैं।

एक पाश्वं से दूसरे पाश्वं तक समुत्रन एवं विलोलित एक 'लता हस्त' हो और दूसरा त्रिपताक श्रवस्था स कर्णस्य हो, तो 'करिहस्त होता है। यदि दोनो पताकहस्तो के ग्रग्नभाग कटि के ग्रग्नभाग में स्थित हो, तो 'पक्षवञ्चित' हस्त' होते है ॥६३-६४॥

१. (ल) स्दधी।

२. (ल) त पाश्चात्।

पक्षत्रद्योतकौ ---

परावृत्ती पुनस्ती हो पक्षप्रद्योतको करी। वण्डपक्षो —

तिर्य्यंक् प्रसारितभुजी व्यावृत्तपरिवर्तितौ ॥१५॥

हंसपक्षकरी दण्डपक्षावुक्ती दिगम्बरेः।

गरडपक्षकी---

मधोमुखतलाविद्धौ किञ्चित्तियँक् प्रसारितौ ॥६६॥

हंसपक्षकरी स्यातां ती द्वी गरुडपक्षकी।

मुष्टिकस्वस्तिकौ —

स्वस्तिको¹ कटकास्यो द्वौ कुञ्चितावञ्चितौ यदि ॥६७॥ एकघा बहुशोवाथ **मुध्टिकस्वस्तिको** मतौ ।

ऊर्ध्वपाद्यंगंडलिनी---

उरोमण्डलिनी---

ैमूर्ध्निपार्श्वद्वये चैव मण्डलावृत्तिवर्तनात् ॥६८॥

आशाम्बरमतादृध्वंपाक्ष्वंमण्डलिनौ करौ ।

बहशो वक्षसोऽन्योन्यं वेष्टनोदवेष्टनक्रमात् ॥६६॥

यदि वे दोनों परावृत्त हो, तो 'पक्षप्रद्योतक' होते है। यदि हंसपक्ष हस्त हो, भुजायें तिरछी फैली हो कमश्रः व्यावृत्ति ग्रौर परिवर्तन हो, तो विगम्बर ने 'दण्डपक्ष' हस्त बताये है।

यदि भाविद्ध हस्तो की हथेलियां श्रधोमुख हो, और तिरखे फैले हुए हाथ हंस पक्ष हों, तो 'गरुडपक्ष' कहलाते है।

यदि स्वस्तिक भ्रौर कटकास्य हस्त एक या भ्रनेक वार कुञ्चित भीर भ्रञ्चित हो, तो 'मुष्टिकस्वस्तिक' कहलाते है ।

सिर तथा दोनों पाश्वों में मण्डलावृत्ति करने से विगम्बर मत में 'क्रथ्यंपाश्वंमण्डली' हस्त होते हैं। वक्ष के सम्मुख यदि मण्डली हस्त, वेष्टन धीर उद्वेष्टन के कम से बुमाये जायें, तो 'उरोमण्डली' कहलाते हैं।

 ⁽क) कटकी स्वाद् हो । २. (क) मूर्जिन च पार्श्व द्वितये ।

भ्रान्तौ मण्डलिनौ हस्तौ उरोमण्डलिनौ मतौ । उर पार्ड्वाद्यमण्डलौ-

इलथमणिबन्यारालावुर पाश्विद्धदेशयो ॥१००॥ भ्रान्तौ मण्डलिनोहस्तावुर पाश्वीर्द्धमण्डलौ ।

नलिनीपद्मकोषकौ

'व्यावृत्या परिवृत्त्या च पदमकोषाभिषी करौ ।।१०१॥ स्याता जानुसमीपस्थौ **नलिनीपद्यकोषकौ ।** उ**त्यणी**—

ै<mark>उत्वणा</mark>व्ध्वगाविष्टोदवेष्टिताग्रौ तु पल्लवौ ।।१०२।। ललितौ ─

³मस्तवोददेशसम्पानी पत्लवौ लिलती मती। विलतौ—

> कूपरस्वस्तिक^रयुतो लताख्यौ **वलिताविति** ॥१०३॥ लोकव्यवहृतौ युद्ध नियुद्ध नतनादिषु^४ । नानाप्रयोग दशनादहस्तो नास्ति विञ्चन ॥१०४॥

यदि मणित्र व शितिन हो कोर तक्ष क्षीर पाइवीं र स्थान में मण्डली हस्त युमाये जाय ना उरा गाउमण्य ग्याने हैं। पद्मनीय हस्त व्यावृत्ति क्षीर परिवर्त्तिक द्वारा यिह जानु के समीप स्थित हो तो निजनी पद्मकोश स्त होते हैं।

ऊपर की बोर गय हरा व पत्नव हरा उ वण है जिनके अग्रभाग ब्रावेस्टित और उदवेस्टिन हो ॥० / १०२॥

मस्तक प्रदेश तक क्राये ह*ा उत्तव हस*न पतित है। कूपर स्वस्तिक युक्त जतारय हस्त विजित है।।१०३।।

लोकव्यवहार यद्ध दृ दृ युद्ध नतन इत्यादि मे विभिन्न प्रयोगों के दशन से (सिद्ध है) वि हम्तव्यापाररहित कोई भी कार्य्य नहीं है।।१०४।।

१ (स) व्यावतपरिवर्ती न । २ (स) उत्वणादुष्यगाविष्टोद्वष्टिताग्री । ३ (स) मस्तकौ देश । ४ (स) गतो । ५ (क) वतनाविषु । ६ (स) दमनादि ।

कुर्वन्नावेष्टितोद्वेष्टितान्यङ्गीकर्मणा गतौ । 'क्षणादावर्तितं हस्ते लभते परिवर्तनम् ।।१०५।। ग्रावेष्ट्यन्तेन्तरंगुल्यस्तर्जन्याद्या विद कमात्। ग्रावेष्टितं³ यथोद्वेष्टिताख्यमुद्वेष्टनाद् बहिः ॥१०६॥ ग्रावर्त्यन्तेऽन्तरङ्गुल्यस्तर्जन्याद्या यदि ऋमात्।

^४म्रावर्तित बहिर्व त्तेस्तथासौ परिवर्तितः ॥१०७॥ वश बाहव:--

बाहवस्तिर्य्यगृध्वधिः पृष्ठगा कुञ्चितोऽञ्चितः । स्यूर्मण्डलस्वस्तिकाविद्धापविद्धा दशेति ते ॥१०५॥ हस्तसंख्या प्रसिद्धाह हस्तलक्षणमञ्जवमः । देशीनृत्ते तु नान्विष्यास्सर्वहस्ता जगज्जनै ।।१०६।। चतुर्विधः पाइवं -

समुन्नत नतञ्चैव प्रसारितमथापरम । व्यावृत्तञ्चेति पाद्यवस्य चतुर्घा भेद ईरितः ॥११०॥

गति मे अञ्जयापार से अविष्टित और उद्देष्टित करता हुआ (मनुष्य) क्षण में हाथ में ग्रावर्तन और परिवर्तन प्राप्त करता है ।।१०५।। जब कमश तर्जनी ग्रादि ग्रेंगुलियां ग्रन्दर की ग्रोर की जाती है, तब आवेष्टन और जब बाहर की ओर खोली जाती हैं, तब उद्वेष्टन होता है ॥१०६॥

श्रुँगुलियां यदि अन्दर की स्रोर स्नावतित की जायें, तो स्नावितित भीर बाहर की भ्रोर की जायें, तो परिवर्तन होता है ॥१०७॥

बाह दस प्रकार के हैं, तिय्यंगात, ऊर्ध्वगत, अधोगत, पृष्ठगत, कुञ्चित, ग्रॅंञ्चित, मण्डल, स्वस्तिक, ग्राविद्ध ग्रौर श्रपविद्ध। यह प्रसिद्ध हस्तसंख्या है। हस्तलक्षण मैने कह दिया।

लोगो को देशी नृत्त में समस्त हस्त नही ढुढना चाहिये ।। १०६।। पार्ख के चार भेद समुझत, नत, प्रसारित तथा व्यावत है ।।११०।।

१. (क) रसादा वर्तित, (ख) रणादावर्तित । २. (क) कनिष्ठाचा। ३. (क) ततो। ४. (ल) व्यावतित । ५. (क) मब्रवीत ।

समुन्नतैः कटिपार्श्वभुजांसैरुन्नतै भवेत् । व्याभुग्ना तु कटियंत्र स्कन्थोऽप्याहुस्ततोमनाक् ॥१११॥ नताभिधान तत्पार्श्व कथितं नाद्यवेदिभिः। म्रायामनात्प्रसारीति "पार्श्वीभ्यां तु प्रसारितम् ॥११२॥ त्रिकस्य परिवर्तेन स्याद् व्यावृत्तमपोहनात्।

पञ्चविद्या कटि —

निबृत्ता रेचिता छिन्ना कम्पितोद्वाहिता तथा ॥११३॥ इति पञ्चिषधा प्रोक्ता किटनोट्यविशारदैः । निबृत्ता सा किटग्रेंया सम्मुखी वा पराङ्मुखी ॥११४॥ परितो अमणाज्ज्ञेया सग्नया रेचिता किटः । तिर्यङ्मध्यस्य वलनाच्छिन्ना नाम्ना किटग्रेंबेत् ॥११४॥ क्षित्रं गतागर्तस्तिर्यक् कम्पिता कथिता गतौ । उद्वाहिता शनैः पाश्वेंनितम्बोद्वाहनात्किटः ॥११६॥

कटि, भुजा, पास्व और कन्धे उन्नत होने पर 'उन्नत' होता है, जहाँ कटि और कन्धा भी कुछ भुके हो, वह पास्व नाट्यवेदियों की उक्ति के अनुसार 'नत' है।

फैलाने से प्रसारी श्रीर दोनो पास्वों से 'प्रसारित' होता है ॥१११, ११२॥

त्रिक (पृष्ठ देश के अधोभाग) परिवर्त के द्वारा अपोहन से 'व्यावृक्त' होता है।

निवृत्ता, रीचता, छिन्ना, कम्पिता और उद्वाहिता यह पञ्चिषक कटि नाट्यविकारदो ने बताई है। सम्मुख अथवा पराड्मुख कटि 'निवृत्ता' है।।११३, ११४।।

चारो ओर घुमाने से रेचित किट होती है। मध्यभाग को तिरछा घुमाने से 'छिन्ना' नामक किट होती है।।११३-११४।।

वेगपूर्वक तिरछे गमनागमन से गति में 'कम्पिता' कटि और धीरे धीरे पास्व और नितम्ब के उढाहन से 'उढाहिता' कटि होती है ।।११६॥

१. (क), (ख) मुजार्श । २ (क) द्विपार्श्वाम्यां प्रसारितम् ।

र (स) परिवर्तस्य।

पञ्चविषः वादः---

समस्वोद्धट्टितः कुञ्चितोऽञ्चितोऽग्रतलकमः ।
इति पञ्चिवपः पादः समः स्वाभाविक कमः ॥११७॥
'पादाग्रस्थेन चेत्पार्ष्णः सकृद्भूमौ निपाःयते ।
प्रयोगेणासकृद् द्वाभ्यांमुब्धिद्दतपद समे ॥११६॥
कुञ्चिताग्रतलं भूस्था समे चेत्पार्ष्णिरुच्यते ।
कुञ्चितोऽभिनयायत्तस्त्रदात्तगमनाविषु ॥११६॥
ग्रञ्चिताङ्गुलिपादाग्रमुत्थिप्तञ्चेत्समेऽज्ञ्चितः ।
'पादाग्रक्षितिसञ्चारभ्रभगुं द्वर्तनाविषु ॥१२०॥
समे चेत्पार्ष्णिरिक्षप्ता स्यादग्रतलसञ्चरः ।
पार्ष्णिक्षतगितभ्रान्तिभ्रोणीसंघट्टनादिषु ॥१२१॥
ग्रभोपाङ्गदर्शन्यान्येव सादरं निक्षयाम । कुतौऽय निपमः । तत्र

पाद पाँच प्रकार का है, सम, उद्घट्टित, कुञ्चित, झञ्चित भीर अग्रतलकम । स्वाभाविक गति से यक्त पाद 'सम' है ।

यदि पादाग्रस्थित व्यक्ति के द्वारा एक यो भनेक बार एड़ी भूमि पर लगाई जाये, तो समगति मे 'उद्धट्टित' पाद होता है ॥११६-११८॥

यदि समपाद मे अग्रतल कुञ्चित हो और पृथ्वी पर स्थित हो, तो 'कुञ्चित' पाद होता है, जो उदात्तगमन इत्यादि में प्रयोज्य है ॥११९॥

समपाद में अंगुलियाँ अञ्चित हो और पादाग्र उत्सिप्त हो, तो 'अञ्चित' होता है, पादाग्र के आधार पर भूमि मे चलने, अमरी और उद्धर्तन इत्यादि मे इसका उपयोग है ।।११८-१२०।।

समपाद मे यदि एडी उठी हो, तो अप्रतलकम' होता है, इसका विनियोग घायल एडी से युक्त गति, आन्ति और पृथ्वी के संप्रहृन इत्यादि में होता है।।१२१।।

भव भादर पूर्वक उपाङ्गदर्शनों का निरूपण करते है। यह नियम कहाँ से है? उसमें मुख्यता होने से (है)।

१. (क) पदाग्रस्तेन । २. (क) पादाग्रेक्षतसञ्चारा । ३. (क) भ्रमेर्युदर्वतितादिषु ४. (क) क्षोणे ।

प्रष्टविषवर्शनानि-

समं साच्यतुवृत्तच ह्यालोकितविलोकिते ।
प्रलोकितमुल्लोकित चावलोकितमण्डण ॥१२२॥
भवन्ति दर्शनान्येव पृथङ्गोक्तानि लक्षणः ।
पुटपक्ष्माग्रकर्माणि लोचनानुगतान्यतः ॥१२३॥
समं सम साचि तिर्यक् रूपनिर्वर्णनायुतम् ।
अनुवृत्तं स्याद्दर्शन सहसालोकितं मतम् ॥१२४॥
पृण्डतः स्याद्विलोकितं पाश्विभ्यो तु प्रलोकितम् ।
अध्येक्षणमुल्लोकितम् । प्रेश्मा

देशिस्थानलक्षणम्---

'पादजङ्कोरुकरण सम कार्य्य प्रयोक्तृभिः। पादस्य करण सर्व जङ्कोरुङ्तिमिष्यते।।१२६॥ यथा प्रसप्ति. पादस्तयैवोरु प्रवर्तते। अनयोस्समानकरणात् पादचारी प्रयोजयेत्।।१२७॥

सम, साचि अनुवृत्त, आलोकित, विलोकित, प्रतिलोकित, उल्लोकित श्रीर आलोकित ये अप्टविध दर्शन' है।

लक्षणों के द्वारा ये पृथक् नहीं कहे। पपोटो और पलको के अग्रभाग के कर्म लोचनों के अनुगत है।

श्रत समान 'सम', तिरछी दृष्टि 'साचि', रूप निहारना 'श्रनृतृत्त', सहसा देखना 'श्रालोकिन' और पार्श्व की ओर देखना 'प्रलोकित', ऊपर देखना 'उरलोकित' और नीचे देखना 'श्रवलोकित' है।।१२२-१२४।।

प्रयोक्ताओं को पार, जञ्जा और उरु की किया साथ-साथ करनी चाहिये। पाद की सभी किया जङ्का और उरु द्वारा निष्पन्न होती है। ।।१२६।।

जिस प्रकार चरण चलता है, बैसे ही ऊरु भी प्रवृत्त होता है, इनके समान किया से पादचारी प्रयुक्त होना चाहिए ॥१२७॥

१. (ख) पद।

यतो पादस्ततो हस्तो यतो हस्तस्तवा विकम् ।
पादस्य निर्ममं ज्ञात्वा ततोऽङ्ग विनियोजयेत् ॥१२६॥
पादचार्त्या यथा पादो घरणीमेव गच्छित ।
एवं हस्तद्वित्तित्वा तु कटोदेशं समाश्रयेत् ॥१२६॥
ग्राङ्गिकाभिनयास्सतें सार्थाः सर्वत्र जाग्रति ।
देशीनृत्येषु सार्थत्वं नो विचार्य्य विपश्चिता ॥१३०॥
ग्रायो लोकप्रसिद्धानि कथ्यन्ते तेषु कानिचित् ।
पेरणं पेक्वणं चैव गुण्डली दण्डरासकः ॥१३२॥
ग्रयौतानि समाश्रित्य वस्यन्ते स्थानवादयः ।
नन्धावर्तकवर्द्धमानसमपात् तत्स्वित्तिक वैष्णवम् ।
पाष्यांविद्धकपाण्णिपाश्वंकपरावृत्तानि तद्गारुडम् ।
सूची खण्डपदोत्तरा समयुता सूची त्रिभङ्गीयुतम् ।
पाष्णीं चैकपदोत्तरी च चत्रस्र सचिव वैषमम् ॥१३२॥

----जहाँ चरण वहाँ हस्त, जहाँ हस्त वहाँ त्रिक होना उचित है, पाद का निर्गम जानकर तत्पदवात् ख्रङ्क का विनियोग उचित है ।।१२६॥

पादचारी के द्वारा जैसे चरण भूमि पर ही जाता है वैसे ही किया के पश्चात् हस्त कटि प्रदेश का आश्रय लेता है।।१२६।।

सभी आङ्मिक श्रमितम सार्थ होकर जाग्रन् रहते हे, विद्वानी को देशी नृत्तों में सार्थना का विचार नहीं करना चाहिए ॥१:०॥

उनमें से कल लोकप्रसिद्ध स्थानक कहे जाते है। पेरण, पेक्सण, गुण्डली, दण्डरासक का आश्रय लेकर स्थानक ग्रादि कहे जा रहे है।

नन्दावर्तं, बर्ढमान, समपद, न्वस्तिक, बैरणव, पाण्यांविद्धक, पार्ष्ण-पास्कै, परावृत्त, गास्त्र, खण्डमूची, समयुची त्रिभङ्की, एकपार्ष्ण, एक पद, चतुरक्र, विषमसूची, पद्मासन, नागवन्ध, विषमपद्मासन धन्तरपद्मा-सन और कृमासन ये देशी 'स्थानक' है। ॥१३ १-१३ ४॥

१. (क) वैष्णवम् ।

पद्मासनं नागबन्धो विषमान्तरपूर्वके ।
पद्मासनं तथा प्रोक्त कूर्मासनमतः परम् ।।१३३॥
बद्धमानं यदि स्थान षडङ्गुलिकृतान्तरम् ।
क्त्वाबर्तं तदेवस्यान्नृत्यभेदविशारदैः ॥१३४॥
तिरक्वीनमुखौ पादौ पाण्णिभ्यां यत्र सङ्गतौ ।
स्थानकं बद्धमानास्यं तदुक्तन्नृत्यकोविदैः ॥१३४॥
पाष्यां इगुष्ठयुतान्तरागमितिना ज्ञेयास्वतुः षट् च ताः ।
ग्रङ्गुष्ठयो ऋजुलम्बिबाहुयुगलं स्वाभाविकं सौष्ठवम् ॥
कर्णाग्रात् कटिगुल्फदेशसमता नाट्ये कुरङ्गीदृशः ।
स्थानं तत् समुदाहृत समयदं पृष्पाञ्जलिक्षेपणे ॥१३६॥
मञ्जीरस्थानसलग्नौ मिथ विलय्किनिष्ठकौ ।
कृष्टिवतौ चरणौ यत्र स्थान तस्स्वस्तिकं मतम् ॥१३७॥
सममेकपद भूमावन्यत् किञ्चिच कृष्टिवतम् ।
पुरः प्रसारित तिर्यक् स्थानक वैष्णवं विदुः ॥१३८॥

वर्द्धमान मे यदि नृत्यक्षो ने छ अ गुल का अन्तर किया हो, तो वह 'नद्यावर्त' स्थानक हो जाता है ।।१३४।।

नृत्यज्ञो ने उस स्थानक को बद्धमान कहा है, जहाँ एडियाँ परस्पर जुडी हो और चरण तिर्यङ्मुख हो ॥१३५॥

जहाँ दोनो एडियो में चार धौर धँगूठों में छः धंगुल का धन्तर हो, वैसी ही भंगुनियाँ हों दोनों बाहु सीघे लटक रहे हो। स्वाभाविक सौष्टब हो, कानों के अग्नभाग की सीधाई पर किंट और टखने हों, मृगनयनी नर्तकी का यह स्थानक (ठाठ) 'समपद' कहा गया है। पुष्पांञ्जलि-औपण में इसका विनियोग है।।१३६।।

जब चरण कुञ्चित हों, उनकी किनिष्ठिकाएँ परस्पर मिली हों, चरण नृपुरस्थान पर परस्पर सलग्न हों, तब वह 'स्वस्तिक' स्थानक कह-लाता है ॥१३७॥

पाष्याँङ्गुष्ठसमायोगात्स्थानक पार्विणविक्कम् ।
पार्थ्वस्थान्तर्गता पार्षिण कीतित पार्विणपार्व्यकम् ॥१३६॥
पाष्याँङ्गुष्ठरसमा यत्र तथा पार्विणकिनिष्ठकम् ॥१३६॥
पराष्ट्रचे परिजय स्थान स्थानककोविदै ॥१४०॥
प्राकृष्ट्रचतोऽङ्घ्रि वामश्चेत्तदस्यो जानुना सृति ।
परचान्त्रस्तरताख्यातं स्थानक गार्व्ड वृत्वै ॥१४१॥
चरण कुञ्चितस्त्वैकस्त्रयंगन्य प्रसारित ।
ऊरुपार्विणस्थितो भूगौ कथित खण्डसूचिकम् ॥१४२॥
भूलग्नपार्विणजङ्गोदिवयंनपादौ प्रसारितौ ।
यत्र तत्स्थानक प्राहुस्समसूचीति नामत ॥१४३॥
न्यञ्चह्रामकपोलक समपद वामे कटी निर्गता ।
किञ्चित्यंगितिस्थितोऽन्यचरणो वामाङ्गलम्बान्वित ॥

एक चरण जब सम ध्रवस्थामे भूमि पर हो दूसराकुछ कुब्लिक होकर ध्रागे तिरछा बढा हो तो वह वैष्णव'स्थानक कहलाता है।।१३८।। एक चरण वी एडी के साथ दूसरे चरण का धँगूठा मिलाहो तो 'पॉर्ष्णिविद्धक' धौर यदि एडी पाश्वंके ग्रन्तगंत हो तो पॉप्लिपार्श्वक'

स्थानक कहा गया है।।१३६।। जहाँ एक पर का अंगुठा और दूसरे पर की एडी और एक पैर की एडी और दूसरे पैर की कर्निष्ठिका एक स्थान में स्थित हो, वहाँ 'परावृत्त' स्थानक होता है।।१४०॥

यदि बार्यों चरण कुञ्चित हो भीर दाहिना पैर जानु के भ्राधार पर भ्रमिस्य होकर पीछे रखा हो वहाँ गारुड' स्थानक होता है ।।१४१।।

एक चरण कुञ्चित हो ब्रीर दूसरा तिरछा होकर प्रसारित हो ऊर ब्रीर एडी मूमि पर स्थित हो तो खण्डसूची' स्थानक होता है ॥१४२॥

एडी, अङ्का धौर ऊरु पृथ्वी से सलग्न हो, दोनो चरण तिरछे हो, तो समसुची स्थानक होता है। १४३॥

चरण समस्यिति में हो वार्यां कपोल कुछ भुका हो, कटि बाई' सोर

१ (क) तदनन्दी। २ (क) स्थिया। ३ (क) वाम।

यद्वकं कटिपादमस्तकतल नारीलसन्नतंते ।
विज्ञेयं लिलतं त्रिभद्भिक्तिमिति स्थानं च तत्कीविदैः ।।१४४॥
एकः पादः समो यत्र बहिस्तिर्य्यङ्मुखोऽपरः ।
स्थानकं तत् समुद्दिष्टमेकपाष्ट्यभिषं बुषैः ।।१४४॥
एकः समोऽङ्षियंत्रस्यादितरं जानुमस्तकम् ।
बाह्यपादवंकतादलेषमेकपादाभिष्यं बुषैः ।।१४६॥
नन्धावतं यदा सार्वं ताल चरणयोगेवेत् ।
स्थानक खतुरस्रंतत् कथयन्ति विचलणाः ।।१४७॥
पुरः पद्याच्य चरणो मूचिलक्षणलितौ ।
समस्विद्यितो नृत्तं "पादयोवंलन यदा ।
समस्विद्यितो नृत्तं "पादयोवंलन यदा ।
करोति नर्तको तच्य पशासनमिति स्मृतम् ।।१४६॥

निकली हो, दूसरा चरण वामाञ्जलम्बयुक्त होकर कुछ तिरछा स्थित हो, कटि, चरण क्रीर मस्तक यदि नारी-नर्तन में इस प्रकार वक्त हों, तो यह ललित स्थानक 'त्रिमञ्जी' कहलाता है।।१४४।।

जहाँ एक चरण सम हो और दूसरा वाहर की ओर नियंड मुख हो, तो बुद्धिमानों ने उसे 'एकपार्टिण' कहा है।।१४५॥

जहाँ एक चरण सम हो और दूसरे का घुटना पसली के बाह्य भाग से लगा हो, तो 'एकपाद' स्थानक है ॥१४६॥

यदि नन्धावर्त के दोनो चरणों में डेढ ताल (फैले हुए अँगूठे और मध्यमा का अन्तर एक 'ताल' होना है) का अन्तर हो, तब बुद्धिमान उसे 'चतुरस' स्थानक कहते हैं।।१४७॥

सूची के लक्षण से युक्त चरण यदि झागे पीछे हों, तब बुढिमानों ने 'विषयसूची' स्थानक कहा है ॥१४८॥

जब नर्तवी समसूची स्थिति में पैरो को घुमाती है, तब 'पद्मासन' स्थानक होता है।।१४६।।

४. (क) योष । ५ (क) नृत्ये ।

उपिक्टस्य बामोरो 'पुष्ठे स्याद्धांणणे यदा ।
जञ्चास्यान 'समेत्यस्य नागबन्धाभिष तदा ॥१५०॥
तदेवान्तरपद्मासनमाभाति' कृत यदि ।
पादयोविषम तच्च पद्मासनमुदीरितम् ॥१४१॥
उत्स्लुत्यापि प्रसाय्योद्द्यी यस्तयोवंग्य प्रन्तरे ।
पद्मासनं तदेवस्यावन्तरं कथित बुधे ॥१५२॥
दक्षिणो जानुगुरुफेन पाद स्पृष्टमहीतल ।
वामपादश्च यत्र स्यात् स्यान कूर्मासनं स्मृतम् ॥१४३॥
(इतिदेशिस्थाननक्षणम्)

पञ्चिविद्याति पाला --

सारिकार्धपुराटी च स्वस्तिका स्फुरिका तथा । निकुट्टकस्तलोत्कोप पृष्ठोत्कोपश्च वेष्टनम् ॥१४४॥ स्रर्थस्खलितिका खुत्ता पुराटी प्रावृत तथा । उद्वेष्टन तथोल्लोल समस्खलितिका तथा ॥१४५॥

बैठे हुए नर्तक के वाम ऊरु के पीछे जब दक्षिण ऊरु जङ्घास्थान तक माता है तब नागबन्ध' होता है ॥१५०॥

वही झन्तर पद्मासन यदि चरणो मे किया जाये तब विषम पद्मा-सन' कहलाता है।।१५१।

यदि कूद कर पैर फैनाने के पश्चात् उन दोनो के मध्य मे बन्घ किया जाये, तो अन्तरपद्मासन बुद्धिमानो ने कहा है ॥१५२॥

यदि दक्षिण चरण जानु और गुल्फ के द्वारा पृथ्वी का स्पर्श करता हो और वाम पाद भी (ऐसा ही) हो, तो 'कूर्मासन' होता है ॥११३॥

(देशी स्थान-लक्षण समाप्त हुमा)

सारिका, अर्षपुराटी, स्वस्तिका, स्फुरितका, निकृट्टक, तलोत्क्षेप, पृष्ठोत्क्षेप, वेष्टन, अर्थस्विसितका, खुत्ता पुराटी, प्रावृत, उद्वेष्टन,

१. (क) पृष्ठ स्याद्दक्षिणौ । २ (क) समेतत्स्थान् । ३ (क) वद्मासनमाहत'।

सताक्षेपो डमरुको विक्षेपः कर्तरी तथा ।
तद्दालो गारुडःपक्षो ललाटितलकस्तथा ॥१४६॥
फेल्लणोऽलगपालरुच पालो निस्सरङस्ततः ।
पञ्चविक्षतिपालाः स्युः कथिता लक्षणान्विताः ॥१४७॥
भूचराः क्षेचरारुचेति भेदस्तत समीरितः ।
पाला उप्परपालारुच नाम तेषामुदाहृतम् ॥१४६॥
केनाय्येकेन पादेन सरणं सारिका भवेत् ।
स्थितोद्वृत्तिकुट्टेन पादेनाभ्यकुट्टनम् ॥१४६॥
यदुद्वृत्तस्य पादयाभ्यकपुराटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्यकपुराटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्यकपुराटिका ॥
स्वस्तिककारघटना पादयाभ्यक्षिप्राटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्यक्षिप्राटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्याभ्यक्षिप्राटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्याभ्यक्षिप्राटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्याभ्यक्षिप्राटिका ॥
स्वस्तिकाकारघटना पादयाभ्याभ्यक्षिप्राटिका ॥
स्वर्तितकात्रिका पादयाभ्याभ्यक्षिप्राप्ति ॥
स्वर्तितकात्रिका पादयाभ्याभ्याभ्यक्षेप्ति ॥
स्वर्तित प्रसिद्धा —

समकुञ्चित' पादाग्रे स्थिते ज्ञेयो निकुट्टकः । पृष्ठतः पुरतोवापि कुञ्चिताङ्घिणा यदि ।।१६२।।

उल्लोल, समस्खिलितिका, लनाक्षेप, डमरुक, विक्षेप, कर्तरी, नट्टाल, गारुड पक्ष, ललाटतिलक, फेल्लण, अलगपाल और निस्सम्ब ये लक्षणयुक्त पच्चीस पाल कहे गये है।।१५४-१५७॥

भृचर ग्रीर खेचर इनके भेद है उनका नाम 'पाल' ग्रीर 'उप्पर<mark>पाल'</mark> है ॥१४८॥

किसी भी एक चरण से सरकना 'सारिका' है। स्थित और उद्वृत्त निकृट्ट चरण से, उद्वृत्त पाद का निकृट्टन श्रघंपुराटिका' है। दोनों चरणों से स्वस्तिक का ब्राकार बनाना 'स्वस्तिका' है।।१४६-१६०।।

सामने, पीछे अथवा पार्झ में अमुलियो के पृष्ठभाग का माधार लेकर चरणों के द्वारा गमन 'स्फुरितका' है ॥१६१॥

१. (क) समुदक्कित ।

जानुमात्र'समाक्षेपस्तलोत्स्वेपस्स कथ्यते । पृष्ठतोऽङ्घ्रे स्समुत्स्नेपात् पृष्ठोत्स्नेपस्स कथ्यते ॥१६३॥ स मरणीयुर इति प्रसिद्धः:'—

एकाङ्घिणा यदन्यस्य नेष्टनादेव नेष्टनम् ।
स्वलनात्तिय्येगेकाङ्घ्रे रधंस्वलितिका मनेत् ॥१६४॥
पादाग्रेणाहतिभूं मौ खुत्ता नाम प्रकीर्तिता ।
"मङ्घिम्यां विनिकुट्टे न मिथः प्रोक्ता पुराटिका ॥१६४॥
उद्वृत्तो यत्र पादः स्यात् सलीलं ने लितां विदुः ।
प्रावृतं नाम विजयं जीडास्थान मनोभुवः ॥१६६॥
पर्वारत्रापणमङ्घ्रं येदुद्धं ष्टनमुदीरितम् ।
उत्लालनकमेणाङ्ग्रियुग्ममुल्लोल इष्यते ॥१६७॥
पुरतः पृष्टतस्तियंक् पादयोः स्वलन समम् ।
समस्वालिता नाम पादः प्रोक्तो विचक्षणः ॥१६८॥

इसे 'पुटी' भी कहा जाता है। सम अवस्था में कुञ्चित चरणों का अग्रभाग स्थित होने पर 'निकट्टक' है।

श्रागे या पीछे कुञ्चित चरण के द्वारा यदि जानुमात्र का समाक्षेप हो, तो 'तलोत्क्षेप' कहलाता है। पीछे की श्रोर चरण के समुत्क्षेप से पृष्ठोत्क्षेप कहलाता है।।१६३॥

यह भरणीपुट नाम से प्रसिद्ध है। यदि एक चरण के द्वारा वेष्टन के द्वारा दूसरे चरण का अववेष्टन हो, तो एक चरण के तिर्यंक् स्खलन से 'अर्थस्खलतिका' होती है।।१६४॥

भूमि में चरणाग्र से श्राघात 'खुत्ता' है। दोनों चरणों के द्वारा परस्पर विनिक्ट्रन से 'पूराटिका' होती है ॥१६५॥

जहाँ एक चरण उद्वृत्त हो, वह कामदेव का लीलायुक्त लिलत

केलिस्थान 'प्रावृत्त' है।।१६६॥ चरण के पीछे ले जाया जाना उद्वेष्टन है। यदि दोनों चरणों में

कमशः उल्लालन हो, तो 'उल्लोल' होता है ।।१६७॥

१. (क) समासेपात्। २. (क) हरिपुट।

१. (क) उत्वृत्ताक्त्रिनिकुटून । ४. (क) वसिनं ।

एकस्य पृष्ठतः कृत्वा पुरतोऽर्ङ्गिप्रसायं च ।
निकुट्टने कृते तेन लताक्षेपः स कथ्यते ॥१६६॥
एकाङ्गिणा क्षितौ स्थित्वा आमयित्वेतर पदम् ।
स्थापने तस्य जानावितरेणोरुताडनात्'॥१७०॥
भाण्डीकभाषाकुशलै. पालो डमरुकः स्मृतः ।
पाष्णितालान्तर पाइवें पुरोदेशे स्थित पदे ॥१७१॥
पादान्तराङ्गुलीसङ्गमूरोविक्षेप ईरितः ।
विधाय चरणावेतौ कर्नरीव पुर. रैस्थितौ ॥१७२॥
पाद कर्नारसंग्रेयो नृत्यशास्त्रविज्ञारदै ।
नृत्तें च करणे कार्य्य तदूरोरन्यपादतः ॥१७३॥
प्रधाय्यं ताइतं तज्जैस्तत्तदृत्तसमुच्यते ।
भ्रामयित्वैकचरणे स्थापने तस्यलाघवात् ।
भामयित्वैकचरणे स्थापने तस्यलाघवात् ।
पादावानीय नर्तव्या पृष्ठतोऽङ्गुण्ठसङ्गमम् ॥१७५॥

ग्रागे ग्रीर पीछे की ग्रोर चरणो का साथ-साथ तिर्यक् स्खलन 'समस्खलितिका' है।।१६८॥

एक के पीछे अन्य चरण को ग्रागे फैलाकर निकट्टन करने पर 'लता-क्षेप' होता है ।।१६१।।

एक पेर से पृथ्वी पर खडे होकर, दूसरे चरण को बुमाने के पश्चात् उसे जानु पर स्थापित करने और ऊरु का ताडन करने से भाण्डीकभाषा-कुशल व्यक्तियों ने 'डमरुक' पाल माना है।

्डी से एक ताल के अन्तर पर पादर्व में आगे की ओर चरण के स्वित होने पर ऊरु के साथ अन्य चरण का स्पर्ध विक्षेप रुहा गया है। इत दोनो चरणों को आगे कंदी के समान स्थापित करने से नृत्यविद्यारदों को 'कर्तरि' नामक पाल जानना चाहिये।

नृत्त करण मे अन्य चरण से ऊरु का ताडन 'तट्टाल' कहा जाता है। स्फुरीयुक्त समसूची 'गारुड पक्ष' है।।१७१-१७४॥

 ⁽क) जड्घात: । २. (क) पार्श्व । ३ (क) पुरि ।

४. (क) नृत्येकचरणे । ५. (क) पुरीयुता। ६. (क) कर्तब्या।

'सलाटेऽभिमुखं वाते सलाटितसकः स्मृतः ।
गतिः कुरुलयाद्वेन चरणाभ्यां मनोहरा ॥१७६॥
फरुलणायाः इत्येष कथितो नृत्यकीविदैः ।
ऊरौ तदन्यपादेन सङ्गमोऽलगपालकः ।॥१७७॥

"पुरौ विधावच्चरणस्तदन्यः कुरुलान्वितः ।।१७०॥

"पिच्छलापमृतं यद्वज्ञतंक्या नतंने तथा ।
तिर्य्यंक् पादापसरण पादो निस्सरङाभिधः॥१७६॥

पादौ समनखौहलच्दौ विहलस्दौ च प्रयोगतः।

'बेच्चारौ समपादाख्या नानास्थानसमाश्रया ॥१००॥

(इतिपादपाललक्षणम्)

एक चरण को घुमाकर लाघव पूर्वक उसका स्थापन करने पर नतैकी के द्वारा चरणो को पीछे ले जाये जाने के पश्चात् सामने की झोर सलाट के अभिमृत अगुब्दसङ्गमपूर्वक 'ललाटतिलक' होता है।

चरणों के द्वारा कुरुलयार्द्धयुक्त मनोहर गति 'फेल्लणा पाल' कह-लाती है। एक चरण के द्वारा अन्य चरण के ऊरु का स्पर्श 'अलगपाल' है ॥१७७॥

पुरी की दो ग्रावृत्तियों से युक्त एक चरण तथा दूसरा चरण कुरुला-न्वित हो, तो नृत्यझों ने 'बिन्घवण पाल' कहा है।

नर्तन में नर्तकी के द्वारा पिच्छिल अपसृत जैसा तिर्य्यक् पादों से अपसरण हो, तो 'निस्सरड' कहलाता है ।।१७८-१७६।।

यदि प्रयोग के द्वारा समनस चरण क्लिष्ट और विक्लिष्ट हों, तो विभिन्न स्थानों के ग्राश्रित 'समपादा' चारी होती है ॥१६०॥

(यह पादपाल लक्षण हुआ।)

१. (क) सलाटेऽभिमुखायते । २. (क) वालकः । ३. (क) पुरिवादावश्वरणः । ४. (क) कुलया । ५. पिण्डिला पिस्तुत । ६. (क) वेक्सारि ।

ब्रयोप्लुतिकरणम्-

क्षप्यते दर्पसरणं बिन्दुः सा बोह्डी मता ।

ग्राञ्चतस्वेति चत्वारो यो भेदस्तदवान्तरे ॥१८१॥
चैष्णवस्थानके स्थित्वातिय्यंगार्वातताङ्ग्रिकम् ।
तदुक्तः वर्षसरणं करण नृत्तवेदिभिः ॥१८२॥
वाम कूर्यरानियायो भुवितद्हस्तोत्तलस्य शिरो ।
निक्षिप्ता हि तदीयकाः कटितटी जानूरुजङ्का क्षितौ ।
कृत्वान्य चरण तदूरुफलके तज्जानुमध्यस्थितौ ।
बाहुस्तज्जलशायिनामकरणं यत्कथ्यते कीविदैः ॥१८३॥
स्थित्वा समपदेनैव पुरः प्लुत्योपवेशनम् ।
भुरोवितितदो काण्ड विण्डुस्तत्करण मतम् ॥१८४॥
तदेव दिण्डुकरणमवसानस्थितं यदि ।
भग्रसम किञ्चिद्दववत्र तदेबोध्यालामं समृतम् ॥१८४॥

श्रव उत्स्तुति करण कहे जाते है। दर्गसरण, विन्दु, लोहडी श्रीर श्रव्यित ये चार हैं। श्रवान्तर में जो है, वे उनके भेद है।।१८१।।

वैष्णव स्थानक में स्थित होकर जिसमे पैर को तिर्य्यक् प्रावितत किया गया हो, वह करण नृत्यवेदियो ने 'दर्पसरण' कहा है ॥१८२॥

पृथ्वी में बाईं कुहनी रख कर यदि उस हाय की हवेली पर शिर हो, मतेक की कटि, जानु, ऊरु श्रोर जङ्का पृथ्वी पर स्थित हो, चरण यदि ऊरु पर हो, बाहु जानु के मध्य में हो, तो विद्वानों के द्वारा उसे 'जलक्षायी' करण कहा जाता है।।१८३॥

समपाद से स्थित होकर आगे उछलने के पश्चात् इस प्रकार **बैठना** 'दिण्डु' करण है, जिसमें भुजाओं का वलन आगे की ओर हो ॥१८४॥

१ (क) मानिदाय। २ (क) परावलित।

३. (क) ललगं। ४. (क) दलिग।

स्वयं नंतपृष्ठञ्च निर्तम्बालिन्बमस्तकम् ।

उत्तानस्थानकोपेतं अन्तरालकमुच्यते ॥१८६॥

'नाभिबाह्नोरसङ्गेन शिरःस्पृष्टमहीतलम् ।
'स्पृष्ट्वा पदाभ्यामुस्तानं कपालबूर्णनं भवेत् ॥१८६॥
समपादस्थितेरूष्वं यत्र त्रिकविवर्तनम् ।
उत्पत्य पतनं तिर्यंग् लोहडी सैव' कथ्यते ॥१८८॥
लोहडीपतने यत्र स्पृरितेनाभिपातनम्' ।
करणं तत्परिभृतं नृत्यविद्भिनिगद्यते ॥१८६॥
उत्पत्य समपादेन पराबृत्य समस्थिति ।
पश्चाद्वा वलिबाहुभ्यामञ्चित करणं विदुः ॥१६०॥
झञ्चितं पतां तिर्यंक् पराबृत्योपवेशनम् ।
करणं न्सतदवजैलंङ्कावहनभीरितम् ॥१६१॥

वही दिण्डु करण धन्त मे हो और मुह पृथक् रहकर कुछ उठा हो, सो 'कर्ष्यालग' कहलाता है।।१८५॥

यदि 'झलग' स्थिति में पृष्ठ नतमस्तक नितम्बपर्यन्त झालस्बित हो, स्थानक उत्तान हो तो 'भ्रन्तरालक' कहलाता है ॥१८६॥

नाभि धौर बाहुओं के असङ्ग से यदि सिर पृथ्वी का स्पर्ध करता हो, पैरों के द्वारा घरीर की उत्तान स्थिति हो, तो 'कपालचूर्णन' होता है।।१८७।।

समपाद स्थिति से ऊपर की बोर त्रिक का विवर्तन बौर उछलकर तिरछा होना 'लोहडी' कहलाता है ॥१८८॥

नृत्यज्ञों ने उस करण को 'परिभूत' कहा है, जहाँ लोहडीपतन में स्कृरितपूर्वक मिश्रपत होता है ।।१८६।।

समपाद के द्वारा उन्छल कर परावर्तनके पश्चात् वलनक्षील बाहुओं के द्वारा समस्चिति प्राप्त करना 'अञ्चित' करण है ॥१६०॥

१. (क) महीबाह् वोरु । २. स्पृष्टा । ३. (क) सा निगवते । ४. (क) स्फुरितो पातनम्

ग्रञ्चितस्थानके यत्स्यात् नितम्बालम्बिमस्तकम् ।

जिङ्कोलं पार्वणमस्ती चेद्वे ङ्कोल समुदीरितम् ॥१६२॥

एकपादाञ्चित, कर्तयञ्चित भैरवाञ्चित, दण्डप्रमाण, स्वेच्छाकरण, पद्मासन, विषमपद्मासन, समसूचि, विषमसूचि, खण्डसूचि, गरुडासन, कूमीधन गोमुखासन, मण्डूकारम, जानुभञ्जन, नागवन्य इति बहुविधस्थानकानि करणानामुगरि समेतानि चेत् स्थानकसहितानि करणनामानि भवन्ति । पञ्चक्रभाविका: —

छत्रभ्रमरिका चैव वक्रभ्रमरिका तथा । ग्रन्तर्भ्रमरिका चैव बाह्यभ्रमरिका' तथा ॥१६३॥ कपालभ्रमरी चैव पञ्च भ्रमरिका. स्मृता. ।

पूर्वरनुक्तानि वेश्यङ्गानि —

स्रथ पूर्वेरनुक्तानि देश्यङ्गानि वदाम्यहम् ॥१६४॥
मुखरसः सौष्ठव च ललिभावौ च तुकली ।
स्रनुमान प्रमाणञ्च भङ्का तेवा सुरेखता ॥१६५॥
स्रङ्गानङ्ग ततो ढाल धीलायि नवणिस्तया ।
"कित्तस्तरहरोल्लासौ वैवर्तनमतः परम ॥१६६॥

नृत्तज्ञो ने उस करण को 'लङ्कादहन' कहा है, जिसमे अञ्चित अवस्था में पतन और तिर्यंक् परावर्तन के पश्चात् उपवेशन होता है ॥१६१॥

अञ्चित स्थान मे यदि मस्तक नितम्बालम्बि हो, तो 'जिक्कोल', यदि पार्षिण और मस्तक हो, तो 'बेक्कोल' कहलाता है ॥१६२॥

एक पादाञ्चित, कर्तर्यञ्चित, भैरवाञ्चित, दण्डप्रमाण, स्वेच्छा-करण, प्रमासन, विषमप्रधासन, समस्चि, विषमसूचि, खण्डसूचि, गरुडा-सन, क्मीसन, गोमुखासन, मण्डुकासन, जानुभञ्जन, नागबच्छा, इत्यादि अनेविषि स्थानक करणो के ऊपर युक्त हो, तो करणों के नाम स्थानक सहित होते हैं।

. छत्रश्रमरिका, वकश्रभरिका, अन्तर्भ्रमरिका, बाह्यश्रमरिका भीर कपालश्रमरिका ये पाँच श्रमरिकाए होती हैं।।

ग्रव वे देशी के ग्रङ्ग कहूंगा, जो पूर्वाचाय्यों ने नही कहें है।।१६३-१६४।।

१ (व) बाहु। २. (क) चलविमादौ। ३ (क) सङ्कारे वासुरेखिता। ४. (क) ढिल्लामि। ५ (क) किरसु।

स्थापन च कमादेषां लक्षणं प्रतिपाद्यते ।
माल्याभरणवस्त्राद्यं न्दंतनेपध्यकल्पनात् ॥१६७॥
प्रमोदप्रभवा वक्रकान्तिषुं खरसामिष् ।
वामदक्षिणपाश्चात्यपुरोभागेष्वनामितम् ॥१६८॥
गात्र यदि स्थित सम्यक् सौष्ठवं तपुदाहृतम् ।
नहि सौष्ठवहीनाङ्ग शोभते । नाट्यनृतयो ॥१६६॥
नाट्य नृत्त च सर्व हि सौष्ठवे सम्प्रतिष्ठितम् ।
सङ्गोतसुखसञ्जातो लावण्यरसपोषक ॥२००॥
हर्षोत्कर्षस्तुभावजंत्रलिदित्यिभधीयते ।
यति मान समाकण्यं वाद्यतालसमुद्भवम् ।२०१॥
नर्तनौत्सुक्यविकारो भाव उच्यते ।
स्थानकेन मनोजेन स्थित्वा गम्भीरभावतः ॥२०२॥

मुखरस, सौष्ठव, लिल, भाव, तूकली, प्रमुमान, प्रमाण, ऋद्भा, रेवा, सुरेखता, भङ्ग, अनङ्ग, ढाल, धीलायि (ढिल्लायि), नवणि, कित्तु, तरहर, उल्लास, वैवर्तन भीर सवर्तन ये देशी प्रञ्ज है ॥१६४, १६७॥

माल्य, ग्राभरण, वस्त्र इत्यादिको के द्वारा नेपथ्य की कल्पना से उत्पन्न प्रमोद के कारण व्यक्त मुखकान्ति 'मुखरस' कहलाती है।

यदि गात्र बाये, दायें आगे पीछे न मुका हो, तो यह 'सौष्ठव' है। नाट्य और नृत मे सौष्ठवहीन अङ्ग शोभित नहीं होता है।।१९८५-१९६॥

नाट्य और नृत सब कुछ सौष्टव मे ही प्रतिष्टित है। सङ्गीतसुख सञ्जात तथा लावण्य एव रस का पोषक हवींत्कर्ष भावज्ञो के द्वारा 'ललि' कहा जाता है।

यति भीर मान को सुनकर वाद्यतालसमृद्भव वर्तन के भीत्सुक्य से उत्पन्न क्लितिकार 'भाव' कहलाता है ॥२००-२०२॥

१. (म) साम्मर्व ।

प्रञ्जस्थान्दोलनं तालसमान तुक्की मनेत् ।

'गत्यिभनययोगस्य नर्तकी चित्तदोलनम् ॥२०३॥
अनुमानं समुद्दिष्ट प्रमाणं साम्यमुच्यते ।
बामे वा दक्षिणं वाणि किञ्चिदुद्कृतभावतः ॥२०४॥
प्रञ्जस्य चालना नृत्ये अञ्जूति परिकीतिता ॥
शिरस्यपाञ्जयोदचैव किञ्चिदुल्लोलता यदि ॥२०४॥
द्वयते आवमामृत्यात् सोक्ता रेवा विवक्षणः ।
प्राञ्जिकाभमयो नत्ये विकटाञ्जविवजितः ॥२०६॥
यदि प्रवर्तते तज्जैः मुरेखत्वं तदीरितम् ।
ताण्डवादिषु नृत्ते षु प्रस्तुतेषु पृथक् पृथक् ॥२०७॥
उक्तोऽञ्जसञ्जस्व हिष्टमसञ्ज व्यवस्थयम् ।
लितताभिनयास्यवे लिलभावसमाश्रयम् ।

गम्भीर भाव से सुन्दर स्थानक के द्वारा स्थित होकर ताल के समान मङ्ग का म्रान्दोलन 'तुकली' कहलाता है।

गति एवं अभिनय के योग के लिए नर्तकी के चित्त का डोलना 'भनुमान' है, साम्य को 'प्रमाण' कहते है।

यदि नृत्त मे बाई या दाई स्रोर कुछ उद्दृत्त भाव से स्रङ्ग-चालना हो, तो 'ऋद्भा' कही गई है।

शिर ग्रीर ग्रपाङ्ग मे यदि कुछ उल्लोलता, भावमाधुर्य्य के कारण, हो तो वह विद्वानो के द्वारा 'रेवा' कही गई है।

यदि नृत्यज्ञों के द्वारा विकटाञ्च-रहित आङ्गिक प्रिमनय नृत्य में किया जाता है, तो वही 'सुरेखत्व' है।

ताण्डव आदि नृत्त पृथक् पृथक् प्रस्तुत होने पर उद्दिष्ट हो, तो 'भ्राङ्ग' है, श्रन्याश्रित 'भ्रनङ्ग' है ।

सभी ललित अभिनय ललि और भाव के आश्रित होते हैं।।२०३-२०६।।

१ (क) यरवाभिनय। २. (क) वासने। ३. (क) ठेवा। ४. (क) नृत्वेषु ।

'नर्तकी चितसार स्यात् तस्माद्वालं तदुव्यते ।
स्याने वा बन्दगमने नर्तक्या यदि लक्यते ।।२०६।।
सिक्रित गात्रवैचित्व चिरूलायीति 'निगयते ।
यद्व सर्वाञ्जनमनमनायासेन वर्तते ।।२१०।।
विषमेषु प्रयोगेषु नमनिस्समुदाहृता ।
भुजयो स्तनगुगने वा तालपातस्सम यदि ।।२११॥
'स्पन्दन सुकुमार स्यादेतत् किन् 'निगयते ।
नर्तने यदि नर्तक्या स्तनयो क्षिप्रकम्पनम् ॥२१२॥
सक्यते बाहुपर्यन्तमेतत्तरहर विदु ।
यदि वाद्योन' सहस्र नर्तक्य सुहुमृंहुः ।।२१३॥
यद्युल्लसति भावेन तमुल्लास प्रवक्षते ।
प्राञ्जकाभिनयो वाद्यपादानामृचित सम ॥२१४॥

नर्तकी के चित्त का सार इसीलिये ढाल कहलाता है। स्थान या मद गमन नर्तकी में दिखाई देने वाला ललित गात्र-वैथिल्य धिल्लायी' (ढिल्लायि) कहलाता है।

यदि विषम प्रयोगो मे अनायास ही समस्त अङ्गो का नमन दिलाई है, तो 'नमनि' कहलाता है।

तालपातों के साथ ही भुजाओं भौर स्तनयुगल मे यदि सुकुमार स्पन्दन दिखाई दे तो कित्तु' कहलाता है।

नर्तन मे यदि स्तनो का वेगपूर्वक कम्पन बाहुपर्य्यंन्त दिलाई दे तो 'तरहर' कहलाता है।

यदि भावपूर्वक नर्तकी का भाक्न वाद्य के सदृश उल्लखित हो तो, यह 'उल्लाख' कहलाता है ॥२१४॥

१ नृत्वकी नृत्वचार स्यात् । २ (क) चिल्लाइति । १ (क) स्वन्वतं । ४ (क) किन्तु । ५ (स) नाट्वेन ।

यदि प्रवर्तते तज्ज्ञैस्तद्वैवर्तनमीरिनम्'। करणाभिनयस्यान्ते विषमस्यापरस्यवा ॥२१४॥ रूपसौष्ठवरेखाभि स्थिति स्थापनमुच्यते । क्रमेण पेरणादीना पद्धति कथ्यते उधुना ॥२१६॥

पेरणपञ्चाङ्गानि-

'नृत्त ततश्च केवारो घर्षरो वागडस्तथा"। गीतञ्चेति बहुधा प्राहु पेरणस्याङ्गपञ्चकम् ॥२१७॥ ^४नस तद्द्विविध ज्ञेय ताण्डव लास्यमित्यपि । तत्राप्युपलयाङ्ग स्यात् प्रायस्ताललयाश्रयम् ॥२१८॥ वर्णयित्वा गुणान् पूर्णान् पुरातनमहीभुजाम् । तत्तदगुणसमारोप कैवार स्यात्सभापतेः ॥२१६॥ ठवणे वशत क्षुद्रघण्टिकाचयचालनात् । तालपाट्या तथा प्रोक्ता घर्घरेति विचक्षणै ॥२२०॥

जहाँ बाद्य और चरणों के समान उचित आद्भिक अभिनय होता है, उसे विशेषज्ञो ने वैवर्तन' वहा है। विषम अथवा अन्य प्रकार के करणा-भिनय के ब्रन्त में रूप सौष्ठवयुवन रेखाग्रो के ब्रनुसार स्थिति 'स्थापन' है।

म्रव त्रमश पेरण' इ थादि की पद्धति कही जाती है।।२१४-२१६।। बुद्धिमानो ने पेरण के पाँच ग्राङ्ग नृत्त, कैवार, धर्घर, वागड श्रीर गीत बनाये है ॥२१७॥

'नत्त' दो प्रकार का है ताण्डव ग्रीर लास्य । वहाँ उपलयाङ्क प्राय ताल श्रीर लय के ब्राश्रित होता है।।२१८॥

प्राचीन राजाओं के पूरे गुणों का वर्णन करके सभापति पर उन गुणो का भ्रारोप 'कैवार' कहलाना है ॥२१६॥

१ (क) विवर्तन । २ (क) वृत्त्यन्तरहच । ३ वागडं ।

४ (क) प्रेरणा। १ (क) नृत्य।

यन्मर्कटिपिशाचादिहास्यवेशसमाश्रयम् । 'विकटाभिनयोपेत बागड तत्प्रचक्षते ॥२२१॥ शुद्धेस्सङ्कीर्णरागैर्बा रागस्यालप्तिसयुतम् । गीयते गीतयुक्तंतत् सम्यचित्तानुरञ्जनम् ॥२२२॥

गायत गातशुक्त तत् सम्याचलागुरञ्जनम् वेरचवाद्ययद्वति —

> रङ्गस्थितैनैरैर्वाद्यसमुदायत्रये कमात् । उद्ग्राहादित्रय यत्र गान श्रेष्ठ तदीरितम् ॥२२३॥ समहस्त भवेदादौ ततो रिघवणिर्भवेत् । तत पर पदं ज्ञेय वेसार तदनन्तरम् ॥२२४॥ बाद्यपद्धतिरित्युक्ता पेरणस्य विचक्षणे ।

वेक्सणवाद्यपद्धति -

कें**क्कार वादयेत् पूर्वं** घल्लण^{*} च तत परम् ॥२२५॥ ततो वाद्यञ्च कवितमोत्वर^{*} च तत कमात्। ^{*}मन्तरोपलयञ्चेति पेक्खणे^{*} वाद्यपद्धति ॥२२६॥

ठवण में घुषरुकों के गुच्छों को ताल और पाट के अनुसार हिलाने से 'घर्षर' होता है।।२२०॥

वानर, पिशाच, इत्यादि हास्यवेशयुक्त तथा विकट श्रभिनय से युक्त 'वागड' होता है ॥२२१॥

रागालित्तपुत जो कुछ भी शुद्ध या संकीर्ण रागो का भाश्रय लेकर गाया जाता है सभ्यो के चित्त का भनुरञ्जक वह कार्य्य गीत' कहलाता है।।२२२।।

रङ्गस्थित व्यक्तियों के द्वारा लीन वाद्य समुदायो पर कमशः उद्-स्नाह भादि तीन वस्तुओं का गान श्रेष्ठ है।।२२३।।

भारम्भ मे समस्त, तत्पश्चात् रिघवणि, तदनन्तर वेसार यह पेरण की वाद्य-पद्धति विद्वानो ने कही है।

फ्रेड्सूर, वल्लण, वाब, कवित, ब्रन्तरा तथा उपलय (धपड्य) का कम से वादन पेक्खणवाचपद्धति है समहस्त, प्रहरण, झारभट,

१ (क) एकदा। २ (क) डस्लम । ३ (क) पन्तराच। ४ (क) स्रवस्तपुलय । ३ (क) पत्रवर्ण

समहस्तप्रहरण ततस्त्वारभटाह्नया । गुण्डलीबाद्यपद्धति —

नाबाद्यपद्धात —

मुखवाद्य ततो ज्ञेय तकारं तदनन्तरम् ॥२२७॥ ऋङ्कार च तत. पश्चाद्दुवक्करसमाह्नयम् ॥ तवो रिषवणिर्वाच तत प्रहरणाभिषम् ॥२२६॥ तुडकञ्चेति विज्ञेया गुण्डलीवाद्य पद्धति ॥

वेरणावित्रये गीतपद्धति -

परणादित्रये गीतपद्धति कथ्यतेऽघुना ।।२२६॥
भवाचे न सह गीतायामेलाया तदनन्तरम् ।
तेनैव खलु तालेन वाद्यते गुष्कमन्तरा ।।२३०॥
प्रतिरूपकपर्यंन्त यत्र सा गुद्धपद्धति ।
प्रयम पाटकरण' बन्धास्य चित्रसत्रकम् ।।२३१॥
कैवाडो वर्णसरकस्त्वन्ये वा पाटमिश्रिता ।
प्रवन्धा यत्र गीयन्ते वाद्यन्ते च यथाक्षरम् ।।२३२॥
यथाक्षरञ्च नृत्यन्ते चित्रा सा गुद्धपद्धतिः ।
ध्रुवो मण्डत्व में निस्सारुष्ण्डनिस्सारुकस्त्वार्थं ।।२३३॥

मुखवाद्य तकार ऋड्कार दुवनकर रिघवणि प्रहरण स्रोर तुडुक का कमश प्रयोग गुण्डली वाद्य पद्धति है।

मन पेरण पेक्लण और गुण्डली मेगीत-पद्धति कही जाती है। २२४-२२६॥

जहा वाद्यमहित एला का गान होने पर उसी ताल का आश्रय लेकर भन्तरा का प्रत्येक रूपक तक शुष्क वादन होता है वह 'शुद्ध पद्धति' है।

जहाँ चित्रबन्ध नामक पाटकरण कैवाड वर्णसरक तथा सन्य पाटमिश्रित प्रबन्धो का कमश गायन व वादन होता है, स्रोर स्थाक्षर नृत्त भी किया जाता है वह 'चित्राशुद्ध पद्धति' है।

ह्रुव, मण्ड, निस्सार, चण्डनिस्सार, झड्ड ताली, रासक, एकताली यह विद्वानों ने सालग' पढ़ित बताई है ॥२३०-२३५॥

१ (क) कुण्डोरी । २ (क) वाक्येन । ३ (क) पादकरण । ४. (क) निस्सारी । ४ (क) निस्सारिक ।

धड्डताली रासकरच तत स्यादेकतालिका ।
दिवेषा पद्धतिर्जेया सालगाच्या विचक्षणै ॥२३४॥
'पेरण्याधारच गुण्डल्या शुद्धे छायालगे तथा ।
दुवकरपहरणे' यतिरुवान्तरवादनम्' ॥२३४॥
पद्धतित्रतये शुद्धिवत्रसालग सज्जके ।
तत्तत्पद्धतिभेदेन वाद्य कुट्याध्योचितम् ॥२३६॥
यतो हस्तस्ततो दृष्टियंतो दृष्टिस्ततो मन ।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रस ॥२३७॥
यत्र व्यद्मानुभो' हस्तौ तत्र दृष्टिविलोक्ति ।
व्यत्नीकाभिनम' कुट्याधिगतैर्यंदर्शनै ॥२३६॥
धङ्गेनालम्बयेद गीत हस्तेनाथं प्रदर्शयेत् ॥
चलुभ्यां भावयेद् भाव पादाभ्या तालनिर्णय ॥२३६॥
तालस्व कास्यतालस्व षण्टिका जयपूर्विका ।
पटहस्व हुड्कका च मृदङ्ग करटा तथा ॥२४०॥

शुद्ध में पेरणी इत्यादि तथा गुण्डली छायालग मे दुवक्कर, प्रहरण, यति ग्रीर मन्तर का वादन होता है ॥२३५॥

शुद्ध चित्र एव सालग इन पद्धतियों मैं पद्धति के अनुसार यथोचित बादन होना चाहिये।।२३६॥

जिवर हस्त उघर दृष्टि जिघर दृष्टि उघर मन, जिवर मन उघर भाव और जिघर भाव उघर रस होता है।।२३७।।

जहाँ दोनो हाथ झन्यथा व्यस्त हो वहाँ झर्थहीन दर्शनो से विभिन्न दिशाओं मे दृष्टिपात करके भूठमूठ का झभिनय उचित है।।२३८॥

श्रञ्ज से गीत का धालम्बन हाय से धर्ष का प्रदर्शन, नेत्री से भाव का भावन धौर चरणो से ताल का निर्णय किया जाना चाहिये ॥२३१॥

१ (क) प्रेरणाख्ये। २ (क) पहरणा। ३ (क) यदि।

४ (क) नृत्य । ५ (क) मुलौ । ६ (क) ब्रीडिते । ७ (क) करडा।

इत्यादिवाद्यसन्दोहो वाद्यते वण्डरासके । पात्रम् —

रूपयौवनवर्णस्तु समाना दीर्घलोचना २४१॥

कृषामध्या नितम्बाद्या पीनवृत्तपयोघरा

वरुषाम्थ्या रिञ्जतकरा नृपुरालह्कृताइद्यय ।

माल्यानुलेपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥२४३॥

सावधानाः प्रगल्भाइच स्त्रिय पात्र प्रकीतिता ।

पात्रद्वय समारभ्य द्वे द्वे पात्रे विवर्धयेत् ॥२४४॥

भवेयुरुष्टद्वन्द्वानि यावत्तावद्यधार्षच ।

ग्रम्योऽन्याभिमुख वापि परावृत्तमुख तथा ॥२४४॥

एधोदण्डानुविद्वञ्च वाद्यतालसमन्वितम् ।

स्थानकेहैस्तचलने वलनैवर्तनैर्यतम ॥२४६॥

ताल, वास्यताल, जयबण्टिका पटह तृड्क्वा मृदङ्ग करटा इति वाद्यसमूह दण्डरासक' मे बजाया जाता है।

रूप, यौवन पत्र वर्ण में समान दीर्घलोचन, पतली बमर वाली, पुष्टिनितम्ब पुष्ट एवं गोन पयोषरों से शामिन, रङ्गविरङ्गी भीनी चौलियों से बुक्त हाथों मंदों दो इण्डों से मुभूगिन, नृषुरों से सुसज्जित चरणों वाली मान्यानुनेप्युक्त समस्त ग्राभूषणों से ग्रनष्टन नारियां 'पात्र' कहलाती है।

दो पात्रो से ध्रारम्भ वरके दो दो पात्र तब तक बढाना चाहिये, जब तक घाठ जोडें न हो जायें, वे जोडे अन्योन्याभिमुख अथवा परावृत्तमुख हो ॥२४०-२४॥।

विशेषज्ञो ने 'दण्डरासक' को काष्ठदण्डयुक्त, वाद्यतालसमन्वित,

१ (क) दण्डरासक । २ (क) वृत्तैस्तु। ६ (क) रचित ।

नानाबन्धैस्समायुक्तं लयत्रयसमन्वितम् । वण्डरासमिति प्रोक्तं नृत्तभेदविचक्षणे ॥२४७॥ इति श्रीमदभयचन्द्रमुनीन्द्रचरणकमलमष्करायितमस्तक

हात श्रामदमयचन्द्रभुनान्द्रचरणकमलम्बुकरायितमस्तक महादेवार्योद्याच्याच्याद्ववस्यापुत्रसम्बन्धन्वस्याप् भरतभाण्डीकमायाप्रवीणश्रुतिज्ञान्वकर्वात सङ्गीताकरनामयेयपारवेदेवविरचिते सङ्गीतसमयसारे सन्तममधिकरणम् ।

स्थानको, हस्तचलनों, वलनो और वर्तनो से युक्त, विभिन्न बन्धो मे सम-न्वित और तीनो लयो से युक्त कहा है।

श्रीमद् ग्रभयचन्द मुनीन्द्र के चरण कमलो से मधुकरवत् ग्राचरण करने वाले मस्तक से युक्त महादेव ग्रायं के शिष्य स्वरिवद्या से युक्त, सम्यक्तव्युडामणि, भरत-भाष्टीक-भाषाप्रवीण, श्रृतिज्ञानचकवर्ती संगी-ताकर नाम वाले पान्वदेव द्वारा विरिचत संगीतसमयसार का सप्तम ग्रिक-करण पूर्ण द्वारा।

अष्टमाधिकरणम्

उद्देश :--

'गीतं वाद्यं च नृत्त च यतस्ताले विराजते । तस्मात्तालस्वरूपञ्च वक्ष्ये लक्ष्यानुसारतः ॥१॥ 'तालशब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेन धातुना । स तालः कालमानं यत् क्रियया परिकल्पितम् ॥२॥

विविधा मानगति —

मनोगा हस्तगा चास्य द्विविधा मानकत्पना । द्विविधस्यास्य भेदस्य लक्षण तावदुच्यते ॥३॥ उपर्य्युपरिविन्यस्तपद्मपत्रशते सकृत् । यः कालस्सूचिसम्भेदात्रं स क्षणं स्याद्दल प्रति ॥४॥

चूकि गीत, वाद्य और नृत्त ताल में विराजित है, ग्रत लक्ष्य के अनु-सारताल का लक्षण कहूँगा।।१।।

प्रतिष्ठार्थक (तल्) धातु से ताल शब्द की निष्पत्ति हुई है, वह 'ताल' किया के द्वारा परिकल्पिन कालमान है।।२॥

मान की कल्पना द्विविध है, 'मनोगा' ग्रीर हस्तगा, इस द्विविध भेद का लक्षण कहा जाता है ॥३॥

नीचे ऊपर रखे हुए सौ कमल पत्रों में एक बार सुई छेदने का काल प्रत्येक दल मे एक 'क्षण' है ॥४॥

रै. (क) सङ्गीतवाद्य नृत्य च तालहीनं न राजते । २. (ख) लय । १ क्लोक एव जगदेकस्य । ४. (ख) तत्क्षण सादज प्रति । १. कालोस्त्रियिक्चतुर्मागः । लव क्षणैरष्टिभ स्यात् काष्टा चाष्टलवात्मिका ।
प्रष्टौ काष्टा निमेष स्यात् कालत्वष्टिनिमेषित ॥१॥
'कालैस्त्रुटिरचतुभिः स्यात् ाम्यामषंद्रुत भवेत् ।
प्रधंद्वताभ्या विन्दु स्याद् विन्दुभ्या तु लघुभवेत् ॥६॥
लघुभ्या तु गुरु प्रोक्तो लैस्त्रिभः प्लुत एव च ।
इति मानगति प्रोक्ता मनोगा तालवेदिभि ॥७॥
' भ्रावापादिध्रं वादिर्वा हस्तगा परिकीर्तिता ।
तत्रावापोऽथ निष्कामो विक्षेपोऽथ प्रवेशनम् ॥६॥
शम्या तालस्य विज्ञेय सन्निपातस्य प्रपत्तम् ॥६॥
प्रभावापस्त्रक जेयमुत्तानाइगुलिकुञ्चनम् ॥१॥
प्रभस्तलेन हस्तेन निष्कामास्य प्रसारणम् ।
तस्य दक्षिणत क्षेपो विक्षेप परिभाष्यते ॥१०॥

माठ क्षणों का लवं माठ लवो की एक काष्टां, माठ काष्टाओं का एक निमंत्रं, माठ निमंधों का एक 'कालं, चार कालों से एक 'त्रुटि', दो त्रुटियों से एक अभंद्रत, दो अभंद्रतों से एक 'विन्दु', दो बिन्दुभों से एक लघुं दो लघुओं से एक 'गुरु भौर तीन लघुमों से एक 'प्लुत' होता है। तालकों ने यह मनोगा मानगित बताई है।।४-७॥

'म्रावाप' म्रादिया ध्रुव' इत्यादि हस्तगा' मानगति कहलाती है। मावाप, निष्काम, विक्षप, प्रवेशन, शम्या ताल भीर सन्निपात ये सात कियाएँ है।

जित (उतान) हाथ की अँगुलियो का सिकोडना 'झावाप', पट (अधस्तल) हाथ का प्रसारण निष्काम', हाथ का दाहिनी भोर फॅकना 'विक्षेप' झाबस्तल (पट) हाथ का सिकोडना प्रवेश', दक्षिण हस्त से बाम इस्त पर आबात 'अम्या', वाम हस्त से दक्षिण हस्त पर झाघात 'ताल' और दोनो हाथो का परस्पर झाघात 'सन्निपात' है।

१ (क) ध्रुवादीर्घा ।

२. (क) निक्रमाच्या प्रसारणा । ३ (क) परिभाव्यते ।

भूयक्वाकूञ्चनं ज्ञेयं प्रवेशाख्यमधस्तलम् । 'शम्या दक्षिणपातस्तु तालो वामेन कीर्तितः ॥११॥ उभयोईस्तयोः पातः सन्निपात इतीरितः ।

मात्राः--

ध्रवका सर्पिणी कृष्या बन्धिनी च विसर्जिता ॥१२॥ विक्षिप्ता च पताका च पतिता चाष्टमी मता। *घनाभिघातो ध्रुवका सर्पिण्यग्रे प्रसारिता ।।१३॥ कृष्याकुञ्चनमात्रा च बन्धाकारा च बन्धिनी। विसर्जितोपरिष्टेन विक्षिप्तोत्तानवामत. ॥१४॥ ऊध्वाङ्गुलिः पताका स्यात् पतिता पातिता पुन. । लघ्वक्षराणां पञ्चाना मानमुच्चारणे हि तत् ॥१५॥ तत्त्रमाणा परिज्ञेया मात्रा तालगता बुधै । द्विमात्रा च कला चित्रे चतुर्मात्रा तु वार्तिके ।।१६।।

ग्रष्टमात्रा च विद्वद्भि दक्षिणे समुदाहता ।

帝四 ·—

तालान्तरालवर्तीय कालोऽसौ लयनाल्लयः ॥१७॥

श्रवका, सर्पिणी, कृप्या, बन्धिनी, विसर्जिता, विक्षिप्ता, पताका भीर पतिता, ये ब्राठ मात्रालें है।

'ध्रुवका' घनाभिघातयुक्त, 'सर्पिणी' ग्रागे की ग्रोर प्रसारित, 'कृष्या' श्राकुञ्चनमात्र, 'बन्धिनी' बन्धाकार, विसंजित ऊपर की श्रोर, विक्षिप्ता' उत्तान बाये हाथ से, 'पताका' कथ्वांड गुलि और 'पतिता' पातित है।

पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण का काल तालगत मात्रा है। चित्र मार्ग मे दो मात्राओं की, वार्तिक मार्ग मे चार मात्राओं की और दक्षिण मार्ग मे आठ मात्राम्रो की एक 'कला' विद्वानो ने कही है।

तालान्तरवर्ती काल लयन के कारण 'लय' कहलाता है ॥ ५-१७॥

 ⁽क) सव्यादक्षिणणादस्तु । २. (क) घनाभिपतो ।

त्रिविधस्स च विज्ञेयः दुतो मध्यो विलम्बितः ।

यतय:--

लयमानाद्यतिः प्रोक्तश्चित्रादिषु यथाकमम् ।।१८।। 'समा स्रोतोवहास्था च गोपुच्छा सेति सा त्रिधा ।

मार्गाः—

श्रथ देशीगता मार्गा वक्यन्ते लक्ष्यसम्भवाः ॥१६॥ तत्र चित्रतरुवैकस्तथा चित्रतमोऽपरः । श्रतिचित्रतमश्चेति तत्स्वरूपिनरूप्यते ॥२०॥ मात्रा चित्रतरे ज्ञेया त्वर्धं चित्रतमे मता । श्रति चित्रतमेमार्गे कलानुदुतसंज्ञका ॥२१॥

चतुर्विधस्तालः—
ग्रथ चित्रादि मार्गेषु स तालः स्थाच्चतुर्विषः ।
चतुरस्रस्तथात्र्यस्तो मिश्रः खण्डरच नामत ।।२२।।

वह लय त्रिविध है, द्रुत मध्य भौर विलम्बित । चित्र इत्यादि मार्गों मे लय के प्रमाण के अनुसार कमश 'यति' होता है ॥१८॥

'यति' के तीन प्रकार समा, स्रोतोवहा ग्रौर गोपुच्छा है। ग्रब लक्ष्य के ग्रनुसार देशीसम्बद्ध मार्ग कहते है।।१६।।

उनमे एक 'चित्रतर', दूसरा 'चित्रतम' श्रौर तीसरा 'श्रतिचित्रतम है, उनका स्वरूप निरूपित किया जाता है ॥२०॥

चित्रतर में एक मात्रा, चित्रतम' में आधी मात्रा और 'अतिचित्रतम' में अनुद्रत नामक कला होती है ॥२१॥

'चित्र' इत्यादि मार्गों में 'ताल' चतुर्विध होता है, 'चतुरस्न', स्यस्न', 'मिश्र' ग्रीर 'खण्ड' ॥२२॥

उनमें चञ्चत्पुट 'चतुरस्न', उसके तीन प्रकार 'एककल्, 'ढ्रिकल' ग्रीर 'चतुष्कल' है ॥२३॥

१. (क) सव। २. (क) लक्षा३. (ख) चित्रतरा। ४. (क) मतिचित्रतमो।

ग्रथ तालोदवेश *

तत्र चञ्चलुट ' प्रोक्तस्वतुरस्रो मनीषिभि ।
स त्रिधैककल पूर्व द्विकलस्य चतुष्कल ।।२३।।
तथा चाचपुटस्ट्यस्तो ' मिश्रो युग्मौजिमश्रणात् ।
विश्वाद्धरत्यविशिष्टैस्तालाङ्क् याँ द्वताविभि ।।२४।।
क्रियते बहुभङ्कीभि स ताल खण्डसज्ञक ।
'खण्डोऽपि चतुरस्रास्य व्यस्तो मिश्रस्तथैव च ।।२४।।
सङ्कीणंस्चेति निर्दिष्ट चतुर्था तालवेदिभि ।

चञ्चतपुटश्चाचपुट षट्पितापुत्रकस्तथा ॥२६॥
सम्पक्षेच्टाक उद्घट्ट ग्रादितालश्च दर्पण ।
चच्चरी सिहलीलश्च कन्दर्प सिहिविकम ॥२७॥
श्रीरङ्गो रतिलीलश्च मिभनो वीरविकम ।
हसलीलो वर्णभिन्नो राजचूडामणिस्तत ॥२८॥
रङ्गोद्योतो राजताल सिहिविकीडितस्तत ।
वनमाली वर्णतालस्ततो रङ्गप्रदीपक ॥२६॥

चावपुट "यस' है, युग्म' श्रोर श्रोज' के मिश्रण से 'मिश्र' तथा विशिष्ट एव श्रविशिष्ट दूत' इत्यादि ताला ड्रो के द्वारा ढड्ग ढड्ग से बनाया हुमा ताल खण्ड' कहलाता है। खण्ड के भी चार प्रकार चतुरस्न, स्थस्न, मिश्र श्रोर सङ्क्षीर्ण तालवेतास्रो द्वारा निदिष्ट है।

मब तालनिरूपण है -

चञ्चत्पुट, चाचपुट, पट्पितापुत्रक, सम्पचवेष्टाक, उद्घट्ट झादि ताल, दर्पण, चच्घरी, सिहलील, कन्दर्प, सिहविकम ॥२४-२७॥

श्रीरङ्ग, रतिलील, त्रिभिन्न, वीरविकम, हमलील, वर्णभिन्न, राज चूडामणि, रङ्गोद्योत, राजताल, सिहविक्रीडित, वनमाली, वर्णताल, रङ्ग-प्रदीपक ।।२६।।

१ (क) बच्छत्पुट । २ चञ्चतपुट । ३. (क) बण्डोऽपि ।

४ (ख) रितशीलश्च। ५ (म) वर्णराज।

तालोद्देशबोधका एकोत्तरशततालात्मका क्लोका पार्वदेवेन अगदेकात् गृष्ठीता:।

हंसनादस्सिंहनादो मिल्लकामोदसंक्षकः ।
भवेच्छरभलीलश्च 'रङ्गाभरण एव च ॥३०॥
ततस्तुरङ्गलीलः स्थात्स्यात्ततः सिंहनन्दनः ।
जयश्रीविजयानन्दः प्रतितालो द्वितीयकः ॥३१॥
मकरन्दः कीर्तितालो विजयो जयमङ्गलः ।
राजविद्याधरो मट्टो जयतालः कुटुक्ककः ॥३२॥
ततो निस्साश्कः कीका त्रिभङ्गिः कोकिलप्रियः ।
श्रीकीर्तिबिन्दुमाली च समतालश्च नन्दनः ॥३३॥
उदीक्षणो मट्टिका च ढेङ्किका वर्णमण्टयकः ।
भ प्रभिनन्दो नरकीडः मल्लतालश्च दीपकः ॥३४॥
अनङ्गतालो विषमो नान्दी कुमुदकम्दुको ।
'एकतालश्च ककालश्चतुस्तालश्च डोम्बुली ॥३५॥

हसनाद, सिहनाद, मल्लिकामोद, शरभलील, रङ्गाभरण।।३०॥ तुरङ्गलील, सिहनन्दन, जयश्री, विजयानन्द, प्रतिताल, द्वितीयक, ॥३२॥

मकरन्द, कीर्तिताल, विजय, जयमञ्जल, राजविद्याधर, मट्ट, जय-ताल, कुडुक्क, ॥३२॥

निस्सार, त्रीडा, त्रिभिङ्क्, कोकिलप्रिय, श्रीकीर्ति, विन्दुमाली, सम-ताल, नन्दन, ॥३३॥

उदीक्षण, मट्टिका, ढेव्ह्निका, वर्णमण्ठ्यक, ग्रभिनन्द, नरकीड, मस्ल-ताल, दीपक ॥३४॥

श्रनञ्जताल, विषम, नान्दी, कुमुद, कुन्दुक, एकताल, कङ्काल, चतु-स्ताल,डोम्बली ॥३४॥

१. (क) तरभलीलक्च २. (ख) केरलप्रिय. । ३. (क) विस्वुझाली ।

४. (क) धवानन्दोलरक्षीडा । ५. (क) कुन्दबुकुन्दको, (स) पुक्कुन्दकन्दुको । ६. (क) एकतालीच ।

वध्ये---

स्रभङ्गी रायबङ्गालस्तर्यवै लघुशेखरः ।
प्रतापशेखरःचान्यो जगभन्म्पश्चतुर्मु सः ॥३६॥
भन्मपा च प्रतिमट्टस्च तथा तालस्तृतीयकः ।
तस्मादुपरि विजयो वसन्तो लित्तो रितः ॥३७॥
करणाख्ययतिश्चेव षट्तालो वद्धं नस्तया ।
ततो वर्णयतिश्चेव राजनारायणस्तया ॥३८॥
मदनश्चेव विजयः पार्वतीलोचनस्तत ।
ततो गारिगतालः स्यात्ततः श्रीनन्दनो जयः ॥३६॥
लीलाविलोकितश्चान्यो लितिप्रय एव च ।
जनकश्चेव विजयो लक्ष्मीशो रागवर्द्धनः ॥४०॥
उत्सवश्चेति तालानामेकेनाभ्यधिक शतम् ।
चतरलादितालाना मध्ये व्यवहारयोग्यनालवक्षण प्रस्तारस्रित

प्रस्तारे तालसम्बन्धि ह्यक्षर स्याच्चतुर्विधम् ॥४१॥

श्रभङ्की, रायबङ्गाल, लघुशेखर, प्रतापशेखर, जगभम्प, चतुम्मृंख ॥३६॥

भम्पा, प्रतिमट्ट, तृतीयक, वसन्त, ललित, रति ॥३७॥

करणयति, षट्ताल, वर्द्धन, वर्णयति, राजनारायण, मदन, पार्वती-लोचन, गारुगि. श्रीनन्दन, जय, लीलाविलोकित, ललितप्रिय, जनक, लक्ष्मीश, रागवर्द्धन ॥४०॥

और उत्सव ये एक सौ एक ताल है।

चतुरम्र इत्यादि तालों मे व्यवहार के योग्य तालो के लक्षण प्रस्तारसहित कहूंगा।

प्रस्तार मे ताल सम्बन्धी श्रक्षर चतुर्विध है ॥४१॥

 ⁽क) रायचिक्कोल, (ख) रायवेक्काल.। २ (क) वसितो। ३- (ख) बहुालो।
 (ख) गारिक। ५. (ख) साव च। ६. (ख) अनकट्टेक्चव।

संज्ञया तत्परिज्ञेयं हुतं लघु गुरु प्लुतम् ।
प्रत्येकं च दुतादीनां भवेत्यय्यायपञ्चकम् ॥४२॥
प्रश्नेमां दुतं व्योम व्यञ्जनं विन्दुकं तथा ।
मात्रिकं सरलं ह्नस्व लघु व्यापकमित्यपि ॥४३॥
दिमात्रिक कलावक गुरुदीघंमिति स्मृतम् ।
सामोद्भवं प्लुतं दीप्तं तथात्र्यञ्च तिमात्रिकम् ॥४४॥
ताले च ञ्चत्युटे ज्ञेय गुरु हम्ह लघु प्लुतम् ।
गुरुलंघू गुरुद्वेव भवेच्चाचपुटाभिवे ॥४५॥
पलगा गलपाद्वेव यट्पितापुत्रके स्मृताः
भगणः स्यात् प्लुताद्यन्तो सपवचेष्टाकसंज्ञके ॥४६॥
उद्घट्टे मगणस्त्वेकः म्रादिताले लघु स्मृतः ।
मरटकुत्वस्त् चच्चर्या विरामान्तौ द्वतौ लघुः ॥४७॥

उनके नाम द्रुत, लघु, गुरु, स्रौर प्लुत हैं। 'द्रुत' झादि शब्दों के पर्य्याय पाँच है।।४२।।

ग्रर्थमात्र, हुत, व्योम, व्यञ्जन भीर बिन्दुक परस्पर पर्याय वाची हैं,मात्रिक, सरल, हस्ब, लचु श्रीर व्यापक समानार्थक है, द्विमात्रिक, कला, वक, गुरु श्रीर दीर्घ सद्शार्थबोधक है। सामोद्भव, प्लुत, दीप्त, व्यक्त तथा त्रिमात्रिक पर्यायवाचक हैं।।४३, ४४।।

चञ्चत्युट ताल में गुरु, गुरु, लघु और प्लुत है, चाचपुट में गुरु, लघु, लघु और गुरु है ॥४५॥

षट्पितापुत्रक में प्लुत, लघु, गुरु, गुरु, लघु, प्लुत, हैं, संपक्ष्वेष्टाक में प्लुतादि मीर प्लुतान्त भगण है ॥४६॥

उद्घट्ट में एक भगण है, झादिताल में एक लघु है। 'विरामान्त दो द्रुत और लघु' चच्चरी में झाठ बार होते हैं॥४७॥

१. (क) मगणाद्यं प्लतंज्ञेयं, (ख) मगणाद्यन्तं ज्नुतंज्ञेयम्।

सिंहलीले विधातव्यं लघ्वाद्यन्तं द्रुतत्रयम् । सिंहविकमताले स्युः मगणो ल. पला गपौ ॥४८॥

'लचतुष्कं विरामान्तं गजलीले प्रकीर्तितम् । सविरामं लघुद्वन्द्वं तालेस्याद्हसलीलके ॥४६॥

राजचूडामणौ ताले द्वतौ नश्च द्वतौ लगौ । ैद्विलं. पो गो लगौ पश्च सिहविकोडिते लपौ ॥४०॥

ैयगणो लो गुरुश्चैव सिंहनादे निरूपिताः । लघुर्दुतचतुष्क लौ स्यातां शरभलीलके ।।५१।।

तुरङ्गलीलताले स्याद्दुतद्वन्द्व लघुस्ततः । तपो लगो दुतो गो लः पलपा लश्च गद्वयम् ॥५२॥

सिहलील मे एक लघु, तीन द्रुत ब्रौर एक लघु होना चाहिये, सिंह विक्रम मे मगण, लघु, प्लुत, लघु, गुरु ब्रौर प्लुत हैं।।४८।।

गजलील में चार लघु ग्रीर एक विराम तथा हंसलील में दो लघु ग्रीर एक विराम होते है।।४६।।

राजचुडामणि मे दो द्रुत, एक नगण, दो द्रुत एक लघु फ्रोर एक गुरु है, तथा सिहविकीडित में दो लघु, एक ग्लुत, एक गुरु, एक लघु, एक गुरु, ग्युत, लघु, तथा प्लुत होते है ॥४०॥

सिहनाद मे एक यगण, लघु ब्रीर गुरु तथा शरभलील मे एक लघु, चार द्रुत, दो लघु होते है ॥ ११॥

तुरङ्गलील मे दो द्रुत, एक लघु, तगण, प्लुत, लघु, गुरु, दो गुरु, एक लघु, प्लुत, लघु, प्लुत, लघु और दो गुरु होते है ॥४२॥

१. (क) सविराम लघुईन्द्र । २. (क) द्वितीय यगणञ्चैव सिहविकीडिते ल**घी** । ३. (क) यगणाल्लघु । ४. (क) पलपागक्च लपद्वयम् ।

ै निशब्दलचतुष्कं च ताले स्यात् सिंहनन्दने । लो दुतौ प्रतितालः स्यात् दुतौ नश्चै द्वितीयके ।।४३।।

'सकारस्य सकारस्य जयमञ्जलनामनि । सकारो मट्टताले' स्यात् कल्पितं लचतुष्टयम् ।।५४॥

द्वतद्वन्द्वं लघुद्वन्द्वं भवेत्ताले कुडुक्कके । लघुद्वयं विरामान्तं ताले निस्सारुके भवेत् ॥४१॥ मट्टिकायां विधातव्या गुरुविन्दुप्लुता क्रमात् । ढेड्क्किका जगणेन* स्यात् केषाञ्चित् सैव योजना ॥४६॥

एकेनैव द्रुतेन स्यादेकतालीति संज्ञया । चतुस्ताले गुरुः' पूर्वं ततो बिन्दुत्रयं भवेत् ।।५७।।

सिंहनन्दन में निश्शब्द चार लघु, प्रतिलाल में दो लघु, दो द्रुत स्रीर द्वितीयक में दो द्रुत ग्रीर एक नगण है।। ४३।।

जयमङ्गल में दो सगण श्रीर मट्टताल में एक सगण श्रीर चार लघु होते हैं।। ४४।।

कुडुक्क में दो द्रुत, दो लघु तथा निस्सारु में दो लघु धौर एक विराम है।।४,४॥

महिकामें कमश[.] एक एक गुरु, बिन्दु और प्लुत होते हैं, तथा ढेंच्छिकामें किन्ही की योजनाके अनुसार एक जगण होताहै ॥४६॥

एकताली में एक ही द्रुत होता है। चतुस्ताल में एक गुरु भीर तीन बिन्द होते हैं।।५७।।

रै. (क) तिः शब्दं च चतु त घ । २. (क) सश्च । ३. (ख) बकारस्य । ४. (क) सकारान्यहृताते स्यात् ति. सब्दं च चतुष्टदम् । ४. (क) रतमेन । ६. (क) गतः पूर्वं ।

एकेन सिंदरामेण लघुना लघुनेखरः ।
प्रतापशेखरे त्र्यशो विरामान्तं द्रुतद्वयम् ॥५६॥
व्योमद्वयं विरामान्तं लघ्न भस्माभिषे भवेत् ।
'गलो तु प्रतिमट्टस्न प्रोक्तो लक्षणकोविदैः ॥५६॥
तृतीयतानेविन्दुः स्थात् विरामान्तं लघुत्रयम् ।
ताले करणयत्याख्ये ज्ञेयं विन्दुनतुष्टयम् ॥६०॥
गारुगः कथ्यते तज्ज्ञैविरामान्तं चतुर्दुतम् ।
गुरुषोडशक यत्र द्वात्रिशल्लघवस्तया ॥६१॥
चतुष्टिद्रता पाता चतुरस्राक्षिद्यकस्तदा ।

सप्त गर्वक्षराण्यादौ दशलघ्वक्षराणि च ॥६२॥

एक लघु और एक विराम के द्वारा लघुशेखर होता है प्रतापशेखर मे प्लुन, दो द्वत और एक विराम है ॥५८॥

दो द्रुत, विराम और लघु भस्पा में है तथा प्रतिमट्ट में एक गुरु श्रीर एक लघु ॥५६॥

तृतीय ताल में विन्दु तीन लघु और एक विराम है और करण यति मे चार द्रुत जानने चाहिए।।६०।।

गारुंगि में चार दूत और एक विराम विज्ञ पुरुषो द्वारा कहा जाता है, बतुरस्त्र श्राक्षिप्तक में सोलह गुरु, बत्तोस लघु और चौसठ द्रुत हैं।सात गुरु, दस लघु तथा दो गुरु मद्रक में हैं।

चञ्चत्पुट, चावपुट, पर्शितापुत्रक, सम्पववेष्टाक, हेला, त्रिगता, नत्कुट, नत्कुटी, खञ्जिका, खञ्जक, श्राक्षीडित ग्रीर विलम्ब, ये बारह सङ्ग तथा कुटिला, श्राक्षिप्तिका, त्यन्ना, चतुरस्ना, चटुला, मिश्रा ये छः विभङ्ग है।

१. (क) गले प्रतिमट्टरच । २. (क) तालबिन्दु ।

भन्ते च गुरुणी यत्र मद्रकस्सोऽभिधीयते ।

भङ्गा विभङ्गाश्य —

कञ्चत्युट, चाचपुट, बट्पितापुत्रक, सम्पक्षेण्टाक, हेला, त्रिगता, नत्तुट, तस्तुटी, खञ्जिका, सञ्जकः, साक्रीडित, विलम्ब इति द्वादस भङ्गाः, कृटिला, साक्षिप्तिका, त्यस्रा, चतुला, चटुला, मिश्रा वडेते विभङ्गा इतरे विभङ्गाः

तालमूलानि गेयानि ताले सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥६३॥ तालहीनानि गेयानि मन्त्रहीना यथाहुतिः ॥

इति श्रीमदभयचन्द्रमुनीग्द्रचरणकमलमधुकरायितमहादेवा-व्यंशिष्यमस्तकस्व विमानीवद्यापुत्रसम्यक्तचूडामणि-भरतभाण्डीकभाषाप्रविण्यास्त्रीतज्ञानचक्रवीत सङ्गोताकरनामधेयपाश्वंदेवविरचिते-सङ्गोताकरमामधेयपाश्वंदेवविरचिते-

गेय तालमूलक होते हैं, ताल में सब कुछ प्रतिष्ठित है, तालहीनगेय मंत्रहीन ब्राहृति जैसे हैं ॥६१-६२॥

श्रीमद् स्रभयचन्द्र मुनीन्द्र के चरण कमली में भध्करवत् धाचरण करनेवाले मस्तक से युक्त महादेव झायं के शिष्य, स्वरविद्या से युक्त, सम्यक्ष्वचुडामणि, भरत-भाण्डीक भाषाप्रवीण, श्रुतिज्ञानचक्रवर्ती संगीता-कर नाम वाले पाडवंदेव द्वारा विरचित सङ्गीतसमयसार का घण्टम अधि-करण पूर्ण हुआ।

(अष्टम अधिकरण समाप्त)

नवमाधिकरणम

उदवेशः---

गीते बाद्ये च नृत्ये च तत्तिद्वज्ञा 'परस्परम् । भवेयुर्वादिनस्तस्माद् बक्ष्यते वादनिर्णय ॥१॥ परस्परसमाक्षेपो यो वादिप्रतिवादिनो ।

a12 --

स्वपक्षपरपक्षाभ्या वादस्स परिकीतित ।।२॥
सभापतिष्व सभ्याष्व तौ वादिप्रतिवादिनौ ।
इति प्रोक्त मतङ्कार्यौवदिस्याङ्गचतुष्टयम् ॥३॥
कथयामि कमादेषा लक्षण च समासत ।

सभासन्निवेश —

ग्रास्थान मण्डपे रम्ये सर्वलक्षणसयुते ॥४॥

गीत, बाद्य और नृत्य मे अपने अपने विषय के विशेषज्ञ परस्पर प्रतिस्पर्घी होते है अत वाद निर्णय कहा जायेगा ॥१॥

वादी श्रीर प्रतिवादी में स्वपक्ष और प्रतिपक्ष के द्वारा परस्पर किया जाने वाला सम्यक् श्राक्षेप वाद' कहलाता है ।।२।।

सुभापति, सून्य, वादी श्रीर प्रतिवादी, मतञ्ज के अनुसार, ये चार वाद के श्रञ्ज है।।३॥

कमश सक्षेपपूर्वक इनका लक्षण कहूँगा । समस्त लक्षणो से युक्त, चित्राभास, विचित्रार्थक रगविरंगे चित्रो से सत्रे हुए, चन्दन, प्रगर, कर्णू र

१ (क) विघा। २ (क) मण्टये।

चित्राभासविचित्रायं चित्रचित्रोपशोभिते ।
चन्दनागुरुकपू रघूपैस्तु परिवासिते ॥५॥
चहुवर्णपटीपट्टवितानपरिशोभिते ।
नानारत्नसमाकीर्णनानालकारशोभितम् ॥६॥
सिहासन पूर्वमुख मध्यतो विनिवेशयेत् ।
श्रीमान् दाता गुणग्राही भावज कीर्तिलम्पट ॥७॥

मुपति -

सङ्गीतगुणदोषज्ञ सर्वभाषाविचक्षण । प्रियवाग्वादमध्यस्य पारितोषिकदायक ॥८॥ सत्यवादी च श्टुङ्गारी मागंदेशिप्रभेदवित् । वैधीमान् सर्वकलाध्यक्ष तदध्यासितभूपति ॥६॥

देवी--

रूपयौवनसम्पन्ना सदा श्रृङ्गारलोलुपा । सौभाग्यशालिनी भन्नं श्चित्तनेत्रानुसारिणी ॥१०॥

घूपो से सुवासित, रङ्गविरङ्गी पट्टियो, पट्टो भ्रौर वितान से शोभित मनोहर सभामण्डप के बीच मे पूर्वाभिमुख सिंहासन रखा जाना चाहिये।

उस पर श्रीमान् दानशील गुणग्राही, भावज्ञ यशकामी, सङ्गीत के गुण दीवो को समक्षते वाला, समस्त भावाभो में निपुण, ग्रियभाषी, पारितोषिकदायक, सत्यवादी, शृङ्कारधुक्त, मार्ग भीर देशी के भेदो में निपुण, बुद्धिमान्, सर्वकलाध्यक्ष और वाद का मध्यस्य राजा झासीन होना चाहिये॥४-६॥

रूपयीवनसम्पन्न, प्रृङ्गारप्रिय, सौभाग्यशालिनी, पति के चित्त स्रोर नेत्रों के अनुसार श्राचरण करने वाली रानी, राजा के वाई श्रोर बैठी होनी चाहिये।

१ (क) पली। २ विशारदा ३ (क) डिमान्।

देवी चोपविशेत्तस्य वामभागें महीपतेः।

विलासिन्यः ---

रूपयोवनसम्पन्नाः सर्वाभरणभूषिताः ।।११॥ ेहावभावविलासाद्या विभ्रमादिगुणान्विताः । विलासिनीर्महीपस्य पश्चाद्भागे निवेशयेत् ॥१२॥

सचिवाः ---

कार्य्याकार्य्यविभागज्ञा नीतिशास्त्रविशारदाः । स्वामिभक्तास्च सचिवा ै सर्वकार्यकृतिक्षमाः ॥१३॥

सम्या --

सभ्यास्सङ्गीतधास्त्रज्ञास्तल्बध्यज्ञा^{*} अनुद्धताः । मध्यस्था वादसमये गुणदोषनिरूपकाः ॥१४॥ कवयो रसभावजाच्छन्दोऽलङ्कारवेदिनः । अमन्दा प्रतिभायुक्ता रीतिनिर्वाहकोविदाः ॥१५॥

रूपयोवन-सम्पन्न, समस्त ब्राभूषण युक्त, हाव-भाव-विलास शालिनी, विभ्रम इत्यादि गुणो से सम्पन्न विलासिनियाँ राजा के पीछे विठाई जानी चाहिये।

कार्य-अकार्य्य के विभाग को जानने वाले, नीतिशास्त्रविशास्त्र, कार्य्यों को करने से समये स्वाभिभव 'सविव', सङ्गीन के शास्त्र एव अवहार को जानने वाले, वाद के समय गुण दोग का निक्षण करने वाले विनन्न 'सम्बद्धर', रस, भाव, छन्द, अवङ्कान के मांज, रीतिनिवाह में निपुण, प्रतिभाषुका अमन्द 'कृषि', मुस्म भाव तथा अर्थ के ज्ञान से धान-रिवाचित 'सिक', ये सब यवायोग्य राजा के दक्षिण भाग में होना उचित

१ (स) भावाभाव। २ (स) विचक्षणा,।

 ⁽क) काब। ४. (क) लक्सकाः।

काव्यनाटकसञ्जातरसास्वादनलम्पटाः । रसिकाः सुक्ष्मभावार्यज्ञानानन्दितचेतसः ॥१६॥

एते सर्वे यथायोग्यं भवेयस्तस्य दक्षिणे । वाग्गेयकारकविताकारा ये नर्तकादय: ॥१७॥

लक्ष्यलक्षणदक्षाश्च सङ्गीताङ्गविचक्षणाः । वामभागे महीपस्य स्यात्तेषामुपवेशनम् ॥१८॥

ग्रन्येऽपि ये यथायोग्यास्तलदिहा विशारदाः । भवेयस्ते महीपस्य नातिदूरोपवेशिन ॥१६॥

बादी-

^२ग्रनुवादद्**ढःप्रज्ञः स्वशास्त्रश्रवणान्वितः** । परोक्तद्रषणोद्धर्ता वादी स्यात् पक्षसाधकः ॥२०॥ प्रतिवादी---

वक्तार शास्त्रवेत्तारं बुद्धिमन्तं बहश्रतम ।

वादिपक्षनिहन्तार त विद्यात्प्रतिवादिनम् ॥२१॥

वागोयकार, कविताकार, नर्तक इत्यादि, जो लक्ष्यलक्षण में दक्ष भीर सञ्जीत के ग्रञ्जों में विचक्षण हों, वे राजा के वाम भाग में होना चाहिये भीर भी जो विशिष्ट विशिष्ट विद्यात्रों के विशेषज्ञ हो, वे राजा से अधिक दर नही बैठे होने चाहिये।

प्रतिपक्षी के प्राशय को अनुदित करने में कुशल, गुरुम्ख से पढ़ने के कारण अपने शास्त्र में निपुण, प्रतिपक्षी के निकाले हुए दोषों का निराकरण भीर भपने पक्ष का मण्डन करने वाला 'वादी' होता है ।।१०-२०।।

जो वक्ता, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, बहुश्रुत, वादी-पक्ष का खण्डन करने बाला हो वह प्रतिवादी है ॥२१॥

१. (स) तस्य भूपस्य ।

२. (क) धनुवादवृढ: प्राज्ञ:, (ख) धनुवादवृद्धप्रज्ञ. ।

बादहेतव:

निर्वाहाधिक्यवाञ्छा च मत्सरः स्वामिकौतुकम् । स्वैरगोष्टिपरीभावः कारणान्तरवैरिता ॥२२॥ प्रतिपत्तिः स्पृहासूया' कीर्तिव्यसनिता तथा । विद्यामदञ्च निर्दिष्टास्तज्ज्ञैवदिस्य हेतवः ॥२३॥

वजितवाद -

स्त्रीपु सयोवृ्ं बयूनो दिरद्वश्रीमतोस्तया । विनीतोद्धतयोःै खिन्नतुष्टमानसयोरिष ॥२४॥ शिष्योपाध्याययोगिन्नविद्ययोगिस्त्र्र्यो । न वादो विहितस्सद्भिः वादहेतुषु सत्स्वषि ॥२५॥ वित्तेन विद्यया रूढ्या समयोर्वाद इष्यते ।

तस्मादत्र प्रवक्ष्यन्ते गुणदोषाश्च वादिनाम् ॥२६॥ श्वास्त्रज्ञगुणाः —

ग्रन्थार्थस्य परिज्ञान तात्पर्व्यार्थनिरूपणम् । भ्राद्यन्तमध्यव्यास्यानशक्तिः शास्त्रविदो गुणा ॥२७॥

निर्वाह से प्रधिक की इच्छा. ईट्यां, स्वामी का विनोद, निजी गोष्टियों में पालय, किसी अन्य कारण से बैर, विधारट दृष्टिकोण या मत, स्पृष्टा, प्रमुखा कीर्ति निर्वाहत की इच्छा अथवा विद्यासद, ये बाते बाद में कारण होती है।।२३।।

स्त्री और पुरुष, बृद्ध और शुक्क, दरिद्ध और श्रीमान्, विनीत श्रीर उद्धन, चिन्न भौर सन्तुष्ट, शिष्य और उपाध्याय, विभिन्न विद्यान्नो के विद्यान्, तथा भीरु और पुर में 'बाद' विहित नहीं, भने ही बाद के कारण विद्यमान ही ॥२४,२४॥

धन, विद्या तथा सम्प्रदाय मे जो समान हो, उन्ही मे वाद उचित हैं, अब यहाँ वादियों के गुण-दोष कहे जायेंगे ॥२६॥

ग्रन्थ के बर्थे का भलीभीति ज्ञान, तात्पय्यार्थ का निरूपण आदि, अन्त श्रीर मध्य की व्याख्या मे सामर्थ्य शास्त्रज्ञ के गुण है।।२७॥

१ (क) स्त्वह। २ (क) लिश्न।

शास्त्रज्ञवीचाः --

पूर्वापरिवरोधानामज्ञत्वमविदग्धता । निरुत्तरत्वं प्रश्नेषु सम्प्रदायविहीनता ॥२८॥ इत्यादयस्तु 'शास्त्रज्ञदोषास्सद्भिरुदाहृताः ।

शास्त्रज्ञकोटय:---

लक्ष्म लक्ष्यञ्च यो वेत्ति मागंदेशिसमाश्रयम् ॥२९॥ उत्तमः स परिजेयः शास्त्रजेषु मनीषिभिः । वेत्ति मार्गाश्रय लक्ष्यं लक्षणं य[.] स मध्यमः ॥३०॥ सम्यग्जानाति यो देशिलक्ष्म लक्ष्यञ्च सोऽघमः । शास्त्रवादे समुत्पन्ने गुणदोर्षस्तदीयकैः ॥३१॥

तारतम्यं तयोज्ञीत्वा दद्याज्जयपराजयौ ।

बाग्गेयकारगुणाः — शब्दशास्त्रपरिज्ञान छन्दोविचितिनैपूणम् ॥३२॥

पूर्वापर विरोधों के विषय में मज्ञान, स्रसहृदयता, प्रश्न होने पर मौन, सम्प्रदायविहीनता इत्यादि शास्त्रज्ञों के दोष है।

जो मार्गं श्रीर देशी से सम्बन्ध लक्ष्य श्रीर लक्षण का झाता हो. उसे मनीषियों को शास्त्रज्ञों में <u>उत्तम</u> जानना चाहिये। जो केवल मार्गाश्रित लक्ष्य श्रीर लक्षण का झाता हो, वह मुध्यम हैं।।२५-३०।।

जो केवल देशी का लक्ष्य और लक्षण जानता है, वह 'श्र<u>धम'</u> शास्त्र-कार है। शास्त्रसम्बन्धी वाद होने पर वादी और प्रतिवादो के गुण दोधों के ग्राधार पर तारतम्य का निश्चय करके ज<u>य-पराजय का निर्</u>णय देना चाहिये।

शब्दशास्त्र का सम्यक् झान, छन्दो के चुनाव (छन्दोविचिति नामक ग्रन्थ) मे निपुणता, कोषों मे दक्षता, कलाग्रो में भी कुशलता, सप्तगीतों में प्रवीणता, रसभाव में चातुर्ग्यं, (भाषासम्बन्धी और स्वरसम्बन्धी)

१. (क) शास्त्रज्ञैः।

प्रभिधानेषु दक्षत्वं कलास्विष च कौशलम् ।
'सप्तगीतप्रवीणत्व चातुर्य्यं रसभावयोः ॥३३॥
प्रलङ्कारेषु चातुर्य्यं गुतालत्व सुरागता ।
सुस्वरत्वं सुगेयत्वं देशिरागेष्विभिज्ञता ॥३४॥
देशभाषापरिज्ञान प्रभुचित्तानुवर्तनम् ।
नृत्ते वाद्ये प्रवीणत्वं तथैवास्थानशूरता ॥३४॥
प्रतिभान वचस्वत्वं सम्यचित्तानुरुञ्जनम् ।
प्रतिभान वचस्वत्वं सम्यचित्तानुरुञ्जनम् ।
प्रतिभवव्यविष्ठानं चनुर्धातुषु पाटवम् ॥३६॥
सर्वप्रवन्थवोधद्य मुक्तिकाले प्रदक्षता ।
विस्थानव्याप्तिसुभगः प्रयोगः कोषवर्जनम् ॥३७॥
प्रादिष्टार्थस्य निर्वाहं सारचर्यंकविता तथा ।
यथोचितपदन्यास प्रागत्म्य वश्यवर्णता ॥३६॥
सावधानत्वमेषाङ्गप्रौढिवंकत्रे प्रसन्तता ।
एते वाग्गेयकारस्य गुणास्सद्भिरुदाहृताः ॥३६॥

स्रसङ्कारों में नैपृथ्य, ताल श्रीर राग पर अच्छा अधिकार, सुस्वरस्य, सुगेयस्य, देशी रागो मे अभिज्ञता, देश आराअके का परिज्ञान, प्रभू के चित्त का प्रतुवर्तन, अनिबद्ध गान के स्वरों का ज्ञान, चारो धानुकों में पट्टना, समस्त प्रवस्थों का बोध, त्यास के समय दक्षता, तीनो स्वानों की ब्याप्ति में सुअग प्रयोग, कोपहीनता, श्रादिष्ट अर्थ का निर्वाह, आस्वर्य्यजनक कविता, यथोजिन पदिवन्यास, प्रगन्भता, वर्णों पर अधिकार, सावधानता, एकाङ्गप्रीढि, मुख पर प्रसन्नता, ये सब, सज्जनों के अनुसार वाग्येयकार कृष्ण है। १३ र-३ हा।

१. (क) गीति।

२. (क) वचास्थित्व।

⁽क) वश्यकतथा ।

बाग्गेयकारदोषा --

ग्नाम्योक्तिरपशन्दर्श तद्वदप्रस्तुतस्तुति ।
गमके च पदे जाड्य प्रबन्धज्ञानहीनता ॥४०॥
'रसानुरूपरागाणामज्ञत्वमिवदम्बता ।
क्रियानिवंहणाज्ञत्व मन्दशारीरता' तथा ॥४१॥
माने न्यूनाधिकाज्ञत्व रीतिभङ्गस्तथा पुन ।
छायापरिच्युतिस्तद्वद् गान चासमये तथा ॥४२॥
'म्रश्राच्य, लक्षण त्यक्त्वा धानुमात् करोति य ।
दोषेरैतैरूपेतो यो निन्द्यवाग्येयकारक ॥४३॥
सुङकमबशादेया तारतम्यमिहोच्यते ।

बाग्गेयकारकोटय — शुद्धसालगयो सुड विषम प्राञ्जल तथा ॥४४॥ करोति वयकारो य सभवेदुत्तमोत्तम । कर्ता विषमसुडस्य तयोस्तममध्यम ॥४५॥ तयो प्राञ्जलसूडस्य कर्ता स्यादुत्तमाधम । विषम प्राञ्जलस्वैव शुद्धे सुड करोति य ॥४६॥

प्राप्योक्ति, प्रशुद्ध शब्दों का प्रयोग, श्रनावश्यक का प्रस्तुतीकरण, गमक भीर पद में जडता प्रवन्धज्ञान का सभाव, रसानुरूपरागों का स्रज्ञान समहूदयता किया के निर्वाह में सज्ञान, दुवेंल धरीर, कालमान में न्यूनता या अधिकता का श्रज्ञान, रितिभङ्ग, छाया से च्युत होना ससमय गान सन्नाव्य गान लक्षण के विरुद्ध धातु (गय) और मानु की रचना, इन दोषों से युक्त वान्ययकार निन्ध है।।४०-४३।।

भव इनमें सुंडकम के मनुसार तारतस्य कहा जाता है। खुद्ध भीर सालग रागों में विषम भीर प्राञ्जल सुड का रचियता उत्तमोत्तम, पूर्वोक्त दोनों प्रकार के रागों में विषम सुड की प्रणेता उत्तम मध्यम तथा प्राञ्जल सुड का कर्ता <u>उप्ताचम</u> होता है।

१ (क) रसानिरूपारागाणा । २ (क) मन्दशरीरता ।

३ (क) अश्रवया ४ (क) मतादेवां।

वाग्गेयकारस्तोऽय मध्यमोत्तम इघ्यते ।
शुद्धं विषममुडस्य वर्ता मध्यममध्यम ॥४७॥
कर्ता प्राञ्जल सुडस्य शुद्धं स्यान्मध्यमाधम ।
य कुर्त्यात् सालगे सुडः विषम प्राञ्जल तथा ॥४६॥
जघन्येपूत्तमस्तोऽयमुद्धिटो वयकारक ।
कर्ताविषमसुडस्य सालगे तेषु मध्यम ॥४६॥
सालगे प्राञ्जलस्यैव कर्ता तेष्वधम स्मृत ।
अधमो मालगरस्व रच्या वातुकारस्य मध्यम ॥१०॥

ेधातुमातुिकयायुक्त उत्तम परिकीर्तित । वाग्गयकारयोर्वादे सूड गातु प्रदापयेत् ।।५१।।

उत्तार बन्धगीत वा पट्टान्तरमथापि वा । कुरुप वा ततस्तद्वत् गुणदोपान् निरूपयेत्ै ।।५२।।

शुद्धराग मे विषम और प्राञ्जल सूड का रवयिता मध्यमोत्तम, विषम सूडका कर्ता मध्यमध्यम और प्राञ्जल सूडका कर्ता मध्यमाषम होता है।

सालग राग में विषम और प्राञ्जल सूड का रचयिता जमस्योत्तम, विषम सूड का कर्ता जघन्यमध्यम और प्राञ्जल वा कर्ता जघन्याघम होता है।

मातुकार अधम धानुकार मध्यम और धानुमातुकार उत्त<u>म है</u>। वाग्यवनारों में बाद होने पर गाने के लिए सूड, उत्तार, बन्धगीत, पट्टान्तर या कुरुप दिया जाना चाहिये, तदनुसार गुण दोषों का निरूपण

उचित है ॥४४-५२॥ १ (क) दातुमातु । २ (क) निरूपवेतु ।

मायकाः —

स्रानिन्द्यार्श्वेव निन्द्यार्श्व द्विविधा गायका मताः ।
क्रमेण वक्ष्यते तेषां लक्ष्मोद्देशपुर. सरम् ॥५३॥
क्रियापर. कमस्यर्श्व गतिस्थः सुषटस्तथा ।
सुसञ्च. शिक्षकरुर्वेव' रिसको भावुकस्तथा ॥५४॥
रञ्जकः पररीतिज्ञः सुगन्धोऽनियमस्तथा ॥५४॥
प्रवालस्त्रगायनो गीतगायनरुर्वोपटस्तथा ॥५५॥
प्रवालस्त्रच विबन्धरुर्व भाश्वरचानिन्द्यगायकाः ।
यथाशास्त्रप्रयागेण मार्ग देशीयमेव च ॥५६॥
यो गायति विना दोषान् कथ्यते स क्रियापरः ।
उत्तमोत्तमसुडादिसुडान् गायति यः कमात् ॥५७॥
प्रतिक्षकपर्यन्त कमस्यः स उदाहृतः ।
वश्यकण्ठतया सम्यक् गमकान् यः पृथक् पृथक् ॥५६॥
गमयेल्क्षणोपेत गतिस्थः स तु कीर्तितः ।
स्वरं वर्णं च तालञ्च व्यक्तं घटयति त्रयम् ॥५६॥

गायक दो प्रकार के है, श्रनिक्य और निन्च । कमझ उनका लक्षण पूर्वक कपन किया जाता है। कियापर, कमस्य, गतिस्य, सुघट, सुसञ्च शिक्षक, रिसक, भावुक, रञ्जक, पररीतिज्ञ, सुगन्ध, श्रनियम, श्रालस्ति गायन, गीतगायन, चौपट, विताल, विवन्ध श्रीर मिश्र, ये श्रनिन्च गायक हैं।

जो शास्त्रानुसार प्रयोग पूर्वक, मार्ग भ्रीर देशी को दोष रहित गाता है, वह 'कियापर' है ।

जो उत्तमोत्तम इत्यादि सूडों को कमपूर्वक प्रतिरूपक पर्व्यन्त गाता है, वह 'कमस्य' है।

१. (क) सिकवर्ष । २. (क) पठ्जक , (क) रदंकः । ३. (क) सुगुडोऽयानियमस्तषा । ४. (क) बापट । ५. (क) रितालरूब । ६. (क) विवृत्त्वस्व , ७. (क) गमयो

शोभनध्वनिसयुक्त सुघठ' त प्रवक्षते ।
सुज्ञारीरवज्ञात्तत्तद्वागालप्तिकृतिक्षम "।।६०।।
स्रतायासेन गीतज्ञस्सुसञ्च परिकीर्तित ।
द्वत यः शिक्षते गीत विषम प्राञ्जल तथा ।।६१।।
युद्धे छायालगे सम्यक् शिक्षाकार "स कथ्यते ।
सुश्रव गीतमाकर्ष्यं भवेद्य पुलकान्वित ।।६२।।
स्रानन्दाश्रुकणाकीणं सोऽय रिक्तकगायक ।
"नीरस सरस कुवंन् निर्भाव" भावसयुतम् ।।६३।।
श्रोतृहिचत्त परिज्ञाय यो गायेत् स तु भावुक "।
चेतीहरेण गीतेन विदित्वा श्रोतुराशयम् ।।६४।।
रङ्गे गीते विधत्ते यो रञ्जकस्सोऽभिधीयते ।
"गीतशारीरचेष्टानामालप्ती चानुकारकृत्" ।।६५।।

जो कण्ठ ग्रधीन होने के कारण, लक्षणयुक्त गमको का प्रयोग पृथक् पृथक् करता है, वह 'गतिस्थ' है।

[े] जो स्वर, वर्ण ब्रौर ताल की घटना सुन्दर घ्वनि से युक्त करता **है,** वह 'सुघट' है ।

अच्छा बारीर होने के कारण जो प्रत्येक राग की ध्रालस्ति करने में अनायास समये हैं वह सुयञ्च है, जो शुद्ध और छायालग राग में भद्रपट विषम और प्राञ्जल गीत सीख लेना है वह शिक्षाकार है। जो सुआव्य गीत को सुनकर पुलकान्वित (॥५३-६२॥) और घान-दाश्रुपूर्ण नयन हो जाता है, वह 'रिसक' है।

श्रोता के चित को जानने के पश्चात् नीरस को सरस और भाव हीन को भावयुक्त करने वाला गायक 'भावुक' कहलाता है।

मनोहर गीत के द्वारा श्रोताग्रो के ग्राशय को जानकर रङ्गस्थल मे ही गीत का विधान करने वाला गायक 'रञ्जक' है।

१ (क) सुपुड । २ (क) रागसञ्चक्वतिक्षय । ३ (क) सेक्षाकार । ४ (ख) निरस । ५ (स) निमाव ६ (स) भावक । ७ (ख) गति । ५ (क) मानुकार ।

गीतोत्तमगुणैयुँकः पररीतिक ' इष्यते ।
विषमं प्राञ्जलं वापि सुचिरं यस्य गायतः ॥६६॥
कण्ठे न याति माष्ट्रय्यं सुगन्धः स तु कीर्तितः ।
गीतादिप य द्यालांध्त कुर्य्यात् ' सौस्यविधायिनीम् ॥६७॥
ध्रालप्तिगायनस्सोऽयं निर्दिष्टो गीतवेदिमिः ।
ध्रालप्तेरिप यद्गीत भवेदिनमनोहरम् ॥६६॥
उक्तो गायकभेदक्षैः सोऽयं रूपकगायनः ।
धुद्धे छायालमे चैव गीतमालप्तिसंयुतम् ॥६६॥
यो गायति स विक्रेयस्वौपटो गीतवेदिमिः ।
ध्वनिक्षारीरयोयंस्य नानादेशीयरीतयः ' ॥७०॥
विलगन्ति स विक्रयो रीतालो (वितालो) गीतवेदिमिः ।
नानाविधा विभक्ताञ्च ध्वनौ ' यस्विन्तयेद् गितम् ॥७१॥
रविवन्धः स परिक्रयो गीततत्विविक्षः ॥७२॥
रागे रागान्तरच्छायां मिश्रयन् दोषविज्ञताम् ।
प्रवीण्त्वेन यौ गायेत सोऽयं मिश्र उदाहृदः ॥७३॥

श्रालप्ति में गीत श्रीर शारीर की चेष्टाश्रो का अनुकरण करने वाला गीत के उत्तम गुणो से युक्त गायक 'पररीतिज्ञ' है। बहुत समय तक विषम श्रीर प्राञ्जल गीत गाते गाते भी जिसके कष्ठ से माधुर्य्य नही जाता, वह 'सुगन्थ है।

जो गीत की अपेक्षा भी अधिक सुख देने वाली आलप्ति करता है, वह 'आलप्ति गायन' है।

जिसका गीत झालप्ति की अपेक्षा भी अप्त्यन्त मनोहर हो, वह गीतक्कों के द्वारा 'रूपकगायन' कहा गया है।

१. (स) परि । २. (स) श्रुतौ ।

३. (क) चोपटा। ४. देखेवु। ५. (क) रितालो।

६. (क) व्यनीयञ्चित्रयेद् । ७. (क) विवन्दस्स ।

गायकेषु निन्छा —

भन्दछ्ट कम्पितो भीत शिक्कृत सानुनासिक ।

उद्बृष्टरुव तथा काको सुत्कारो चाव्यवस्थितः ॥७४॥
कराली भोम्बका विज्ञा प्रसारी च निमीलक ।
तथा निरवधानस्व वितालस्वोष्ट्रकी तथा ॥७४॥
उद्घडी मिश्रकस्वेति निन्द्या एकोनविशति ।
दन्तसन्दशतो गाता सन्दष्ट परिकीर्तित ॥७६॥
ग्यूनाधिकस्व गीता कपिलस्समु दाहृत ।
यो गायति भयाविष्टम्त भीत गायनञ्जमु ॥
शङ्काकुलस्नु यो गायेत् स शङ्कित उदाहृत ।
गीत नासिकया गायेत् विज्ञय सोऽनुनासिकः ॥७६॥
"उद्घृष्ट सर्वत क्षृत्वो गायन् गायन इष्यते ।
भक्तकस्येव स्वरो यस्य स काकी परिकीर्तित ॥७६॥

जो शुद्ध और छायालग रागमे श्रालिप्त युक्त गीत गाता है वह चौपट है।

जिसकी ध्वनि श्रीर शारीर म विभिन्न देशों की रीतियों का स्पर्श होता है वह रीपाल है।

जो ध्वनि म ढङ्गढङ्ग से विभक्त गति का चिन्तन करता है वह विबन्ध है।

जो एक राग मे दूसरे राग की छाया का प्रयोग निर्दोष रूप मे तथा कुशलता पूर्वक करता है, वह मिश्र है।

१ (क), (ख) कपिलो। २ (क) उदद्ग्ट।

३ (क) फोम्बकी । ४ सन्दब्टतो । ५ (क) कथिल ।

६ (क) मयाका-ता। ७ (क) स्तम्भित। द (क) उदघुटट ।

१ (क) गायण । १० (क) काकास्थेव ।

'सूत्कारी सूत्कृतिप्रायो गायकः कथितो बुग्नैः । ध्रव्यवस्थितः शद्युक्तः स्थानकेष्वव्यवस्थितः ॥६०॥ उद्घाट्य वदनं गायन् करालीति निगद्यते । उरफुल्लगल्लनयननासिको भोम्बकः स्मृतः ॥६१॥ भगतस्यातिप्रसारेण प्रसारीति निगद्यते ॥६२॥ निमील्य नयने गायन् कथितोऽसौ निमीलकः । गीतावधानरिहतः स स्यान्निरवधानकः ॥६३॥ वितालो गायकः प्रोक्तो वितालं यस्तु गायति । गायम्नुष्ट्रवदासीनः उष्ट्रकी सम्प्रकीर्तितः ॥६४॥ हनुसञ्चलनाद् गायन् छागवद् गमकान्वितम् । उद्घडस्सोपहासाही वीतितो गीतवेदिभिः ॥६५॥ उद्घडस्सोपहासाही वीतितो गीतवेदिभिः ॥६५॥

सन्दष्ट, किंग्यत, भीत, बिक्कूत, सानुनासिक, उद्युष्ट, काकी, सूरकारी, प्रव्यवस्थित, कराली, भीम्बक, वकी, प्रसारी, निमीलक, निरद्वान, वितान, उप्ट्रकी, उद्युष्ट और मिश्रक ये उन्नीस निन्त्यु, गायक हैं। वात त्वान र गाने वाला 'सन्दष्ट' न्यूनाधिक स्वर लगाने वाला 'कंपिल' भयभीत होकर गाने वाला 'भीत', शङ्काषु,ल होकर गाने वाला 'शिक्कुत' नाक से गीत गाने वाला 'सानुनासिक', सब भीर से कुष्य होकर गाने वाला उद्युष्ट, कीए जैसे स्वर वाला 'काकी' 'मून्सु' करके गाने वाला सुकारी, स्थानो मे व्यवस्था न रखने वाला 'अव्यवस्थित', मुँह फाइकर गाने वाला 'कराली, गला, भ्रांत्य और नाक फुलाकर गाने वाला 'फीम्बक', गाते समय गर्दन टेडी करने वाला 'वित्ताल', केंट की भौति वैठ कर गाने वाला 'निर्वाल', केंट की भौति वैठ कर गाने वाला 'वित्ताल', केंट की भौति वैठ कर गाने वाला 'वित्ताल', केंट की भौति वैठ कर गाने वाला 'वर्ज्यक्त' वाला नियालक, रामक्युक्त गाने वाला 'वर्ज्यक्त' वाला वाला कर गमक्युक्त गाने वाला उपहासास्पद गायक 'उद्युष्ट' कहा गया है।।६३-६५।।

 ⁽क) शूल्कारी शूल्कृतिप्रायी । २. (क) गायन्वक्रीकृतसीया ।
 (ख) गमकान्वित । ४. (ख) सोपहो ।

गायकमेदा :---

करोति शुद्धरागे च छायालगविमिश्रणम् । छायालगे वा कुर्यात् शुद्धरागविमिश्रणम् ॥६६॥ मिश्रकः स परिज्ञेयो गीवतत्वार्षविधिशः । 'एकलो यमलोचैव सामुदायिक इत्यिष ॥६७॥ गायत्यन्यानपेक्षो यः सुगीतं लक्षणान्वितम् । एकलो गायवः स स्याद् द्वौ चेव् यमलगायकौ ॥६८॥ मिलित्वा बहुभिर्यस्तु गीतं गायति गायनः । स वृन्दगायनस्तेया पूर्वः पूर्वो भवेद् वरः ॥६६॥ गणैबंहभिरल्पैश्च तारतस्यमथोच्यते ।

गायककोटय --

विविधालित्वातुर्यं ग्रहमोक्षे च दक्षता ।।६०।। स्थानत्रयप्रयोगश्च गम्भीरमधुरो ध्वनि. । सर्ववस्तुष् गातृत्वं तालज्ञत्व सुरेखता ।।६१।।

जो शुद्ध राग में छायालग का अथवा छायालग मे शुद्ध राग का मिश्रण करता है, वह 'मिश्रक' है।

गायको के तीन और भेद एकल, यमक और सामुदायिक हैं।।८६,

जो झकेला ही निरपेदारूप में लक्षणयुक्त गीत गाता है, वह 'एकल', मिलकर दो गाने वाले 'यमल' झौर झनेक के साथ मिलकर गाने वाला 'वृन्दगायन' है, इनमें प्रत्येक की झपेक्षा उससे पूर्व ओट है।

भ्रव उनमें गुणों के बाहुत्य भ्रौर अल्पत्व के कारण तारतस्य कहा जाता है।

१. (क) यक्कलो ।२ (क) क्षा

'प्रयोगे सुबटत्वरूव रागरावाञ्जकोशलम् ।
जितस्रमत्वं कण्ठस्य वस्यत्वमवधारणा' ॥१२॥
मध्ये मध्ये च रागस्य प्रौढौचित्योपवेशनम् ।
शिक्षा च सदुपाध्यायानुत्तमे गायके गुणाः ॥१३॥
एवां मध्ये गुणींद्वत्रीविहीनो मध्यमो मतः ।
चतुभिः पञ्चभिर्वापि गुणींद्वीनः कनिष्ठकः ॥१४॥
उत्तमोत्तमपूर्वञ्च भेदजातमथोच्यते ।
शुद्धं छायालगञ्जीव गतिमालप्तिसंयुतम् ॥१५॥
स्थानत्रयेण यो गायेत् स भवेदुत्तमोत्तमः ।
स्थानकदितयेनैतत् गायन्तुत्तममध्यमः ॥१६॥
एकस्थानेन यो गायेत् स भवेदुत्तमाधमः ।
स्थानत्रयेण यश्चुद्धगीतमालप्तिसंयुतम् ॥१९॥

वित्रध मालप्तियों में चातुर्य्यं, यह धौर मोक्ष में दक्षता, तीनों स्थानों का प्रयोग, गम्भीर धौर मधुर घ्वति, सभी वस्तुएँ गाने का सामर्थ्यं, तालकता, मुरेखता, प्रयोग में मुयद्दयन, रागरागाञ्चमें कीशत, जितक्रमता, कच्ठ पर मधिकार, धारणा, राग के मध्य मध्य में प्रौडताजन्य भीचित्य का स्योग तथा अच्छे गुरु से प्राप्त शिक्षा ये गुण उत्तम गायक में होते हैं।

इनमें दो तीन गुणों से हीन मध्यम और पाँच गुणों से हीन कनिष्ठ होता है।

अब इनके उत्तमोत्तम इत्यादि प्रकार कहे जाते है। जो व्यक्ति शुद्ध भीर छायालग राग में आजित्युर्वक गीत गाता है, वह उत्त<u>मोत्तम है,</u> जो यह कार्य्य दो स्थानों में करता है, वह उत्तमम<u>ञ्</u>यम है, जो यही कार्य्य एक स्थान में करता है, वह उत्तमाधम है।

१. (क) प्रयोशेषु पुटरवं। २. (क) णे। ३. (क) तदपाध्यायात ।

शुद्ध रीत्या युनं गायेन् स भवेनमध्यमोत्तमः ।
स्थानद्वयेन चैतस्य गाता मध्यममध्यमः ॥६८॥
स्थानेनैकेन यो गायेन् स भवेनमध्यमाधमः ।
गीत छायानगे सम्यक् ग्रामध्यमध्यमः ॥६८॥
स्थानत्रयेण यो गायेन् स कनिष्ठोत्तमः स्मृतः ।
स्थानद्वयेन यो गायेन् स कनिष्ठोत्तमः स्मृतः ।
स्थानदेयेन यो गायेन् स कनिष्ठोत्तमः स्मृतः ।
स्वानेनैकेन यो गायेन् स कनिष्ठाधमः स्मृतः ।
जाते गायकयोवदि शुद्धे छायानगेऽथवा ॥१०१॥
सूडौ ठायौ तयोरत्र प्रवश्येते यथाकमम् ।
एलादिसूड विषम शुद्धे गानु प्रदापयेन् ॥१०२॥
ग्रामध्यानये दथान् धुवादि विषम तथा ॥१०२॥
ग्रामध्यानये दथान् धुवादि विषम तथा ॥१०३॥
ग्रामधित तादृशीमेव स्थायमपि दशाङ्गुलम् ।
इत्युक्तेन प्रकारेण गुणदोषान्निस्य च ॥१०४॥

जो गायक शुद्ध राग मे तीनो स्थानों का प्रयोग करके आलप्तियुक्त गीत गाता है, वह मध्यमोत्तम, जो दो स्थानों में गाता है, वह मध्यमध्यम (६६-८६) श्रीर जो एक स्थान मे गाता है, वह मध्यमाधम है।

जो प्रावित्युक्त गीत छायालगराग में तीनों स्थानों का प्रयोग करके गाता है, वह कनिष्ठोत्तम, जो दो स्थानों का प्रयोग करके गाता है, वह कनिष्ठमध्यम और जो एक स्थान का प्रयोग करके गाता है, वह कनिष्ठाध्यम है।

शुद्ध और छायालग राग में दो गायकों के वाद के समय दिये जाने बाले सुड और स्थाय कहे जायेगे ।

शुद्धराग के वाद में एलादि विषम सुड ग्रौर वैसी ही ग्रालप्ति ग्रौर एकादश ग्रडगुन का स्थाय छायालग राग में घृवादि विषम सुड, वैसी ही ग्रालप्ति ग्रौर दशाङ्गुन स्थाय देना चाहिये।

तारतस्यं तयोक्तत्वा दशाज्ययपराजयौ । गायकानाञ्च निर्दिष्टा गुणदोषा मनीषिमः ॥१०५॥ तयैव गायनीनाञ्च ज्ञेया गीतविशारदैः ।

गाने योवितां प्रमुख्यम्-

प्रामुख्यं योषितामेव गाने भवति कुत्रचित् ॥१०६॥ नृणां तदनुसारेण प्रामुख्यं वा विधीयते ।

तथा चादिभरते*---

प्रायेण तु स्वभावात् स्त्रीणां गानं नृणाञ्च पाठ्यविधिः । स्त्रीणां स्वभावमधुराः कण्ठाः नृणां च बलवन्तः ॥१०७॥ यः स्त्रीणां पाठ्यगुणो भवति नराणां च गानमधुरत्वम् । ज्ञेयस्सोऽलङ्कारो नहि स्वभावो हायं तेषाम् ॥१०५॥ यद्यपि पुरुषो गायति गीतविधानं तु लक्षणोपेतम् । 'स्त्रीविरहितः प्रयोगः तथापि न सुखावहो भवति ॥१०६॥

पूर्वोक्त प्रकार से गुण-दोधों का निरूपण ग्रीर तारतम्य का निरूपय करके जय-पराजय घोषित करना चाहिये।

बुद्धिमानों ने गायकों के जो गुण-दोष बताये हैं, वही गायिकाओं कें भी समक्षे जाने चाहिये ≀

कही गान में नारियों की प्रमुखता होती है भौर कही पुरुषों की। भादि-भरत के अनुसार —

स्वभावत तो गाना स्त्रियो का ग्रीर पाठ्यविधि पुरुषों की है स्त्रियों के कण्ठ स्वभावतः मधुर ग्रीर पुरुषों के बलवान् (भारी) होते हैं।

जो नारियों में पाठ्यगुण (वाद्य गुण) और पुरुषों मे गानमाधुर्यों हो, तो वह 'अलक्कूपर' है, स्वभावज नही ॥६८-१०८॥

यद्यपि पुरुष लक्षणयुक्त गीतिविधान गाता है, तथापि नारीविहीन

भवत परमाविमरतीम्तं पक्तियोवसक मुप्तितं सङ्गीतसारे नास्ति । नाट्यशास्त्रस्य बोक्तम्बासंस्करणे, बटीवर तंस्करणे च क्वाचित्राठभेषतुक्तो विषय एव प्राप्यते । नाट्यशास्त्र चौक्तम्या संस्करणे गाठान्तरम् – १. वाक्वगुणो । २. नृणा । ३. मवति । ४. नेता । ४. मायुर्यपुणिविहीलं शोआवननं व तत् पाति ।

एवं स्वभावतिद्धं स्त्रीणां गानं, नृणां च पाठ्यमिषि ।

प्रपरस्यसम्पन्नं कार्यं चायत्ननिष्यन्नम् ॥११०॥

भाग्यंण देवपाध्यवसेनापति मुख्यपुरुषभवनेतृ ।

भाग्यन्तरप्रयोगो भवत्यपुरुषोऽङ्गनाबद्धः ॥१११॥

भूतिक्ठः स्त्रीत् कर्तव्यः प्रयोगः पुरुषाभयः ।

भरमात् स्वभावतः स्त्रीणां चेष्टा प्रीतिकरी भवेत् ॥११२॥

नित्यं व्यायामयोगेन' नृणां भवति सौष्ठवम् ।
स्वभावतस्तु मधुरं स्त्रीणामञ्जविद्यतम् ॥११३॥

एषं नृश्वः सदा स्त्रीणां मुण्येष्टव्यमेव तु ।
गावं वाष्यं च पाठ्यम्य नानाप्रकृतिकमभवम् ॥११४॥

प्रवेद्वयमं भवेत्स्त्रीणां गानपाठिकयास्वयः ।

प्रयोग सुकदायक नहीं होता। इस प्रकार नारियों का गान और पुरुषों का पाट्य (प्रयवा वादागुण) स्वभावसिद्ध है। इनका अपरस्परसम्पन्न (स्वतंत्र) कार्य्य प्रयत्त के विना ही निष्पन्न हो जाता है। प्रायः यन्तिर, राजभवन, सेनापति तथा मुस्थपुरुषों के भवनों में पुरुषहीन एवं अङ्गननाश्चित प्रयोग होता है। १०६-१११।

नहि तत्कण्ठमाधर्यं पुरुषेषु भविष्यति ।।११४।।

पुरुषाश्रित प्रयोग नारियों में ब्राधक करना चाहिये, क्योंकि नारियों की केट्टा स्वभावत श्रीतिकर होती है।।११२॥

पुरुषों मे मञ्जसौध्ठव प्रतिदिन व्यायाम का परिणाम है, स्त्रियों की मञ्जवेष्टाएँ स्वभावत मधर होती है।

कतः पुरुषों के द्वारा तो सदा नारियो को विभिन्न प्रकृति के गान बाद्य एवं पाठय में प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।

गान और पाठ की कियाओं में नारियों के द्वारा विस्वरता नहीं होती, उन जैसा कण्ठ माधुर्य्य पुरुषों में नहीं होगा।

१. पाठ्यविधि । २ प्रायेण दानवासुररक्षोमक्षोरगाविविधचेण्टा ।

बाक्याश्रिता प्रयोगेसवन्ति पुरुवाङ्गना बद्ध । ४ स्त्रीमिः कार्च्य प्रयत्नेन प्रयोगः —
पुरुवाश्र्य । ४. यस्यात् स्वभावोपहितो विलास स्त्रीकृतो भवेत ।

६. व्यायामयोग्याभिः । ७. एव स्त्रीणान्तु पुरुवैद्यदेष्टव्यमेव हि । ८. बाह्य ।

गायनीबादः ---

'गायन्योर्यदि बादः स्यात शुद्धे छायालगेऽयवा । स्थाय्यामेव विशेषोऽस्ति सुडालप्तिस्तु पूर्ववत् ॥११६॥ चतुर्दशाङ्गुलां स्थायीं शुद्धे दद्याद्विचक्षणैः ।

स्थायीं छायालगे दद्यात द्वादशाङगुलसम्मिताम ।।११७॥

वादिवल्लभं गीतम -³ग्रभ्यवस्थानकं गीतंतालपाटैरलक्षितम् ।

प्रयोगबहुलं रूक्षं विषमं वादिवल्लभम् ॥११८॥ बादोपयोगिनो वंजाः ---

^४जयश्रीविजयोनन्दो महानन्दाभिषस्तथा ।

वंशाश्चत्वार इत्युक्ता वादेष भरतर्षिणा ॥११६॥

वंशे बादनियमः ---ग्रथ सुडाश्च थाय्यश्च वादे^५ नियमकल्पना । इत्युक्तेन प्रकारेण गुणदोषान्निरूप्य च ॥१२०॥

यदि गायिकात्रों में बाद हो, तो शुद्ध धीर छायालग राग में सुड भीर आलप्ति तो पूर्ववत् देना चाहिये, स्थायी मे ही अन्तर है।।११६॥

विद्वानों के द्वारा शुद्ध राग में चतुर्दशाङ गुल और छायालग में द्वाद-शाङ्गुल स्थायी देना चाहिये ॥११७॥

जिसके ताल और पाट अलक्षित हो, जिसमें गुमक बाहल्य हो, जो विषम और रूक्ष हो, ऐसा अभ्यवस्थानक (बेढव) गीत बादियों को प्रिय होता है ॥११८॥

भरतऋषि ने बाद में जयश्री, विजय, नन्द भीर महानन्द नामक चार वंश उपयुक्त बताये हैं ॥११६॥

बाद में दिये जाने वाले सुडों और स्थायों के देने के नियम पूर्वोक्त प्रकार से हैं।

१. (क) गायन्त्वो, (क) गायन्या । २. (क) विशेषोक्ति । ३. (क), (ख) प्रत्युस्वानकं । ४. (क) तालपीतैरलङ्कतम् । (क) तालपादैरलङ्कतम् । अस्मत्पठितः पाठ । सिंहभूपानोद्युतः सङ्गतस्य । ५. (क) जयस्य । ६. (स) विम ।

तारतम्य तयोज्ञात्वा दद्याज्जयपराजयौ ।

वैणिक गुणा —

जितेन्द्रिय प्रगल्भरच स्थिरासनपरिष्रह् ॥१२१॥ शरीरसौष्ठवोपेत करयोजिजितश्रम '। सावधानो भयत्यक्तो रागरागाङ्गतत्विवत् ॥१२२॥ गीतवादनदक्षरच वैणिक कथितो वर ।

वैणिक दोवा ---

वृत्तित्रयानवगतिरवधानविहीनता ।।१२३।। म्रलङ्कारस्वराज्ञत्वम् विकलाङ्गत्वमेव च । रागगीतस्वराणा च वादनेष्वसमर्थता ।।१२४।। इत्याददयस्समृद्दिष्टा दोषा वैणिकसश्रयाः ।

ैपौरत्व सुस्वरत्वञ्च घनत्व फूत्कृते गुणा ।।१२५॥ बांत्रिक गुणा —

ग्रर्थमुक्तिरमुक्तिश्च मुक्तिश्चेत्यड्गुलीवहा । ग्रगुलीसारणास्तासुगमकेषु च सप्तसु ॥१२६॥

गुणदोषो को जानकर उनका तारतम्य निर्णीत कर ज्य-पराजय का कथन उचित है।

जितेन्द्रिय, प्रगत्भ स्थिर श्रासन और परिग्रह से युक्त, शरीर-सौध्यतसप्तन, श्रमजयी सावधान निभंय, राग-रागाङ्ग मर्मज गीत-वादन मे दक्ष वैणिक श्रेट्य है।

तीनो वित्तियों के विषय में श्रज्ञान श्रवधान का श्रभाव श्रवज्जारों के स्वरों से श्रपरिचय विकलाञ्जता, राग और गीत के स्वरों का वादन करने में श्रसामध्यें (१२०-१२४) इत्यादि वैणिक के दोष बताए गए हैं।

भराव, सुस्वरता और प्रागढता ये फुक के गुण है ।।१२४।।

अर्धमुन्ति अमुन्ति, और मुन्ति ये श्रेंगुलियो के द्वारा स्वरनिष्पादन की त्रियाएँ है, उनमे तथा सातो गमको मे निपुणता, सुस्थानता, सुरागस्व,

१ (स) विजिताश्रम । २ '(क) भवत्युक्तो । ३ (क)सौरत्व । ४ (क)स्युक्तते ।

सुस्थानता सुरागत्वं दक्षता गीतवादने । क्रियाभाषाविभाषासु रागरागांगयोरिष ॥१२७॥ स्वस्थाने चाप्यवस्थाने रागनिर्माणनैपुणम् ॥ गात्,णां स्थानदातृत्वं तद्दोषाच्छादनं तथा ॥१२८॥ एवमादिगुणैर्यक्तो वांशिकः प्रवरो मतः ।

वांशिकदोषाः --

फूत्कारस्खलितः स्तोकयमलस्फूत्कुतस्तया ॥१२६॥ निन्दनीया इमे प्रोक्ता वशविद्याविद्यारदैः । वहणिः कस्पितौ मुर्थस्वस्थानाप्राप्तिरेव च॥१३०॥ प्रमध्याप्रयोगप्राचुर्य्यमज्ञत्व गीतवादने । एते दोषा विशेषेण वांशिकस्य प्रकीतिताः ॥१३१॥

बादक श्रेण्यः —

रागे गमकं गीत च शुद्धे छायालगेडथवा । यो वादयेत् स विजयो वादकेषूत्तमोत्तमः ॥१३२॥ वाद्यन्ते रागगमका येन रागास्च केवलाः । तावभौ च कमाञ्जेयावृत्तमे मध्यमाथमौ ॥१३३॥

गीत के वादन में दक्षता, कियाजू, भाषाजू, विभाषा, रागतथा रागामों में नैपुष्य, स्वस्थान भौर अवस्थान में राग निर्माण का कौशल, गायकों को स्थान दिखाना भौर उनके दोषों को छिपाना इत्यादि गुणों से युक्त बांशिक श्रेष्ठ है।

फूँक से फिसलने वाला, कम साँस वाला तथा एक ही समय दुहरी फक मारने वाला ये वाशिक वशविशेषक्रों की दृष्टि मे निन्छ है।

सिर का (बकरे की भाँति) हिलना, स्वर कांपना, तारस्थान की स्रम्राप्ति, मिथ्या प्रयोग की स्रधिकता और गीतवादन में सज्जान ये वांशिक के दोष विशेषतया बताये गये हैं ॥१२६-१३१॥

शुद्ध भीर छायालग राग में जो गमक भीर गीत का वादन करता है, वह उत्तमोत्तम वादक है, जो राग भीर गमक बजाता है, वह 'उत्तममध्यम' भीर जो केवल राग बजाता है वह उत्तमाधम है।।१३२-१३३।।

१. (क) निर्वाण । २. (क) गातृस्यं । ३. (क) सूर्वः । ४. (क) नित्मा । ५. (क) तया।

रावे च गमकं गीतं शुद्धे यो वादयेत्तथा । वादकः स परिज्ञेयो गीतज्ञैमंध्यमोत्तमः॥१३४॥

बाद्यन्ते रागगमका येन रागाश्च केवलाः ।
ताबुभी च कमाज्ज्ञेयौ मध्यम मध्यमाधमौ ॥१३४॥
रागे च गमकं गीतं सालगे यश्च बादयेत् ।
बादकस्स परिजेयो जघन्येपूलमो बुगैः ॥१३६॥
बाद्यन्ते रागगमका येन रागाश्च केवलाः ।
ताबुभी च कमाज्ज्ञेयौ जघन्ये मध्यमाधमौ ॥१३७॥

बादकबादनियम —

वादे वैणिकयोजित तथा वांशिकयोरिष ॥१३८॥ वादने रागगमकौ तालपाण्याः प्रदापयेत् । शुद्धसालगयोः सुडौ पूर्ववच्च परस्परम् ॥१३६॥

प्रत्येक नवधा जेयावित्थ वैणिकवांशिकी।

जो बुद्ध राग में राग, गमक श्रीर गीत वजाता है, वह मध्यमोत्तम, जो राग श्रीर गमक वजाता है, वह मध्यममध्यम श्रीर जो केवल राग बजाता है, वह मध्यमाध्यम है।।१३४-१३४॥

सालग राग में जो राग, गमक ब्रौर गीत का वादन करे, वह जघ-न्योत्तम, जो राग एव गमक का वादन करे, वह जघन्यमध्यम ब्रौर जो केवल रागों का वादन करे, वह जबन्याधम है ॥१३६, १३७॥

इस प्रकार वैणिक और वाशिक नौ नौ प्रकार के है।

वैणिको में या वांशिकों में परस्पर वाद होने पर तालपाणि (!) के रागगमक देना चाहिये, शुद्ध और सालग में सूड का दान पूर्ववत् होना चाहिये। परस्पर उनमें तारतम्य निश्चित करके जय-पराजय का निर्णय उचित है।

१. (क) बार । २. (क) तालपट्या ।

तारतम्य तयोर्जात्वा दशाञ्जयपराजयी । कविताकारथेण्य —

'विद्वान् कुलीनो मिनमान् नीरोगो रूपवान् शुचि ॥१४०॥
पण्मार्गकालभेदको यतिप्रहिविशारद ।
मावापादिकियाज्ञस्य तथैव प्र्युकादिवित् ॥१४१॥
ययावाद्याक्षराणाञ्य पाठप्रकटने पटु ।
कत्तां कुलकवाद्यस्य तालवाद्यविधानवित् ॥॥१४२॥
र्ययाक्षरविनिष्पत्तिस्तर्येव यतिपूरक ।
चतुल्लादितालेषु वन्धवाद्यकृतिक्षम ॥१४३॥
वाद्याक्षराणा सम्बन्धेव्वयाँत्पादनकोविद ।
प्रशस्तकविताकारो गुणैरीमस्समन्वित ॥१४४॥
एभ्यो ये विपरीतास्ते दोषास्सद्भिरुद्याहृता ।
मर्ययुक्तस्य वाद्यस्य कर्ता स्यादुक्तमाभित्र ॥१४४॥
तथैव वन्धवाद्यस्य कर्ता स्थम् ईच्यते ।
कर्ता कुलकवाद्यस्य कर्नाण्डः कथितो बुवै ॥१४६॥

विद्वान्, कुलीन, बुद्धिमान् नीरोग रूपवान्, गुद्ध, छ मार्ग और काल के नेद का समंत्र, यति एव ग्रह में निपुण धावाप इत्यादि फिंबाकों का झाता, उसी प्रकार ध्रुवका इत्यादि (मात्राको) का ममंत्र, वाव्याखरी के धनुसार पाठ के प्रकटन में पट्ट कुलकवाद्य का रचित्ता, तालवाखिषाका का बेता, यवाखरविनिणादन में कुशल प्रक, जतुरल इत्यादि ताली में बन्खवाद्य की रचना में निपुण, वाद्याखरों के सम्बन्ध में धर्म का उत्यादन करने में कुशल व्यक्ति श्रेष्ठ कविताकार कहलाता है। इनने विपरीत करमें दोष कहे गये हैं।

मर्थयुक्त वास का कर्ता उत्तम, वन्धवास का ऋष्टा मध्यम मौर कुलकवास का प्रणेता कनिष्ठ कहलाता है ॥१३७-१४६॥

१ (क) विद्यात्। २ (क) वाद्याक्षरत्नीया । ३ (क) पाठ । ४ (क) वधाक्षर ।

कविताकारयोषदि गुणदोषैस्तदीयकैः। तारतम्य तयोर्जात्वा दद्याज्जयपरायौ १४७॥

शंभवादक ---

सर्वेन्द्रियेष्विकलो निपुणो निश्चलः स्वयम् । प्रश्नदोषपरित्यक्त प्रालापस्य प्रमाणवित् ॥१४८॥ सुस्वरः सुस्वरातोद्यवेदिता । सम्प्रदायिकः । नादवृद्धिक्षयज्ञस्य प्रहमोक्षेऽप्यलक्षितः ॥१४६॥ तालप्रपञ्चकुशलः समादिग्रहवेदिता । न्यासापन्यासकालज्ञस्ताल कोणप्रहारवित् ॥१६०॥ लघुहस्तो विधानजः कलावेक्ता जितश्रमः । ।१६१॥ ज्ञाता कुलकवाद्यस्य न्यासापन्यास कोविदः । गीते वाद्ये च नृत्ते च छिद्रावरणपण्डितः ॥१६२॥

कविताकारों के वाद में उनके गुण दोषों के द्वारा तारतम्य निश्चित करके जय-पराजय निश्चित करना चाहिए ।।१४७।।

सब हिन्द्रयों मे मिनन (पूर्ण) निपुण, निश्चल, माञ्जदोध-हीन, म्रालाप के प्रमाण से सुर्पारिचत, सुस्वर, मुस्वर मातोध का जानने बाला (बादक), सम्प्रदाय से सम्बद्ध, नाद की वृद्धि और क्षय को सम्रफले बसला, मुद्द और मोक्षा में न पकड़ा जाने वाला, तालप्रपञ्च में कृद्यल, समग्रह हर्स्यादि को जानने वाला, न्यास, अपन्यास तथा काल का मर्मेझ, ताल म्रीर कोण के प्रहार को समफले वाला, हस्तलाधवयुक्त, विमानस, कलावेत्ता, जितम्रम, तालानुग, लयज, ताल मौर गीत का म्रनुगामी, कुलक बाद्य का ज्ञाता, न्यास एव म्रपन्यास मे कोविद, गीत, वाद्य मौर नृत्त के समय दोधों का मावरण करने में निपुण, दृढ प्रहार करने पर भी न थकने वाला रङ्कक वादक शुम है।

१. (स) वादिता। २ (स) तल। ३. (स) वितानज्ञः। ४. (स) कालवेता। ५. (क) भेदावरण।

दृढप्रहारोऽप्यक्षुब्धो 'रञ्जको वादकः शुभः।

वादकशोषाः--

खिन्नाङ्गत्वं जडत्वं च भीतिनिरवधानता ॥१४३॥ चञ्चलत्वमदक्षत्वमप्रगत्भत्वमेव च ।

ैरागे रागाधिकत्वञ्च शास्त्रश्रवणहीनता ।।१५४।। इत्यादयः समृद्दिष्टा दोषा वादकसश्रयाः ।

इत्यादयः समुद्दिष्टा दोषा वादकसश्रयाः पञ्च सञ्चाः —

स्कन्धस्य मणिबन्धस्य कूर्पराङ्गुष्ठयोरिष ॥१५५॥ बामस्य चरणस्यापि कम्पात्सञ्चस्तु पञ्चधा । सञ्चभेदात्पाटहिकस्त्रिधा हौडुविककोऽपि च ॥१५६॥ उत्तमादिप्रकारेण तत्स्वरूपन्निरूप्यते । पटहवादकोटयः –

मङ्गुष्टमणिबन्धोत्य[®]सञ्चात्पाटहिकः शुभः ॥१५७॥ सञ्चात्कूर्परतो^ष जातान्मणिबन्धाच्च मध्यमः ॥ स्कन्धकूर्परसञ्चेन यो वादयति सोऽधमः ॥१५८॥

पञ्जों का पसीजना, जडता, भय, प्रसावधानता, चञ्चलता, प्रद-सता, प्रप्रगत्भता, राग में प्रमुराग का श्राधिक्य ग्रीर शास्त्रश्रवण का प्रभाव इत्यादि वादकों के दोष है।

⁻⁻ कन्धा, कलाई, कुहनी, ग्रेंगुठे ग्रीर वार्ये चरण के कस्प से 'सञ्च' पौच प्रकार का है। सञ्चभेद से पटहवादक, ग्रीर हुडुक्कबादक के भी पॉच प्रकार हैं।।१४८-१५६।।

उत्तम धादि प्रकार से उनका निरूपण किया जा रहा है। बहु पाटहिक 'श्रेष्ठ' है, जिसके दोनों आँगुठों और कलाई में कम्पन होता है, कुहुनियों भीर कलाई में सञ्च से 'मध्यम' होता है भीर जिसकी कुहुनिय़ाँ भीर कन्ये हिले, यह वादक प्रथम है।

रै. (क) प्रहारे । २. (क) रागरागादिकत्वं, (ल) रागरागाधिकत्वञ्च । १. (ल) वरवोव. । ४. (स) कुर्गरजो ।

हौडुविकककोटयः —

त्रिसन्धिषालनाज्जातसञ्चादौडुनिककः शुभः ।
सञ्चात्कूपैरतो जातान्मणिबन्धातु मध्यमः ॥११६॥
वामपादप्रकम्पोत्थसञ्चादौडुनिककोऽधमः ।
य एव गुणदोषारच वादकेषु निरूपिताः ॥१६६॥
मार्दाङ्गकेष्वमी केचित्सञ्चात् भेदोऽपि विद्यते ।
उत्तमोत्तमपूर्वञ्च भेदजातमथोच्यते ॥१६६॥
तालवाद्य त्रिमार्गेषु गुद्ध सालगगीतयोः ।
पेरणस्य च गोण्डिल्याः पेक्खणस्य च वाद्यते ॥१६२॥
येन लक्षणसयुक्त स भवेदुत्तमोत्तमः ।
तालवाद्यं न जानाति मार्गलक्षणसज्ञके ॥१६३॥
पूर्वोक्तलक्षणोपेतः स स्यादुत्तममध्यमः ।
दक्षिणं वातिके तालं वाद्यं नैवावगच्छति ॥१६४॥

वह हुडुक्कवादक श्रेष्ठ है. जिसकी त्रिसन्धि में सञ्च हों, कलाई ग्रौर कुहनियों में सञ्च वाला 'मध्यम' ग्रौर वाये पैर को उठाकर हिलाने वाला 'मधम' है।

इस प्रकार हुडुक्कवादको के गुण-दोषो का निरूपण कर दिया, मृदङ्ग वादको मे भी कुछ गुण दोष होते हैं, सञ्च के कारण कुछ मन्तर भी है।

धव उत्तमोत्तम इत्यादि भेद कहे जा रहे है। जो तीनों मानों में शुद्ध सालग गीतों के साथ तालवाध बजाता है, पेरण, गोण्डली ध्रीर पेक्खण का भी वादन करता है, वह लक्षणयुक्त वादक 'उत्तमोत्तम' है। जो मार्ग लक्षणों में तालवाध न जानता हो, परन्तु जिसमें ध्रविष्ठिप्ट लक्षण हों, वह 'उत्तममध्यम' है, जो दक्षिण धीर वातिक माग में ताल धीर वाख न जानता हो, वह 'उत्तमाधम' है।

सेपलक्षणसंयुक्तः स अवेदुक्तमाधमः ।
शुद्धसालगगीतानां येन नृक्तत्रयस्य च ॥१६५॥
तक्तन्मानानुसारेण स स्यान्मध्यममध्यमः ।
येन' सालगगीतानां नृक्तानामिष' कौशलम् ॥१६६॥
वाद्यते लक्षणोपेतं स भवेन्मध्यमाधमः ।
वाद्यते पेरणाख्यस्य गोण्डल्याः पेवखणस्य च ॥१६७॥
येन' लक्षणसंयुक्तः स जधन्योक्तमः स्मृतः ।
पेरणस्य गोण्डल्याः वादकस्तेषु मध्यमः ॥१६५॥
गोण्डल्या वादकस्तज्जैरधमः परिकोतितः ।
यदि वादो भवेतालवाद्यवादकयोस्तदा ॥१६६॥

तालवाचवावकवावः--

तालवाद्यं चन्द्रकलां त्रिगुणां च प्रदापयेत् । नीमकारकयोर्बाटः —

गीतवादकयोवदि सुडमेलादि संज्ञकम् ॥१७०॥

(मध्यमोत्तम का लक्षण मूल में नहीं है परन्तु) जिसमें मबशिष्ट लक्षण हों जो शुद्ध एवं सालग गीतों भीर तीनो पूर्वोक्त गीतों का वादन उनके प्रमाण के श्रनुसार करता हो, वह मध्यममध्यम है, जो (केवल) सालग गीत शीर नृत्त ही लक्षणानुसार बजाता हो, वह मध्यमाध्रम है।

जो वादक पेरण, गोण्डली और पेक्खण का लक्षणयुक्त वादन करता है, बह 'जघन्योत्तम', पेरण और गोण्डली का वादक 'जघन्यमध्य' और गोण्डली का वादक 'जघन्याधम' है।

यदि तालवाद्यवादकों में वाद हो, तो तालवाद्य और त्रिगुणा चन्द्र-कला देना चाहिये।

गीतवादकों में वाद हो, तो एला मादि सूड ग्रौर चित्रा पद्धति देना चाहिये। वाद का न्याय पूर्वोक्त है।

एतत्पूर्वं मध्यमोत्तमबादकलक्षणमादकंद्ववेऽपि नास्ति ।

१. (स),नुसानां प्रति ।

२ (क) हीन ३. (क) भावे । ४. (ख) सूडमेकादि ।

नृत्तवादकयोर्वादः---

'चित्राञ्च पद्धति दद्यात् 'वादन्यायःपुरोदितः । नृत्तवादकयोवदि वाद्यमोतादि दापयेत् ॥१७१॥ तत्तद्विद्यावद्यादेव मान्यानपि³ परीक्ष्य च । तारतस्यं तयोजीत्वा दद्याञ्जयपराजयौ ॥१७२॥

नर्तक कोटय --

सर्वप्रयोगकुशलः मुरेखोऽन्तमुं खस्तथा । प्राज्ञः कलाज्ञस्तालज्ञो नर्तनासु विशारदः ॥१७३॥ व्यतितालकलाभिज्ञो लयविद्विजितेन्द्रियः । 'पात्रसङ्कमणोपायकुश्रलो नर्तकः स्वयम् ॥१७४॥ अङ्कामत प्रयोगाणां मुख्यनृत्तस्य वैदिता । शिष्यिनिष्पादको न्यूनाधिकविद्यत्तमःसरः ॥१७४॥ चार्य्यं ज्ञहारुकुशलः खण्डमण्डनपण्डितः । 'नानादेशसमुरथस्य देशीनृत्तस्य वैदिता ॥१७६॥

नृत्त वादकों के बाद में 'श्रोता' ग्रादि वाद्य देना चाहिये ॥१५७-

१७१। सम्बद्ध विद्यात्रों के अनुसार इस प्रकार अन्यों का भी परीक्षण करके उनमें तारम्य का निश्चय करके जय-पराजय का निर्णय उचित है।।१७२॥

सभी प्रयोगों में कुशल, सुरेख, अन्तर्मुंख, प्राञ्ज, कला और ताल का झाता, नतंनशैलियों में निष्णात, यित, ताल और कला का ममंज्ञ, लयज्ञ, जितिहिया, पात्र को शिक्षा देने में कुशल, स्वय प्रच्छा नतंक, शिक्षा के अनुसार प्रयोगों के मुख्य नृत्त को जानने वाला, शिष्या-निष्पादक, त्युनता अगेर प्रविकता को सममने वाला, मात्ययेहीन चारियों और अञ्जाहारों में कुशल, खण्डों के मण्डन में पण्डित विभिन्न देशों में उत्पन्न देशी नृहा का जानने वाला, गीत आतीय इत्यादि में निष्णुण नतंक श्रेष्ठ है।

१. (क) वित्रञ्च । २. (क) वादनाय पुरोहितम् । ३ (ख) मान्यानपि ।

^{¥. (}ख) सुरेखान्तर्मूख । ५ (ख) गीति । ६. (ख) पात्त ।

७. (क) सङ्कामक । ८ (क) बीत । ६. (क) चण्डमश समुद्दिस्य ।

'गीतातोद्यादिनिपुणो नर्तकः प्रवरः हमृतः । नर्सकदोषाः —

दोषाः — वाद्यतालयतीनाञ्च माने न्युनाधिकेऽज्ञता^३ ।।१७७।।

ैस्वतो लास्यविहीनत्वं रसभावाविवेकितां । वैरूप्यमञ्जूबैकस्यं प्रयोगेऽष्वप्यकौशलम् ॥१७५॥ देशीमार्गैविभेदेन नृत्तशिक्षास्वनैपुणम् ॥ इत्यादयस्समृदिण्टा दोषा नर्तकसंश्रयाः॥१७६॥

नतंककोटयः --

यथोक्त लक्षणोपेतं मार्गदेशीयमेव च । नृत्तं सुशिक्षयेत् यस्तु स भवेन्नर्तकोत्तमः ॥१८०॥ केवलं मार्गनृत्त यः शिक्षयेत् स तु मध्यमः ।

ग्रधमस्स परिज्ञेयो देशीनृत्तस्य शक्षिकः ॥१८१॥

बाय, ताल, यति की न्यूनता और धिषकता के सम्बन्ध में धज्ञान, स्वयं न नाल सकना, रस और भाव का अपरिचय, विस्थता,ध्रङ्गिविकतता, प्रयोगों में ध्रकुशतता, देशी और मार्ग के भेद की शिक्षा का अभाव, नृत्त शिक्षाओं में ध्रनैप्पय स्त्यादि नर्तकाश्रित दीप है। १९७३-१७६॥

जो लक्षणयुक्त मार्ग एवं देशी नृत्त की शिक्षा देता है, वह नर्तकों में 'उत्तम' है, जो केवल मार्ग की शिक्षा देता है, वह 'मध्यम' है, जो 'देशी' नृत्त की ही शिक्षा देता है, वह 'अधम' है।

लावक, भावक और द्रावक ये तीन प्रकार के नर्तक है, उनमें से प्रत्येक के तीन प्रकार है, इस प्रकार इनके भेद नौ है।

१. सङ्गीताद्योतनिपुण ।

२. (क) न्यूनाधिकाज्ञता।

३. (स) स्वरो।

४. (स) हावा **।**

५. (क) गीत।

लावको भावकद्येव द्वावकद्येति नर्तकाः । प्रत्येक ते त्रिधायेव' नवधा परिकीतिता ॥१८२॥ वादे नर्तकयोजिति सम्यगेलादिवादने । ैपादपाटेस्समुचिते पात्रसङ्कमणैरपि ॥१८५॥ रेस्वतो लास्यादपि तयोर्गुणदोषान्निरूप्य' च । तारतम्य परिज्ञाय दद्याज्जयपराजयो ॥१८४॥

वेरणसध्या गुणा -

भावकत्व रसिकता । ना भाषासु नैपुणम् ।
नानादेशसुचारित्रव्यवहारेषु दक्षता ॥१८५॥
पञ्चाङ्गपरिपूर्णंत्व रञ्जकत्व विदग्धता ॥
पौढि प्रस्तावनाक्येषु विकृताशविदग्धता ॥१८६॥
प्रभवधान तथा रागरागाङ्गादिप्रवीणता ॥
इत्यादयस्समुहिष्टा गुणा पेरणसश्रया ॥१८७॥
एभ्यो ये विपरीतास्ते दोषास्माद्भिरुवाहृता ॥
उत्तमस्तत्र विजय पञ्चाङ्गस्सम्यगन्विवः ॥१८८॥

नर्तको मे वाद होने पर एला इत्यादि के बादन, समुचित पाद-पाट पात्रो मे शिक्षा का सकमण और नर्तक के अपने लास्य से, दोनो के गुणो, दोषो का निरूपण करके जय-पराजय निश्चित करना चाहिये।

भावकरव रिसकता, विभिन्न भाषाओं में निपुणता, जनेक देशों के सुचारित्र और व्यवहार में दक्षता पाँची खड़ी में परिपूर्णता, रञ्जकत, विदायता अस्ताववावयों में प्रीढि, विकृताशममंत्रता, एकाग्रता, राग-रागाङ्ग इत्यादि में प्रवीणता झादि रेरण के गुण है ॥१८०-१८७॥

जो इसके विपरीत है वे सज्जनो ने दौष बताये हैं।

१ (क) पञ्च। २ (क) वादनतंकयो ।

३ (क) पायपाल । ४ (क) स्वय । ५ (क) ते।

६ (क) रसिकत्व । ७ य प्रसादवाक्येषु । ८ (स) त्रप्रपलान ।

षर्परापीतकैयरभौद्धो मध्यम इष्यते । नृत्तवागडकैवारनिष्ठुणेष्यवमो मतः ।।१८६॥ बादेपेरणयोजति गुणेरेभिः सभापतिः । तारतस्यं तयोर्जात्वा दद्याण्जयपराजयौ ।।१६०॥

नर्तकी गुष्पाः ---

प्रायल्म्यं सौष्ठवं रूपं यौवनञ्च सुरेखता ।
लामवं गात्रवस्यत्वं गीतावाद्यानुवर्तनम् ॥१९१॥
सौमनस्यमरोगित्वं स्मितपूर्वाभिभाषणम् ।
नात्युष्चवामनस्यूलकृशदेहत्वमेव च ॥१६२॥
वलनं वर्तनं गात्रे दक्षत्वं प्रहमोक्षयोः ।
भवितालगतिज्ञत्वं श्यामत्वं गौरता तथा ॥१६३॥
प्रवधानं सुमेधत्वं दीर्घलोचनता तथा ।
चरणन्यासचातृत्यं मलपादिषु कौशलम् ॥१६४॥
भवाजता रङ्गयोभा नानावेशिप्रदर्शिता ।
एवं गुणगणोपेता प्रशस्ता नर्तकी मता ॥१६४॥

जो मलीभीति पीचों ब जूनें से युक्त हो. वह पेरणों में उत्तम, घर्चरा गीत बीर कैवार में निपुण 'मध्यम', बीर नृत्त, वागड तथा कैवार में निपुण सम्म कहनाता है।

पेरणों में बाद होने पर सभापति को चाहिये कि वह इन गुणों के हारा तारतम्य का निश्चय करके जय-पराजय का निर्णय दे।।१८८-१६०।।

प्रगल्भता, सीष्ठत, रूप, यीवन, सुरेखता, लाघव, धाङ्गों की धाघी-नता, गीतवाध का धनुवर्तन, तीमनस्य, धारोगित्व, स्मितपूर्वक भाषण, सिक्क ऊँचा, वीना, क्रुश या स्थूल न होना, शारीर में लचक झीर खुमाव, सह बोक्स में वक्तता, यति, ताल, गित का ज्ञान, सलोनापन, गौरत्व, एका-

१. (क) वित । २. (व) वारी । ३. (क) पारितता ।

श्राञ्चितार्यं स्व विषयं प्राञ्जलं गीतसंश्रयम् । या नृत्यित समीचीन पेक्खणे सोत्तमा मता ॥१९६॥ या नृत्यित समीचीन पेक्खणे सा तु मध्यमा ॥१६७॥ विषमत्वं समीचीन पेक्खणे सा तु मध्यमा ॥१६७॥ विषम तु समीचीनं सामान्यं गीतसंश्रयम् । या नृत्यित परिजेया पेक्खणे सा कनीयसी ॥१६८॥ नतंक्योयंदि वादः स्यात् पेक्खणे तद्गुणागुणैः । तारतम्यं तयोज्ञत्वि द्याञ्जयपराजयौ ॥१६६॥

लिलभावौ तुकली च तथा मुखरसः परः।

प्रक्षोभिता कान्तदृष्टिः गामभीयं विनयस्तथा।।२००॥

ततो बहुलिकत्वञ्च रञ्जकत्वं विदम्भता।

प्रञ्जानञ्जपरिज्ञानप्रौडिमंत्सरहीनता।।२०१॥

ध्वतिः श्रेष्ठं च शारीरं तारे गानं मनोहरम्।

शारीरसादचे ठायौ ठायश्चशकपूर्वकः॥२०१॥

ग्रता. बुद्धिमता, दीर्घलोचनता, चरणन्यास में चतुरता, 'मलप' इत्यादि में कौशल, पाटजता, रङ्गशोभा, विभिन्न देशी नृत के प्रदर्शन में योध्यतक इत्यादि गुणों से युक्त नर्तको उत्तम है। जो गीताश्रित नृत्त में और-विषमत्व में मज्ज नाचती है, वह मध्यम है,जो विषम मज्जा और गीताश्रित सामान्य नाचती है, वह 'अधम' है।।१६९-१६८।।

यदि पेक्खण मे नर्तकियों का वाद हो, तो उनके गुणावगुण से तार-तम्य निश्चित करके जय-पराजय का निर्णय करना चाहिए।

लित, भाव, तुकली, मुखरस. बक्षोभ, काल्तदृष्टि, साम्भीय्यं, विनय, बहुलिकत्व, रञ्जकत्व, विदर्यवात, अङ्ग भीर धतङ्ग का भीड परिज्ञान, सत्सरहोनदा, म्वनि भीर शरीर में श्रेन्ठता, <u>दार स्थान में स्को-</u> हर ज्ञान, शरीर भीर साद के ठाव, अंशठाव, इत्यादि गुण्डली के गुण हैं।

इत्यादयस्तु गोण्डल्या गुणास्सद्भिरुदाहृताः। एभ्यो ये विपरीतास्ते दोषास्तञ्ज्ञरुदाहृताः ॥२०३ ।

गुण्डलीकोटय:---

यत्र गीतञ्च नृत्तञ्च स्यातामतिमनोहरे। नर्तकी सा परिज्ञेया गोण्डलीषुत्तमा बुधै. ।।२०४॥ सामान्यनर्तनं यत्र सम्यग्गीतं प्रवर्तते। मध्यमा कथिता सेयं गोण्डलीति मनीविभि: ॥२०४॥ यत्र प्रवर्तते सम्यक् नृत्तं गीतं तु मध्यमम्। ग्रथमा सा परिज्ञेया गोण्डलीषु विचक्षणैः ॥२०६॥ गोण्डल्योर्यदिवादः स्यादेभिरेव गुणागुणैः। तारतम्य तयोज्ञीत्वा दद्याञ्जयपराजयौ ॥२०७॥

पणबन्धे बारणीयानि:-

मतेन पणबन्धेन वादिनोर्वादकल्पना। पणबन्धे तु कर्तव्ये वादयोश्च विशेषतः ॥२० =।। ग्रत्यक्ति देहदण्डञ्च सर्वस्वहरणं तथा।

दर्वाक्यं वारयेदेव वादकाले सभापतिः ॥२०६॥

जिसमें गीत और नृत्त अत्यन्त मनोहर हो, वह 'उत्तम', जहां गीत श्रच्छा, नाच सामान्य हो, वह मध्यम और नत्त श्रच्छा और गीत सामान्य हो, वह 'ग्रधम' गोण्डली है ॥२०४॥-२०६॥

गोण्डलियों के बाद में इन्ही गुणावगुणों से तारतम्य निश्चित करके जय-पराजय का निर्णय उचित है।।२०७॥

वादियों में कर्त बाँध कर वाद होता है। शर्त होने पर सभापति का कर्तव्य है कि वह वादकाल में अत्युक्ति, देह दण्ड, सर्वस्वहरण, और दर्वचनों का तिवारण करे !।

मीमांसाद्वयवेदान्तन्यायवैशेषिकागमैः'। यड्भिस्तर्करगम्योऽपि गम्यो गीतेन शङ्करः ॥२१०॥ पाराशर्व्यपराशरौ भृगुयमौ संवर्तकात्यायना, वापस्तम्बवृहस्पतीर सुलिखितौ हारीतदक्षौ मनुः। व्यवस्तम्बवृहस्पतीर सुलिखितौ हारीतदक्षौ मनुः। व्यवस्तम्बवृहस्पतीर सुलिखितौ हारीतदक्षौ मनुः। व्यवस्त्रम्भीवसगौतमोमुनिवरश्शक्क्षोऽपि दक्षादयः, व्यवस्त्रम्भीक्ष्यस्त्रम्भीत्वत्यः।।२११॥ इति श्रीमदमयनन्त्रमुनीन्न्रचरणकमलम्बकराधितमस्तक महादेवार्यक्षिय्यस्वर्तवमलिवापुत्रसम्यक्त्यत्वृहामणि भरतभाष्टीकभाषाप्रयोगश्र्विवानत्रकर्वात सङ्गीताकरनामयेष्याद्वदेवविवरिवते सङ्गीतसमस्तारे नवमिकरणम्।

पूर्वमीमासा, उत्तरमीमासा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, झागमसमुदाय तथा छहो तकों से भी ग्रगम्य शङ्कर गीत के द्वारा गम्य है ।।२१०।।

वेदव्यास, पराक्षार, भृगु, यम, संवर्त, कात्यासन, आपस्तम्ब, बृहस्पति, सुनिवित, सुनिवित, हारित, दक्ष, मनु, विष्वामीव, गौतम, सुनिवर क्षक्क और दक्ष हत्यादि सभी मुनियो ने अपनी उदिनयों के द्वारा गीत को मोक्ष दायीं कहा है।।२११।

श्रीमव् अभयवन्द्र मुनीन्द्र के चरण कमलों मे मघुकरवत् आचरण करने वाले मस्तक से युवत महादेव आर्थ के शिष्य, स्वरविद्या से युवत, सम्यक्तवव्हामण, भरत-भाष्टीक- भाषाप्रवीण, श्रृतज्ञानवक्रवर्ती संगी-ताकर नाम वाले पाव्वेदेव द्वारा विरिचत सगीनसमयसार का नवस अधिकरण पूर्ण हुआ।

१. (क) मनौ ।

२ (क) चसरभी।

३. (क) विष्णत्री च सगौरमौ।

४. (क) सर्वा

द्वितीय खण्ड परिशिष्ट

भाग (क)

परिशोधन विनादशें यथोप्यलभ्यते तथैव प्रकाश्यते ।

ताल शब्दस्य निष्पत्ति प्रतिष्ठार्थेन धातुना । स ताल कालमानायः कियाय परिकल्पत ॥

इन्द्रवज्ञा-

तालद्वय कासमय त्रिहस्त,

शाखानन दिवमान पिण्डम्।

गुञ्जा प्रमाणाच्छिद्रितमध्य निम्नम्, विस्तारम्प्यड्गुल युग्ममेव ॥

ত্ৰদৈৰআ —

परस्पर सम्निभमेववर्त् ल,

विचित्र पट्टाविल पाश बन्धितम् ।

कनिष्ठिका नामिक मध्यमाइगुली,

प्रसार्य साड्गुष्ठक तर्जनी द्रुतम ॥ सब्येन हस्तेन तु ताडनीय,

तथ्यन हस्तन तु ताडनाय, क्रमेण मध्ये रमणीय नादम् ।

बिन्दूक्त भक्ति शिव स्वरूप, माधारमाधेय वशादनिन्द्यम् ॥

मनोगा हस्तगा चास्य द्विविधा मान कल्पना । प्रमाण मानस यक्तु चतुर्माग इतीरित ।। हस्तागमनमान यत्तदर्व ध्रुवमुज्यते । म्रङ्गुलि द्वय सयोगान्मनोग सार्घ पादक ॥ छोटिका कालमान यद्विन्दुस्ताल सुहस्तग । बिन्दुम्या तु लघु प्रोक्त लघुभ्या तु गुरु स्मृत । लैस्त्रिभिरच प्लुतो ज्ञेयमिति मानमुदाहृतम् ॥

वि॰वृ० |

समताल सु मध्य विवर्तित समयोऽयमभूरलयनारलयः।

द्रुतमध्य विलम्बित मानत त्रिविघोलयभेदमुदाहृत ।।

प्रोक्ता यति स्याल्लयमानमाना त्रेघेति पश्चादनति कमेण।

चित्रादि मार्गेषु यतिस्समा स्यात् स्रोतो वहो गोकुल पुच्छकेति ।।

ग्रहिल्घा समोतीतस्तथा नागत इत्यपि । गीत वाद्ये च नृत्ये च सममेव प्रवर्तते ॥ यस्तालस्य तु विजये समग्रह समाह्वय । किञ्चिद्गीते समारक्ये वाद्ये नृत्ये तथा पुन ॥ ग्रहण यत्र तालस्य सोतीत ग्रह इच्यते । योलङ्कारेण गीते स्यात् तकारेण च वादने ॥ नृत्याङ्ग वर्तनेस्सार्ध सतालो नागत ग्रह । प्रस्तार सङ्गयया गुक्त नष्टमुहिष्टमेव हि ॥ एकद्वयादि लघूपेत मध्य योग प्रचक्षमहे । प्रकाराणि प्लुत यावत् तदमावे गुरुन्यसेत् ॥ लघुर्वा तदभावे स्यात् द्रुत शेष यथोचितम् । भाग-

दलगप मभ्यमे प्राक्तन पिण्ड भित्वा यथाक्षरम् । रचयेत्तन्सममालिख पुरतो तदहलघु बिन्दुतामेति ॥

। इति प्रस्तार सूत्रम् ।

एकेनैव द्रुतेन स्थादेक तालीति सजया।
प्रादि तालो लघु प्रथमज आदि तालो लघु स्पृत अयमेवरच्चाल—
ताल तद्वितीय।

एकेन सविरामेन लघुना लघु शेखर ।। इत इन्द्र विरामान्त कीडाताले प्रकीर्तित ।

श्रयमेव चण्ड निस्सारू एतेत्रयस्ताला द्रुतलघुरवान्तर भेदा श्रादि तुरङ्गलीलाग तद्वितीय भेदा निस्सारू सत्रितयभेदस्तुरगलील ।

तुरङ्ग लील ताले स्यात् द्रुत द्वन्द्व लघुस्तत ।।

श्रयमेव द्वितीय ताल । श्रयमेव विरामान्तर्वेत ऋग्याताल तरप-ञ्चम भेद प्रतिताल तोवृतौ प्रति तालस्य । ततवष्ठ भेद । करणयिति ताल करणयात्याख्या ज्ञेय विन्दु चतुष्टयम । श्रयमेव भोजदेवकृत द्वितीयताल ।

म्रयमेव विरामान्तश्चैतदायुगलततः कुर्याल्लघुड्कृते ।

लघु द्वन्द्व विरमान्त ताले निस्सारूगे भवेत्। गारुगि कथ्यते प्राज्ञैः विरामान्तश्चतुर्द्गुतम्।।

श्रयमेव रित ताल एतेत्रयस्ताला आदि वर्धनावान्तर भेदा । आदि रित ताल तद्वितीय भेद रित ताल ।

रित ताले लघु कार्य ततस्चेको गुरु स्मृत ।

ततृतीय भेदाद्पंण ---

दर्पण स्याद्द्रतद्वन्द्व गुरुश्चेक प्रकीतित । भ्रयमेव विरामान्तश्चेन्मदनः तत्पञ्चम भेद ॥

हसलीलाताल -हंसलीले विघातव्यं सविराम लघु द्वयम् । तत षष्ठभेद कुडुक्कताल -द्वतद्वय लघद्वन्द्व भवेत्ताले कुडक्कके ॥ नत्पञ्चादश भेदो वर्णताल — लघद्वय द्रुतद्वन्द्व वर्णताले प्रकीतिता । तदेकोनविशति भेद घटताल --षटताल सज्ञके ताले बिन्द्षटक निरन्तरम् ॥ म्रादिसिहलीलादया, तद्वितीय भेदो राजमृगाञ्च -एकोद्धतो लघुश्चेको यत्रैकश्च गुरुभवेत् । इय राजमृगाङ्केति यतितिष्ठा मनीषिणा ।। तत्त्रयोदशभेद सिहलीलाताल ---सिहलीले विधातव्यं लघ्वाद्यन्त द्रतत्रयम ॥ तद्ददादशभेदो राजमार्तण्ड :---गहरेको लचुश्चेको यस्याचेको द्रता भवेत ।। राजमार्तण्ड सजैषा यतिमानविशारदाः ॥ तदष्टादशभेदश्चत्स्ताल -चतुस्तालो गुरुश्चैक ततो बिन्दुत्रयं भवेत् ॥ भ्रादिवर्ण भिन्नो लया । श्रयमेव स्रभङ्गताल तच्चतुर्थं भेदो मद्रा-सगणो भगणो वापि मद्रोति परिकीर्तिता ।

सगणो भगणो वापि महोति परिकीतिता ।

प्रथमेवोदीक्षण ताल तत्पञ्चमभेदो लिलत ।

ताले लिलित सज्जे स्थात् दुतद्वन्द्व लघुर्गृहः ।

प्रथमेव वर्णभेद भिन्न । तत्स्यमभेदो वीर विक्रम
वीरिविकमताले तु लोदुती च गुरुस्तत ।

तवस्य तत्समभेदो रङ्ग शाल चतुर्दृतगा । त्रयोदक्षभेदो गजलोला
। वत्यं वत्समभेदो रङ्ग शाल चतुर्दृतगा । त्रयोदक्षभेदो गजलोला

तत्त्रिचत्वारिशत्तमभेदो राज विद्याधर । लघुवंको दुतौ ताले राजविद्याधराभिषे ॥

षडुत्तरपञ्चाशद्भेदो मल्लिकामोद —

ताले स्यान्मल्लिकामोदे लद्वयाश्च चतुष्टयम् ॥

ध्रादि ढेकि गपौ । तत्तृतीयभेदो ग्रानन्द वर्धन वर्धने बिन्दु युगल तत कार्यो लघु प्लृत तदष्टम भेदो विषम कङ्काल —

एकोलघुर्गुरुद्वन्द्व कङ्काले विषमे भवेत्। तन्त्रव भेद खण्ड कङ्काल —

द्रुतद्वय गुरुखण्डे खण्ड कङ्काल नामनि ॥ तहशम भेदो ढेड्सि ताल —

. ढेड्किकार गणे नस्या तेशोचित्सैवयोजने ।

तच्चतुर्दश भेदो मुकुन्द — मुकुन्द सज्ञके ताले लघुर्बिन्दू लघुर्गुरु ॥

मुकुन्द सञ्चक ताल लयु।बन्दू लयुगु र ।। तदेकोत्तर विशति भेदोऽभिनन्दन —

लद्वय बिन्दु युगल गुरुश्चैवाभिनन्दने । तदब्टाविशति भेद समकञ्चाल —

गुरुद्वय लघुरचैको समकङ्काल नामनि ॥

तत्त्रयस्त्रिशत्तम भेद पूर्णकङ्काल — पूर्णो द्रुतचतुष्केण गुरुणा लघुना कमात् ।

मादि चाच पुट पौ। तहितीय भेद त्रिभिन्न — लघर्गरु प्लूतश्चैव त्रिभिन्ने परिकीर्तिता, ॥

तत्रतीय भेद कोकिला प्रिय —

कोकिलप्रिय तालेस्यु कमाइगुरु लघु प्लुता । तदष्ट भेद उद्घुट उद्घुट्ट मगनिस्त्वेक । तत्समभेदिन्त्रभिक्क — सकराइगुरुणैकेन त्रिभिक्किरभिभीयते ॥ **भयमेव र**तिलीला । तद्हाम भेदश्चाचपुट -

गुरुर्लघु गुरुरुनैव भवेच्चाच पुटाभिधे । तदेशादश भेद कण्डुक —

लघुद्वन्द्वसकारेण कन्दुक परिकोर्तित ।।

तदेकोनविशति भेद श्रीकीर्ति

श्रीकीर्तिसज्ञकेतालेगुरुद्वन्द्वलघुद्वयम्।

लघु सहित प्रस्तारे तालभेद । स उद्दिष्ट —

इतो द्रुत सहित प्रस्तारे । तदण्टादश भेदो नन्दन । तत्पचिवद्यतितम भेद श्रीकन्दर्प । दौलाङ्का ।

ग्रयमेव परिक्रमताल । तत्रयस्त्रिशदभेद त्रयश्वणं ।

लाद्रो लोग । तत्पिष्टितभभेदो वनमालि चतुर्द्रा लादौग तदेकोत्तर सप्तम भेदो विन्दुमाश्चलिगश्चतुर्दाङ्ग —

द्यादि चच्चपुट गपपा । तद्वितीय भेदो वणयति — वर्णयत्याभिघे ताले लघ द्वन्द्व प्लत द्वयम ।

तदष्टमभेद चच्चपुट -

ताले चच्चपुटे जयौ गुरुद्वन्द्वी लघु प्लुतो ।। तन्तवभेद श्रीरङ्क —

श्रीरङ्ग सज्जके ताले सगणा लघु प्लुतौ मता , । तिद्वशतितम भेदो विजयानन्द

भवेयुर्विजयानन्दे लद्वयौ गुरवस्त्रय , ॥ तत्त्रयोविश्वतितमभद श्रोतृ महुम्—

गुरुर्लघु गुरुश्चैव श्रोत्रमट्ट इति स्मृत , । तटष्टाविशतितम भेद सिहनाद —

यगणे ला गुरुवचैव सिह नादे निरूपिता, ।।

तदेकोत्तरिवशत्तम भेद । अनञ्जताल लगो लोग तत्त्वयस्त्रित्तम भेदो जय मञ्जल द्विसकारो जय मञ्जल । तत्त्रियण्टितमभेद प्रत्यञ्जस्त्रियुक्तमे। इति हुतहीन प्रस्तारे तत्त्त्रियादुत्तरतमभेदो हस नाद लगीदौप तत्पचाहादुत्तर चतुहहात भेदो राजचुडासणि ।

राज चूडामणौ ताले द्वृतौ लगौलम् । बादि सपन्वेस्टाक सबके । तन्नवाशीतितमभेद यद्पिता पुत्रकः — पलगा गलपाश्चैवपट्पिता पुत्र ं।।

(इति षट प्रत्ययस्समाप्त) भ्रष्ट कृद्वस्तु चर्चार्या विरामान्तौ लघु ।

सन्द कृद्धस्तु चचाया । वरामान्ता लघु । सिह्निकम तालेस्यु मगणो लपला गर्पै ॥ लचतुष्क विरामान्त गजलीले प्रकीर्तित ॥

गपाहुतौ लगोपश्च राजताले प्रकीतित ।।
रङ्गप्रदीपतालेस्यु तगणाङ्ग प्लृतौ यदि ।
तगणौ ल प्लुतः कार्यो रङ्गाभरण सज्जे ।।
तपौ लोगौ हुतौ गौलो पलपागश्चलद्वयम् ।
निहहाण्दञ्च चतुष्कञ्च तालेस्यात्सिहनन्दने ॥
लगौ पगौ लयश्चैव कीर्ति ताले प्रकीतिता ।
प्लुतोगश्च प्लुतोलश्च ताले विजय सज्जे ।
जगणो लदुतौगश्च जयताले निरूपिता ॥

प्रताप केखरे त्र्यङ्गादिरामान्त प्लुतद्वयम् । वसन्त ताले कर्तव्यो नगणो मगणस्त्रया ॥ रायनारायणे विन्दु द्विलर गणो गुरू । पार्वती लोचने ताले लीद्वृती तनभा कमात् ॥ श्री नन्दनस्य तालस्य भगण प्लुत इष्यते । इति चर्चर्यादि तालाना षट्प्रत्ययावेदितव्या ॥ नानाराजसभान्तरालरसिकस्तुत्यञ्च सगीतके । चक्रेश्वरसभावभेदनिषुणस्साहित्यविद्यापति ॥ सङ्गीताकरनामधेय विबुध श्रोपार्श्वदेवोऽधुना । चित्र सर्वजगत्रय ब्यरचयत्तालस्य पटप्रत्ययम् ॥

इति श्रीमदभयचन्द्रमुनी-द्रचरणकमल मधुकरायितमस्तकमहोदेवार्य शिष्यस्वरतिमलविद्यापुत्र सम्यक्तवचूडामणिभरत

भाण्डोकभाषाप्रवीणश्रुतिज्ञानचक्रवर्ती सङ्गीताकरनामघेयपारवंदेवविरचिते सङ्गीतसमयसारे तालषटप्रत्याधिकारे दशमाधिकरणम् ।

भाग (ख)

तालस्य लक्षण $\times \times \times \times \times \times \times \times \times \times \times$ तथा सलक्षण वक्ष्ये पूर्वशास्त्रानुसारत ॥१॥

श्री सोमेश्वर दत्तिल प्रभृतिभिस्ताल स्वरूपपुरा, प्रोक्त सर्व जगद्धिताय चतुरश्रादि प्रभेदादिभि ।

 $\times \times \times$ (तादि ?) तादि भेद सिंहत तालस्य षटप्रत्यय । सगीताकर सूरिणा निगदित चित्रायमानभुवि (१) ।।

तालद्वय कास्यमय त्रिहस्त शाखान्त \times \times द्ववमान पिण्डम् । गुजाप्रभाच्छिद्वित निम्नमध्य विस्ताररुप्यड्गुल युग्ममेवच ॥३॥ परस्पर सन्त्रिभवनुं लानन प्रचित्र पट्टाविल \setminus \times विन्धितम् । किन्ध्वतम् । किन्ध्वतम् । किन्ध्वतम् । सम्यम् । परस्पत्रमामुली , प्रसार्यसामुष्ठकतर्जनीधृतम् ॥४॥ सन्यम् । सन्यम् । विन्द्वद्भव शिवतिश्वास्वरूपमाशारका \times \times शाद नित्यम् ॥॥॥

मनोगाहस्तगाचास्य द्विविधा मान कल्पना । प्रमाण मानस यत्तु चतुर्माग इतीरित ॥६॥ हस्तागमनमान यत् तद्धीत् द्रुतमुज्यते । भ्रष्ठांगुलिद्वयं सयोगान्मनोगं सार्धं पादकः ॥७॥

> घाटिकावयमान यद विन्दुस्तालस्ततस्तत । विन्दुभ्या तु लघु प्रोक्त लघुभ्या तु गुरु स्मृत ॥८॥

लैस्त्रिभिश्च प्लुतो ज्ञेय इति मान उदाहृत । समताल समुध्य विवर्जित समयोऽयमभूल्लपालय ।।६॥

हुतमध्य विलम्बित माननस्त्रिविघोलयभेद उदाहृत । प्रोक्ता यति स्यास्लय यानमानात्रेथे ∔पश्चादनतिक्रमेण । चित्रादि मार्गेषु यति समास्यात् स्रोतोवहा गोकुल पुच्छिकेति

11 १०।।

सगीतसमयसार

प्रस्तारसंख्यायुक्त (नष्ट) मुहिष्टमेव च ॥११॥ एक द्वयादि लघुपेत मध्ययोग प्रचक्षमहे । दलगपपिण्डप्राक्तन पिण्ड भिरुवाधाक्षर रचयेत् । तत्सममालिख पुरतो यावल्लघुविन्दुतामेति ॥१२॥

॥ प्रस्तार ॥

पीयूवद्युतिलोचन त्रिपुर जिहिच्याम्बर दिव्यदग्— ग्रथोपेतदशाङ्कमालिखपुरा तत्रान्तिमाङ्ग द्वयम् । एकैकान्तरितैक राशि सहित राशि विदघ्यात् सुघी सगीनावरदेव निर्मितद्वतो सख्यार्थमाप्तोक्तित ॥१३॥

।। द्रुत संख्या ।।

हिमकर नयनाम्भो राशि सख्या लिखेत् तत्— त्रयमिलितमधस्तात् तद्वदासन्न सस्थम् । उपरितननिविष्टामङ्कमाला कमेण, त्यज लचुगणनार्थं यावदस्ति प्रयोग ॥१४॥

।। लघु संख्या ॥

संस्थाराशावपहर तथा नष्ट ताल प्रमाण, शेष तस्मिन्नपि च सद्शे लेख्यहीने च तत्र । वर्णं कार्यं स्व पर सहित चेन्नवर्णं परेण, प्रागङ्कोन द्वयमपि पुनदीर्घमेतत् प्लुत वा ॥१५॥ ॥ नध्यम्॥

लग पानामधस्तात् यत् तदशक लोप्यमेव च । मख्यात तु तदुद्दिष्ट निर्दिष्ट शेषदर्शनात् ।।१६।।

॥ उद्दिष्टम् ॥

विन्दु प्रस्तरणात पर लिख तथा द्वयन्तकमाद् द्वयादिना । यत्तन तद्द्वयमेकशोऽप्यपहृत द्वन्द्व मिलित्वाघुना ।। ग्रासन्नद्वयमेलनाद द्वत लघु प्रान्त तदूर्ध्वकमा, देकैकान्तारतोऽङ्कृत परिमित दीर्घ प्लुत धीमता ।।१७।।

।। दूतस्यैकद्वयादिलषुकिया ।। एकद्विपचक्रमतो मिलित्वा लघु प्रसस्याद्वितयादि युक्तम् । श्रघो विखासन्न गतित्रिराञलध्वादि (स) ख्यापरिमाण हेतो ?

॥ लध्वेक द्वयादि लघुकिया ॥ श्रालिख्य ताल सख्या तत्सख्या द्विगुणयेत् पुनर्धीमान् । तत्रेक विहीन चेदङ्गुल्य स्या कमादध्वे (?) ॥१६॥

॥ ग्रध्वयोग ॥

द्वादशागुलिभिस्तु वितस्तिस्तदृद्वयेन तु हस्त इति स्यात् । तच्चतुर्दण्ड तदृद्विसहस्त्र कोष तद्वार्थं योजन एक (१) ॥२०॥ नानाराजसभान्तराल (सरि १ रसि) कस्तुत्य च सगीतके, च्चक्रेशोरसभावभेदनिपुण साहित्यविद्यापति । संगीताकर नामघेय विवुध श्री पादवैदेवोऽधुना, चित्र सर्वजगित्रय व्यरचयत् तालस्य पट् प्रत्ययम् ॥२१॥ इति श्री मदिभनवभरताचार्य स्वरिवमलहेर्म्भणायेपुत्रश्रृतिज्ञानच (क) वर्ति सगीताकरनामचेय पार्क्वदेव विरिचित सगीतसमयसारे तालवद्मरवयलक्षणम् नाम नवमधिकरणम् ॥

भाग (ग)

श्री पारवंज्ञानमानम्य देशीतलानु लक्षणम् । तालस्य लक्षण वक्ष्ये पूर्व शास्त्रानुसारतः ॥ श्री सोमेश्वर दत्तिल प्रभृतिभिस्ताल स्वरूपं पुरा, प्रोक्त सर्वं जगद्धिताय चतुर श्रीदप्रभेदान्वितम् । एतद्धाँकद पूर्वं भेद सहित तालस्य षट् प्रत्यय सङ्गीताकरण सूरिणा निगदित चिन्तायमान ज्रुवे ॥

> तालशब्दस्य निष्पत्ति प्रतिष्ठार्थेन धातुना । सताल कालमान य क्रियया परिकल्पित ॥ तालद्वयकास्यमय त्रिहम्त च शिलाननम् । ॥ तश्वमानपिण्डम ॥

मु जोपमाच्छिद्रितमध्यनिम्न,

विसारमध्यङ्गुल युग्ममेव ।

परस्पर सन्तिभमेव वर्तुल,
विचित्र पट्टावित पाशवधितम् ॥

किनिष्ठिकानामिक मध्यमाङ्गुली,
प्रसार्यं साङ्गुष्ठक तर्जनीधृतम् ।

सब्येन हस्तेन तु नाडनीय,

कमेण मध्ये रमणीय नादम् ॥

बिन्दूद्भव शक्तिशिवस्वरूप, ग्राधारमाधेयवशादनिन्द्यम् ।

मनोगा हस्तगाभास्य द्विविधायून कल्पना ।
प्रमाण मानन यस्तु चतुर्भाग उदीरित ।।
हस्ता गमनमान यत्तदग द्वतमुच्यते ।
सङ्गुलीदय संयोगान्मनोगस्सार्थ पादक ।
धोटिका कालमान यदिन्दुस्तालानु हस्तग ।
बिन्दुस्या तु लघु प्रोक्त लघुभ्या गुरुरुच्यते ।
लघुत्रये प्लुतो क्षेत्र इति मानमुदाहृतम् ।
समताल सु मध्य विवर्तिन

स्समयोयस्य मभूयनाल्लय ।

द्रुत मध्य विलम्बिमानत

त्रिविधोय लयभेदईरित ॥

प्राक्तायतिस्साल्लयमान

तिपश्चादनति ऋमेण।

चित्रादि मार्गेषुयतिस्सभास्या

च्छतोवहारो कुल पुच्छकेति ॥

ग्रहास्त्रिघा समोतीनिस्तथा गाय इत्यपि । गीते वाद्ये च नृत्ये च सममेव प्रवर्तते ।। यस्तालस्सनु विज्ञेस्समग्रह समाह्नय । किञ्चिङ्गीत समारब्धे वाद्ये नृत्ते तथा पुन ।। ग्रहण यस्ततालस्य सोतीत ग्रह इध्यते ।

योलकारेण गीतेन तकारेण च वादने ॥

नृत्ताग वर्तनैस्साघं सतालो नागतग्रह । प्रस्तार सस्य या गुक्त नष्ट मुद्दिष्टमेण च ॥ एकाद्यादि लघुरेत मध्ययोग प्रचक्सहे । ग्रक्षराणि प्लुत यावत्तदभावे गुरु न्यसेत् ॥ लघु भावस्स्याद्द्रुत शेष यथोचितम् ।

स्थ प्रस्तार — दल गप मध्ये प्राक्तनिपण्ड भित्वा यथाक्षर रचयेत् ॥ यत तत्स पुरतोयावल्लघृ बिन्दुतामेति । पीयूष द्यृतिलोचन त्रिपुर मालिखयुता तत्वान्तिमा ।।

द्गुतादि सस्या हिमकर नयनाभोराशि सस्या लिखेत त्रयमिलित मधस्तात्तद्वादासन्न सस्यम् ज निविष्टामकमालाकमण

उ ननिविष्टामकमालाकमण त्यजलघुगणनार्थयावदस्ति प्रयोग।

।। इति लघु सख्या ।।
सख्याराशाव पहर तदा नष्ट ताल प्रमाण
शेष त्वस्मिन्नवि च सदृश योजयेल्लक्षणज्ञ वर्णं कार्यं स्वपर रहित चेन्न वर्णं परेण प्रागं केवद्वयमपिपुनर्दीघंमेतत्ष्लुतवा ।।

॥ इति नष्ट लक्षणम् ॥ लगपानामधस्य यत्तदकः घमेवहि । ग्रन्तस्यान्तदुद्दिष्टर्निदिष्ठ शेषदर्शनात् ॥ ॥ इत्युद्दिष्टम् ॥

बिन्दु प्रस्तरणात्पर लिखनदा द्वय न । कमा द्वादिना युक्त तद्द्वमेक सञ्यवृहत ।

द्वन्द्वलिखित्वाधुनाग्रासन्नद्रुतमेलानाद्रुतलघुत्राततदूर्ध्वं कमात्, एकैकान्तरिताङ्कल परिमित दीर्घ प्लुत धीमता ।

परिशिष्ट-२

पाइबंदेव के द्वारा स्मृत महाविमूतियाँ

१. कश्यप

सोमरस इत्यादि से उत्पन्न मद्य को 'कश्य' कहा जाता है। 'कश्य' का 'पान' करने के कारण बहा। के पोत्र घोर मरीचि के पुत्र मुनि का नाम (कश्य-पा+क=) 'कश्यप' पडा। 'कश्मीर देश का वर्तमान नाम-करप 'कश्यपमेट' का धपभ्र ता है घोर 'कश्यपमेट' का धर्च है, वह पर्वत-शिखर, जिस पर कश्यप मुनि का निवास हो। विद्वानों के एक विशिष्ट वर्ष का यह दिव्हिकोण है।

'भरतनाट्यशास्त्र' के प्रसिद्ध टीकाकार स्रभिनवगुष्त ने सङ्गीतशास्त्र-कार कश्यप को 'षट्साहस्रोकार' भरतमुनि की प्रपेक्षा प्राचीन माना है। स्पन्न है, 'द्वादशसाहस्रोकार' भरत कश्यप के समकालीन या कुछ परवर्ती हैंगे

स्रभिनवभारती के प्रथमखण्ड के द्वितीय सस्करण के सम्यादक श्री के० एक रामास्वामी शास्त्री ने भूमिका में 'नाट्यवास्त्र' के कर्ता भरत के करमीरी होने की सम्भावना व्यक्त की है। 'रागो के रस-भावानुसारी प्रयोग के सम्बन्ध में स्राचार्य स्रभिनवगुप्त ने कस्यप के मत को विस्तार-पूर्वक उद्युत किया है।

१ 'कश्य सोमरसादि जनित मद्य पिश्वति इति कथ्यप ।'' शब्दकल्पद्रुम' सम्बद्ध भाग, पृ० ६८ ।

२ "अह्मणस्तनयो योऽभूत् मरीचिरितिविश्रुत । कस्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् कश्यपानात् स कश्यप ॥" मार्क० पु०/१०४-३

 ^{&#}x27;कश्यपादिभिस्तावान् यो विनियोग उक्त सो अध्यत्र । झयमपि मुनिविनि क्तोऽस्तु ।
 परमतमप्रतिषिद्धमभिनतमिति स्थित्या हि न्यायात् ।''

[—] ममिनवभारती, २८ मध्याय, पृ० ७०

४ भिनवभारती, प्रथम अण्ड द्वितीय संस्करण, भूमिका, पृ० १६, गायकवाड सीरीजः।

मतञ्जूकत बृहट्देशी के उपलब्ध सस्करण मे भी ग्रामरागो ग्रीर भाषा-रागो के प्रसञ्ज मे कश्यप का उल्लेख है। सम्भव है कश्यप कश्मीर-परम्परा के ग्रादि पुरुषों में हो। शारदामठ से लेकर कुड कुमादितट तक पचास योजन तक की भूमि कश्मीर कहलाती है।

२. तुम्बुरु

इन्हें गन्धर्व कहा जाता है और इनकी चर्चा प्राय नारद के साय-साथ झाती है। जैन झानार्य सुधाकलश के झनुसार तुम्बुङ की बीणा का नाम 'कलावती' या।' अभिनवभारती के रेचक-प्रकरण में तुम्बुङ के मत का उल्लेख हुमा है। में स्पतिरत्नाकर के वाद्याध्याय में भवनद वायों के प्रसङ्ग में तुम्बुङ की चर्चा झाई है।

तुम्बुरु को धैवत' और नियाद' स्वरो का द्रष्टा माना गया है। भ मत तुम्बुरु ही स्वर-सप्तक को पूर्णं करने वाले मनीथी हैं। सप्तक की पूर्णंता के पश्चात् ही ग्रामभेद पर निवार हुआ। ग्रामभेद का म्राधार प्रमाण भूति का ज्ञान है। इस दृष्टि से नुम्बुरु बे पार्य पुरुष है स्वर-सप्तक की पूर्णंता जिनकी मन्तदेष्टि का प्रधादमात्र है।

हरिपाल (१२ शती ई०) ने कहा है कि श्रुति का मादंव ही मुच्छेंना है।* प्राचीन स्वर-शास्त्र के मर्मज्ञ जानते हैं कि मध्यमग्रामीय

तावत्कश्मीरदेश स्यान पञ्चाशद्योजनात्मक ॥ शक्तिसङ्गभतत्र पटल ७

२ कलावती तुम्बुरोस्तु गणानाञ्च प्रभावती । '

तञ्जीतसमयमागेदार' चतुर्व अध्याय श्लोक म पृ० ७५ गायकवाड सीरीज, १९६१ ई०।

३ तुम्बुरुणे मुक्तम श्रङ्गहाराभिधानालुकरणै रेजकान विदु। श्रिभनवभारती द्वितीय सस्करण चतुत्र अध्याय पृ० १६३

४ 'विह्निर्वेषा शशास्त्रम्य लक्ष्मीकान्तम्य नारद ।

ऋषयो दद्शु पञ्च षडजादीस्तुम्बुरुघनी । सङ्गीतरत्नाकर स्वरगताध्याय वैवतरच निषादरच गीतौ तुम्बुरुणा स्वरौ ।

वृहददेशी स्वर निर्णय पृ० १६, क्लोक ६३

५ 'श्रुतेर्मादंवमेवन्यान्यूच्छंनेत्याह तुम्बुर । — भरत-कोष पृ० ५०० पर उद्भुत

१ शारदामठमारम्य कुडकुमादितटान्तक ।

धैवत को 'मार्दव' के द्वारा पड्जबामीय द्विजृति गान्घार बना देने से मध्यमधाम की प्रथम शुद्ध मुच्छेना ही वड्जबाम की प्रथम शुद्ध मुच्छेना बन जाती है। 'यह रहस्य ग्राम-मुच्छेना-पद्धति के रहस्य से प्रपरिचित मेलवादियों के लिए दुवांच है

३. भरत मुनि

नाट्यशास्त्र के वर्तमान सस्करण के अनुसार नाट्यशास्त्र के आदिस प्रयोक्ता भरतमुनि वैदिक कालीन नरेश महाराज नहुष के समदनी थे। " नाट्यशास्त्र के चौक्षम्बा-सस्करण मे भगवान् वाल्मीकि का नाम भी उन मुनियों मे है, जिन्होंने भरतमुनि से नाट्यशास्त्र का अवण किया था। " कालिदास ने उनंशी इत्यादि अप्तराध्रों में अण्टरसाश्रय प्रयोग का नियोजक भरतमृनि को ही बताया है।"

श्राविभरत श्रथवा वृद्धभरत के द्वारा निर्मित नाट्यशास्त्र मे बारह् सहस्र स्वोत थे, अत यह सस्करण 'द्वादशसाहस्री' कहुलाता था, भाव प्रकाशनकार शारदातनय ने 'द्वादशसाहस्री' के चर्चा की है। नाट्यशास्त्र के उपलब्ध सस्करणो को 'यट्साहस्री' कहा जाता है, धनिक, श्रमिनवपुन्त श्रीर शारदातनय ने नाट्यशास्त्र के पर्साहस्त्री सस्करण की चर्चा की है। नाट्यशास्त्र की श्रभिनवपुन्तकृत टोका श्रभिनवभारती यट्साहस्री पर ही

नाट्यशास्त्र, गायकवाड-सीरीज अध्याय ३७ श्लोक १७

१ तद्वन्मध्यमग्रामे धैवतमार्ववाद द्वैविध्य तुत्यश्रुत्यन्तरत्वाच्च सज्ञान्यस्वम् ।"
भरतनाट्यशास्त्र, गाय० सी०, ष्रध्याय २८ पृ० २६

२ श्रस्माक चैव सर्वेषा नहुषस्य महात्मन । ग्राप्तोपदेशसिद्ध हि नाटय प्रोक्त स्वयम्भवा ॥

३ बाल्मीकि-रामायण पर भरतमुनि का प्रभाव देखने के लिए भरत का समीत-सिद्धान्त', ले॰ श्राचार्य बृहस्पति प्रकाशन शाला सूचना-विभाग उत्तर प्रदेश १९५६ ई॰ प्राक्तयन, गुरू ३६-४२ तथा सङ्गीत-चिन्तामणि द्वितीय सस्करण (१९७६), पृ० ३०-३६ प्रकाशक, सङ्गीत कार्यालय, हाथरस उत्तर प्रदेश, देखिये।

४ वित्रलेखे त्वरय त्वरयोवंशीम---

[.] मुनिना भरतेन य प्रयोगो भवतीष्ट्रब्टरसाक्षयो नियुक्त । सनिताभिनय तमख भर्ती महता द्रष्ट्रमना स लोकपाल ॥

है। षट्साहस्री की कुछ पाण्डुलिपियाँ झलमोडा और काठमौडूमे पाई गई हैं। म्रलमोडा वाली पाण्डुलिपि पाँचसौ वयंसे म्रष्टिक पुरानी है।

म्रादि भरत की कुल परम्परा के व्यक्ति भी भरत' कहलाये भीर मागे चलकर भरत का लाक्षणिक सर्थं भरतोक्त झारत हो गया। म्रादि-पुराण के म्रनुसार जगदगुरु भगवान वृपभदेव ने म्रपने पुत्र भरत चक्रवर्ती को 'सस्प्रहभरत' (सग्रह्श्लोक युक्त भरतनात्र्यशास्त्र) को शिक्षा दी म्रीर स्वाध्यायासक गन्धवशास्त्र को शिक्षा अपने दूसरे पुत्र वृपभसेन को ही।

श्रादिपुराण के श्रनुसार गमयती महारानी मरुदेवी के मनोविनोद के लिए सुराङ्गनाण गीनगोष्टियाँ वाद्यगोष्टियाँ नृत्यगोष्टिया श्रीर प्रक्षणगोष्टियाँ करतीथी।

श् भरतायाधशास्त्र च भरत च ससग्रहम्। प्रश्यायैरितिबस्तीण स्फुटीकृय जगी गुरु ।। विभुव् बमसेनाय गीतवाध्यायसग्रहम । गन्धवशास्त्रमाचक्यौ यत्रा याया परवस्तम ।।

> भ्रादिपुराणम घोडण पव पृ० ३५७ क्लोक ११६ १२० भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

२ कदावित गीतगोराठीभिवश्चिमोराठीभिरन्यदा ।

कृष्टिचान्यमोराठीभिवर्ण्यस्तः प्रथ्यावतः ॥

कृष्टिचान्यमोराठीषु सनीना नितत्वज्ञ ।

वध्यानलयनेट् साञ्चहारा गुराङ्गा ।

कृष्टिचान्यमेर्ग निर्माणकृष्टिचाने ।

कृष्टिचार्याची स्थानेवभूविक्षिरत्वाहृतः ।

कृष्टिचार्याची स्थानेवभूविक्षिरत्वाहृतः ।

वुष्याञ्जलि किर्योगित्वभूविक्षार्याचान्यम् ।

सन्याञ्चलि कर्यका परिनो रङ्गमण्डलम् ।

सन्याङ्गावेव योक्कृतनेव निक्षाः ।

तद्योगस्योगनपुहुनानि वक्षिपरे ।

धनुनतिनुमेतासामिव मृस्य कृतुहनातः ॥

स्रादिपुराण में इन गोष्टियों का जो सिनस्तर वर्णन किया नया है, वह इस तथ्य का साधक है कि 'आदिममरत' स्थवा 'वृद्धकरत' जैसे विस्तास के अनुसार भगवान् वृत्रभदेव की प्रपेक्षा पूर्ववर्ती हैं, तथा स्नादि-पुराण के रचियता के द्वारा जो गान्यवंशास्त्र चर्ची का विषय बना, उसमें सौ सध्याय थे।

नाट्यशास्त्र के वर्तमान पट्साहली संस्करण में छत्तीस अध्याय हैं, जिनमे सत्ताईल अध्याय नाट्य-विषयक और अवशिष्ट नी अध्याय गान्यवं विषयक हैं। अर्थात् नाट्यशास्त्र का वर्तमान पट्साहस्त्री सस्करण नाट्य एवं गान्यवं दोनो का सम्रह है।

अभिनवभारतीकार ग्राचार्य ग्रीभनवगुप्त के एक नास्तिकमुर्य्य (जैन?) ग्राचार्यका मत था कि नाट्यशास्त्रका घट्साहकी संस्करण भरतमुनि की इति नहीं, प्रिपत्त किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा किया हुआ। सङ्कलन है, जिसने सदाशिवसन, ब्रह्ममत ग्रीर भरतमत के ग्रन्थों के खल्ड

श्रपाञ्जदारसम्धानैभ्रं लताचापकर्षणै । धनुर्गुणनिकेवासीत् नुत्रगोष्ठी मनोभुव ।। स्मितमुद्भिन्नदन्ताशु पाठ्यं कलमनाकुलम् । सापाज्जवीक्षित चक्ष सलयइच परिक्रमः।। इतीदमन्यदप्यासा घत्तेऽनङ्गशराङ्गताम्। किमकु संगतं भावैराक्किके रसतांगते ॥ वारिभिः करणैश्चित्रैः साङ्ग्रहारदेव रेचकैः। मनोऽस्या स्रनर्तन्यश्चक सप्रेक्षणोत्स्कम ॥ काश्वित्सङ्गीतगोष्ठीचु दरोद्भिन्नस्मितैर्म्सै। वभु, पद्मैरिवाब्जिन्यो विरलोद्भिन्नकेसरै ॥ काश्चिदीब्ठाग्रसदब्टवेणवीऽणुभूवी वभुः। मदनाग्निमिबाध्मात् कृतयत्ना सफरकृतम ।। बेजुम्मा वैजवी यष्टी मार्जन्त्यः करपल्लवे । चित्र परुलवितारचक् प्रेक्षकाणा मनोद्रमान ॥ सङ्गीतकविधौ काष्ट्रित् स्पृशन्त्य: परिवादिनी.। कराङ्गुलीभिरातेनुर्गान**मामन्त्रमुच्छंना**. ।। वन्त्रयो मधरमारेणस्तत्कराङग्लिताडिता.। , सर्य तास्त्री गुणः कोऽपि ताडनाद् याति तद्वशम् ॥

लेकर ब्रह्ममत की सारवत्ता का प्रतिपादन करने के लिए प्रस्तुत षट्साहस्रीसस्करणबनाडालाहै।

प्रस्तु, धादिभरत की प्राचीनतमता सिद्ध है। धाचार्य पास्त्रैरेव ने नवम प्रधिकरण में छन्द १०७-११५ को ग्रादिभरत की उचित कहा है धीर नाट्यशास्त्र के ध्रनेक स्लोकों को ध्रनेक स्थलों पर जैसा का तैसा उद्युत्त किया है।

४. इत्तिल

नाट्यवास्त्र के वर्तमान संस्करणों में 'दत्तिल' को भी भरतमृति का पुत्र कहा गया है। धनन्तद्ययनम् सीरीज नं०२ के रूप में 'दत्तिलम्' नामक एक पुस्तिका छप चुकी है, जो भूनकृति का सक्षिप्त रूपान्तर भ्रतित होती है।

वते सन्दर्धमालोक्य तासा तु दशनच्छदम् । बोणालाञ्च[भरास्तेषि पम तस्त्वनमण्डलम् ।। मृबङ्गाव्यकं कार्षित्र समुक्तिस्यत्वाहृवः । तत्कता कौशेत स्वापा कर्तृकामा इदारमनः ।। मृबङ्गान्तरूप्तरूप्तर्थाणा इवोच्चकी ॥ मृबङ्गान वय सस्य पम्यतास्थान् हिरण्यामा । स्वावराम्यतः नक्त्ये मृहद्रत्वर्ताहृतः ।। मुदङ्गा न यय सस्य पम्यतास्थान् हिरण्याम् । इतीवारमिता नक्त्ये मृहद्रत्वर्ताहृतः ।। मुदङ्गा स्वावर्त्या स्वत्वर्यामा हृत्यम्याः । स्वावर्ताः सुरवा नते वस्त्रीया कृतस्यम् । इतीव सस्वपुर्वन्य पणवाद्याः सुरानकाः ।। प्रभातमञ्जले कार्यन्य मह्त्वराम्यस्यास्य पृथ्न् । स्वकरोत्सीष्टन सोह्यस्यानित सारवाः। स्वम् कल व वन्य च मह्यसम्मुनास्यालाको ।

पूर्वोक्त, द्वादस पर्वं, पृ० २६७-२६६, क्लोक १८८-२०६ १ एतेन सदासिवक्क्ष्मप्रदेशस्वपविषयेनेन अक्क्षमदासादाप्रतिपादनाय मतत्रयी सारासारवियेचन तद्ग्यप्रक्षेत्रेण विहितमिद शास्त्रम् । न तु मुनिविरचित-मिति यदाहुर्नारिकक्ष्मुर्याणस्यास्त्रस्वस्वम् ।

श्रमिनव-भारती, प्रथम श्रष्ट्याय, द्वितीय संस्करण, १०६

दित्तल ने मूच्छंना के चार अब पूर्णा, वाडवा, झौड्विता झौर साधारणी माने हैं, चृहद्देशीं में इस दृष्टिकोण का भी उल्लेख है। प्रथम सती ६० के एक खिलालेख में दत्तिल की चर्चा है। नान्यदेव (११ वी सती ६०) तथा साथाय अभिनवगुप्त ने सनेक स्वानो पर दत्तिल का उल्लेख किया है। 'सञ्जीत-रत्नाकर' के प्रसिद्ध टीकाकार सिह्मूपाल ने दित्तल की कृति की एक टीका 'प्रयोगस्तवक' की चर्चा की है।

५. कोहल

नाट्यशास्त्र के धनुसार 'कोहल' भरतमृति के सौ पुत्रो में से एक है। दिनाट्यशास्त्र के ही धनुसार जो ज्ञान भरत मृति को अह्या के द्वारा

१ कुम्म ने इस मत को भरत-विरोधी एवं ग्रसङ्गत बताते हुए इसका लच्छन किया है। सिंहभूपाल इसे दिशल भीर मतङ्ग का मत बताते हैं भरत का नहीं।

श्रमिनवगुष्त के अनुसार गरत का गत है :--

कमयुक्ता स्वरा सप्त मुच्छंनेत्यभिसज्ञिता । षट्पञ्चस्वरकास्ताना वाडवौड्डिताश्रया ।

साधारणकृताश्चैव काकलीसमलडकृता ।

भन्तरस्वरसयुक्ता मूच्छंना ग्रामयोर्द्धयो ।।

मनिवभारती, २८ वाँ मध्याय, पृष्ठ २५

धर्मात् — कमपुक्त तस्त स्वर प्रूच्छंनां कहे जात है, यादव धीर भीडुव विधि का माम्य तेने पर बट्स्वरक एव वञ्चलक क्य 'तान' कहताते हैं। सुद-स्वरपुक्त प्रूच्छंनामों के मंतिरिक्त प्रूच्छंनामों के तीन घन्य भेद सामारगकृत', 'काकतीसमस्त्रका' तथा मन्तरस्वरतपुक्ता' है।

भनाडे का निपटारा करते हुए प्रमिनकपुत्त कहते हैं कि यदस्वर, पच स्वर क्यों को भी 'पुर्च्छना' कहा जा सकता है, क्यों कि एक देश के विकृत होने पत्त के प्रमाण (वहीं) जैसी मासित होती हैं। प्राचार्थ प्रमिनवनुत्त के शब्द हैं—

'कवाजिक्वौदुवे एता इति स्वरलोपे वैकदेशविकृतत्वेऽव्यनस्यतया भासना सैवासौ मूर्च्छना।'' वही, पृष्ठ वही

२ "शाण्डिल्य चैव वास्स्य च कोहल विलल तथा।"

नाव साव, गायक वसीरीक, प्रथम सञ्चाय, पृव्दिय

हुमा, उसे 'उत्तर तन्त्र' श्रथवा 'प्रस्तारतत्र' के द्वारा कोहल कहेगा। दस उक्ति का तात्पर्य्य यह है कि कोहल ने भरतोक्न सिद्धान्तों के 'प्रस्तार' (सोदाहरण विवेचन) किये। दत्तिलकृत कहे जाने वाले ग्रन्थ 'दत्तिलम्' (पृ० १२, इलोक १२८) मे भी कोहल का उल्लेख है। मतङ्गकृत 'बृहद्देशी' के श्रुतिस्वर-निर्णय तथा झलकारप्रकरण मे कोहल के मत का उल्लेख किया है। ग्राचार्य ग्रभिनवगुप्त ने 'ग्रभिनवभारती' मे 'नाट्याधिकार' ग्रौर गेयाधिकार' के प्रसङ्घ में कोहल के अनेक उद्धरण दिये हैं। लगता है कि नाट्य, नृत्य और गीत सभी पर कोहल ने विचार किया था। कुटुनीमतम् के लेखक दामोदरगुप्त (स्वी शती ई० का उत्तराई) ने भी कोहल को उल्लेख श्रादरपूर्वक किया है । सङ्गीतरत्नाकर के प्रसिद्ध टीकाकार किल्ल-नाथ (पन्द्रहवीं शती ई० वा पूर्वाद्ध) के अनुसार कोहल की एक रचना का नाम, सङ्गीतमेर' है, जो शादूल कोहल के सवाद के रूप मे है, जिस का प्रथम भाग 'नाट्य' ग्रीर दूसरा भाग 'सङ्गीत' से सम्बद्ध है। सम्भव है इसका ग्राधार कोहल की ही कोई प्राचीन कृति हो । मद्रास-मैन्युस्किप्ट-लायकोरी मे कोहलीयमभिनयशास्त्रम्' तालकरहस्यम्'श्रीर कोहलरहस्यम्' नामक कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ है।

भाचार्य्य पार्श्वदेव ने कोहल के मत का उल्लेख 'सङ्गीतसभयसार' मे किया है।

६. मतङ्ग

मतङ्ग को मुनि कहा जाता है। प्राचार्य्य श्रीभनवगुप्त का कथन है कि भगबान् महेदवर की ब्राराधना के साथ पढ़ा 'नामक धातोच का निर्माण 'वेज्यु' के द्वार 'मतङ्ग' इत्यादि मुनियों ने किया।' इसका प्रखंयह है कि दबास शती ई० के अन्त में विद्यमान धाचार्य्य अभिनवगुप्त मतङ्ग मुनि को एक पौराणिक व्यक्ति मानते थे।

कालिदास के अनुसार एक मतङ्ग मुनि ने गन्धर्वराजपुत्र प्रियवद

१ 'शिवमुत्तर (प्रस्तार) तत्रेण कोहल कथयिष्यति । '

पूर्वोत्तत, सैतीसवाँ श्रम्याय, पृ० ५११

२ "वद्यातोद्यमिति पूर्व भगवन्महेस्वराराधनसाधन मतः क्रमुनिप्रभृतिभिवेणृनिमित ततो वद्य इति प्रशिद्धम् ।" — अभिनवभारती, तीसवा चध्याय, पृ० १२६

को उसके गर्व के कारण शाप दिया और उससे मुक्त होने का उपाय भी बताया था। भे सम्भव है, यही मतङ्गभृति वेणुवाद्य के ब्राविष्कर्ताहो। मतङ्गने 'भरत' को गुरु कहा है। भे

'बृहद्देशी' को मतञ्ज की कृति कहा जाता है, जो खण्डित रूप मे उपलब्ध है म्रीर के० साम्बशिव शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर ट्रावनकोर से प्रकाशित हो चुकी है, इसमे वाद्याध्याय नहीं है।

'बृहद्देशी' के प्राप्त रूप मे नारद प्रश्नकर्ता है श्रीर मतङ्ग समा-धानकर्ता । बृहद्देशी के उपलब्ध रूप मे काश्यप, नन्दी, कोहल, दित्तल, दुगंशिकत, बाष्टिक, बन्लम, विद्वावसु, शादूँल, विशाखिल इत्यादि पूर्वा-वार्थों को चर्चा है श्रीर नित्वकेदवर के द्वादश-स्वर पूर्च्छनाबाद को राग-सिद्धि के लिए श्रावस्थक माना है। ४

मतङ्ग सप्ततत्री बीणा 'चित्रा' के बादक थे. इसिलए इन्हें 'चैत्रिक' भे कहा जाता है, 'र रामकृष्ण कि के अनुसार मतङ्ग किन्नरी बीणा के प्राविष्कारक है, जो दिव के का प्राविष्कारजुक्त वादा है। नाट्यशास्त्र प्राविष्कारक है, जो दिव के का प्राविष्कारण ने चित्र के स्वाविष्कारक है, जो दिव के का प्राविष्कारण ने चित्र के स्वाविष्कारक है। है।

'सङ्कीतराज' मे महाराणा कुम्भ ने किन्नरी वीणा के सम्बन्ध में केवल मतङ्ग के मत का उल्लेख किया है।

– रघुवरा, सर्ग ४, श्लोक ४३

२ भरत गुक्साह मतड्ग । भरत-कोष, सम्पादक रामकुष्ण कवि, पृ० ४५४

मतहसस्य बची श्रुत्वा नारदो मुनिरववीत् ।
 मनुष्वनेस्तु देशीत्व कथ जात महामुने ॥ पूर्वोक्त सस्करण, पृ०१
 श्रीमतहसमुनि प्राह मुनीपुह्दिय तथाया । ,, पृ०१४१

४ द्वादशस्वरमूच्छंनाबाद ग्रीर उसके खण्डन के लिए देखिये 'भरत का सगीत-सिद्धान्त', पु० ११-५४

 [&]quot;मतङ्गशापादवलेपमूलादबाप्तवानिसम मतङ्गजत्वम् ।
 श्रवेहि गम्घवंपतेस्तन्ज प्रियवद मा प्रियदर्शनस्य ।।

भतङ्गो वादकस्तस्याश्चैत्रिको नाम चापर ।

७. यादिस

याध्टिक की रचना 'याध्टिकसिहता' कही जाती है, जो इस पुग में उपलब्ध नहीं है। वृहद्देशी' के अनुसार भाषा, विभाषा, तथा अन्तरभाषा नाम तीन गीतियों के प्रवक्ता याध्टिक मुनि है। 'याध्टिक मुनि ने काहयप (क्रस्यपगोत्रीय व्यक्तियोग को 'साथापलक्षण' का उपदेशदिया। 'वृहद्देशी' के चतुर्ष प्रध्याय को 'सर्वागमर्सहिता के अन्तर्गत याध्टिक प्रमुख्य (प्रयुक्त ?) भाषा लक्षणाध्याय' कहा गया है। असङ्गितसुधा' (अत्रवृत्ती शती ई०) के अनुसार याध्टिक 'दक्षा' इत्यादि महापुरुषों के भी उपदेष्टा थे और झाडजनेय भी देशी रागों के विषय में याध्टिक मुनि के शिष्ट्य थे। '

पाश्वंदेव ने सङ्गीतसमयसार' मे वराटी' का जो जगदेककृत श्लोक

उद्धृत किया है, उसमें 'याष्टिक' की चर्चा है। *

अनिलसुत (आञ्जनेय, हनुमान्)

बात्मीकि-रामायण के ब्राञ्जनेय हनुमान् ऋषेद, एव सामवेद पर पूर्ण ग्रीधकार रखते थे, ये व्याकरण के भी पूर्ण पण्डित थे। रीतेनी स्थानो मे यथावसर व्यक्त होने वाले नको विचित्र वाणी के व्यञ्जन खङ्गहस्त क्षत्र को भी विशीभूत कर सकते थे। "

१ भाषा चैव विभाषा च तथा चान्तरभाषिका।

तिस्नस्तुगीतय प्रोक्तायाष्टिकेन महारमना॥" बृहद्देशी पृ० ८२ दलोक २८६

२ शृणव्यावहितो भूत्वा भाषालक्षणमुत्तमम् । यत पृषिव्या प्रयत्नेन गीयते गीतवेदिभि ॥ '

—वही, पृ० १०५

३ सर्वागमस हिताया याष्टिक प्रमुख्य (प्रयुक्त ?) भाषास्रक्षणाध्याय चतुर्थ ।

-- बही, पृ० १३३

४ कदाचिदागात् कदलीववान्तमासेदिवान याष्टिकमाञ्जनेय । सङगीतिविद्योपनिषद्रहस्यमध्यापयन्त वृरिदक्षमुख्यान् ॥

भरतकोष, पृ० ५४३ पर उद्धत

समग्रेषस्वरा पूर्णा श्रृड्गारे याब्टिकोदिता।"

संत्य सारा प्रद्याय ४ स्त्रोक ८०, पृ० ६१ ६ नानृग्येदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिण । नासामवेदधिदुष शक्यमेव विभाषितुम् । वास्मीकि-रामायण किकिक्तस्याकाण्ड, सर्वे ३, दलोक ८

भनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया ।

कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरिय । वही, काण्ड वही, सर्ग वही, श्लोक ३३

'सङ्गीत-सुधा' के लेखक (१७वी वाती ई०) के ब्रनुसार ब्राञ्जनेय रेशी रागों में साण्टिक के शिष्य थे' भीर उन्होंने साण्टिक के उपदेश के ब्रानु-सार तथा सक्समूह की गान शैली का भी भाश्रय लेकर लक्ष्य के भ्रविरोधी बास्त्र का निर्माण किया।

श्राञ्जनेय का कथन है कि जिन रागों में श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नहीं होता और विभिन्न देशों की गति की छाया होती है, वे देशी राग होते हैं। 3

ष्राञ्जनेय के सिद्धान्तों का प्रतिपादक ग्रन्थ 'धाञ्जनेयसंहिता', 'हनुमत्सिहिता' या 'अरतरत्नाकर' है प्रो० रामकृष्ण किव के मनुसार 'हनुमन्सत' से ग्रटारह श्रृतियाँ हैं। यह कहा जाना सम्भव नहीं कि इन पुस्तकों के ग्राधारप्रन्थ या शाञ्जनेयकृत भूल ग्रन्थ को कितनी सामग्री पुर्वोक्त पुस्तकों से हैं। सङ्गीतदर्यणकार दामोदर (१६वीं चाती ई०) ने स्वयं को हनुसन्मत का मनुपायी कहा है।

६. भोज

विद्याव्यसनी प्रसिद्ध वारानरेश महाराज भोज ने महसूद गजनवी के साक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सङ्घटित एक राजसङ्ख मे सहायता की थी। इनके द्वारा विरचित प्रत्यों की सख्या चौहत्तर वर्ताई लाती है, उनमे प्रश्नार-प्रकाध प्रलङ्कारशास्त्रयविषयक है। व्याकरण, काव्या-लङ्कार तथा सङ्गीत पर इनके तीन प्रत्य कहे जाते है। पादर्वदेव ने 'सगीतसमयसार' के ठाय-प्रकरण मे महाराज भोज के मत की चर्चा

भरत-कोष पृ० ३४३ पर उद्धत

- २ ता याध्निकोक्तामिवरोषरीति यक्षौषगीतामपि गानवैतीम । प्रात्तोच्य बुद्ध्या चिरमाञ्चनेयो लक्ष्याविरुद्ध प्रणिनाय शास्त्रम् ॥ सरत-कोष ५० ४४३ पर उद्धत
- येथा श्रुतिस्वरप्रामजात्यादिनियमो नहि ।
 नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तु ते स्मृता ।

समीतरत्नाकर रागविवेकाध्याय की टीका मे कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत

४ भरतकोष पृ०४४७

१ कदाचिदागारकदलीवमान्तमासेदिवान् याध्टिकमाञ्ज्ञनेय । सङ्गीतविद्योपनिषद्गहस्यमध्यापयन्त घरिदक्षमुख्यान ॥

सम्मानपूर्वक की है। अतः वह सिद्ध है कि पार्श्वदेव को भोजकृत संङ्गीतविषयक कोई ग्रन्थ प्राप्त रहा होगा।

१०. सोमेश्वर

महाराज सोमेश्वर (राज्य काल ११२७-११३४ ई) परिचम चालु-क्यचकवर्ती महाराज त्रिभुवनमल्ल परमर्दी विक्रमाङ्कदेव (राज्यकाल १०७६-११२६) के प्रतापी पुत्र थे। महाराज सोमेश्वर ने प्रयाने पिता के खोगान में विक्रमाङ्कार्युद्य नामक रचना तो की ही, राजिववा के एक विश्वकोष 'प्रमिलपितार्थचिन्तामणि' की रचना भी की, जिसमे पांच प्रकरण हैं और इन प्रकरणों मे सो प्रध्याय है। चोथे प्रकरण में एक हजार एक सी सोलह सङ्गीतविषयक श्लोक है। महाराज सोमेश्वर ने भाषा, विभाषा, कियाजु इत्यादि में विभन्त छियानवे देशी रागों का कथन किया है। प्रवाशों का स्पष्टीकरण उदाहरणों के द्वारा किया है।

महाराज सोमेरवर को 'भूमल्ल' भी कहा जाता है। ये 'कुण्डलीनृत' के माविककरों और प्रवर्तक हुए है। परचारवर्ती ब्राचाय्यों ने अत्यन्त ब्रादर पूर्वक इनके मत का उल्लेख किया है। हैदराबाद (दक्षिण) के पास 'कल्याण' नामक स्थानक इनकी राजधानी था।

११. जगदेकमल्ल (प्रतापपृथिवीभुक्)

'प्रतापचकवर्ती' महाराज जगदेकमल्ल (राज्य-काल ११३४-११४४ ई०) पूर्वोक्त सहाराज सोमेस्वर के पुत्र वे। इनके सम्ब का नाम 'सञ्जीत जुडामणि' है, जिसमें इनके पितामह परमर्दी (त्रिभुवनमल्ल) पिता (महाराज सोमेस्वर) पाण्डुसुनु (अर्जुन) गल बृहद्देशी की चर्चातों है ही, 'प्राकृतच्छन्द' के रचियना स्वयम्भू भी इस में चर्चा का विषय बने है।

'सङ्गीतचूडामणि' के पाँच अध्यायो मे प्रबन्ध, ताल, रान, वाद्य एवं नृत्य का वर्णन हुआ है। वाद्याध्याय एव नृत्याध्याय असम्पूर्ण रूप में

भाण्डीकभाषयोदिष्टा भोजसोमेश्वरादिभि ।

ठायाः लक्षणतः केचिद् वक्ष्यन्ते लक्ष्यसम्भवा ॥

⁻ सं० स० सार, श्रष्ट्याय ४, पृ० ४३, इलोक १

२. भरत का सङ्गीत-सिद्धान्त, पृ॰ ३००, ३०१, 'भरत-कोष', भूमिका, पृ॰ ४

प्राप्त हुए हैं। '(सङ्गोतच्डामणि' जिस रूप में प्रकाशित हुवा है, वह धनेक दृष्टियों से खण्डित एवं म्रपूर्ण है। 'भरत-कोष' के विद्वान सम्पादक प्रो० रामकृष्ण किंव को जो 'सङ्गीतच्डामणि' की प्रति मिली थी, वह स्रपेक्तया स्रिषक पूर्ण थी। 'भरतकोष' में जगदेककृत ऐसे अनेक ऐसे विषय स्रपेक्तर प्राप्त हैं, जो 'सङ्गीतच्डामणि' के प्रकाशित रूप मे उपलब्ध नहीं हैं।

(स्व० महामहोपाध्याय एस्. कुप्यूस्वामी बास्त्रियर, एम् ए. माई० ई० एस्० 'पावर्तमेण्ट झोरियण्टल मैन्युस्किस्ट-लायक्षेरो महास के क्यूरेटर' की सिफारिश पर गवर्तमेण्ट ने स्व० प्रो० रामकुष्ण किव कि निर्देशन में सस्कृत-पण्डितों की एक क्षोध-सिमित वनाई थी, जिन्होंने स्थान स्थान पर धूमकर फ्रेनेक बहुदूल्य प्रत्य एकत्र किये थे। उनमें से फ्रनेक प्रत्यों के प्राधार पर प्रो० किव ने 'भरतकोय' जैसे ग्रन्थ का सङ्कुलन ढाई वर्ष में किया। यह १९५१ ई० में तिरुपति के प्रकाशिश हुझा, परन्तु न जाने क्यों किया। वह १९५१ ई० में तिरुपति के प्रकाशिश हुझा, परन्तु न जाने क्यों किवा। वह १९५१ ई० में तिरुपति के प्रकाशिश हुझा, परन्तु न जाने क्यों का पाट्येण प्रसंस्था मित्रिय प्रसंस्था है तथापि प्रनेक शोध-विद्यार्थों इस कोप के ऋणी हैं।)

१. भरत-कोष, पृ० ६९३

२ सङ्गीत-बृहामणि, गायकवाड-सीरीज, १९४८ ई०

३ देखिये, प्रकाशित 'सङ्गीत-बूडामणि' की संस्कृत-भूमिका।

परिशिष्ट-३ वर्षत्रलोकानुकर्मणका

ol		धङ्गविक्षेप मात्र च	१६=
अशस्तु जन्यरागस्य	६=	मञ्ज संख्या वियोगात्तु	29
ब्रशान्तर चौशमध्ये	33	ग्रङगस्य बालना नृत्ये	208
ब्रञ्जेन्यासे प्रहेषडज	30	ब्रङगस्यान्दोलन ताल	808
श्रशोजनक रागस्य	६=	धङगानञ्ज ततो ढाल	२०२
म शोमष्यस्य रागाशो	4.6	घङगानङग परिकान	788
श्रशो मध्यस्य रागस्य	Ęc	बङगानि तु प्रबन्धाना	ēκ
भगोऽवान्तरभेदस्य	६=	बङगान्येतानि नृत्तज्ञी	250
श्रसकर्पू रयोर्मं <i>घ्य</i>	१७२	श्रक्तिगकाभिनयो वाद्य	₹0%
शकस्पा वार्षकस्पा व	७२	घ ड्गुलिभि श्चतसृभि	Ęo
मक्षरान्तर सम्मिश्र	388	ग्रङगुलीचारणा सम्यक	8 % %
मक्षोभिता कान्तदृष्टि	₹ १ ६	मह गुलीपृष्ठभागे न	928
भ्र क् ष्टबनिस्तापतेतै	33	घड गुलीभिश्चतसभि	१३=
प्र श्निमाञ्जयोगींगात्	30	बङगुलीभिश्चतसृभि	१३=
भगाङगुलि समायोगात्	880	घङगुलीसारणास्तासु	588
मञ्ज तत्पञ्चवा ज्ञेयम्	848	बङ्गुब्ठमणिबन्धोत्य	₹¥€
भक्त पन्नासिका प्रोक्ता	5	श्रक गुष्ठपाश्वमिलिता	3#8
मञ्जू वाडव रागस्य	৩=	झङ गुष्ठाङ गुलिसघातो	68€
श्रक गिंछ स्या विनिकुटटेन	986	भक्र गेनालम्बयेद् गीत	₹•€
मञ्जञ्जैवाशयाञ्जञ् व	१५४	भ्रष्टिन्नपाट पाणिम्या	१५२
य क्रुच्छायानुकारित्वा	\$ €	म्राञ्चित स्यात्प्रसारित	१७२
भक्तत्वमेषांकेनापि	68	श्रक्तिवतस्थानके यत्स्यात्	२ ०२
मञ्जदोषपरित्यक्त	5,8€	श्रक्तिकवेति वत्वारो	२००
शक्र मात्रेण विक्रिता	20	धक्षिताङ गलिपादारम	8=8

परिशिष्ट	2	संगीतसमयसार	
ग्रञ्चिते पतनं तिर्थंक्	२०१	ग्रथो <u>मु</u> खतलावि टौ	१ =1
ध डुताली रासकश्च	305	चनड्गतालो विषमो	281
ग्र हताली रासकत्त्वहाँकताली	१२६	धनयोस्समानकर णात्	980
व्रत उत्तमसूडेतु	१०६	श्रनायासेन गीतश	231
द्मताल पदपर्व्यन्ते	१२ २	प्रनिन्द्याश्चैव निन्द्याश्च	233
धतालालाप युक्त: प्राक्	858	ग्रनिवद्ध निबद्ध च	9.3
ध तालालप्ति हिड्टा	३६	द्यनिबद्ध निबद्धञ्च	१६३
स्रति चित्र तमश्चेति	२१४	ग्रनिबद्धस्वरज्ञान	230
प्रति चित्रतमेमार्गे	२१४	धनियुंक्ता ग्रमी प्रोक्ता	₹0₹
प्रतिद्रु त गतिगीते	६२	द्यनिर्युक्ता द्यमीसर्वे	800
प्र तिसूक्ष्मश्चसूक्ष्मश्च	२८	श्रनिर्यक्ता श्रमी सर्वे	803
द्मतिसूक्ष्मो भवेत्नाभौ	₹=	ग्रनिर्युक्ताश्च निर्युक्ता	23
घरयुक्ति देह दण्डञ्च	२५७	द्यनिर्युक्तो भवेदेश	33
प्र त्युत्तमस्ततोज्ञेय	808	बनुजायियुत शब्दो	१६३
षय गीतानुगामित्वाद्	१३१	धनुतारात् परश्रुत्या	ĘX
अथ वित्रादि मार्गेषु	२१५	ब्र नुद्रुतार्घवेगेन	3.5
श्रय दक्षिण हस्तेन	686	श्रनुमान प्रमाणञ्च	२०२
धय देशीगता मार्गा	२१५	धनुमान समुहिष्ट	208
ग्रथ पूर्वे रनुक्तानि	२०२	प्रनुयायि सतालञ्च	, १ २२
प्रयव क्ष्ये निबद्धञ्च	€3	बनुवायि समायुक्ता	3,5
ग्रयवा चोञ्चहीनञ्च	₹4€	धनुवाद दृढ प्रज्ञ	270
ग्रथष ट्त्रिकादेवस्यु	१ २३	अनुवादी सवादी	¥¥
धय सूडाइच याय्यश्च	२४३	श्रनुवृत्त स्याद्दर्शन	980
प्रथालम्ब विलम्बाम्या	१२ २	प्र नुसारस्सानुसार:	१२०
भर्यतानि समाश्रित्य	939	भनेक गमकन्वेन	885
भर्यतेषा प्रवस्थामि	8,8,3	ग्रनेकवाद्यमिलन	१६२
भ्रवसस्य परिज्ञेयो	२५३	भनेनैव प्रकारेण	888
श्रममा सापग्जिया	२५७	धन्तर्भ मरिका चैव	202
श्रमो मातुकारस्य	235	मन्तर स्वर वर्तिन्यो	` x
प्रभ स्तलेन हस्तेन	213	मन्तरीद्वितये चैव	848
मध स्तादुपरिष्टाच ्य	838	मन्तरे चण्ड निस्साह	१०५
म घोगतमधोवस्त्र	१७१	ग्रन्तरेण यदम्यास	30

परिकाद	•	संगीतचम्बसार	
धन्त रोपलयञ्चेति	₹#19	भवनेव वसन्तास्था	હ ફ
शन्ते च गुरुणी यच	₹₹	धराल, शुकतुष्टरव	\$u\$
धन्धकार स्थिता यद्वत्	ę.	घरालकटकी हस्ता	१ = ३
ग्रन्थगीतेन गातव्य	308	बर्बमावात्रियाराग	128
धन्यास इयर्थमारम्य	80	प्रर्थ युक्तस्य वाद्यस्य	280
ब्रन्यासामपि वीणाना	१३७	ग्र र्वापस्यानुमाने न	१ •
ग्रन्यूनाविकता तञ्जी	६२	धर्योऽव नादशब्दस्य	२७
भ न्येऽपि भेदा विद्यन्ते	११ ३	श्रधंद्रुताम्या बिन्दु स्याद्	213
ब्रन्येऽपि वे यथायोग्या	270	प्रधंगात दुत व्योभ	२१€
धन्येषु च प्रबन्धेषु	ξX	मर्थमुक्तिरमुक्तिश् च	588
धन्यैयंस्त्रिविष प्रोक्त	१२५	भर्षस्वनितिका वृता	867
भन्येस्तु सरिसङ्गीत	**	ग्रर्धस्थितास्त एवोक्ता	¥0
भन्योऽन्याभिमुख वापि	₹₹0	धर्ष स्थितिस्ततस्तस्मात्	१ १८
ग्रन्योऽपि भूरिगमको	£ \$ \$	ग्रर्थस्थिते चालयित्वा	*4
प्रम्बर्थसज्ञया ज्ञेय	१३२	शलग किञ्चिदुद् वक	200
भ्रयसल्ल स विज्ञेयो	XX	धलग नतपृष्ठञ्च	₹• ₹
ग्रपन्यासो स विज्ञेयो	४६	ग्रलक्कारस्वराज्ञत्वम्	588
अपर कियते योऽसौ	880	ग्रलक्कारास्त्रय तज्ज्ञैः	₹5
प्र प रस्परसम्पन्न	585	धलक्कारेषु चातुर्याः	२३०
प्रप्रस्थिति सौख्यविपर्ययेण	XX	बलपद्मस्तु शून्योक्तौ	१७६
प्रपाद पद सन्दोहो	१ २०	ग्रलपद्माह्नयो हस्तो	\$ 83
बबलाबाल गोपालिक्षति	₹ ₹	ग्रह्मेस्तु गमकै क्लूप्त	***
धभङ्गी रायबङ्गाल	२१=	भवतानमधोवक्त्र	१७२
मित्रात प्रयुक्तोय	180	श्ववान तथा राग	444
ग्रभिषानेषु दक्षत्व	₹₹0	धवषान सुमेवत्व	2 % %
प्रभिनन्दो नरकी इ	२१७	अवध् ताञ्चाञ्चितञ्च	338
प्रभिव्यञ्जकता चापि	5	स्वयवावयवो यस्मिन्	84
प्रभ्यवस्थानक गीत	४२	भवहित्य शुकतुण्डी	\$50
प्रस्यवस्थानक गीत	२४३	अविभान्तस्वरोपेत	Yo
पमन्दा प्रतिभायुक्ता	२२६	धवैस्वर्यं भवेत्स्त्रीणा	585
प्रसीरागा निगद्यन्त	95	अध्यक्त शिरसीत्युक्त	२८
प्रमी सर्व प्रबन्धास्य	६=	सन्धवस्थित इत्युक्त	२३७

परिशिष्ट	२१२		संगीतसम्बद्धाः
बस्टकृत्वस्तु चण्चयाँ	२१६	श्राद्यामन्द्र तमध्वाना	4
धष्टमात्रा च विद्वद्भि	568	भाषाराघेय व शतो	* 21
प्रदरी काष्ठा निमेषः स्यात्	२१३	भ्रान्दोलन भवेद्यत्र	Ye
धश्राव्य लक्षण त्यक्तवा	₹₹	म्रान्दोलितस्त्रि भिन्तश्व	9.6
धसंस्पर्धेन तर्जन्या	¥ ₹ \$	धान्दोलिताख्य गमक	80
प्रसमस्तै समस्तैर्वा	१२०	म्रान्वालिकाङ्ग मल्हारी	
बसम्पूर्णस्वर गान	Ę϶	धानन्दवर्द्धननाम	8 8 8
ब्रस:वतिज धन्या ख्य	808	म्रानन्दाश्रुकणाकीर्ण	281
ध स्या न्यासाशयो षड्ज	= ¥	ग्राभोग च ततो गीत्वा	851
मस्मिन्नेला च ढेन्द्री च	१०६	माभोग च सकृद्गीत्वा	801
		भाभोग चसकृतगीरवा	880
आ		द्याभोग कथितस्तेन	87
भाकस्पित कस्पितञ्च	१६९	द्याभोगे वर्णनीस्य	११ 9
माकुञ्चितो ऽ इ-छि वामश्चेत्	₹38	ग्राभोगो उन्यपदैश्चास्य	१२०
माञ्जिकाभिनयास् सर्वे	939	माभान्तर प्रयोगी भवति	583
ब्राष्ट्रिकाभिनयो नृत्ये	२०४	भ्रामोद स्यान् सपातेतै	13
भाषा र्व्यास्समिञ्छन्ति	80	भायामनात्प्रसारीति	१ ==
भाञ्चितादैश्च विषम	२५६	ग्रारब्ध सानुसारेण	880
मारमेच्छया नाभितलात्	१०	स्रारोहणावरोहण ऋमेण	84
मादावति जघन्यः स्यात्	₹0₹	भागेहणे प्रसन्नादि	31
भादानुद् ग्राह्मते गीत	€3	धारोहिकमत सोऽहम्	9.
मादिताल समायुक्ते	\$58	भारोहि कमतस्तज्ज्ञी	÷
मादिष्टार्थस्य निर्वाह	२३०	धारोहित कमनस्सोक्ता	×
धादी के न्द्रारमु ल्लाम	3 × 8	श्रारोहि कमतोयक	31
बादीध्वस्तो मण्ठ	१२५	ब्रार्थावृत द्विपथकाये	80
भादी प्रतापतिलको	555	धालिप्त तादृशीमेव	28
भादी यत्र स्वरालाप	399	ब्रालप्ति तादृशीमेव	280
मादौ यस्मिन् स्वरे राग	ሄሂ	श्रालप्ति कथिताशुद्धे	10
भाषी स्यादष्टमात्रवा	१६१	माल प्तिगायनस्सोऽय	78
भाश्व न्तमध्यव्यारव्यान	२२८	ब्रालप्तिगायनो गीत	78:
प्राचार या कुञ्चिता	१७३	धालप्तिरनिबद्धाः	91
भाषापसूरय वकान्या	१७४	पाल प्तिवितसत्ताल	X.

व िर्मिष ण्ड	7	ia .	संगीतसम्बदार
सालप्ति सश्चया वर्णा	₹६	इति कियाद्वयौर्योगात्	195
मालप्तेरपि यद्गीत	२३४	इति ताबन्नया प्रोक्त	ę.
मानप्ती रूपके वा स्याद्	Ęą	इति द्वादश वाद्यानि	१४२
म्रालाप केचिदिच्छिन्ति	१२५	इति द्विषातुकास्सर्वे	१ ००
भालापनिर्मित कैषिचद्	१५४	इति पञ्चविष प्राहु	१५४
धालापादि क्रियाबद्ध	¥	इति पचनिषा प्रोक्ता	१ द द
धालावण्या विधातव्यो	680	इति पञ्चविध पाद	१८६
द्यालिकमो ऽयमेयोक्त	१०६	इति प्रोक्त मनङ्गार्धी	25 8
मावरयं न्ते ऽन्तरङ्गुल्य	१६७	इति भेदस्समुदिब्टो	牧尊
बावरित बहिर्दु त	१=७	इति मानगति प्रोक्ता	₹₹₹
मावति-योन्तराङ्गुल्य	३७६	इति मिश्रध्वनि प्रोक्त	30
श्रावापसज्ञक ज्ञीयम्	२१३	इति सप्तसमुह्ब्टा	१०८
प्रावापादिकियाज्ञ रव	83	इति स्वर गता ज्ञेया	¥
भावापादि ध्रुवादिवी	≺१३	इस्य राग स्थिरी कृत्या	38
द्याविद्धमन्तं सम्भ्रान्तम्	१७२	इत्यङ्गाभिनयास्सर्वे	१६८
ग्रविद्धवकी पल्लवा	१६२	इत्यनेक प्रयोगेषु	१७४
माबुरयासी च गातव्य	309	इत्थादयस्तु गोण्डल्या	२७४
धावेष्ट् यन्तेन्तरगुल्य	१८७	इत्यादयस्तु शास्त्रज्ञ	२२€
भावेष्टित ययोदवेष्टित्	१८७	इत्यादय समुद्दिष्टा	३४६
माशाम्बरमतादू र्व	१८५	इत्यादयस्समुद्दिष्टा	२४४
ग्रासज्येते करौयत्र	8,8€	इत्यादयस्समुद्दिष्टा	२४३
मासज्येते सम यस्मात्	१४८	इत्यादयस्समुद्दिष्टा	588
धास्तिक्योत्पादन गीत	¥₹	इत्यादि वादसन्दोहो	२१०
मास्यान मण्डपे रम्ये	258	इत्याद्यनेकथा प्रोक्त	१ ३२
माहत्यालोकने योज्या	१६४	इत्युक्त दशवाबाद्य	१३४
माहति क्रियते यातु	Ęo	इत्युक्तीन प्रकारेण	₹ 60
ब्राहति कियते यातु	१३ 5	इत्युक्तेन प्रकारेण	5.8.3
माहत्यारू ढयायत्र	ሂሩ	इत्येककर समयन्ना	8.8.8
माहतस्त्रिविष प्रोक्त	90	इत्येव हस्तपाटाश्च	\$.x.£
_		इत्येष लम्भक प्रोक्त	858
इ		इत्येषा पद्धतिक्या	₹•€
इतरे चान्तरी शब्दा	252	इदमेव गुणैरीयत्	\$7\$

परिशिष्ट	tev		संगीतसमवेतीर
इदमेव यदेकद्वि	४६	उत्तानवञ्चितौ किञ्चित	१व४
इष्टस्वरो ग्रहस्तस्मिन्	११६	उत्तानस्थानकोपेत	₹•₹
£		उत्तार बन्धगीत वा	२३२
ईषद्विलम्बमानेन	328	उत्पत्य पतन तिर्य्यम्	२०१
ईषदाहत सयुक्त	४६	उत्प्लुत्य समपादेन	२०१
ईश्वरानन्दन श्रत्या	853	उत्प्लुत्यापि प्रसार्य्याङ् घ्री	१६५
ईश्वरीचैव कौमारी	5	उत्फुल्ल खलकश्चैव	\$ 85
		उत्फुल्लगल्लनयन	२३७
उ		उत्सङ्ग स्यात् प्रियाश्लेष	१= १
उक्तो गायक भेदज्ञी	२३४	उत्सवश्चेति तालानाम्	28=
उक्तोऽज्ञमञ्जम्हिष्ट	208	उत्सृज्य कुण्डलीस्पर्श	१४०
उक्तोषन रवीजेयो	848	उदीक्षणो महिटकाच	२१७
उक्तः 🖣 । डव एक स्मिन्	85	उद्ग्राह प्रथमार्घेय	309
उचित स्थापनानप्ति	3 %	उद्ग्राह तालमानेन	309
उच्चनीच स्वर गीत	8.8	उद्ग्राह ध्रुवकामोगेषु	3 % 8
उच्चनीच स्वरोपेत	٧.	उद्ग्राहध्रुवयोर्गान	₹ ₹ €
उच्च पालाख्य टक्कण्या	१६४	उद्ग्राहयुगल यत्र	१५७
उच्यतेऽपस्वरा भासो	७१	उद्ग्राहम्यादिम भाग	११व
उच्यते समयस्तस्माद्	१ २=	उद्ग्राहाद्त्रिय यत्र	२०७
उत्कलिकाह्ययेरीतिर्	828	उदग्राहाद्यन्वित वाद्य	\$28
उत्किप्ताधोगतङ्चेति	856	उद्ग्राहाद्यास्तु चत्वार	ξX
उत्सिप्य हन्यते तत्री	3 6 9	उद्ग्राहेऽङघि द्वय प्रासै	8 6 8
उत्क्षेप परिवर्तदच	899	उद्ग्राहे चैव मेलापे	१०६
उत्तम स परिक्षेय	₹₹€	उद्ग्राहेण ततो न्यास	2 2 5
उत्तमस्तत्र विज्ञेय	२५४	उद्ग्राहेणपुनर्मोक्षाद्	१५७
उत्तमादि प्रकारेण	378	उद्ग्राहेणस्यान्तर भाग	886
उत्तमेप्राक् स्वरार्थं स्यात्	800	उद्ग्राहे पुनन्धांस	288
उत्तमोत्तम सूडान्तगंती	१०६	उद्ग्रावाध्यु वेवापि	१२४
उत्तमोत्तमपूर्वञ्च	3 7 7	उद्ग्राहे स्थानकस्थित्या	***
उसमोत्तमपूर्वञ्च	२५०	उद्चट्टे मगणस्त्वेक	398
उत्तमोत्तमसूडा दि	233	उद्घडस्सोपहासाहीं	230
उत्तमोत्तमसूडे तु	₹ o ξ	उद् षडी मिश्रक श्चे ति	२३६

परिशिष्ट	२ र्दे ४		संगीतसम्बंधीर	
उद्बाट्य वदन गायन्	२३७	कर्जास्या कुञ्चितास्सर्वा	१७६	
उद्घृष्ट सर्वत क्षुव्धो	२३६	狸		
उद्बुष्टश्च तथा काकी	२३६	ऋषभ पज्जमस्थाने	121	
उद्देशकमत किञ्चित्	१३१	ऋषभांशग्रहन्यासा	4.5	
उद्यत्प्रताप प्रथम भवेत्स	११२	ऋषमेणकम्पितापूर्णा	32	
उद्यत्प्रतापमुद् षा हे	११२	ऋषभे मन्द्र ताराभ्या	6.	
उद्बाहित स्यादुदगत	१७१	ऋषभेस्फुरिता पूर्णा	59	
उद्वाहिताशनै पार्श्व	१दद	_		
उद्वेष्टन तथोल्लोल	X39	Q		
उद्बुत्तो यत्र पाद स्यात्	289	एक पाद समीयत्र	158	
उध्वं प्रसारितोऽङ्गुब्ठो	१७७	एक समोऽङ्घियंत्र	\$68	
उध्वेधातद्वय कुत्वा	888	एक एव प्रबन्धश्चेत्	१०५	
उर्ध्वनाडी प्रयत्नेन	2.5	एकगीत ध्रुवस्याद्य	305	
उध्वेंक्षणमुस्लोकितम्	980	एक तालश्च ककाल	7 8 0	
उपर्यु परिविभ्यस्त	282	एक तालाख्य तालेन	१२४	
उपलम्भ इति प्रोक्त	१२४	एक त्र स्वस्तिकाकार	१४७	
उपविष्टस्य वामोरो	X38	एकदाधोगित प्राप्तम्	१७०	
उपाञ्जरवेननाट्टाया	63	एक घा बहुशोवाय	१०४	
उपाङ्गानि भूवीनेत्रे	१६७	एक रात्रेण कलल	₹ %	
उभय प्रभवा के चित्	२४	एकलो गायक स स्याद्	२३=	
उभयात्मकमित्याहु	٤5	एकलो यमलोचैव	23=	
उभयोईस्तयो पात	288	एकवार त्वष्टमात्र	१ ६२	
उर स्थानशिर कण्ठस्था	88	एक वीणेव भासेते	Ę	
उरोमण्डलिनी हस्ती	१८२	एक स्थानेन यो गायेत्	२३६	
उल्लासनक्रमेणाड्घि	038	एकस्य पृष्ठत कृत्वा	8€=	
उत्वणावूर्ध्वगाविष्टोद्	१८६	एकस्यैवपदार्थस्य	359	
-		एक स्वर पदेगीत	34	
35		एक स्वरो द्विस्वरक्व	35	
करजङ्गा युगञ्चेति	१६८	एक हस्तेन हस्ताम्या	१ १ २	
करवार्ष्णिस्थितो भूमौ	\$£\$	एकाक्षरा भृड्गजाती	9	
करी तदस्यपादेन '	335	एकाइ जिला क्षिती स्थित	7 १६=	
कव्योङ्गुलि पताका स्यात्	288	एकाङ्ग्रिणा बदश्यस्य	286	

परिकाब्द	ą.	EÉ	संगीतसमयसार
एकादिस्वरमेदेन	११६	एव गुणयुतालप्ति	₹¥
एकी भूत तथा काले	२५	एव चतुर्विषज्ञेय	₹\$
एकेन सविरामेण	२२२	एवं द्वितीय तालेऽपि	883
एकेनैव द्रुतेन स्याद	₹₹	एव नृभि सदास्त्रीणा	२४२
एक कमपि तेषु स्याद्	×	एव प्रसन्न मध्यश्व	₹ 9
एकैकशोऽपि गातव्य	१०=	एव यथाऽवरास्तीव	É
एकैक घोऽपि गातस्य	१२व	एवं समुदित प्राहु	१३३
एतदृशविध नाम्ना	8 3 3	एव स्वभावसिद्ध स्त्रीणां	२४३
एतद्ध्वनि गुणोन्मिश्रो	₹0	एव स्वहलनादैषा	११०
एतामेव प्रयुज्यादी	৩=	एव हस्तश्वरित्वा तु	9.89
एते दोषा विशेषेण	588	एवमण्टादश श्रोक्ता	668
एते भेदा परिज्ञेया	₹?	एवमादि गुणैर्युक्तो	588
एते वागोयकारस्य	230	एष स्वर गतोईश	8
एतेषा लक्षण वक्ष्ये	88€	एवा तु पञ्च विन्द्बाद्या	₹≒
एतेषु भोम्बडा प्रोक्ता	558	एवा मध्ये गुणैद्वित्रै	२३€
एतेष्वभिव्यज्जकतामेव	80	एवैवोदवणी नाम्ना	१५७
एते सर्वे यथायोग्य	220	एसृत तत्समास्यात	\$?
एते स्थायिन्यल द्वारा	₹७		
एते स्तु स्वपतायुक्ता	१०१	भो	
एतैर्गुणैर्युना शुद्धे	₹8	स्रोताताकययन्ति	१५७
एघोदण्डानुविद्धञ्च	280	स्रोताख्योऽसौ प्रबन्ध	१५७
एम्यो ये विपरीतास्ते	280	ग्रोत्वरोऽपि (च) देखुार	१५६
एम्यो ये विपरीतास्ते	२४७		
एभ्यो ये विपरीतास्ते	248	斬	
एरण्ड काण्ड वद्यक्त	39	कठे त्रिस्थान शोभी स्यात्	1 32
एलादिसूड विषम	580	कळूलनामक वाद्य	े १३४
एलापादत्रये गीतम्	११५	कटकावर्द्धमानश्च	१७८
एलापूर्व ततो ढेड्डी	808	कटके न्यस्तकटक	309
एलाया ढेव्ह्रिकाया च	83	कटि पञ्चविद्यातद्वत्	१६६
एला स्थान्मध्यमे पूर्वं	१०७	कट्यप्रविनि विष्टाग्री	648
एव गुणगणोपेता	₹ ६	कडाल मधुर चैव	9.8
एव गुणगणोपेता	244	कडाल पेशलञ्जीव	i i

परिशिष्ट	ŧ	és e	तंगीतसम् यस ार
कडाल अति सयुक्तम्	१२६	कराम्यामुदयो यस्मात्	٤٤
कण्ठे न याति माधुर्यं	२३४	कराली कोम्बको वकी	736
कषयामि ऋगादेषां	558	करुणाकाकुसयुक्त	*1
कथित शक्करेणेदम्	१३५	करुणाकाकु सयुक्ता	3.8
कथिता पञ्चतन्त्रीति	5.8.5	करुणा रागयोगेन	3.8
कथ्यते गारुडपक्ष	₹8=	करोति नतंकी तच्च	\$58
कथ्यते दर्पसरण	200	करोति वयकारो य	२३१
कथ्यते यत्रकाकुस्स	६७	करोति शुद्धगगे च	२३८
कथ्येते पविपातेता	१०२	म णंपूरा यताब्जादि	१७६
कनिष्ठाङ्गुष्ठयो स्पर्शात्	3 \$ \$	कर्णस्य त्रिपताकोऽन्य	\$ =8
कनिष्ठा पाद्यंसदिलष्टा	१=१	कर्णाक्षि नासिकाचास्य	२६
कनिष्ठासारणाभ्या च	3 8 9	कर्णाग्रात् कटि गुल्फदेशसम	ता १६२
कपालभ्रमरी चैव	202	कत रीत्रयस युक्त	838
कपित्थ ६ टकास्यश्च	१७३	कतंरीपाणिहस्ताम्या	१५०
कपित्य स्मरणेचक	एए ९	कतंरीम्या सम वात	१४६
कपित्थेऽन्त्ये समुत्तिक्षप्य	१७७	कर्तरीसदृश पाणि	१३ =
कम्पमानार्थमुक्तादच	2 4 4	कर्तरी सदृश पाणि	Ęo
कस्पित कुहरक्वैव	₹≂	कर्तर्यंवघटाम्या या	१ ५०
कस्पिता पञ्चमे वडजे	50	कर्तर्याखसितेनापि	638
रुम्पिती नाम गमक	3.€	कर्तया लसितेनापि	6.58
कर स मूच्छनाभिल्यो	3 6 9	कर्तरीखसित।भ्यायत	638
करचारणापितद्वत् स्यात्	388	कर्तर्याख्या वितर्केस्याद	१७४
करटापाटवर्णास्यु	१५४	कर्ता कुलकवाद्यस्य	२४७
करटामयुती पार्ट	१४७	कर्ताकुलक्वाद्यस्य	२४७
करण करणाख्येन	११५	कर्ता प्राञ्जल सूहस्य	२३२
करण कीर्तिलहरी	११६	कर्ता विषमसूडस्य	२३१
हरण तत्परिभृत	208	कर्ताविषमसुडस्य	२३२
करणं नृत्ततस्वज्ञै	२०१	कलहस क्रीञ्चपद	१०१
करण प्रागर्येला स्वाद	808	कलासूक्ष्मीकृत शब्द	ĘX
करणं वात्रिभडि्गर्वा	608	कवर्ग पचमन्युन	
करणाख्ययतिष्टचैव	२१=	नवर्गश्च तवर्गश्च ववर्गश्च तवर्गश्च	6.8.5
करणाभिनयस्यान्ते	२०६	कवयो रस भावज्ञा	१४२ २ <u>३</u> ६

परिकिंग्ट	÷1	२ ६व		
कविताकारयोर्वादे	२४=	कृत्वानिप्त सताला व	X.	
कस्यचिद् गायनस्यैषा	६७	कृतिमो मुखदशेतु	२	
कास्य घनमिति प्रोक्त	9 8 9	कृशमध्या नितम्बाढ्या	128	
कास्यतालहच पञ्चैते	१ ६२	कृष्या कुञ्चनमात्रा च	2 8 7	
काकस्येव स्वरो यस्य	२३६	क्रमेणगाढतात्यक्त्₁ा	X.	
काकुश्चदेशकाकुश्च	६६	क्रमेण परमतार	ş	
काकुश्च भावनाभाषा	६६	क्रमेणपरमतार	ų.	
काड्गूलेऽनामिका वका	१७७	ऋमेणपेरणादीना	२०	
कारणाशस्य काय्यीश	€ '9	क्रमेण युगपद्वापि	8 %	
कार्याकार्यविभागज्ञा	२२६	क्रमेण लक्षण तेषा	88	
कार्यास्तामू त्यिना शब्दा	Ę	ऋमेण लक्षण तथा	१ २	
कालकारुयेन हस्तन	१४२	कमेण लक्षण बक्ष्ये	ą.	
कालाणंवी भोम्बहरूव	800	कमेण वक्ष्यते तथी	23	
काली सूक्ष्मातिसूक्ष्मा	5	ऋमेण व्युत्ऋमेणार्ध	१ ६	
कालैस्त्रुटिश्वतुमि स्यात्	२१३	क्रमेणब्युत्क्रमेणेति	2.8	
काव्य नाटकसञ्जात	२२७	क्रमेशेषाश्चचत्वारो	१०	
कित्तुस्तरहरोल्लासौ	202	कियतेबहुभञ्जीभि	२१	
किन्नरीवसवीणासु	६७	क्रियते यत्रवाद्यज्ञै	84	
कु ञ्चिताग्रतल भूस्या	328	ऋियते यदि सालप्ति	3	
कुञ्चिनो ऽभिनयायत्त	3=\$	कियाकारक संयुक्त	ν.	
कुञ्चितौचरभौयत्र	987	क्रियानिवंहणाज्ञ रव	२३	
कुडुक्काख्येन तालेन	११४	किय।पर कमस्यक्ष	23	
कुडुक्केन ततोलम्भा	808	कियाभाषाविभाषासु	48	
कु न्ताद्यायुषसङ्ग्राह	309	कियाभेदात् वाद्यभेदात्	₹ ३	
कुरुप वा ततस्यद्वत्	232	कियायायद् भवेदञ्ज		
कुर्यात् तृतीय सस्थान	४७	कचिद्गान्धारमप्याहु		
कुर्यात् द्वितीय स्वस्थान	80	केचिदेक पदोद्ग्राह	१२	
कुर्व न्नावे विटलोद्वे विटल्	8=0	केटि कठेध्वनि स्थान	3	
कुष्ठरोगिणिशार्द् ले	१७६	केनाप्येकेन पादेन	₹€	
कूर्परस्वस्तिक युतौ	8=€	केवल ताल भेदेन	15	
कृत्यावृत्या तु गारुग्या	8×8	केवल मार्गनृत्त य	? X	
कुरवान्य चरणं तद्वरफलके	200	केवलै: करपाटैस्तु	१	

वरिकिय्	ą.	le .	तंनीत च्यावता
केसदेशाद् विनिष्कास्ती	१८४	गतिस्थप्रचेति पर्चव	१ ५३
केशवन्यकरीप्रोक्ती	828	गरविमनययोगाय	708
कैवाडो वर्ण सरक—	205	नत्यागमकयोगेन	x e
कैशिक पचमश्चीव	₹•	गद्य लण्डमिति प्राहु	१ २०
कोमलैगैमकैर्युक्ताल द्वारै	∵ χ	गद्य चित्रमिति प्रोक्त	१ २०
व दचित्पेरणरीतिइच	640	गद्यततश्चकरण	\$ o X
बबचित् स्वरे स्थिर स्थित्वा	₹७	गद्यज पश्चजञ्जीब	118
क्वचिदशायते रागो	33	गदाज पदाजश्चीव	\$\$\$
क्वजिदग क्वजि ज्छन्दो	€=	गद्यरीत्या विघातच्या	१ २२
क्षणादावतित हस्ते	₹50	गद्ये उनुयायिन कारवीं	१ २२
क्षित्र गतागतीस्तर्यंक	१८८	गन्धवं सुख हेतु स्याद्	, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,
		गमकानामबाहुल्याद्	११ २
ख		गमके च पदे जाड्य	238
सवरस्य समुहिष्टो	ধ্ত	गमको मानमेतेषा	43
सटकास्यावभिमुखी	१८२	गमन्द्रावरिता च	48
खण्डगद्ये रसोहास्यो	१२१	गमयेल्लक्षणोपेत	२३३
सण्डोऽपि चतुरस्राख्य	२१६	गमाबुद्या चाल्पशेषा च	48
लल्लोत्तर च कुरुपु	१२८	गम्यते सप्तकद्वन्द्वम्	6.8.6
लसितेन समायुक्तो	₹३३	गर्वे स्तम्भे च कान्ताना	१७०
लाहुल स तु विज्ञेयो	35	गलौ तुप्रति मट्टश्च	777
साहुलो वोम्बकश्चैव	39	गाढरवेन स्वर सर्वो	20
सिन्नाड्गत्व जडत्व च	58€	गाणाचेठाय सज्जतद्	40
खुत्ता सा कथ्यते गान	48	गात्र यदि स्थित सम्यक्	२०३
खेटि खेणि भग्न शब्द	32	गालुणा स्थानदातृत्व	5 8.8
स्यात परिवडिनीम्ना	Ę ?	गान ताबा च पाठ्यञ्च	585
ब्बात स्फुरितसज्ञोऽसौ	8 3 =	गानभारभटीवृत्त्या	88
ख्यातासौ राष्ट्रिकालोके	5 E	गानप्रकारो यस्यैव	884
श		गान लक्षण तत्वज्ञी	48
ण गजदन्तशिलावत्स	१८०	गानवकीकृतग्रीको	२३७
गजलीलाभिषानञ्ज	833	गाने तज्जायेऽपर क्लाबमान	
गजाबारोहणादी	830	गान्धारमध्यमस्वस्पा	- e ę
गति कुष्लयार्द्धेन	335	गाम्बार पञ्चमश्चैते	78

Welling 15	4.	e \$	संगीतसम्बद्धार	
गान्धारपञ्चमाज्जाता	# ?	गीत शारीर चेट्टानाम्	848	
गान्धारबहुला तज्जी	= 5	गीतस्यातित्रसारण	२३७	
गान्धार सप्तम प्राय	१५	गीतस्यानुगत वाद्यं	58	
गान्धारादियंतस्तस्मात्	28	गीतस्वोत्पत्तिहेतुरबात्	Y 0	
गान्धारो धैवतस्थाने	6.86	गीतस्योपरि गीनश्र	४=	
गायकानाञ्च निर्दिष्टा	588	गीताक्ष रैस्समुचितै	₹¥	
गायत्यन्यानपेक्षो य	२३८	गीता चेठायमित्वाहु	×ε	
गायन्तुष्ट्रवदासीन	२३७	गीतातोद्यादिनिपूणो	२४३	
गायन्योर्यदि बाद स्यात्	२४३	गीनादपि य ग्रालप्ति	2 74	
सार्गा कथ्यत तज्जी	२२२	गीत नुगस्य वाद्यस्य	१४७	
गारुगीविषमेणैव	१६३	गीनावधानरहित स	२३७	
गारुग्याख्येन तालेन	१०७	गीतावसाने न्याम	१५=	
गारुग्या भोम्बङण्चाय	१०५	गीनन प्रा क् तनेनैव	११०	
गाहरया भोम्बडश्चाय	१०५	गीते वाद्येच नृत्येच	558	
गिरुकिटुओन्त शब्दैश्च	१४७	गीते वाद्येच नृतेच	२४८	
गीत च वाद्य च तथा च नृत्त	२३	गीतोत्तमगुणैर्युक्त	२३४	
गीत छायालगे सम्यक्	280	गीत्वा ततस्तृतीयाड्घ	884	
गील नामिकया गायेल्	२३६	गीत्वा द्विवारमुद्ग्राह	28=	
गीत बाद्य चनुत्त च	२१२	गीत्वा पूर्व द्विस्द्ग्राह	११६	
गीत हास्यरसोदार	88	गीत्वाभोग सकुन्त्यास	१ २७	
गीतञ्चेति बहुधा प्राहु	२०६	गीयत गीतमुक्त तत्	200	
गीतमानाधिक वाद्य	१४८	गीयते सानुरागेण	73	
गीत लक्षणतस्वज्ञै	७१	गीयन्ते पद तालाम्या	800	
गीत लक्षण तत्वज्ञी	৬१	गुणाधिक्यमनिक्चेय	83€	
गीतवादकयोवदि	२४१	गुणैबंहुभिरल्पैश्च	२३८	
गीतवादनदक्षश्च	8,80	गुण्डकी गुर्जरी जैव	१२=	
गीतवादनदक्षश्च	588	गुरुभिनंचुभिनिश्रै	823	
मीतवाद्य च यूगपन्न	१५५	गुरलंघू गुरुश्चैव	₹१€	
गीनविद्या विशेषज्ञै	ĘĘ	गुरुषोऽशक यत्र	777	
गीत विद्या विशेषज्ञै:	१०१	गुर्ज रीता बितापू र्णा	= 7	
गीतविद्याविद्योषज्ञै	803	गुजंरी परिपूर्णे य	6.3	
गीतविद्धि स विज्ञेयो	883	गुजंरीस्यान्महाराब्द्री	-€	

परिशिष्ट	₹•	₹*	सगीतस म्बद्धाः
पुर्वे क्षणामल्पत्वे	१ २३	चंण्डनिस्सा ६केचै व	***
पुर्वेक्षराणा प्राचुर्यात्	१ २३	चतु स्वस्थानकै शुद्धो	४व
पुर्वाज्ञा वरणे यस्या	5 ¥	चतु श्रुति स्वराविषा	44
गूढार्थं परमार्थश्च	४१	चेतु षष्टि करा प्रोक्ता	375
गृद्यन्ते श्रुतस्तावत्	१०	चतु वष्टिद्रृता पाता	254
नेय स्यात्सकृदुद्वाहो	१ २७	चतुभि पञ्चभिर्वापि	२३१
गोण्डस्या बादकस्तज्ज्ञी	२ ४१	चतुभिनंखरै युक्तै	१ ३=
गोल्डल्योर्यंदि स्यादोभिरेव	२५७	चतुरस्रकशैहसपक्षा	१य३
नौड स्याष्ट्रकरागाडग	E 9	चतुरसस्तयात्र्यस्रो	RPX
गौड कैशिक इत्येष	२०	चतुरस्नादितालेन वास्रोन	१६४
गीड कैशिक मध्योऽन्य	२०	चतुरस्न।वृदवृत्तौ च	१द१
नौडीरीत्या युतगद्य	१२०	चतुर्धाहस्तकरण	१६७
प्रन्थार्थंस्य परिज्ञान	२२५	चतुर्दशाङ्गुलां स्थाबी	5,83
प्रहत्र यसमायुक्ता	३६	चतुर्मिषातुभि षड्भि	F3
प्रहमन्या स विन्यास	€₹	चतुर्भिनखरैयंत्र	Ę0
ाहाशन्याससम्ब द्ध	57	चतुर्मात्रञ्चाष्ट मात्र	848
राम्भीक्तिरपशब्दश्च	₹₹	चतुर्वर्णसमायु व ता	έA
घ		चतुर्विशतिमात्राभि	6χο
वनद्रुता घनप्रासा	१२४	चतुर्विद्यतिरित्ये वम्	१७३
वनमासञ्च विशाहे	२४	चतुर्विष भवेत्तच्य	3,0
वनवाद्यमिति प्रोक्त	844	चतुर्विष च सामान्य	80
चनाभिचातो ध्रुवका	268	चतुर्विधमिद प्राहु	1 = 1
वर्षरागीतकैवार	244	चतुर्विघाप्यष्टविघा	3.3
चात पातश्च सलेख	१३७	चतुरचतुरच विश्वेया	७४
षातोऽनामिकयास्त्वन्त	१३८	चतुरचतुरच विज्ञेया	60
घोषवती लीन नादा	9	चतुस्रादि तालेषु	580
		चतुस्ताले गुरु पूर्व	258
च		चन्दनागुरुकर्पूर	25%
बसुम्यी भावयेद् भाव	२०९	चमत्कार जनयितु	१२=
चण्चरी सिहलीलक्च	₹₹	चम्पूश्च कविता सेना	€0
बञ्च त्पुटश्चाचपुट	284	वरण कुञ्चितस्यैक	163
चञ्च लत्वमदक्षत्वम्	5,85	चरणन्यासचातु य्यं	न्ध्र

वरिशिष्ट	₹.	२ संगीत	समयसार
चरत्समीरणोद्भूत	XX	छ ।यापरिच्युतिस्तद्वय्	218
चाद श्रवणिका चेय	\$ X 0	छायायामलमित्यर्थं	१ २≡
चर्याच त्रिपदी चैव	8=	छायालगे वा कुर्ग्यात्	२३८
चल्लाणे कञ्चुकैर्युक्ता	₹ \$ 0	छित्रस्सन्धितसंग्रह च	१३७
चाञ्चल्यं किञ्चिदेवदभरत-			
परिषातं	x	অ	
पा र्वेङ्गहारकुशल	२५२	जवन्ये प्रथम ढेक्ट्री	१०६
चालियत्वा पुन।रागं	80	जबन्येवू त्तमस्सोऽयम्	२३२
चालियत्वा स्वरे यस्मिन्	84	जङ्कास्थानं समेत्यस्य	184
चित्ता चेठायमुदित	ΧE	जितदुं बक में शब्द.	8 % &
चित्र बत्पद पक्कुज कृतिधयो	3	जनकर्वंव विज्ञेयो	२१=
चित्रगद्येच वैदर्भी	१२१	जयतिरुचिरलास्यं तन्त्रती गीतवा	र्ष १
वित्राञ्च पद्धतिदशात्	२४२	जयमाला चक्रवाली	800
क्रिजाभासविचित्रार्थ	२ २४	जयश्च विजयो नन्दो	***
चिद्रक चेति वट् प्राहु	₹ € ′9	जयश्रीविजयानन्द	₹ १७
बुल्लीविडाल चेष्टादी	१७७	जयश्रीविजयोनन्दो	588
पूर्वस्थात् साखती वृत्ति	858	जबनिका पुष्पाञ्जलि	8 X E
चेच्यारी समपादास्या	338	जातिभाषादि सयोगात्	9.9
चेत्रोहरेण गीतेन	538	जाते गायकयोविंदे	२४०
चेत्ककंटोऽङ्गसम्मर्द <u>ः</u>	309	जातेश्चाञ्ज निषादिन्या	= ?
चेद्ध कानामिकाराले	१७४	जानुनात्र समाक्षे पस्	286
चोक्षगायनरीतिश्च	6 3 0	जिङ्कोल पार्विणमस्तौ	२०२
_		जित्रवासतयागाने	44
8		जित्रश्रमत्वं कण्ठस्य	388
इक्सभ्रमरिका चैव	₹•₹	जितेन्द्रिय प्रगल्भश्च	180
छ न्दसायेनकेनापि	668	जितेन्द्रिय प्रगत्भवच	588
इन्दस्तालादि नियमान्	69	जीव स्वर प्रधानैश्च	85
क्रन्दस्वती सङ्क रैला	१०६	जीवस्व रस्यसदृशः	88
⊌न्दोघाराकैकुटी व	१३३	जुगुप्सा जायते गर्भे	₹ ₹
स्त्र यागीश्वरचदेशास्या	85€	जोडणी च प्रबन्धरच	948
स्रायातदाश्रयाचार्ये.	3 3	जोडणी सा परिज्ञेया	8 % 10
क्रामानाट्टा च मल्हारि:	95	ज्येष्ठाकनिष्ठे प्रोत्सिप्ते	\$00

परिश्चिष्ट	ş	•1	सं गीतसम्बद्धा र
ज्येक्टाङ्गुष्ठामिधाना द्या	803	5	
ज्ञाङ्गा कुलकवाद्यस्य	२४८		
बे यस्सोऽल ज् रारो	588	ठवणे वशतः भुद्र	२०६
ज्ञेया सा गजलीला वर्तन	808	ठायं गमक सम्मिश्रं	20
**		ठायंतरहरं नाम्ना	रू
	9	ठायं यद् वर्तते गीते	3.8
भस्पतालेन लम्भरच	808	ठायं यद् वेषकत्वेन	# E
भस्पतालेनसम्भवन	808	ठायमुट्टुण्डुलक्षेय	६ २
क्रम्याच प्रतिमट्टश्च	२१=	ठायस्य गलहीनत्वं	4.5
क्रेक्कार चतत पत्त्वाद्	२०५	ठायालक्षणत केचिद्	8.8
क्रंक्ट्रार बादयेत् पूर्व	२०७	<u>a</u>	
भेङ्कारमुद्दलीजात	\$85		***
भेद्भारम्य नदेख्रार	१४२	उक्तावणीदिक सर्व	ξΥξ
भेक्कारसहितहस्त	\$ X o	ढेव्हिका जगणेन स्यात्	₹₹₹
भोद्धारस्य हुडुक्काया	685	ढे ड्वीततो द्वितीयेन	50.8
भोम्बडंदुष्करत्यक्रवा	\$ \$8.8	. ज	
झोम्बडभ्वैकतालेन	60%	णीञ्चातुरभिपूर्वीयत्	155
भोम्बडरचैकतालेन	\$ o x	110, 118,118,1114	111
फोम्बडोगद्यपद्या म्या	668	त	
भोम्बडोऽयकुडुक्केन	8 ∘ ⊀	तत्र्याश्चानुगतं त्रोक्त	१३२
भोम्बडोऽयतृतीयेन	१०४	तत्रिका पत्रिकायांतु	6.67
भोम्बडोऽस तृतीयेन	608	तत्रीनादस्सद्भूतो	१३६
भोम्बडो द्रुत निस्सारो	808	तत्रीपृष्ठे तु सलग्ना	१३८
भौम्बडोद्रुत निस्सारी	१०४	तत्रीयदातदाज्ञेया	१३७
भोम्बडो मण्डतालेन	408	त हंशाबाद नैवंणै	ą x
भोम्बडोलम्भकोरा स	9.9	तकार: प्रचुरो दोम्याँ	ولاو
_		तकारम्य धिकारस्य	१ १ १
ਣ		तकारादी चतुर्मात्रे	१ ६२
टक्ककैशिकहिन्दोली	₹•	तच्चदुष्करमेवोक्तं	११८
टक्करागोद्भवा भाषा	€9	तच्छारीर गुणा मिश्राः	₹ ₹
टबणा चैकतालेतु	\$68	तज्जीवंलिवहनिम्याम्	¥e
टबणासी भवेत्ताल	8 4 3	सञ्जीस्स टबणेत्युक्ता	843
टबणास्मिन् प्रयोक्तव्या	\$43	तट्टाली गारकः पक्षी	164

परिविषय	*	٠٧	संगीतस स्यस ार
ततं ततोऽवनदञ्च	१३१	तत्तन्मानानुसारेण	' २५१
दत्ं तन्त्रीगत ज्ञेयम्	१३१	तस्त्रमाणा परिज्ञेया	588
तत्, पर पद ज्ञेय	२०७	तत्त्रयोगानभीष्टायान्	144
ततः प्रबन्धनामाञ्च	१ २२	तत्सर्वं पञ्चवाभूयः	838
तत प्रभूत गमकस्ततो	११ २	तत्तात्तालाभिषानेन	१ २=
वृत: सदृश रागाशो	Ę=	तत्र चञ्चत्पुट: प्रोक्त	₹१६
ततवाद्यमिति प्रोक्तम्	6.8.6	तत्र चित्रतरक्षीक	28%
ततस्तु मुक्नक, कार्यं	686	तत्र त्रयोदशविध	१६७
ततस्तुरङ्गलीलः स्यात्	२१७	तत्रसूडकम प्रोक्त	₹0\$
ततो गारुगिताल स्यात्	२१८	तत्रस्थाय्यादि वर्णानाम	ХĄ
ततो ग्रीवा नवविषा	१६८	तत्र स्थायिनिरागस्या	84
ततो घातो भवेत्पात	१३७	ननाध्युपलयाङ्ग स्यात्	२०६
ततोऽचलप्रताप स्यात्	999	तत्रावापोऽथ निष्कामो	283
ततो निस्सादक कीडा	२१७	तत्रीला ढेव्ह्विकाचैव	१०७
ततो निस्सावतालेन	800	तत्र्यायदातदाक्रीय	980
ततो निस्साच लम्भव्च	009	तथाकोण इतिर्वाम	Ę٥
ततो बहुलिकत्वञ्च	२४६	तथा कोणाहतिवीम	१३=
ततोऽपि मध्यमास्य: स्याद्	803	तथा चाचपुटस्थ्यस्त्रो	२१६
ततो मलपवाद्यंयत्	१६०	तथा जीवा विद्यातव्या	१३५
ततो मात्राष्टकच्छेदो	8 5 8	तथा ताराच मन्द्राच	= ¥
ततोरूपक गानेन	χo	तथा धैवतभूयिष्ठ	१५
ततो वर्णयति श्वैव	२१६	तथा निरवधानश्च	२३६
ततो वाद्यञ्च कवितम्	२०७	तथान्येवित्रकीर्णाख्या	१०३
ततो विलम्बताल च	१२२	तथैव गायनीनाञ्च	586
तत्कम्पानेति	¥	तयीव बन्धवाद्यस्य	280
तत्तप्रद्धिन भेदेन	२०१	तदङ्ग गायकै ज्ञेया	5 €
तलत्त्रमाण रचिता	X۵	तदङ्ग मोदकी नाम्ना	= 4
तत्तस्थान घृतो यस्मात्	8.8	तदाकमणमित्युक्त	€ €
तत्कालस्यक ठाय	४८	तदागीतकला भिज्ञै	4 ¢
तत्तद्गुणसमारोप	₹05	तदानीमेवरचित	१३०
सत्तव्वावशादेव	२४२	तदानीमेव सा तज्जी:	ΧĘ
तेत्तं बन्त्रवशादासा	626	तदाललित गाढं त	**

वरिशिष्ट	1	\$+ %	
तदा विवसणैयको	१३व	तर्जन्या बार्यंते नादो	ę Y o
तदा विषमसूचीति	888	तर्जेन्युरिक्षप्य वका चेत्	१७७
तवासी रेफनामा स्याद्	3 € \$	तलमध्यस्थिताङ्गुष्ठ	8=3
तदुक्तं गीततस्वज्ञै:	११७	तवर्गश्च टवर्गश्च	685
तदुक्त गीततत्वज्ञी	११७	तवो रिवदणिर्वाच	२०⊏
तदुवत तेन्नकरण	११७	तस्मात्ताल स्वरूपञ्च	₹₹
तदुक्त वर्षसरण	२००	तस्मात् प्रबन्ध कथितो	€3
तदुक्त रस रागाम्याम्	१०६	तस्मादङ्गत्वमनयोः	£χ
तदुक्तं सकलं वाद्यं	\$ 3 X	तस्मादत्र प्रवक्ष्यन्ते	22=
तदुपाङ्ग रामकृति	50	तस्मादस्य प्रबन्धस्य	१०६
तदेव दिण्डुकरणम	200	तस्मादुपरि विज्ञेयो	7 % =
तदेव भूरिगमक	₹११	तस्माद् भीतस्य मुख्यत्व	28
तदेवान्तर पद्मासनम्	X39	तस्य दक्षिणतः क्षेपी	२१३
तदोयार समुद्दिष्ट	¥χ	ताण्डवादिषु नृत्तेषु	२०४
तद्बन्धकरण नाम	११७	तातेपसयुता तज्ज्ञैः	१०२
तद्रागनिर्भरामोत्ता	38	तादातम्य च विवर्तत्व	5
तद्वीर रस सयुक्त	१६	तानाना करण तत्र्या	७३
तन्मध्यसप्तक तारे	80	तान्यहं नाम मात्रेण	٧
तन्मात्रा परिमाणमेव	* 3	ताम्रोग कलधौतेन	१५६
तन्मिश्रकरण जेय	११८	तापसैर्मङ्गलाचारो	33
तपीलगीद्रुतीगील	220	तापास्व रैश्शुकचञ्चु	33
तप्तमाथ प्रहाकार	१७७	तार सस्पृष्यते यत्र	१३४
तमाहुभंरताभिज्ञा	१५३	तारजस्य परिज्ञेय	9 9 9
तमाहुस्तिरियुनाम्ना	3.5	तारजोऽतःरजश्चेनि	११०
तयो पाक्वेनसस्पर्शाद्	3 6 9	तारतम्य तयोज्ञांत्या	398
तयोः प्राञ्जलसूबस्य	२३१	तारतम्य तयोज्ञीत्वा	588
तयोगं मक बाहुत्य	Ę۶	तारतम्य तयोक्तात्वा	२४४
तर्जनीपग्दर्वसंलग्ना	१३७	तारतम्य तयोज्ञीत्वा	२४७
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरम	880	तारतम्य तयोज्ञीत्वा	२४८
तर्जन्यन्तरवातस्तु	१३७	तारसम्य तयोक्तीत्वा	२१ २
तर्जन्याद्यं कनिष्ठाद्यं	388	तारतम्य तयोज्ञीत्वा	744
तर्जन्याद्यास्तलस्थाग्रा	१७७	तारतम्यं तयोक्तरिवा	२५६

परिकिष्ट	1	संगीतसमयसार	
तारतम्य तयोज्ञात्वा	२४७	ताविसै स्वरकरण	१ 01
तारतम्य परिज्ञाय	२४४	ताविस्वतैस्त्रिपथकः	3.3
तारष्विनस्समुद्दिष्टो	250	तातुभौ च ऋमाज्ज्ञेया	288
तार मन्द्र प्रसन्नोऽयम	3 ⊏	तावृभीच कमाज्ज्ञेयी	588
तार मन्द्र समायोगात्	५ ६	तावभी च कमाज्ज्ञेयी	228
तारातु द्विविधा तद्वत्	१६७	तावेव कथितौ लौके	Ę
तारोबल्यादय सजा	e 9	तान्त् चर्घरिका लोके	१
ताल काल कियामान	€ €	तिरहचीनमुखी पादी	१६:
ताल पाटसमैवंर्णे:	१५७	तिर्यंक् पादापसरण	9.98
तालच्छन्दोर्बगत्यर्थं	१५६	तिर्यंक् प्रसारित भुजी	१=1
तालतेन्नकयोर्वापि	82	तिर्यंक प्रसारितमुखी	१८३
तालघातुपदावृत्ति	\$ 7.8	तिर्यंड्मध्यस्य वलनात्	· .
तालन्तरालवर्तीयः	268	तिर्यंग्वक्ष स्थलस्थी	१८३
तालपाट्यातथा प्रोक्ता	२०६	तुडुकञ्चेति विज्ञेया	205
तालप्रपञ्चकुशल	२४८	तुरङ्गलीलताले स्माद्	220
तालभावलयायत्तो	१६६	तुतीय तु मक्ततगीत्वा	886
ताल मूलानि गेयानि	223	त्-ीय बन्धकरण	2 9 9
तालरागप्रमेयञ्च	359	तृतीय भोम्बडश्वाय	१०४
तालवाद्य चन्द्रकला	२५१	तृनीयतालेबिन्दुस्यात्	227
तालवाद्य त्रिमार्गेषु	२५०	तृतीये भोम्बद्दक्वाथ	१०५
तालवाद्यन जानाति	२४०	तृतीयो विषमञ्जीव	683
तालवाधचन्द्रकला	168	तेन कार्ये कारणवद्	23
तालशब्दस्य निष्पत्ति	२१२	तेन तारेण सगुक्तो	222
तालभ्वकास्यतालश्व	१ ३२	नेन्नतेन्नेति यो बर्णो	9.3
तालश्च कांस्यतालश्च	305	तेनैव खलुतालेन	२०व
तालक्षेति प्रबन्धाना	£Х	तेवासपयुत प्राज्ञी .	803
तालानुगो लयज्ञश्च	580	तेपासै मिश्रिकरणम्	१०१
तालाणंवो विचित्रञ्च	23	तेषा प्रसन्नभाजा	820
ताले करणयत्य। ख्ये	२२२	तेषा विकासभाजाम्	770
ताले चञ्चल्पुटे ज्ञेय	२१६	तेषामपि विशदाना	१२६
तालेनैकेन नानार्थ:	१०८	तेषामपि स्फुटाना	१२६
तालोऽत्रान्यो लयहच ान्य	309	तेषुकेचन कय्यन्ते	683

रिविष्ट	₹.	• 6	र्संगीतसम ववार
तैरान्दोलित बहुलै	१२७	दण्डहस्तजशब्देन	txt
तेरेव कम्पवहुली	220	दण्डहस्ताभिष हस्त	688
तैरेव गीयते या सा	११=	दण्डहस्तोऽथयुग्म	6.8.3
तैरेव तिरिपुबहुलै	१२७	दण्डाभ्या राञ्जितकरा	280
तैरेव तिरिपुभिन्नै	१२७	दन्तसन्दशतो गाता	734
तोडीनाम प्रसिद्धोऽय	95	दिग्ववासो रक्तपीतादिरा	मै ४४
त्यक्त्वा कुडुक्क निस्सारु	१०५	दिव्याङ्गाधो सुललिता	=
त्यक्तवा नृत्तादियोग्य त	256	दुर्वाक्य बारयेदेव	२४७
त्रिकस्य परिवर्तेनस्याद्	१८८	दुवक्करपहरणे	२०१
त्रिवातुक परिज्ञेयो	११२	दुष्करोऽपि हि य	७१
त्रिवातुक तृतीय स्याद	११२	दृढ विरनित विद्याद्	१४५
त्रिघातुक प्रबन्धेषु	83	दुढप्रहारोऽप्य क्षु ब्घो	२४६
त्रिधातुकानह बक्ष्ये	१००	दृश्यते तन्न लक्ष्येषु	११६
त्रिघातुकाल्पगमकौ	११ २	दृश्यते भाव माधुस्यौत्	२०४
त्रिधातुकाश्च विज्ञेया	883	दृश्यते शुद्धनाट्टाया	€=
त्रिरावृत्त्या वादितस्य	१६१	देवकी साच विज्ञेगा	৩=
त्रिविधस्स च विज्ञेय	५१ ५	देवतास्तुति सनुक्त	8.5
त्रिसन्धिचालनाज्जात	२४०	देवादि प्रार्थनायातु	93
त्रिस्थानव्याप्तिसुभग	230	देवी चोपविशेत्तस्य	२२६
त्रिस्थाना सुस्वरा सौम्या	৩	देशभाषापरिज्ञान	२३०
त्रीणि स्थानानि हुत्कण्ठ	¥	देश वालास्य गौडोऽयम	44
য		देशास्या देशकाकुश्च	६६
•		देशाख्यादेशिरित्येते	90
यो तत्तकिटशब्देन	628	देशीनाम प्रयोक्तव्यो	= ?
थो थो नीकटेनापि	680	देशी नृते तुनान्विष्या	१८७
द		देशी नृत्येषु सार्थत्व	\$35
दक्षिणे कर्तरी युक्ता	5, ₹0	देशीमार्गविभेदेन	२५३
दक्षिणे वार्तिके ताल	२५०	देशी हिन्दोल राङ्ग	द१
विक्षणे जानुगुरूफेन	\$ E X	देशेषु देशेषु नरेश्वराणा	₹ ₹
दण्ड पतेता सहितो	१०१	वेहस्यैव निबद्धस्य	£Χ
दण्डकञ्चतथा ज्ञेय	₹₹\$	दैविकात् सस्कृत प्रोक्त	१२३
दण्डरासमिति प्रोक्त	288	दोलाहस्त पताकी ही	₹ 🖁

परिशिष्ट	3	• 5	सगीतसम ससार	
दोलोऽवहित्यश्चोत्	१७८	द्वी ग्रामी विश्वती लोके	१६	
दोवैरेतं रूपेतो यो	२३१	ही ही निषाद गान्वारी	७४	
दूत तदेव बहुश	339	दव्यडगानीना प्रबन्धाना	€ 0	
द्रुत य शिक्षते गीत	२३४	घ		
द्रतद्वन्द्व लघ्दन्द	२२१	ध त्तू (कुसमाकार	१५६	
द्रुतमध्या विलम्बाच	१ २३	धमन्द्रोपाडगरूवा च	13	
द्रुतमानेन ससृण	3.€	धनि किटैंगिरिकिटैरेभि	88=	
द्भुतशेखर तालेन	११५	घरि मेल्लीति विज्ञाी	Ę¥	
दुता लधूना बाहुस्याद	१ २३	घवलक्ष्चरी चैव	=3	
हयर्ष हि गुणयोर्मन्ये	80	घाशन्यास ग्रहो पेता	5.7	
द्वास्या क्रमेण हस्तास्या	१५१	घाना घड अग्रह-यासा	5 0	
द्वाविशति समाख्याता	9	घातुद्वय भवेद्यत्र	280	
द्वाविशतिविधो मन्द्रो	×	घातद्वय स्वरैरेव	887	
द्विकत्रिकचनुष्कास्तु	6 % %	घातु द्वय परिज्ञ <i>य</i>	११७	
द्वि गुणात् स्थायि पर्व्यन्त	8=	षातुमातुकियायुक्तः	737	
द्वितीय भोम्बरुष्याय	808	धीमान सव कलाध्यक्ष	775	
द्वितीया तु ततस्तीव	É	धृत शिर शनै श्तियक	१६६	
द्वितीयाद्ध तुतनैव	309	धैवतस्य निषास्य	७४	
द्वितीयेन च तालेन	800	धैवतो म यमाङगुल्या	6.8.6	
द्वितीयेन च ताले।	909	ध्याने व्हशवचाये वा	१७४	
द्वितुम्बीकिनारी वच्ची	888	ध्रुव गीत्श तत कार्यों	828	
द्विधातुर्वा त्रिवातुर्वा	K3	ध्रुव गीत्वा ततोन्यास	8 6 7	
द्विपदीच पतायुक्ता	800	ध्रुवकाध ततोगेयम्	8 8 5	
द्विमात्राच कला चित्रे	488	ध्रुवका सर्पिणी कृष्या	2 1 2	
द्विमात्रिक करावक	388	ध्रुवकेण पुनम् क्ति	११=	
द्विर्गायेदादिम त्वश	88€	ध्रुवस्याभोगक रणाद	13	
द्विल पोगोलगौपञ्च	250	घुवे स्थिरप्रताप च	9.8	
द्विष्दयाह ध्रुव द्विष्च	१२५	धुवो मण्ठरच निस्सार	201	
द्विवार पश्विृत्ति	१६१	ध्वनि श्रष्ठचशारीर	2,4,5	
द्विविषस्यास्य भेदस्य	787	ध्वनि बुट्टनि नामापि	800	
द्विविधा साच विज्ञेया	१४२	ध्वनि वैचित्र्यमुहिष्ट	€1	
द्वेवीणे तुलिते काय्यें	٩	ष्यनि शारीर योगस्य	231	

परिश्विष्ट		1-6	
ष्वनि शारीर सञ्जात	\$3	नाडीमिली तथाकावे	10
ध्वनिरवतुर्विषः प्रोक्तो	₹€	नात्युच्च वामनस्थू ल	***
ध्वनेरत्यन्तमाधुर्यः	Ę¥	नाव बिन्दुस्वरा रागा	२४
ध्वने सुगाढता तज्जी	६५	नादवृद्धिक्षयञ्जरम	580
न		नादा चेठाय इत्युक्त	६०
		नादात्मानस्त्रयो देवा	२७
नकार: प्राण इत्युक्तो	२७	नावान्ता निष्कला गुढा	9
न स्व नाहन कर्तव्य	१७४	नादैर्युक्तस्तालमित.	**
नताभिधान तत्पारवं	5==	नादोत्पत्ति यथा शास्त्रम्	7.0
नदत्यूषभवद्यस्मात्	€3	नादो भाषुय्यं सयुक्त	X=
नन्दावर्तं तदेवस्यात्	१६२	नानादेशसमुत्यस्य	2 7 7
नन्द्यावर्तयदासार्षे	\$ 5.8	नानादेश सुचारित्र	248
नपुसकस्समे द्रव्ये	२६	नानापाटाक्ष रोद्भूतै	846
नराणा च मुख यद्वत्	3	नानाप्रकारै फुल्कारै	१ ३२
नर्तकी चितसार स्यात्	२०४	नानाप्रयोग दर्शनाद	१ =६
नर्तकी सापरिज्ञेया	२५७	नानावन्बेस्समायुक्त	788
नतंक्योयंदि वाद स्यात्	२४६	नानाग्रनसमाकीर्ण	221
नर्तने यदि नर्तक्या	₹01	नानारीति युताराग	¥¥.
नतंनौत्सुक्यजरिचत्त	२०३	नानाल क्का रसम्मिश्रे	38
नर्तास्य ककुभ षडज	٦٠	नानाविषा विभक्ताञ्च	234
निलनी पद्मकोषास्या	१ =२	नाभिबाह्वोरसङ्गेन	₹•₹
नवं वस्त्वनुसाराख्य	378	नाभे समुत्थितीवायु	£\$
नवधा रूपक प्रोक्त	११८	नाभे समुत्थितीवायु	2 3
नवमो नःगबन्धश्च	88€	नाभे समुत्यितो वायु	\$8
न वादो विहितस्सिद्धि	२२व	नाभे समुत्यितोवायौ	44
नवायि सा परिज्ञेया	Ęą	नामी यद् ब्रह्मण. स्थान	,,
नहि तत्कण्ठमाषुय्यं	२४२	नामी यद् ब्रह्मणः स्थान	٠ ون
नहिं सौष्ठव हीनाङ्ग	₹•₹	नामतो रूपतश्चीन	₹9 ₹9
नागबन्धस्य विज्ञेय.	88=	नाराटखाडुलश्चेको	₹.
नागबन्धोभवेदध्ट	१४८	नाराट वोम्बक्दर्भव	₹# ₹•
नाट्यं न्त्त च सर्व हि	₹0₹	नाराटोऽय परिज्ञेयो	₹8
नाट्यस्याभिनयास्तत्र	844	नासा कण्ठ उरस्तालु	₹€ १३
नाट्ये नृत्ये चन नृत्ते च	१ ६=	निः सारो बोम्बक स्यूलो	₹₹ ₹ €

परिशिष्ट	4	ła.	संगीतसम्बद्धा र	
निक्खायिस्साभवेत्	5.5	नी चोच्च स्थानक रत्य	178	
निकुट्टकस्तलोत्क्षेपः	8 E X	नीरसंसरस कुर्वन्	238	
निकुट्टने कृते तेन	98≒	नृणा तदनुसारेण	२४१	
निक्षिप्त परिवर्ताम्या	838	नृत्त ततश्चकैवारो	२०६	
नितम्बी केशबन्धी च	१६२	नृत्त तद्द्विविषं क्रेय	२०६	
नितम्बी पार्व्योहध्यी	१८४	नृत्त देशाश्रयत्वेन	१६व	
नित्य व्यायामयोगेन	285	नृत्त भाखाड्कुर चेति	855	
निन्दनी या इमे प्रोक्ता	588	नृत्त सुशिक्षयेत् यस्तु	2 7 3	
निन्यासाशसमायुक्तो	32	नृत्त स्याद् गात्रविक्षेपी	१६६	
निबद्धमन्त रावाद्य	860	नृत्त स्यादाहिएक कम्मं	848	
निमन्द्राच पहीनेयम्	32	नृत्तवागडकैवार	7 4 4	
निमील्य नयने गायन्	२३७	- नृत्तवादकयोव दि	747	
नियम टबणा त्यक्त्वा	8 68	नृत्तमुक्त पुरानेक	१६६	
नियमादप्यनियमाद्	8 5 2	नृत्ते च करणे कार्यं	१६=	
निरन्तरयतिष्राय	860	नृत्ते वाद्ये प्रवीणत्व	२३०	
निरन्तरोध्वं विक्षेपै	१७२	नृत्यस्य चानुयायिस्याद्	१ ३२	
निर्घोषरेफ गमकैस्तूर्ण	638	नेताचतार मन्द्राणा	53	
निर्युक्त शरभलील:	33	नेत्रे करी चपादी च	×3	
निर्युक्ती कथितावेती	33	श्यञ्चद्वामकपोलक समपद	£39	
निर्युक्तौ कथितावेतौ	800	न्यासाशी मध्यमेनास्य	50	
निर्वाहाधिक्यवाञ्छा च	₹२=	न्यास स्वरस्थापनेन	38	
निइत्तरत्व प्रश्नेषु	378	न्यास स्वरोपवेशेन	85	
निवृत्तारेचिताछिन्ना	2==	न्यासापन्य।सकालज्ञ	२४८	
निवृत्ता सा कटिजेंया	१८८	न्यूनाधिकस्व रैगीता	₹₹	
निशब्दलचतुष्क च	२२१			
निषघो दक्षिणो मुष्टि	१ = १	प		
निवाद मन्द्रा गान्वार	53	पक्ष प्रद्योतकौ दण्ड	१=२	
निषाद बहुला पूर्णा	= 4	पञ्चकोषमिद पिण्ड	75	
निषादस्य रतोऽधस्तात्	₹३६	पञ्चतालेश्वरो यद्वा	₹0 €	
निषीदन्ती स्वरास्सर्वे	68	पञ्चम चित्रकरण	19X	
निस्सार भोम्बडी लम्भो	१ ० ≒	पञ्चम: पाणिहस्तः स्यात्		
निस्सारणापि तालेन	१०८	पञ्चम बाह्यश्चास्य,	₹₹	

परिविद्ध	*	संगीतसम्बद्धांव	
पञ्चमादिर्यनस्तस्माद्	58	पर्वैनियोजित गीतमध्यास्य	Aś
पञ्चमो राग राजोऽभ्य	₹ १	पद्धतिचितये शुद्ध	₹08
पञ्चविशतिपाला स्यु	784	पद्मकोक्षेत निष्पीड्या	6.8.6
पञ्चविशति पूर्णेश्च	2.8	पद्मकोष कपित्यस्त्री	204
पञ्चस्थान समुद्भूत	ξ¥	पद्मकोषयुगाङ्गुस्य	१७१
पञ्चस्वरश्चतुर्वास्याद्	39	पद्मकोवस्तूर्णनाभो	१७३
पञ्चाञ्च परिपूर्णत्व	588	पद्मकीषे कराड्गुल्यो	749
पञ्चानन पञ्चभङ्गी	800	पद्मकोषे युताग्राश्चेद्	704
पञ्चैते भिन्नरागा स्यु	२०	पद्भागन तथा प्रोक्त	१६२
पञ्चैते स्थायिनो ज्ञेया	१०५	पद्मासन तदेवस्याद्	7 E X
पटहरूच हुडुक्का च	9 # 9	पद्भासन नागबन्धो	789
पटहरच हुड्क्काच	२०€	पद्य भागान्वित गद्य	१२०
पटहस्य पुटद्वन्द्व	688	पपाता सहितो ज्ञेय	108
पट्टरच शुक्तिरित्याच	8 # 5	पपातास्वयुता ज्ञेया	808
पणबन्धे तुकर्तव्ये	₹४७	पपातेलैं प्रमोदश्च	33
पताक पातसक्षीभ	१७३	पमन्द्रा परिपूर्णाच	.3
पताकयोस्तलश्लेषाद्	१७=	पमन्द्राहास्यशुङ्गारे	= 2
पताकस्त्रिपताकश्च	१७२	परस्वरसमाक्षेपो यो	२२४
पताकाकारहस्ताम्याम्	688	पराड्मुलावराली द्वी	१८०
पताकेऽनामिकामूल	१७४	परावृत्ते परिज्ञेय	₹39
पताकेऽनामिकावका	१७३	परावृत्तो पुनस्तो हो	१८४
पतायुक्ता ढेड्सिका च	803	परिज्ञेयोर्बुधैर्हस्त	688
पताबैहँसलीला च	85	परितो भ्रमण जोया	१८व
पतेता सहितस्सोऽयम्	85	परिणामाभिव्यक्तिस्तु	. 80
पद स्वराधिकरणम्	₽\$	परिपूर्णा स्वरैस्सर्वे	= =
पद ताल समायुक्ताः	€=	परिवार्य स्थितो यदच	٤٦
पद ताल स्वरैस्तेन्न	33	परिवृत्यान्यथा गीत	\$ \$ 0
पदताल सम गीत	Yo	परिश्रवणिका लम्नौ	6.86
पदमेक पदे हे वा	\$ 58	परीक्षमाणयोस्तज्ज्ञै	826
पदान्येतानि मेघावी	222	परीणमेद् यथासीर	3
पदैरपि विना कार्या	558	परेम्यस्तरप्रदानेन	54
पवैनीनाविधैयंस्माव्	\$48	परोक्तदूषणोद्धर्ता	770

पलगा गलपाश्चैब	२१६	पाइवं स्थितोध्वं सप्रेक्षणात्म	\$ 190
पल्लबाख्ये पदे नास्ति	११५	पारविवलोकने खेदे	900
परचात्प्रापणमङ् ह्रो	986	पार्व्याङ्गुष्ठयुतान्तरागमितिना	989
प्रक्वादिभमत राग	৩৯	पाष्ट्रयंहगुष्ठसमायोगात्	883
पश्वाद्वा वलिबाहुम्याम्	₹ • ₹	पार्व्याङ्गुब्ठस्समी यत्र	£3\$
पश्चान्त्यस्नस्तदाख्यात	₹39	पारुण्यां विद्यकपारिण	१८१
पाटजता रङ्गशोभा	२५५	पार्ष्णिकतगतिभान्ति	328
पाटादी पाटमध्ये च	388	पार्विणतालान्तर पाश्वें	₹8=
पाटाना पृथगुक्ताना	१५७	पाला उप्परपालाइव	739
पाटेम्यो जायते वाद्य	683	पालो विन्धवण श्रोक्तो	338
पार्टश्च समुदायैश्च	348	पास्वर्तर्नर्तन चैव	3.3
पाटोऽसावष्टमात्राभि	388	पिच्छिलापसृत यद्वन्	335
पाताविपै कन्द्रकरच तै	33	पिण्डहस्त स्मृतोश्याध्वं	683
पात्रद्वय समारम्य	२१०	पिण्डहस्ताभिषो हस्त	१४४
पात्रसङ्कमणीपाय	२४२	पीडयेता पुरहुन्द्व	१४६
पाद कर्त्तरि सज्ञेयो	285	पुटणक्ष्माग्रकर्माणि	980
पादचस्या यथा पारो	939	पुन पुन यतिर्वाद्ये	१६२
पादजङ्कोरुकरण	980	पुत प्रबन्धास्त्रिविधास्ते	803
पादपाटैम्समुचितै	२४४	पुनरावसंते यत्र	ųξ
पादयोविषम तच्च	8 E X	পুনদ্বিতেক <i>অব্</i>	848
पादस्य करण सर्व	039	पुनस्तकुकुरिक्या च	388
पादस्य निर्गम ज्ञात्वा	939	पुर पश्चाच्च चरणी	839
पादम्यान्ते प्रयोग स्थात	११५	पुर प्रसारित तिर्थेक्	989
पादाग्रक्षिति सञ्चार	328	पुर प्रसारितौ किचिद	8=0
पादाग्रस्थेन चेत्पाहिणं	१८६	पूरत पृष्ठतस्तियंक्	039
पादाग्रेणाहति भूमी	039	पुरत पृष्ठतो बापि	739
पादान्तर। ह्युलीमञ्ज	१६८	पुरी द्विषावच्चरणस्	339
पादावानीय नतंत्रया	8 € =	पुरोजनितदो काण्ड	200
पादौ समनखौषिलकी	339	पुष्पपुट पुष्पाञ्जलि	8=8
पाराशस्यंपराशरी भृगुयमी	२४=	पुष्टोऽभिव्यञ्चत कण्ठे	₹<
पाश्वंस्तु पञ्चधा तद्वत	१६७	पुष्पाञ्जलिख शब्द	999
पाइवंस्यान्तर्गता पार्डिण	₹39	पूजाभोजनसङ्कोच	१७६

परिकिस्ट	**	•	संगीतसमयसार
पूर्वाऽलकारिणी चैव	6	प्रताप शेखरण्यान्यो	₹\$=
 पूर्वापरविरोघानाम्	२२६	प्रताप शेखरे व्यंशो	२२=
पूर्वोक्त लक्षणोपेत	२५०	प्रतापसङ्गी मेलापे	199
पूर्वीक्तविनियोगा च	= %	प्रतितालादय पञ्च	??=
पुच्छासङ्गास्त्रमाबोक्ति	848	प्रतितालोडुतो मट्ट	११८
पृथगब्टविषो भेदा	₹ ₹	प्रतिपत्ति स्पृहासूया	२२व
पुष्ठ त्रि षोदर पञ्च	१ ६=	प्रतिभान वचस्वित्व	230
पृष्ठगा चतुरस्टबल्पे	808	प्रतिमान्ति स्वरास्तद्वत्	9
पृष्ठत पुरतो । पि	888	प्रतिमटटे तृतीये च	\$ \$ \$
पृष्ठत स्याद् विलोकित	१६०	प्रतिरूपकपर्यन्त	२०६
पृष्ठतोऽङ् ध्रेस्समुत्क्षेपात्	039	प्रतिरूपकपर्यं <i>न्त</i>	733
देरण पेक्सल चैव	939	प्रत्यञ्जानि पुनर्गीवा	१६=
वेरणस्य गोण्डस्या	२५१	प्रत्यागतक्ष्वेत्त त्रैव	₹ 9
पेरणस्य च गोण्डिल्या	~ 140	प्रत्येक च द्रुतादीना	₹₹
वेरणादित्रये गीतपद्धति	२०६	प्रत्येक ते त्रिधाचैव	288
वेरण्याद्या श्च गुण्डल्या	30₽	प्रत्येक द्वि प्रगातव्य	१ २२
वेशल बहुभङ्गीति	30	प्रत्येक नवचा जया	२४६
पैन्छिल्यात्पतितो मन्द्र	५६	प्रत्येक नाटयलोके च	१७३
पौरत्व सुस्वरत्वञ ्च	588	प्रत्येक पडविचा ज्ञया	290
प्रकाण्ड कुटिलाविद्धौ	१⊏३	प्रत्येक पडविश्वे गद्ये	१२३
प्रकाण्डो दक्षिणो वास्याद	१व१	प्रथमपाटकरण	₹0=
प्रकान्तरीति भड् गेन	850	प्रथम बादबित्वा तु	१४=
प्रग्रहाकवेणादशे	१७८	प्रथम कतरी होयो	688
प्र बुरस्फुरितैस्तैर पि	१२७	प्रधारमें ताइन तज्जी	98=
प्रच्छादन तदेवाहुर्लीयो	××	प्रबन्धक रूपक वस्तु	£3
प्रच्छादनीयो लोप्यो वा	¥χ	प्रबन्धस्य यतस्त-माव्	13
प्रणवाद्य भवेद गद्य	१२२	प्रबन्धा यत्र गीयन्ते	205
प्रणामेऽभयशीतार्ते	309	प्रवन्धास्त्रिविधा ज्ञेया	23
प्रतापयोग मेलापे	885	प्रबन्धास्त्रिविधास्ते च	8.0
प्रतापबर्खनस्तस्माद्	800	प्रबन्धेषु ध्रुवत्वेन	13
प्रतापवर्द्धनी सेय	999	प्रबन्धोबर्धनानन्द	१ 03
प्रतापशेखर प्राहु	889	प्रभूतवमकाद्ये पु	227

परिशिष्ट	\$ 6.8,		सगीतसम नस ार	
प्रभूत गमकोनाम	११२	त्रियवाग्बादमध्य स्थ	२२५	
प्रमाण नियमैश्युद्ध	58	प्रेक्कोशित ततो विद्या	३७	
प्रमोदप्रभवा वक	२०३	प्रेमोहीप्त पद प्राय	¥ŧ	
प्रयोगबहुल रूक्ष	**	प्राक्त कर्णाटगौडोऽय	44	
प्रयोगबहुल रूक्ष	283	प्रोक्तावियौ चतुर्वातु	803	
प्रयोगेणासकृद् द्वाम्याम्	3=8	प्रोक्तो मेलपक स्तज्जी	¥3	
प्रयोगे सुघटत्वञ्च	345	प्रोच्य गाढमिति प्रोक्त	XX	
प्रयोगै कैश्विद परै	43	प्रोन्तत प्रोन्तताङ्ग च	101	
प्रयोगैस्युकरैय्का	38	प्रौढि प्रस्ताव वाक्येषु	24.8	
प्रयोगो हिनुणो यत्र	3.8	प्रौढया तेनैव रागेण	१०६	
प्रयोगो वर्तते यस्तु	\$ 7	95		
प्रलोकितमुल्लोकित	\$80	फल्लणापाल इत्येष	999	
प्रविद्यान्त इवान्तस्ते	X8	फुल्कारस्खलित स्तोक	28X	
प्रजीणत्वेन यौगायेत	२३४	फेल्लणोऽलगपालश्च	858	
प्रशस्तकविताकारो	२४७	_	101	
प्रसन्न पूर्वमुञ्चार्य्य	₹७	व		
प्रसन्नानिर्भवेदेव	₹19	बहिर्याहन्यते तत्री	Ę٥	
प्रसन्नैदशुद्धरागस्य	38	बहिर्याहन्यते तत्री	१३ ==	
प्रसारितोत्तानतनौ	१=३	बहुतमबहुतरबहव	88	
प्रसारिती लतास्यी तु	१८४	बहुशो वक्षसोऽन्योन्य	१८५	
प्रस्तारे तालसम्बन्धि	~ 9=	बाहवस्तिर्यंगूर्थ्वाघ	१८७	
प्रस्तुतेनैव रागेण	¥ς	ब।ह्यपार्श्वकृतारलेषम्	868	
प्रहारे तलहस्तेन	68X	बाहुल्यात्तार सस्पर्शा	₹€	
प्रागालम्य सौष्ठव रूप	244	बाहुरूयान्मन्द्र सस्पर्शी	38	
प्राज्ञ कलाज्ञस्तालज्ञी	284	बिन्दुरुत्पद्यते नादात	२७	
प्राणस्तन्मध्यवर्ती स्याद्	99	बुद्धायिशिधलागाढा	७१	
प्रामुख्य योषितामेव	288	बुवै सालगनाट्टाच	१२न	
प्रायेण तुस्वभावात्	288	भ		
प्रायेण देवपार्थिवसेनापति	२४२	भजते सर्वथीणानाम्	894	
प्रायो लोकप्रसिद्धानि	939	भज्यन्ते सापरिज्ञेया	ধ্ভ	
प्रावृत नाम विज्ञेय	038	भरणतत्समुहिच्ट	43	
प्राहुरेव विभागेन	685	भवति शशासु कमशो	१ २६	
-		~		

परिवास	1	संगीतसमयसार	
सबन्ति दर्शनान्यव्टी	१६=	भूतस्तपार्विणंग क्लोस	\$63
भवन्ति दर्शनान्येव	939	भेवे गहस्तयोरेव	₹¥#
भवन्त्यति जवन्ये तु	\$ 0 EE	भैरवे यदि वर्तेत	* =
भवेच्छरभनीलयच	२१६	भोगवीर्यामनोरामा	4
भवेण्छरमलीलोवा	१०७	भोजनेस्पर्धनेलेपे	१७४
भवेर हु त्रचिदुत्किप्ता	₹ ₹	भ्रमरेऽन्त्ये तलस्याग्रे	205
भवेरसनगिदाख्य तत्	Ę϶	भ्रान्ती मण्डलिनीहस्ता	8=4
भवेद्धनरवर्चैव	388	भ्रान्ती मण्डलिनी हस्ती	१=६
भवेदात्र सुनादोऽन्ते	Ęo	भागयित्वैक चरण	१६८
भवेयु पटहे वर्णा	१४२	म	
भवेयुरष्टद्वन्द्वानि	२१०	मकर: सिंहशार्द् ल	१८१
भवेयुर्वादिनस्तस्माद्	258	मकरन्द कीर्तिताली	२१७
भवेयुस्ते महीपस्य	२२७	मकरक्चेति सयुक्ता	१७=
भागोऽपिक्षोम्बडे कार्य्य	११०	मगण स्यात् प्लुताचन्तो	389
भागेन येन तेनीव	१२३	मग्नग्रीव तथोत्सिप्त	800
भाण्डीक भाषयोहिष्टा	¥₹	मग्रह न्यास सयुक्ता	π¥
भाण्डीक भाषाकुशलै	8€=	मञ्जलखोतकस्तेन.	ξ×
भावकत्व रसिकता ना	२४४	मज्जास्य गुक्रवातोश्य	74
भाषाञ्जानि ययैवस्यु	७३	मज्जास्यीनित्रिमिर्मासै	75
भाषा या पिञ्जरीतस्या	×χ	मञ्जीरस्थान सलक्ती	188
भाषास्यादसैन्धवीनामा	= €	मट्टरच प्रतिमट्टरच	१२७
भास्करानन्दनश्रुत्या	१६३	मट्टादि तालषट्केन	१२७
भिन्नतान समारूपश्च	20	मट्टिकायाविषातच्या	२२१
भिन्तषड्ज समुद्भूता	83	मणिबन्धाह्नय पाणि	१७२
भिन्नवर्ज समुद्भूतो	30	मणिव-घेन युक्ती दी	१८३
भिन्नषड्जस्तथाभिन्न	२०	मणिबन्धेयुतावृत्ता	१=१
भुजज्ञमगती तोय	१७४	मण्ठताले प्रयोक्तव्या	8 4 3
भुजयो स्तनयुग्मेवा	२०४	मण्डेन भोम्बहरचाच	808
भूकर्मसप्तचातत्र	१६७	मण्डना च तथा सौस्या	•
भूचरा खेचराश्चेति	739	मतङ्गस्य मते त्रोक्ता	56
भूयश्वाकुञ्चन ज्ञेय	288	यतेन पणबम्धेन	२४७
मूबिष्ठ स्त्रीयु कर्तव्य	484	मदनश्चेव विज्ञेय	२१व

परिशिष्ट	\$	14	संगीतसमयसार	
मध्यम ग्राम सम्भूता	৬=	मन्द्रादुच्चरिततस्तार	ŧ=	
मध्यम पञ्चमभूषिष्ठं	8.8	मन्द्रेण ताडित प्रोक्त	58	
मध्यमांश पहीनाच	59	मन्द्रे मध्ये चतारे च	१४०	
पृथ्यमा कथिता सेय	२५७	मन्द्रे मध्ये च माधुर्यात्	3 8	
मध्यमाश्रान्तनजंन्या	१३७	ममन्द्राच निताराच	= 5	
मध्यम।दिरितिख्याता	95	ममन्द्रा शाम्बरीज्ञेया	=8	
मध्यमादिस्वतोड्डी ्व	७७	मलपाङ्ग प्रहरण	१५६	
मध्यमाद्याग्रयोगश्चेद्	१७४	मलिनगायनरीतिश्व	१ ३0	
मध्यमानामिकाभ्या तु	१३७	मल्हारे च गनित्याग	55	
मध्यमान्तरघानस्तु	१३७	मसृणानि सन्तिवेशीनव ६	क १५३	
म॰यमाबाह्यघातो	१३७	संसृणे वादने प्रोढा	8 x 8	
मध्यमा मध्यमा तुर्य	१७२	मस्त कोद् देशमम् त्राती	१८६	
मध्यमेर स्पिता पूर्णा	60	म-।कांशकिनीरावा	5	
मध्यमेन निशादेन	55	महेश गुरु पूज्यानाम्	308	
मध्यस्थानो द्भवत्वात्तु	88	मात्रा वित्रतरे जेया	१२४	
मध्यस्या वादसमये	२२६	मात्राणामसमार्खेन	848	
मध्याद्रुतविलम्बाच	१२३	मात्राभि षोडपैवापि	१४२	
मध्ये मध्ये चरागस्य	3+5	मात्राभिश्च कृता सैषा	१४१	
मध्ये मध्ये तुगद्यस्य	888	मात्रिक सरल ह्रस्व	385	
मध्ये मध्येऽत्र गमका	१ २२	माधुर्य्य श्रावकत्व च	₹ \$	
मध्ये मध्ये म ड् डस्य	808	माधुर्यं गुण सयुक्ते	३२	
मध्ये वाद्य प्रबन्धस्य	१५८	माधुर्यं युक्तो ललित	××	
रनिषेषु भवेत्मन्द्रा	5 8	माषुय्यं सहित गीते	×٩	
मनोगा हस्तमा चान्य	282	मानेन खसितेनापि	638	
मनोहराक्च सूक्ष्माक्च	8 x x	मानेन गायको गायन्	१५८	
स्त्रजासुप्रसन्तान	٠,٠٠	माने न्यूनाधिकाज्ञत्व	२३१	
नन्द्र तार प्रसन्नोऽय	रेद	मार्गहिन्दोलरागाङ्ग	9€	
रन्द्रधैवत सथुक्ता	50	मार्दङ्गिकेष्वमी केचित्	२४०	
पन्द्रसप्तकमेव <u>ै</u> तद्	¥s	मालवादेर्भवेदञ्ज	4.	
मन्द्राचैवाति मन्द्राच	b	माल्यानुले प सम्पन्ना	₹₹•	
मन्द्रादि स्थान भेदेन	२८	माल्या भ रणवस्त्राचै	२०३	
मन्द्रादि स्थानभेदेन	4.8	मासे चनवमे प्राप्ते	74	

गरिशिष्ट	\$	₹ 9	सरीतसम्बसार	
मासे द्वये तुसम्बाप्ने	74	य एव गुणदोषाश्च	24	
मासेनैक पूर्णेनत्व	२४	यगणो लो गुरुश्चीव	224	
मिथस्य यसकै वड्भि	843	यच्चेतो जिन पादपद्म युग	ल ।	
मिच्या प्रयोग प्राचुटमं	588	यतिताल कलाभिज्ञी	२४३	
मिलित्वा बहुभिर्यस्तु	₹३=	यतिवालगतिज्ञस्व	243	
मिश्रक संपरिजयो	२३८	यतिमान समावण्यं	₹•1	
नीमासाद्वय वेदान्त	5 X =	यतिरेवाश्चरद्वन्द्वो	१६०	
पुकुन्दानन्दन श्रुत्या	१६३	यतिगोताप्यवच्छेदो	8 % 8	
पुसरस सौब्ठव च	201	यतो मनस्ततो भावो	₹08	
पुलवाद्य ततो ज्ञेय	205	यतो पादस्ततो हस्ती	139	
पुष्टिक स्वस्तिकादूष्यं	१८२	यतो हस्तस्ततो दृष्टिन	₹08	
हिर्मुं हु ग्रहोयस्तु	¥0	यत्तवा जीव्यते नाद	232	
१ वर्ड नाशब्दनिष्पत्ति	१ ६	यत्र गाढस्वर सम्यग्	X G	
(चर्छनाशब्द वाच्य हि	84	यत्र गीतञ्च नृत्तञ्च	२४७	
च्छिंना शुद्धमध्याचेत्	50	यत्र तत्स्थानक प्राहु	£39	
(चर्डयते येन रागो हि	१६	यत्र प्रवर्तते मन्द्र	X X	
(च्छितीव्वनिरागमूर्ध्न	99	यत्र प्रवर्तते सम्यक्	२४७	
विनंपादवंद्वये चैव	१८४	यत्र व्यग्नवृभी हस्ती	208	
त्यिण्डदण्डकार्यस्य स्थिण्डदण्डकार्यस्य	8	यत्र शब्दस्य वलन	90	
विज्ञ करटेत्या ड	१३१	यत योडस मात्राभि	१४७	
	१ २ १	यत्र स्यात्तर्जनीस्पर्शो	245	
दक्क देशीपटह सक्तरमञ्जू		यत्र स्वराणा सप्तानाम्	399	
दिङ्गवादन यद्वा स्टब्स्ट विकास	329	यत्रा तोदानि वाद्यन्ते	846	
लापक विकल्पेन	980	य गापि सोदितोक्षिप्ता	295	
नापकस्ततस्तान	309	यत्रेकेनीय हस्तेन	6.8.6	
बिमोडेति विज्ञेय	१५८	यत्रोद्बाह सङ्द्दिवी	१६०	
य		य यादीना प्रजन्माम्	१४६	
ч		यथा कर्णाटगीडाशो	Ęĸ	
। कालस्यूचिसम्भेदात्	282	यथारक्षञ्च नृत्यन्ते	₹0=	
- कुट्यात् सालगे सुड	₹₹?	यथाक्षर विनिष्यत्ति	२४७	
षण्टानादवत् तारा	90	यथा तथा तयोमंध्ये	,	
स्यादिष्टार्थं निर्वाह	१२६	यथा प्रसर्पित पाद,	180	
. स्त्रीणा पाठ्य गुणो	586	यया भैरव जातावा	Ęĸ	

परिकाष्ट	3:	१ = १	सगीतसम्बद्धार	
यबाबा द्याक्षराणाञ्च	२४७	यस्मिन् वसति रागश्च	29	
यवाविसद्शाशस्त्र	33	यस्मिन् स्वरेस्यायिनिचारः	त्रमा ४४	
यथाशास्त्र प्रयोगेण	233	यानृत्यति परिज्ञेया	२४६	
यथा समुचितन्यासा	38	या नृत्यति समीचीन	२४६	
यथोक्त लक्षणोपेत	२५३	या नृत्यति समीचीन	२४६	
यथोचितपदन्यास	230	युतमणिबन्धोत्तानारा	309	
यथोत्तरमसी नादी	¥	युक्ताष्टादशमात्राभि	१५०	
यदा तदा परिजेयो	\$80	येनकेनापि तालेन	१६३	
यदा द्रुत स्वरस्थाने	3 5 \$	येनकेनापि बाखेन	140	
यदा प्रसारित। डगुष्ठ	\$83	येन लक्षण सयुक्त	240	
यदा विग्च्यते घात	१३८	येन लक्षण संयुक्त	748	
यदि प्रवर्तने तज्ज्ञै	208	येन सालगगीताना	248	
यदि प्रवर्तते तज्ज्ञी	२०६	ये पदाकादयो हस्ताः	\$ 83	
यदि मुब्टि प्रहारासि	१२७	यो गायति भयाविष्ट	236	
यदि वादो भवेत्ताल	२४१	यो गायति विना दोषान्	233	
यदि वाद्येन सद्श	२०४	यो गायति स विज्ञेय	२३४	
यदि सर्वाङ्गनमन	२०४	यो यथा चालित स्थायस्य	T 40	
बदुदवुत्तस्य पादस्य	338	यो बादयति निरत	\$ 7.8	
यद्यत्र तर्जनी मध्य	१७३	यो वादयति मधुर	१ ५३	
यद्यर्थे न्दुयुतास्सर्वा	808	यो बाटयेत स विज्ञेयो	२४४	
यद्यपि पुरुषो गायनि	२४७	यौ प्रौक्तो गीत भाषाया	₹ \$	
यच स्लसति भावेन	२०४	_		
		7		

ξą

838

१०७

3

¥ξ

ሂട

284

19 8

83

ΧX

रक्ताधिके भवेन्नारी

रक्ति स्वरूप रागस्य

रक्तिस्वमावतस्तञ्जी

रङगे गीते विघत्ते यो

रगोद्योतो राजताल

रचित चूर्णमाख्यात

रज्यते येन सच्चित्त

रञ्जक पररीतिशः

रङ्गस्थितैनंरैर्वाश्च

२६

ÉR

Ęø

२०७

238

२१६

१२•

२३३

39

यद् रूपकेऽचवालप्ती

यद्वऋकटिपाद

यन्मकेंटपिशाचादि

यस्तारसप्तके राग

यस्तारान्मन्द्र सस्वर्शी

यस्मादन्तर या प

यस्यवश्रष्टनौस्निग्धे

यस्यां स्वरा विराजन्ते

यस्मात् स्वभावत स्त्रीणा

यस्तस्मादुदपादि गान रसिका

परिकिच्ट	486		सगीतसम्बंधार	
रणवा चैव गम्भीरा	u	राजविद्यावरी मट्टो	२१७	
रस भ्रड्गारनामायम्	858	राजु रीप्तावितिषातो	₹•	
रस शृङ्गार सज्ञोऽव	856	रासक किन्तुनास्त्यस्य	१२५	
रसरीत्योनंबत्व	₹₹€	रासकक्ष्वैक ताली च	१०५	
रसानुरूपरागाणाम्	238	रासकश्चैक ताली च	808	
रसान्तरेण यद् युक्त	٤٤	रासक्श्चैक ताली च	१०४	
रसिका सूक्ष्मभावार्थं	२२७	रासग्दवैकताली च	१०७	
रागकाकु क्षेत्रकाकु	६६	रामकश्चैक ताली च	१ २७	
रागगीतस्वराणाच	588	रास 🛊 भोम्बडस्यैव	658	
रागच्छायानुकारित्वात्	७३	रिग्रहाशाच मन्यासा	= ?	
रागव्यक्त्यनुकूला हि	42	रिघन्यक्ता गतारा च	⊆ ₹	
राग व्यक्ति भजवणा	€8	रिमन्द्राचगशूल्याच	0,3	
रागस्य नियमाद् वातु	१०६	रिपञ्चम विहीनोऽय	30	
रागस्य यस्त्वरावृत्त	७२	रिपटीनो निषादान्तो	48	
रासस्य या नितच्छाया	ĘĘ	रीतयस्सन्ति कथिता	840	
रागस्य बुद्धता क्षेत्र	38	रीतिभिङ्गिरिनि प्रोक्ता	840	
रागस्यावययोयस्मिन्	84	रुक्चिन्तामोहम्च्छांसु	१७०	
रागस्यावयवो रागे	६७	रूपक गायनो गायेत्	χo	
रामाशयो समानत्व	3.7	रूपक स्थानके रागे	१ ३०	
रागाकारन्यस्थानेस्यात्	8.8	रूपके क्वचिदकोऽपि	3.2	
रागाचारोपणेहेतु	٤٤	रूपयगैवन वर्षे स्तु	780	
रागासप्ति क्षेत्र सुद्धि	38	रूपयौवन सम्पन्ना	२२६	
रागे गमक गीत	84	रूपयोवन सम्पन्ना	२२४	
रागे च गमक गीत	२४६	रूप साधारितश्चीव	२१	
रागे व गमक गीत	२४६	रूपसौष्ठवरेखाभि	२०६	
रागे रागाधिकत्वञ्च	388	रेचितौ चतुरस्त्रश्चेद्	१८३	
रागे रागान्तरच्छाया	44	रेफकर्तरिनिष्कोटै	१३४	
रागे रागान्तरच्छाया	२३४			
रागेषु मित्र रागस्य	€8	रेफहस्ते कृते पूर्वम्	8.8.X	
रागो नो यो विसद्श	46	रेफेण सहिता तहद	644	
रानो महानल्य प्रश इति	9.9	रफैरेबोर्घ्बहस्ताम्यां	688	
राजचूडामणी ताले	220	रेवगुप्तस्तवानाग	२१	

ल		लालमावा तुकला च	२४६
लक्षण विनियोगक्त	55	लव क्षणैरच्टिम स्यात्	२१३
लक्षलक्षणदक्षाश्च	220	लामव गात्रवश्यत्व	२४४
लक्ष्म लक्ष्यञ्च यो वेत्ति	२२६	लालित्येन यदा नाद	ય્ય
		लावको भावकश्चैव	588
लक्ष्यते बाहुपर्यन्तम	२०५	लीननादा च सोल्लासा	\$ X
लग्ना सैव कलाज्ञेया	£ ± X	लीलामात्रेण शारीर	Ęo
लचतुष्क विरामान्त	२२•	लीलाविलोकितश्चान्यो	२१≡
लघु गुर्वादिभिमनि	१५५	लोक व्यवहती यद्धे	१ =६
लघत्वेन सहोक्त पन	६७	लोके दत्तिलकोहलानिल सुता	3
लबुद्धय विरामान्त	२२१	लोली ढोल्लरिदन्ती	8=
लघुवाटे नन्वाधाताद	6.8.5	लोहडीपतने यत्र	₹0 ₹
लघुम्यातुगुरु प्रोक्तो	२१३	ली द्वी प्रनिताल स्थात्	228
नघुद्वंत चतुष्कलौ	२२०		
न घुक्रेलर ताले स्यु	668	व	
लघुहस्तो विधानज्ञ	२४८	वशक्य महुरी चैव	१ ३२
लघूनाच गुरूणाच	१ २३	वशाश्चतुर्देश द्वादश	exx
लब्बक्षराणा पञ्चाना	568	वशाश्चत्वार इत्युक्ता	5,83
नताक्षेपो डमरुको	739	वक्षेत्यास स्वर पूर्व	४६
लनाक्यौ करिहस्तौ च	१८२	वशे मुट्टेय मुक्ततद्	€ 8
लम्भकरचोपम्भश्च	658	वक्तार शास्त्रवेतार	२२७
लम्भनोऽथकुडुक्केन	808	वऋतासैव गीतज्ञे	90
लम्भको रस सन्देही	800	वक्षरचतुर्विष प्रोक्त	१७१
लयमानाद्यति प्रोक्त	२१५	वदन्ति केचिदस्यैव	१५७
ललाट रचनाइब्य	१७३	दनमाली वर्णताल	२१६
ललाटेऽभिमुख बात	339	वराटी गौडघन्यासी	७७
ललित गात्रशैथिल्य	२०४	वर्जित पञ्चमेनैष	5 8
ललित च तथा खण्ड	१२०	वज्यौ मेलापका भोगौ	68
ललिता असिका नाट्टा	<i>७७</i>	वर्णवित्वा गुणान् पूर्णान्	२०६
ललिता टक्करागालु	28	वर्णा भेनिकटास्तज्ज्ञी	१५५
ललिताभिनयास्सर्वे	508	वर्णाश्रयास्तु विश्वेवा	₹
ललिते पाञ्चालरीति	१२१	वर्तते चेदनियमा	\$ £ &
ससितंधारैर्युक्त	ΑŚ	वर्ततेचेन्निरालम्बा	¥ς

परिकाष्ट	\$.	??	संगीतस मयसा र
बर्वते स तु गीतज्ञै	χĘ	बाखते यत्र वेगेन	5.5
वर्तन्यां न भवन्त्येते	११८	वासते यस्त्रिरावृत्त्या	१५६
बर्देमानं यदि स्थानं	१६ २	बाद्यते लक्षणोपेतं	२५१
वर्द्धमानः कपित्येन	309	वाचते वाचहीन सा	१४७
बलन बतेनं गात्रे	२५५	वाद्यन्ते रागगमका	48 8
बलिताबितिहस्ता.	१८२	वाद्यन्ते राग गमका	२४६
वश्यकण्ठतया सम्यक्	२३३	वाद्यन्ते राग गमका	7.8€
वसन्ति यत्र स ज्ञेयः	₹3	वाच पद्धतिरित्युक्ता	२०७
बहुणि: कम्पिती मूर्च	२४४	वाद्याक्षराणा सम्बन्धे	580
बहु प्रकारमेवं स्याद्	१३ २	वाद्यानुवायिनस्सम्बक्	£ X \$
बहुवर्णपटीपट्ट	22%	बाचेन सह गीतायाम्	२०व
वांशिकं गीत तत्वज्ञाः	8.8	वानशेष्ट्र खरैस्तुल्यो	₹ २
वाग्गेयकार कविताकार	220	वाम कूपैरमानिषाय	200
वाग्गेयकारयोवदि	232	वामदक्षिण पाश्चात्य	₹•₹
वाग्गेयकारस्सोऽयं	२३२	वामदक्षिण हस्ताम्यां	**
वादक: स परिज्ञेयो	58€	वामपाद प्रकम्पोत्थ	२४०
वादकस्य परिज्ञेयो	२४६	वामपादश्च यत्र स्यात्	864
बादकेन कृतो न्यास.	१४८	वामभागे महीवस्य	770
बादनाय ततो बाद्य	\$85	वामस्य चरणस्यापि	388
बादनाय हुड्क्कायाम्	885	वामहस्तस्य तर्जन्या	१ ४१
बादने रागगमकौ	२४६	वामेतरस्य हस्तस्य	188
बादमित्वातु मलप	१६०	वामे वा दक्षिणे वापि	208
बदायेट्टवणादीना	१ ५ ३	बायु: समुत्यितो नाभे	8.8
बादयेत् पल्लवद्वन्द्व	१६०	वायु: समुत्थितो नामे.	8,8
बादिपक्ष निहन्तार	२२७	वारद्वयवादयित्वा	१६१
बादे नर्तकयोजति	288	वाहुमध्य तयोर्मध्य	१७३
बादे निबद्धशब्दाना	8 4 8	विकटाभिनयोपेत	200
वादेपेरणयोजीते	244	विकृताको विवादी व	48
बावे बैणिक योजति	२४६	विकृताशलयोपेता	3,5
वाद्य लावणिका तज्ज्ञै	6.8.0	विकुष्ट नाम तद् गीतिन	88
वाद्यतालयतीनाञ्च	२४३	विक्षिप्ता च पताका च	२१४
बाह्यते पेरणाक्यस्य	२४ १	विचित्र रूपोऽपि समूरकण	ने ४१

परिविष्ट	32	₹	संगीतस म्बदार
विचित्रस्य तु गीतस्य	¥0	विवन्धगतिषु व्यक्त	११३
विजानता विवादी स	XX	विवर्तनी समास्याता	355
विज्ञेयंबन्धकरण	१०२	विवादिन स्वर द्वन्द्वे	×4
वितकंरोष विज्ञान	379	विवादीस्यात् विसदृश	**
वितायुतोऽङ्कचारी स्याद्	800	विवाहाग्रुत्सवे गेय	ΑŚ
वितालश्च विबन्धश्च	२३३	विविधालिप्त चातुर्यं	२३=
वितालो गायक प्रोक्तो	२३७	विविधैव्योप्ति शब्दैश्च	\$ £ R
वित्तेन विद्ययास्ट्या	२२=	विश्वतीरेचकाश्चैव	१६=
विद्यामदश्च निर्दिष्टा	२२८	विशिष्टैरप्य विशिष्टै	₹₹
विद्वान् कुलीनो मतिमान्	580	विशेष स्पर्श शून्यत्वाद्	
विवाय चरणावेती	28 =	विश्वग्रीवसगौतमी मुनिव	ार २५व
विना गीत विना नृत्त	१३२	विषम तुसमीचीन	२५६
विनाषयवहीनत्वात्	2 4 3	विषम प्राञ्जल वापि	२३६
विनीतोद्धतयो खिन्न	₹₹=	विषम प्राज्जलञ्जीव	१ १ १
बिन्दोरुदय सिद्दृष्ययं	१३६	विषम प्राञ्जलञ्बैव	778
विष रीतपदैर्युक्तं	8.6	विषम प्राञ्जला लप्तौ	4.5
विपरीत मनोज्ञेय	ęş	विषमत्व समीचीन	२५६
विश्वन्त्र स परिज्ञेयो	238	विषम स्थापना युक्ता	₹४
विभाषा राग राजस्य	50	विषमेषु प्रयोगेषु	२०५
विरम्यते तु यद् वाद्य	\$38	विवादसम्भ्रमव्याधि	१८०
विरलाङ्गुलिघातेन	£83	विसर्जितोपरिष्टेन	268
विरलाङ्गुलिघातेन	688	विस्पष्टा काकली चैव	5
विरलाङ्गुलिभियंत्र	१४७	विस्फोटान्तर्भेदिनी च	4
विश्वस्वर पदताली	१०१	वीषा चालावणी चैत	१३१
विषदान्यपि वाद्यन्त	१५६	बोणा इये तू मम्ब्राप्ते	ę
विष्णब्दो विषद्धार्थो	73	बीणा भेदाद् भ प्रत्यन्ये	\$33
विलगन्ति स विज्ञेयो	२३४	वृत्तगन्धि तथा चूर्णम्	१२०
विलम्भक परिजेयो	858	वृत्तमस्थिनि पाञ्चाली	175
विलम्बितो लयस्तस्या	११ =	वृत्तमौक्तिकवत् काच	XX
विभासनीर्महीपस्य	775	वृत्तित्रयानवगति	288
विस्तोलित पार्श्वात्पार्श्व	848	वृत्तिरारभटी ज्ञेगा	१ं२१
विषक्षिताथंशेषस्य	220	वृत्तिश्व भारती श्रेया	8,48

वृह्यिक्कारिका वेत १३१ शारीरालास सम्प्रृतिः वेति मार्गावर्ष सम्प्रृतिः विद्वानिरिता मार्गित ७० शारीरलाक्वारेषत शारीरलाक्वारेषतः वारीरलाक्वारेषतः वारीरलाक्वारेषतः वारीरलाक्वारेषतः वारीरलाक्वारेषतः वारीरलाक्वारेषतः वेतानिस्त्वारणाविद्विः १० शारीरलाक्वारणाविद्विः १० शारीरलाक्वारणाविद्वारणाविद्विः १० शारीरलाक्वारणाविद्विः १० शारीरलाक्वारणाविद्वे शारीरलाक्वारणाविद्वे १० शारीरलाक्वारणाविद्वे शारीरलाक्वारणाविद्वे १० शारीरलाक्वारणाविद्वे शारीरलाक्वारणाविद्वे शारीरलाक्वारणाव	मबसार.
वैवाडनिरिवा साति वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिरत्नाचानिद्विद्व वेताडनिर्मानानिद्विद्व वेताडनिर्मानानिद्विद्व वेताडनिर्मानानिर्मानेवेद्व वेताडनिर्मानानिर्मानेवदेव्व वेताडनिर्मानानिर्मानेवदेव्व वेताडनिर्मानानिर्मानेवदेव्व वेताडनिर्मानानिर्मानेवदेव्व वेताडनिर्मान्व वेताडनिर्मान्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवद्वेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवद्वेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवद्वेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्व व्यावनानिर्मानेवद्वेव्व व्यावनानिर्मानेवद्वेव्व व्यावनानिर्मानेवदेव्वव्यावन्य व्यावनानिर्मानेवदेव्वव्यावन्य व्यावनान्ववेवव्यावन्य व्यावनान्ववेवव्यवित्यव्यवन्य व्यावनान्ववेवव्यव्यवित्यवित्यवन्य व्यवनान्ववित्यवेवव्यवित्यवित्यव्यवित्यव्यवित्यवित्यव्यवित्यव्यवित्यवित	22
वेशाविस्तयात्र्यात्री वेशावस्यां गार्गविद्धि वेशावस्यां गार्गविद्धि वेशावस्यां गार्गविद्धि वेशावस्यां गार्गविद्धि वेशावस्यां गार्गविद्धि वेशावस्यां गार्गविद्धि वेशावस्यात्रे वेश्य वेशावे द्विश्वत्को त्रेयो वेशावस्यात्रे वेश्य वेशावे द्विश्वत्को त्रेयो वेशावस्यात्रे वेश्य वेशावे द्विश्वत्को त्रेयो वेशावस्यात्रे वेश्य वेशावस्यात्रे वेशाव वेशावस्यात्रे वेशावस्य वेशावस्यात्रे वेशावस्य वेश्य वेशावस्य वेशावस्	84
वेतावत्यां गार्नाविद्धि वेद्यावत्यां गार्नाविद्धि वेद्यावत्यां गार्नाविद्धि वेद्यावत्यां गार्नाविद्धि वेद्यावत्यां निर्माविद्या वेद्यावत्यां निर्माविद्या वेद्यावत्यां निर्माविद्या वेद्यावत्यां निर्माविद्या वेद्यावत्यां निर्माविद्या वेद्यावत्यां निर्माविद्या व्यावत्यां निर्माविद्या व्याव्यां व्याव्यां व्याव्याः व्याव्यां व्याव्यां व्याव्याः व्याव्याः व्याव्यां व्याव्याः व्याव्यां व्याव्यां व्याव्यां व्याव्याः व्याव्यां व्याः व्याव्यां व्याव्याः व्याव्यां व्याव्यां व्याव्यां व्याव्यां व्	6.8.
वैक्या विकल्प २१३ वाचाकुतन्दन जूया विव्यविक्ती मेर्यो १४ वाचाकुतन्दन जूया विव्यविक्ती मेर्यो १४ वाचित्तानानिवेद्यु विव्यविक्ता मेर्यो १४ वाचित्तानानिवेद्यु वाचित्तानिवेद्यु वाचित्तानिवेद्यु वाचित्तानिवेद्यु वाचित्तानिकेद्यु वाचित्तानिकेद्यु वाचितानिकेद्यु वाचित्तानिकेद्यु वाचितानिकेद्यु वाचितानिक	SAA
वैष्णी हिष्पृतिको सेयो १४ षाधिस्तानास्निवेदेषु विण्यस्थानहे स्थित्वा १०० षाधिहार हस मामव बोस्तावाषणी बनावणी १४६ षात्रारे तथा विवानीयाद् बोस्तावणी सन्ते केष प्रश्न पारित रेकन सेय प्रश्न प्रम प्रश्न प्रम प्रश्न प्रम प्रभ्न प्रभन प्रभन प्रभन प्रभन प्रभन प्रभन प्रभन प्रभन्न प्रभन	110
वैष्णवस्थानके स्थित्वा वोस्लावणी वलावणी वोस्लावणी समं वोष व्यवस्थान समं वोष व्यवस्थान समं वाष्ट्र व्यवस्थान सम् विष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्र विष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्यविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्ट्रविष्	648
बोस्लावणी चलावणी बोस्लावणी समं शेष व्यवस्त स्वर समापुक्तं व्यवस्त स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर सम्प्रकात् व्यवस्त अतीना हि व्यवस्त स्वर स्वर हि व्यवस्त स्वर स्वर हि व्यवस्त स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर स्वर	112
बोल्लावणी समं शेष व्यवत स्पर समायुक्तं व्यवक्तां त्रात्वां स्पर समायुक्तं व्यवक्तां त्रा समायुक्तं व्यवक्तां त्रा समायुक्तं व्यवक्तां त्रा समायुक्तं व्यवक्तां त्रा समायुक्तं व्यवक्तां समायुक्तं व्यवक्तं समायुक	174
व्यवस्त स्वर समापुक्तं व्यवस्तिमित्रं कुप्यांत् व्यवस्तिमित्रं कुप्यांत् व्यवस्तिम् अत्तीना हि व्याक्तिम् विवयस्य व	121
व्यवस्थात पुर्वावं १६९ वारित्रचेशय उक्तः व्यवस्थात पुर्वावं १६९ वार्मावे समुत्राने व्यवस्थात भूतोना हि १४ विवाद समुत्राने व्यवस्थात भूतोना हि १४ विवाद समुत्राने व्यवस्थात भूतोना हि १६० विद्यावं प्रविद्यावं १६० विद्यावं परिवृत्या व १६० विद्यावं परिवृत्या व १६० विद्यावं परिवृत्या व १६० विद्यावं परिवृत्या व १६० विद्यावं व्यवस्थात व्यवस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस	3.5
ध्यवतेनानुगंवाण १६१ प्रात्तवादे घनुत्यने ध्यविषय अंतीना हि १६ प्रात्तवादे घनुत्यने ध्यवा व सदुपाध्याया अयापुत्रना तु कटियंत्र १६६ प्राद्याया अर्थायुवन तु कटियंत्र १६६ प्राद्याया अर्थायुवन प्राप्त व १६६ प्राद्याय अर्थायुवन यापुत्राच्येय्य ध्यापुत्रना परिवृत्या व १६६ प्रियोक्षाः करः वास्त्रे ध्यापुत्रना व १६६ प्रियोक्षाः करः वास्त्रे ध्यापुत्राच्य १६६ प्रियोक्षाः करः वास्त्रे ध्याप्त्रवाय व १६६ प्रियोक्षाः करः वास्त्रे ध्यापुत्रवाय व १६६ प्रियोक्षाः करः वास्त्रे ध्यापुत्रवाय व १६६ प्रियोक्षाः व १६६ प्राप्त व १६६ प्त	244
व्यवस्थित भृतीना हि व्याकृतां 1 द्वार विश्व वि	
व्यवस्थित अतीना हि व्यानुमा तु कटियंत्र व्यानुमा त्रान्य व्यान्य व्य	२२६
व्यापुनात कृतियंत्र हैन्य विदः स्यादिञ्चत कृत्विचन् व्यापुनाति वार्वस्य हैन्य विद्यास्यापुनात्वेत्र व्यापुनाति वार्वस्य हैन्य विद्यास्यापुनात्वेत्र व्यापुनाति वार्वस्य हैन्य विद्यास्यापुनात्वेत्र व्यापुनात्वे हैन्य विद्यास्यापुनात्वेत्र व्यापुनात्वे हेन्य विद्यास्यापुनात्वेत्र व्यापुनात्वेत्र व्याप्यास्याप्याम्याप्यास्याप्यास्यास्यास्यास्यास्यास्यास्यास्यास्यास	₹₹€
व्यावृत्तर्हेस पत्नो हो १८० चिरस्यपाङ्गयोर्श्वेव व्यावृत्तर्हेस पत्नो हो १८० चिरस्यपाङ्गयोर्श्वेव व्यावृत्तर्वित पार्थस्य १८६ चिरासि नववतापि व्यावित वर्षायाप्त्रं १८६ चिरासि वर्ष्यसाप्ति व्यावृत्त्रं १८२ चिरासि वर्ष्यसाप्त्रं १८० चिरासि वर्ष्यसाप्त्रं १८० चिरासि वर्ष्यसाप्त्रं १८० चिरासि वर्ष्यसाप्त्रं १८० चिरासे १८६ चुटं भाषापाञ्चेव चुट्यसाप्त्रं १८० चुटं भाषापाञ्चेव चुटं भाषापाञ्च चुटं चुटं भाषापाञ्च चुटं चुटं भाषापाञ्च चुटं चुटं चुटं चुटं चुटं चुटं चुटं चुट	800
व्यावृज्यत्वेति पार्थवस्य १६० विराज्ञितः स्ट व्यावृज्या वर्षस्य वर्षस्य १६६ विरोज्ञितः स्ट पार्थवं व्यावृज्या वर्षस्य वर्षस्य १६६ विरोज्ञितः स्ट पार्थवं व्यावृज्या वर्षस्य व	208
स्थान्या परिवृत्या च १८६ जिल्लेक्कं: कर: पार्श्व स्थानव्य विरामान्तं २२२ जिल्लेक्कंटलायवर् विध्यानिकारको ग्यून विध्यानिकारको ग्यून विध्यानिकारको ग्यून विध्यानिकारको ग्यून विध्यानिकारको ग्यून विध्यानिकारको ग्यून विध्यानिकारको विध्यानिकार व्यवस्थार विध्यानिकार विध्यानिकारिकारिकार विध्यानिकार विध्यानिकार विध्यानिकारिकारिकारिकार विध्यानिकारिकारिकारिकारिकारिकारिकारिकारिकारिकार	१६=
श्री महत्य विरामान्तं २२२ शिल्धिश्वरंटतायद्वव् श्रियां विरामान्तं श्रियां श्रीयां विरामान्तं स्त्र श्रीयां श्रीयां स्त्रावाययोगित् न श्रीयां श्रीयां स्त्रावाययोगित् न श्रीयां श्रीयां स्त्रावाययोगित् स्त्रावाय श्रीयत् २३६ श्रुद्धं श्रीयां स्त्रावायं श्रीयत् श्रीयां स्त्रावायं श्रीयत् श्रीयां स्त्रावायं स्त्रावायं स्त्रावायं श्रीयां स्त्रावायं स्त्	१६७
शिक्ती भैव नीला च चृत्क्ता रक्ताम्ब्राधिकतं च्यावसीऽदर्शयितु तस्माद् = चृत्क्ता रक्ताम्ब्राधिकतं च्यावसीऽदर्शयितु तस्माद् = चृत्क्ता रक्ताम्ब्राधिकतं च्यावसाऽदर्शयितु तस्मादं रृद्ध च्यावसाऽच्येतं चृत्वसाः च्यावसाऽच्येतं चृत्वसाः च्यावसाःच्यावद्यो १६० चृत्वसाःच्यावद्यावद्यावद्यावद्यावद्यावद्यावद्यावद	33
शिंबती भैन नीता च विष्योगान्यायगीभिल्ल वृह्मता रक्तान्दुनाधिक्तं व्यक्षान्द्रस्थित तस्माद् ६ वृह्मता रक्तान्द्रनाधिक्तं वृह्मता रक्तान्द्रनाधिक्तं वृह्मता रक्तान्द्रनाधिक्तं वृह्मता रक्तान्द्रनाधिक्तं वृह्मता रक्तान्द्रते वृह्मता रक्तान्द्रते वृह्मता रक्तान्द्रते वृह्मता रक्तान्त्रते वृह्मता रक्तानं	२५२
वास्थोऽदर्शयितु तस्माव् चाङ्गाङ्गलस्तु यो गायेत् चाङ्गाङ्गलस्तु यो गायेत् चादमञ्जीर त्वर्तहारा चातमञ्जीर त्वर्तहारा चावसञ्जीतर त्वर्तहारा चावसञ्जीतर त्वर्तहारा चावसञ्जीतर त्वर्तहारा चावसः पुण्यञ्जतो गुक्ते चावसः वास्ति प्रतिकार्म चावसा नम्दनन सूत्या चावसा नम्दनन सूत्या चावसा नम्दनन सूत्या चावसा नम्दनन सूत्या चावसा नाम्दन विज्ञये चावसा वासत्व वास्त्रये चावसा वासत्व वा	२२=
श्रवाहण कर्म वा गायेत् । इद्ध का वालगञ्जी व । श्रव्ध का वालगञ्जी व । श्यव का वालगञ्जी व । श्रव्य का व । श्रव्ध का व । श्रव्य का व । श्रव	२५
शतमध्योतरं त्वह्वाहारा १६८ शुद्ध स्वर्था (बत्न व: शुद्ध स्वर्था (बत्न व: शुद्ध स्वर्था) व्यवस्थ श्वामंत्रिको १६० शुद्ध पा प्यूति स्थान शुद्ध पा प्यूति स्थान शुद्ध पा प्यूति स्थान शुद्ध पा प्यूति स्थान शुद्ध द्वारा प्यूत स्थान शुद्ध शुद्ध सालामोताना शुद्ध शुद्ध सालामोताना शुद्ध शुद्ध सालामोताना शुद्ध शुद्ध सालामो सुवं	३३६
शर्नरभोषुलाविद्यो १८० शुद्धामश्रावश्यत श्रव्यः पुष्पाञ्चलो युक्ते १६२ शुद्धरीया युत गयेत् श्रद्धरात्म परिकानं २२६ शुद्धरीया युत गयेत् श्रद्धा मत्यत्म भूगा १६३ शुद्धशालगगीतानां श्रद्धाः परिकारितः १४३ शुद्धशालगयोः सुव	399
सन्दः पुष्णञ्जलो युक्ती १६२ शुद्धाया राग श्रात स्थान सन्द सारत परिकानं २२६ शुद्धतीरया युत गायेत् सन्दा नम्दनक सूराग १६३ शुद्धतालगागितानां सन्दा नम्दनक सूराग १४३ शुद्धतालगयो सुवं सम्मा तालस्व विज्ञेय. २१३ शुद्धतालगयो सुवं	848
शब्द शास्त्र परिक्रानं २२६ शुद्धरात्या युव गायत् शब्दा नन्दनक सूत्या १६३ शुद्धसालगगीतानां शब्दोन्य: पदनिन्यत्ति. १४३ शुद्धसालगयीः सूद्ये शम्या तालस्त्र विज्ञेय. २१३ शुद्धसालगयीः सूद्ये	399
शब्दा नन्दनक श्रुरया १६३ चुढशालगगीतानां शब्देन्यः पद्मित्मत्ति. १४३ चुढशालगयो सुढं शम्या तालदच त्रिज्ञेय. २१३ चुढशालगयोः सुत्रौ	२४०
शब्देन्यः पदनिव्यत्तिः १४३ शुद्धसालगयो सूढं शम्या तालरूच विज्ञेयः २१३ शुद्धसालगयोः सूढौ	२५१
शम्या तालक्ष विश्वेय. २१३ शुद्धसालगयोः सूबौ	₹₹
	₹8
शस्या दक्षिण पातस्तु २१४ शुद्धे कायालगे चैव	244
	२१४:

परिशिष्ट	3;	5,8	संगीतसमयसार
षुद्धे विषम सुडस्य	२३२	शृङ्गारे वित्रलम्भास्ये	55
शुद्धैस्सङ्कीणं रागैर्वा	200	श्रोतृ चित्तमतिकम्य	. 68
बुद्धवाड वरागाङ्ग	50	श्रोतुश्वित्त परिक्राय	528
बुद्धा बोडशमात्राभि	१ १ २		
गुभं तालविलम्बेन	१२ २	eq.	
गुमवास्य युत्तैर्गीतं	88	षट् प्रकारा गतिगंधे	१२३
शेवलक्षणसंयुक्तः	२४१		
शेषा. सक्रवारिण. वट् च	१०७	षड्ज बामो भवेदादौ	२०
शेषा प्रपि यथायोग	३८	वड्ज तारक्ष्व मन्द्रश्व	95
शोणित दश रात्रेण	२४	वड्जन्यास ग्रहाशश्च	૭૨
शोभनव्वनि सयुक्तं	238	षड्जर्षभ प्राय कृतं	१ %
ब्ल्बमणिबन्धा राला	१८७	षड्जर्षभद्य गान्धारो	Fe
		षड्जस्वरो भवेन्मद्रे	30
ধ্ব		षड्जाशकग्रहन्यासा	6.9
श्रावकास्यो भवेत्कण्ठे	३२	षड्जाश ग्रहमन्यासा	⊏ ₹
श्राव्यनाद समोपेत	8.5	षड्जाश न्यास सम्पन्ना	50
श्री कण्ठान्वय दुग्ववाधि नहरी	₹	षड्ञाश न्यास सम्पन्ना	59
श्री कण्ठी चेतिभाषाङ्गा	७७	षड्जाशन्यास सम्पन्ना	= 0
श्रीकण्ठीभिन्न वड्जोत्या	5 X	षड्जाशन्यास सपन्ना	6.9
श्रीकीर्तिबन्दुमाली च	२१७	षड्जाश न्यास सयुक्ता	=8
श्रीमान् दाता गुण ग्राही	२२५	वह जाश न्यास सयुक्ता	≒ €
श्रीरड्गो रतिलीलक्च	२१६	षड्जाश न्यास सयुक्ता	= 9
श्री राग शुद्धवाङ्गालो	90	षड्जाशा सग्रह न्यासा	= ¥
श्री रागजनिते गौडे	६८	षड्जादय स्वराः सप्त	3
श्री रागष्टक्करागाङ्ग	૭૯	षड्जेनान्दोलित सांश	55
श्री गर्द्धन इति ख्यात	१०१	वड्भि सजायते यस्मात्	£ \$
श्रुतयः स्वर रूपेण	3	षड्भिस्तर्केरगम्योऽपि	२४८
श्रुतयस्तत्र ज्ञेया	६१	षड्वराटयश्च रामकी	છછ
श्रुतयो यत्र वेगेन	3.6	षडेते स्थायिनः प्रोक्त	१०५
श्रुति: प्रवर्तते क्षिप्रं	**	षाडवा ककुभोद्भूता	55
श्रुती चनध्वनेर्वाध	843	वाडवा यदि रागाङ्गं	= 2
श्रूयमाणभिक्रम्य	33	षाडवो वोट्ट रागश्च	₹•
श्रृङ्गारे विनियोगः स्यात्	50	षण्मार्गकालभेदको	520

स		सचेतनीय् भवाः केवित्	58
संक्षप्यतान्यतिव्यक्तं	844	सज्ब भेदात्पाटहिकस्त्रिया	388
संबोपेणास्य सास्त्रोक्त	1,17	सञ्चात्कूपंरतो जातान्	388
संज्ञया तत्परिज्ञेय	395	सञ्चात्कूर्परतो जातान्	5%0
सज्ञात्रितय मुक्त	880	सञ्चारी स्वर सञ्चारा	9.5
संन्यास. कथ्यते गान	84	स जीव स्वर इत्युक्तः	Y¥
सयुक्त चार्धकर्तर्या	833	स ताल कालमानं यत्	२१२
ससर्गेज द्विषा प्रोक्त	१८	स तुजोदिय चे ठायो	3.7
सस्कृत प्राकृतञ्जीव	£ ξ	स त्रिषैककल पूर्व	₹ १ ६
संस्कृतीवेंशजैवापि	883	सत्यवादी च शृङ्कारी	924
सस्पृष्टार छन्दास्यो	१ ३३	सद्शाशो वया शुद्ध	Ęs
स उक्त बर्धचन्द्राख्यः	१७४	सन्दशस्तर्जनी ज्येष्ठा	१७४
स एव देवठायेति	80	सन्दशस्त्र प्रकार: स्यात्	१७४
स एव द्विगुणो मध्य	¥	सन्दष्ट कम्पितो भीतः	735
स एव नियमेनापि	१६०	सन्देहो वाद्य वर्णानां	23
स एव मस्तके तार	ų	सन्निविच्टा तथोरिक्षप्ता	115
सकल निष्कलञ्चेति	१३५	सन्निविष्टाभिषाना सा	788
सकलैरङ्गविन्यासै •	१७१	सपयो: कम्पितश्र्वंब	96
सकारम्य सकारम्य	२२१	सपावितेता युक्तो	33
सकारो मट्टताले स्यात्	२२१	सप्त गीत प्रवीणत्वं	२३०
सकृत् तियंक् समुत्क्षिप्तम्	800	सप्त गुर्वकाराण्यादी	255
सकुद् गीत्वा ततो गेय	858	सप्तप्रयोगा एकत्र	20
सक्कदूष्ट्वीयोनयनात्	१६६	सप्तम मिश्रकरण	22%
सकुदेव द्वितीयार्ष	११०	सप्तमो विषम. पाणिः	\$ X E
स खण्डयतिराख्यातो	१६ २	सप्त स्वर मय गीतं	58
सङ्कीणंश्चेति निदिष्टः	२१६	सप्त स्वराणा मध्येऽपि	88
सङ्कामतः प्रयोगाणां	२५२	सप्त स्वरेष्यसौ गीत	२३
सङ्ग तंत्र्या. परित्यज्य	१३६	सप्ताना कम युक्तानां	१ ६
सङ्गीत गुण दोवश्चः	२२५	सप्तैते कथिता भेदाः	११ २
सङ्गीत सुखसञ्जातो	२०३	सप्रासोऽय ध्रुवो गेय.	888
सङ्गीताकर कर्णधार पदबीम	¥¥	सभापतिस्व सम्यास्य	458
स व पञ्चविद्यो नादी	२व	सम्यास्सङ्गीत शास्त्रका	२२६

सर्विशब्द :	44	६ संगीत	तमयसार
समं समं साचि तियंक्	980	सम्पूर्णतार मन्द्रस्था	50
^द सर्ग साच्यनुवृत च	180	सम्पूर्णाच प्रसन्नाच	9
समकुञ्चित पादावे	739	सम्पूर्णेयं रसे शान्ते	πX
सं मन्द्रस्युतरालम्य	४६	सम्यगुन्मुखत्क्षिप्तम्	१७१
संमन्द्रा मध्यम व्याप्ता	13	सम्यग्जानाति यो देशि	२२६
समपादस्थिते रूध्वं	२०१	स यत्र मधुरस्शब्द	90
समगत्र विशिष्टार्थं	359	सरलघगामिल चौपट किरिबिल	8 X 3
सममुद्वाहित ञ्चैव	१७१	सरलक्वीपटक्वैव	£X3
सममेकपद भूमावन्यत्	१६२	सर्वशीर्षद्वयो. क्लेषात्	308
समप्रहार सज्ञश्च	388	सर्पास्ये तर्जनी वका	१७४
समवसरण सम्पत्कम्मंठो दुर्मु लेन		सर्व गीत प्रवन्धानाम्	33
'समशेषस्वरा पूर्णा	50	सर्व प्रवन्ध बोधश्च	२३०
समजेष स्वरा पूर्णा	13	सर्व प्रयोगकुशल	२४२
समक्वोद्धट्टित. कुञ्चितो	8=6	सर्वेवस्तुषुगातृत्व	२३८
समसुचिस्थितौ नृत्तै:	838	सर्व सड्यह संक्षिप्त	309
समस्यक्तिता नाम	280	सर्वाङ्ग सन्धि सम्पूर्णम्	3.5
समस्त हस्त सयोगाद्	8 3 X	सर्वेन्द्रि येष्वविकलो	28€
समस्तै: पञ्चवैदंद	880	सवितापयुता तज्जै	१०२
सम स्वरानिमन्द्राच	83	सविता सहितो वर्णी	۶3
समन्व रोरिपत्यक्त.	30	सविराम लघु द्वन्द्व	२२०
समस्बररिपत्यक्ता	58	स वृन्द गायनस्तेषा	२३८
समहरत भवेदादी	२०७	स शीघ्र ताल पातादी	१७=
समहस्त प्रहरण तत	२०इ	स सिद्धयति बिना नाद	२७
समहस्तोऽपि पैसार	१ ५६	साक्षरानक्षराचेति	3.3
समा स्त्रोतीवहास्या च	२१ ४	साङ्गुष्ठा कुञ्चिता. किञ्चित्	
समुद्धृत्य स्वरान्यत्र	४७	साड्गुष्ठाङ्गुलिभिहस्त	389
समुन्तत नतञ्जैव	१८७	सात्वती वृत्तिरिष्टामे	१ २१
समुन्ततै कटि पार्व्व	१८६	सादेशी द्विविषा प्रोक्ता	73
समूह वाचिनी ग्रामी	. १४	साघारणा जातग्रद्य रागा	,,
समे चेत्पारिण रुतिसप्ता	3=8	साधारित वाडवश्च	₹•
समो यवनिकापातात्	8 4 8	साधुवादे प्रदर्शने	१७.=
सम्पन्नेष्टाक उद्घट्ट	784	सानुसारनिषं ज्ञेय	१२६

वरिशिष्ट	1	* ₹0	संगीतसम्बद्धाः
सापुन घोडव विवा	₹ €	सुस्थानता सुरागत्व	5.83
सामान्य नर्तन यत्र	२५७	सुस्वर सुस्वरातोग्र	580
सामान्यञ्च विशेष च	€₹	सुम्बरत्व सुवेयत्व	२३=
शा मुख्या प्रौच्यते भाषा	ĘĘ	सुस्वरश्चैव सान्द्रश्च	3.5
सा सूच्छंना प्रति ग्राम	१६	सुस्वरोऽपिय श्रोतु	98
सामे स्तोक कुपातरङ्ग तरल	₹	सुहावगति सयुक्तो	१४व
सामोद्भव प्लुत दीप्त	२१€	सूचीमुखी तलास्यौ च	१ ८ २
सारणा ति प्रकारेयम्	775	सूच्याम्य कटकास्ये	१७६
सारणाया परित्याने	3 ₹ \$	सूड छायालगे दश्चात्	580
सारिकार्ष पुराटी च	888	सूड कमगता के चित्	Fog
सार्यंते कम्रिका यत्र	8 ₹ €	सूडकमवशादेवा	288
सालगे प्राञ्जलस्यैव	२३२	सुडोजचन्य नामाय	803
सालप्तिद्विविधा ज्ञेया	33	सूडी ठायी तयोरत्र	२४०
सावधानत्वमेकाङ्ग	२३०	सूत्कारी सुत्कृतिप्रायो	₹₹4
सावधाना प्रगत्भाष्य	२१०	सैव प्रोक्ता रिघवणी	247
सावधानी भयत्यक्ती	588	सैव देशा श्रयत्वेन	4.3
सा वाक्षरैविरहिना	₹ %	सौभाग्यशालिनी भर्त्	228
सिंहलीले विघातव्य	220	सौमनस्यमरोगित्व	२५४
मिह विकमताले स्यु॰	220	सौराष्ट्रिका तदक्वं स्यात्	= 8
सिंहासन पूर्वमुख	221	सौवीरकस्य सौवीरी	5 3
सुकमाराणा तेषा	१ २६	सौबीरष्टक्क रागश्चेति	₹•
सुकरोऽपि य श्रोतु	७१	स्कन्धकूर्परसञ्चेन	288
सुक्तासुक्तिस्तु स प्रोक्तो	१५८	स्कन्बस्य मणिबन्बस्य	₹४€
मुखेन स्फुरितेनापि	१ ३३	स्खलनात्तिय्यगेकाङ्घ्रे	860
सुभाव कथितस्तञ्ज्ञै	ÉR	स्तोकस्तोकस्य शब्दस्य	१६०
मुरीति गूर्जरी माने	0.3	स्तोकस्तोकेन कार्य्य	१५=
सुशारीर वशातत्तव्	२३४	स्त्रियोमघुरमिच्छन्ति	٧.
बुशारी रात्समुद्भूता	ЯR	स्त्रीणा स्वभावमधुरा	२४६
युवारीरो भयत्यक्तो	\$80	स्त्रीपुसयोव् दयूनो	225
मुश्लक्षणी सुस्वरी ताली	888	स्त्रीविरहित प्रयोग	₹8€
सुभव गीतमाकव्यं	538	स्थान समग्रशब्देन	¥σ
बुसञ्ज शिक्षकश्चैव	233	स्थानक चतुरस्य तत्	439

परिशिद्ध	4	1 c	संगीतसमग्रेसार
स्थानकं तत् समुद्दिष्टम्	११४	स्यासिन्येवोपरिद्वऽर्षा	86
स्थानक वर्द्धमानास्यं	888	स्थायि सञ्चारिणीचैव	3.6
स्थानकत्रयशोभाच	3€	स्थाय्यादिवर्णे सयुक्ता	\$¥
स्यानकृद्वितयेनै त त्	3₹۶	स्थाय्यामेव विशेषोऽस्ति	२४३
स्यानकेन मनोज्ञेन	२०३	स्थितोद्बृत्तनिकुट्टोन	? E%
स्यानकैहंस्तचलने	₹ ? •	स्थितौ समानकूपरा	१ =२
स्थानत्रयप्रयोगश्च	२३८	स्थित्वा समपदेनीव	200
स्थानत्रयसस्पर्शी	80	स्थिर प्रतापश्च भवेदप्रताप	
स्थानत्रयेण यश्बुद्ध	3 🕫 🤉	स्थिर प्रतापस्य नगरप्रताप स्थिरमानेन सोस्लासं	. 846
स्थानत्रयेण यो गायेत्	२३€	स्निग्धकण्ठोध्वनिस्तारो	12
स्थानत्रयेण यो गायेत्	२४०	स्निग्धकोमल श ब्द स्य	4 \
स्थानत्रयेऽपिकठिन	₹₹	स्पन्दन सुकुमार स्याद्	२०४
स्थानद्वयेन चैतस्य	२४०		\$\$£
स्थानद्वयेन यो गायेत्	280	स्पर्शं स्पर्शं समुत्सृज्य	१४५ २०६
स् वा नमित्युच्यतेतस्माद	¥₹	स्पृब्टवा पदाभ्यामुत्तान स्फुटनादोज्ज्वलत्व सु	4 4
स्यानवर्णक्रमावृत्ति	şХ	स्फुटनायाज्यसाय पु स्फुरितः कम्पितोलीन	3=
स्थानश्रुतिस्वरग्राम	*	स्फुरित पञ्चमे वहजे	#E
स्थानस्य पूरक. क्रच्छात्	32	स्फुरितादि स्वरो यत्र	¥ E
यानानि नवधा चास्यों	१६=		888
स्थानानि प्रसृतैस्त्रीणि	¥5	स्मृतोऽचलप्रतापोऽसौ स्याता जानुसमीपस्थौ	१८६
स्थानेनैकेन यो गायेत्	२४०	स्यादा जानुतमानस्या स्यादाङ्ग रेवगुप्तस्य	,, =-?
स्थानेनैकेन यो गायेत्	२४०	स्यादश्चररञ्जनादौ	१७७
स्थाने वा मन्दगमने	२०५	स्यादाशीर्वाद सीन्दर्थं	१७४
स्थानै स्थायस्वरै सम्यक्	Ye	स्याद्दशाहेऽत्रपद सहितो	१२६
स्थापन च कमादेवा	२०३	स्यादेव तद् हिदेक्कार	250
स्थापने तस्य जाना	185	स्याद गति. स्वर ताल।म्य	
स्याय विविधमादाय	45	स्याद्वस्तु विजयश्रीश्व	१०२
स्थाय, स्वल्प परीमाण.	90	स्यान्निवृत्त प्रवृत्तास्य	30
स्थायाना करणान्याहु	४२	स्युमंण्डलस्वस्तिकाविद्धा	8=0
स्थाया या रूपके यस्मिन्	χo	स्रगवाभिक्ररचिता	×.
स्याया विधेया न तुसैकरूपा	×ξ	स्वतावितेप सहितो	१०२
स्यायिनोऽष्टापि हीने तु	\$00	स्वतो लास्यविहीनत्व	२ ५ ३

tiche.	•	₩	र्वनेतरमध्येत्
स्वती लास्यादपि	२१४	स्व राषं स्तापसैत्रं व	\$08
स्थपका पर पक्ताम्यां	२२४	स्वरायोंऽ सी द्विषाज्ञेवः	399
स्वयापताते सहिता	₹•२	स्वराक्ष्यहस्तवाटाक्ष्य	et\$ \$
स्बमावतस्तु मधुर	२४२	स्वरास्सतेन्नका यत्र	455
स्वमावावस्थितवस्र.	१७१	स्बरै पाटैस्तवातेली	252
स्वय यत्र प्रबन्धे स्याद्	£X	स्वरैरभीष्टो यत्रार्थं	192
स्वय यो राजतेनाव	ह इ	स्ब रैक्च्चत रैर्युक्त	Af
स्थय यो राजते यस्मात	80	स्वरै सहस्तपारीश्च	499
स्वर वर्णं च तालञ्च	233	स्वरो गीत च वाद्य च	२७
स्वर पदञ्च विरुद	εķ	स्वरो यद गमयेद गीतै	ইল
स्वर प्रवर्तते यत्र	3.5	स्वज्ञतस्यानसम्भतां	\$#
स्वर कम्पोभवेखत्र	3.5	स्वस्थानक परित्वागात्	१२६
स्वर काकुरिति प्रोक्तो	ĘĘ	स्वस्थाने चाप्यवस्थाने	२४४
स्वरग्रामी तथा जाति	¥	स्वस्थानेताहित पूर्ण	==
स्वर मात्रेण सदृश	¥₹	स्वस्तिक सर्व सङ्कीणै	t= 0
स्वर मात्राधिकौ यस्मात	×₹	स्व स्तिकाकारषटना	864
स्वर वण विशिष्टेन	35	स्वस्तिकीकटकास्यी	१= ¥
स्वर श्रुत्योस्तु तादात्म्य	3	स्वस्तिकौमणिबन्धेतु	\$= \$
स्वरस्य कस्य चिच्छाया	ξĘ	स्वस्थाने चाप्यवस्थाने	744
स्वरस्य स्थायिनो यश्च	80	स्वादुत्वादि गुणाभवन्ति	४२
स्वरा मुरजपाटाश्च	११७	स्वामिभक्ताश्च सचिवा	२२६
स्वरास्य करण पूर्व	११४	स्वैरगोष्ठिपरीभाव	२२=
स्वरारव्यकरणाद्भेदो	\$ 8 =	स्वैरवृत्ति स्वरावृत्ति	4.8
स्वराख्येकरणे स्पब्ट	११७	स्वोल्लासनाक्षविक्षेप	१७४
स्वराणा नियमाद्रागेषु	6.8.6	_	
स्वराणा मूच्छनातान	१ ×	₹	
स्वराणा श्रुति कार्स्यत्वम्	3	हसनादीस्सहनादो	२ १७
स्वराणा सन्निवेशीय	×₹	हसपक्ष पताके बेस	808
स्वरादीनाम् उत्पत्ति	×	हसपक्षकरी दण्ड	१ =४
स्वरान्तर क्रमेणैव	×ε	हसपक्ष करी स्याता	₹=₹
स्वरान्तर क्रमेणैव	3₹	ह सपकोऽवंचन्द्रश्व	१७३
स्वराग्तरस्य सयोगात्	ĸĸ	हसलीलो वर्णिमनो	२१६

ALCIANO	•	,	4 1144 1144
हडास्बहस्त काङ्ग्ल	₹ 0 \$	इस्तलाचवतो यत्स्यात्	{ K£
इंसास्यो मुकुरन्तिचेव्	₹05	हस्ततस्या प्रसिद्धाह	₹ = ७
क्कारानुकृति स्कारी	ξX	हस्बेम्य शब्दनिव्यक्ति	6.8.5
हनुसञ्चलनाद् गायम्	० ≢७	हस्ते ब्यापार भेदा	१३ ७
सुरिविषयसक स्माव्	200	हस्तोऽञ्जलि कपोतश्व	₹0%
प्ररिष्ठनर पतिशका	***	हाबभावविलासाद्वा	224
ह्योंत्कवंस्तु भावत्री	7.8	हि न्दोलकस्यच्छेवाटी	2.5
ह लुकायिमवेत्येव	4.5	हुदुक्ता व मृदङ्गहक	848
इस्तत्रयकु तायामा	8 11 4	होलावश्चित्तसार स्वात्	48
हस्त भेदास्यतु विष्ट	240	स्त्रास वृद्धियुता चैत्र	44+
हस्तलकाणमेतेवा	625		

45.

शुद्धि-पत्रम्

सुद्धिपाठ	व्रशुद्धिपाठः	पुष्ठम्	न वित
सम्पत्कर्गठो	सम्मत्कर्मठो	*	×
श्रीमारवंदेव पठितान्	श्रीपाद्यं पठितान्	?	
नाचार्यादवापि	नाचार्य्याश्चापि	7	
सम्पादक प्राथना	समदक प्राथनाप	9	\$A.
वार्षिलहरी	वाधिलहरी	*	* •
वस्दना	बन्दना		18
किञ्चिदेतद्	किञ्चिदे तद	¥	*
प ुवे	कथम् (^२)	¥	4.8
स्यानलक्षणम्	स्यानमक्षणम्	¥	*
शारीरी बीणा	शरीरी बीणा	¥	25
मू ष्टि तो	मूर्व्छिती	**	**
नार्यं	चार्यं	13	*
विवक्षितत्वात्	वविभ तत्वात्	१ २	*
व्यञ ्जनत्वात्	स्यञ्जनस्यात्	\$8	
व्यञ्जकाना े	व्यञ्जकाना	88	•
समुच्छ्य	समुण्छ्	25	**
व्यास्याङ्कता	व्याख्ताकृता	78	24
चक्रवर्ती	चक्रवर्ति	22	20
शरीरादिष्वनि	शरीराक्रिष्वनि	58	4
मासमेद	मासमेद	75	
मतङ्गराज्या	मतक्षु शब्दा	25	20
सिट्ध्यति	सिद्धयति	20	¥
बह्नि रुष्यते	वन्हिरुच्यते	20	ţ.
ধাৰ্ণিকাথ	क्षाणिकाँवा	35	24
ब्लोकास्सिह भूपालेन	श्लोकास्सिहभूपालेन	30	₹
पृथक्	সথক্	3.5	18
होती	होती	33	**
त्रक्त्यु	मञ्जयु	¥\$	
रागाकार धपस्याने	रागा कारम्यस्थाने	88	•
छायान्तरकारणम्	श्रायात्तरकारणम्	A.A.	1
प्रहृत्यासी	प्रहुग्बासी	AX	*

शुद्धिपाठः	सञ्जुद्धि पाठः	पृष्ठम्	र्व क्तिः
द्व्यषादय	ह स्वीदय	8É	8 %
कस्मिन्न पि	कस्त्रिपि	8.6	\$K1
र् ब्रुव्यम्बं	द्वयर्ध	80	₹,₹,€,₹₹,
			१३,१६,२ ३
हि गुण	द्विगुण	¥5	¥
उच्चारोता	उच्चासैता	38	Ę
बहुप्रकारै	बहुकारै	28	२
रागेणान्येन केन वा	रागेणान्येन केनवा	4.8	98
सुत श	सुतरा	¥₹	8
गान	गानै	£8.	¥
त ्जै	तञ्जै	ÉR	Ę
29	,,	€ ७	8
स्यादशाशस्त्र	स्यादशाशस्त्र	६८	2
वराट्य	बराटय	99	8.8
छायानाट्टा	छाया नाठ्ठा	৬=	1
शृङ्गा रे	शृङ्गीर	৩=	4
वर्षभोज्भिता	चर्षमोजिभता	= ?	¥
स्फुरित	स्फुरित	= ?	77
बीरे	बीरे	=8	5
मृ षभ	ऋषभ	58	₹₹
चतुर्वं भ्रष्याय	द्वितीय ग्रध्याय	83	8
द्विविध	द्वि विञ्च	६२	2
सोऽश	सोऽश	83	· ·
सम्यक्त्व	सम्यवस्व	६२	₹ €
पाठानुसार	पाठानुसार	88	25
बृब्युङ्गादि	<u>ढ</u> यङ्गादि	200	¥
(মাজু	द्वयञ्ज	800	25
पादाविषयुतो	पाताविपतितो	१०१	88
ব্জী	तञ्जी	802	×
वर्षनानन्दस्तया	बर्धनानन्दस्तथा	१०२	88
इति कोम्बड सामान्य-	इति तार जो भोज्बह	284	₹ \$
लक्षणम्			
तदनन्तर स्यात्	तदनन्त रस्यात्	989	2.5

चुद्धिपा ठ	ग्र ञ् दिपाठः	पृ ब् ठम्	यं क्तिः
विलम्बिता	बिलम्बिता	\$23	25
द्रुतविलम्बा	दुतविलम्बा	१ २३	6.8.
परीक्षणीय	परीक्षणाय	35\$	२३
दशविध	दशबिध	£ # \$	२६
वातक्छित्राभिधानवान्	वातिश्निभिधानवान्	१३७	18
पाण्यन्तरनिकुट्टक	पाव्यन्तर निकुट्टक	685	78
विषयपूरणार्थं	विषय पूरणार्थं	886	30
रत्नाकरादुद्धृतानि	रत्नाकरादुद्घृातानि	१४६	₹•
हरताम्यामुडुवेनैव	हस्ताभ्या मुडुवेनैव	१५०	\$8
निरवधिक	निवरधिक	१४३	8 %
कवलीभेदन विना	कवलीभेदन विना	688	3
मलपाङ्ग	मलपाङ्ग	१४६	१२
सदेङ्कृति	स देख्कुति	१६०	2
भ्रुकर्म	भूकर्म	250	१२
मुकुरान्ते	मुकुरन्ति	१७६	१५
ऊषंनाभ	ऊणें	125	३ २
चतुरस्त्र, उद्वृत्त	चतुररस्रउद्वृत्त	१८२	१५
चतुरस्र	चतुरस्त्र	१८२	₹ ₹
प्रसारितौ	प्रसारि तौ	१८४	ē
परावृत्त	परावृत्ते	₹8₹	¥
जङ्घोर	जङ्गोर	,,	3
नाभिवाह्वोरु	नाभिवा ह्वोर	२०१	₹
नृत्त	र्न्टत	२०३	?
भावज्ञैललि	भावज्ञैल लि	22	9
सदृषा	सद्ग	₹•¥	80
माङ्गिकाभिनयो	ग्र िकाभिनयो	,,	१२
कथ्यतेऽधुना	कथ्यते ऽघुना	२०६	¥
गुण्डलीवाद्यपद्धति	गुण्डलीवाद्य पद्धति	205	Ę
कालस्त्वब्ट	कालत्वष्ट	₹₹₹	7
सपक्षेष्टाक	सपक्चेष्टाक	395	80
प्रागलम्य	प्रागल्म्य	230	88
रुपेतो सम्बद	रूपेतो सुषठ	२३४ २३४	8
सुषट यो	यो	234	१४

